वेद प्रचार, आर्य समाज, विश्व शान्ति, राष्ट्रोत्थान, मानवता एवं सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र

॥ओ३म्॥
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्



आर्य नीति

वर्ष 2 अंक 33 21 मई 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पंजियन सख्या RJ 2637/2001 वार्षिक मूल्य 75 रुपये

लोकनायक जयप्रकाश नारायण जन्म शताब्दी वर्ष

पूरे राष्ट्र को गुजरात बनने से रोकना होगा -कुमार प्रशान्त

महर्षि दयानन्द एवं आर्य समाज की उपेक्षा के कारण सम्पूर्ण क्रान्ति का आन्दोलन विफल हुआ



सत्यव्रत सामवेदी

जयपुर 12 मई। लोक नायक जयप्रकाश नारायण की शताब्दी के उपलक्ष मे आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर मे सम्पूर्ण क्रान्ति एव आर्य समाज की भूमिका विषय विचार गाष्ठी सम्पन्न हुई। इस गोष्ठी क मुख्य वक्ता क्रान्ति शस्वती एव लोक नायक जयप्रकाश नारायण थे। अनन्य ी सर्वोदयी विचारक श्री कुमार प्रशान्त थ। इस गाष्ठी मे अध्यक्षीय भाषण देते हुए श्री सत्यव्रत ी ने कहा कि आय समाज का सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए नन गत सवा सौ वर्ष स चल रहा है। लोक नायक ाश महात्मा गाधी और आय समाज क सम्पूर्ण क्रान्ति न्ध मे विचारो मे कोई अन्तर नही था। काल मे लोकनायक जयप्रकाश नारायण र्ण क्रान्ति का नारा दिया और इसकी आधी से भारतवर्ष का गगनमण्डल ित हो गया। इस तूफान मे भारतवर्ष ती हुई नौका को लाकनायक जयप्रकाश ा और हमारा देश तानाशाही के शिकजे से बच गया। अपातकाल के बाद ा के चुनावो मे श्रीमती इन्दिरा गाध त्व मे तानाशाही ताकतों की शर्मनाक हुई और भारतवर्ष के करोडो लोग देश ल भविष्य का स्वप्न देखने लगे। यह ागृत हुई कि सरकार जनता के प्रति होगी समाज का जो अन्तिम व्यक्ति भी सत्ता में भागीदारी होगी सार्थक शिक्षा नीति का निर्माण होगा महगाई कम होगी भ्रष्टाचार मिटेगा सबको न्याय मिलेगा समतामूलक समाज होगा जातिवादी और अस्पृश्यता का खात्मा होगा दहेज प्रथा खत्म होगी आदि आदि परन्तु आश्चर्य है यह सब कुछ नही हुआ। अस्पृश्यता का कोढ दिन ब दिन बढता ही जा रहा है। जातिवाद के अजगर की लपेट में सारा देश दम ताड रहा है महगाई बढती जा रही हैं। आपातकाल से लेकर आज तक महगाई सुरसा की तरह बदन बढाती जा रही है। पाखण्ड और अधविश्वास निरन्तर बढता ही जा रहा है। भ्रष्टाचार का कोई अत नही है। प्रधानमत्री से लेकर अदने अफसर तक भ्रष्टाचार के आराप स मुक्त होने के लिए कचहरियो मे जमानत के लिए खडे है। दहेज के लिए देश की इतनी बेटियो की हत्या हो रही है जितनी एक छोटे मोटे देश की जनसख्या होती है। साम्प्रदायिकता के पिशाच ने इन्सानियत के खून से धरती को लाल कर दिया है आदमी कितना क्रूर निर्मम हृदयहीन हो गया है और यह सब उस धरती पर घटित हुआ जहा महर्षि दयानन्द ने जन्म लिया था जहा महात्मा गाधी ने जन्म लिया था जहा लोकनायक जयप्रकाश की सम्पूर्ण क्रान्ति का दावानल धधका था बिहार मे उत्तरप्रदेश मे मध्यप्रदेश मे राजस्थान मे उत्तर भारत के समस्त प्रान्तो म परन्तु दो तीन वर्ष म ही इस सम्पूर्ण क्रान्ति की आधी ने दम तोड दिया और वही पुरानी भ्रष्ट राजनीतिक ताकतो ने सत्ता पर फिर कब्जा कर लिया। हम तब से निरन्तर सम्पूर्ण क्रान्ति पर प्रतिवर्ष गोष्ठिया आयोजित करते आ रहे हे भाषण दते आ रहे हैं। शिविर लगाते आ रहे है परन्तु बदलाव कुछ नही आ रहा। हमारे पास ज्ञान ता है परन्तु कर्म नहीं है। अब हमे गोष्ठियो की नही अपितु कर्म की योजना बनानी चाहिये सम्पूर्ण क्रान्ति पर हमने बहुत भाषण सुन लिये। सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए समर्पित गाधीवादी एव जयप्रकाश जी के अनुयायियों एव आर्य समाजियों में कोई अन्तर नही है परन्तु दोनो ही मिलजुलकर काम नही कर रहे। एक लक्ष्य होने के बावजूद दोनो के रास्ते अलग–अलग क्यों है? सामवेदी जी ने कहा कि मेरे विचार से सम्पूर्ण क्रान्ति के





लोकनायक जयप्रकाश के सहयोगी एव सुप्रसिद्ध विचारक श्री कुमार प्रशान्त गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए एव एकाग्रता के साथ सुनते हुए श्रोतागण



सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री सत्यव्रत सामवेदी गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए

आन्दोलन न दम इसलिए तोडा कि हमन दयानन्द की उपेक्षा की दयानन्द को नकारा और सम्पूर्ण क्रान्ति को हम अपना मौलिक चिन्तन मानकर आगे बढने का प्रयास किया। सम्पूर्ण क्रान्ति की जड तो आर्य समाज है दयानन्द है। आपातकाल के दौरान सम्पूर्ण क्रान्ति का नारा लगान वाला ने कभी भूलकर भी न ता दयानन्द का नाम लिया और ना ही आर्य समाज का। ता फिर यह जडविहीन सम्पूर्ण क्रान्ति का वृक्ष हरा–भरा कैस रह सकता था। आखिर सम्पूर्ण क्रान्ति स आपका मतलब क्या है? आप यही न कहते है कि जातिवाद मिटना चाहिए अस्पृश्यता समाप्त हानी चाहिए। दहज प्रथा समाप्त हानी चाहिए सरकारा को जनता क हित म काम करना चाहिए महगाई खत्म हानी चाहिए भ्रष्टाचार मिटना चाहिए शिक्षा नीति म परिवर्तन हाना चाहिए। तो ये सब समस्याए ता किसी बीमारी क लक्षण हैं। फाडा को कुरदन स ता फाड समाप्त होत नही। यह सब ता खून की खराबी के कारण होता है। ता खून साफ किय बिना फोडे समाप्त हो नही सकते। और खून साफ करने की औषधि आर्य समाज के पास है। वह औषधि आपका इतनी कडवी लगती है कि आप उसका पान करके स्वस्थ होना नही चाहते, आखिर हजारो वर्ष की लम्बी बीमारी से महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र को मुक्त कराया। हजारो साल से परदे के कारावास मे बन्द मातृशक्ति को मुक्त कराके समाज म सर्वोच्च स्थान महर्षि न दिलाया। दलितो और अस्पृश्यो को आर्य समाज ने गले लगाया। आज दलित वर्ग जो स्वात्माभिमान की जिन्दगी बसर कर रहा है उसका कारण आर्य समाज है। इस विषय मे अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के यागदान को कौन भूल सकता है। मेरा कहने का मतलब यह है कि कोइ भी आन्दालन अपने अतीत से कटा हुआ नही हो सकता। प्रत्यक राष्ट्र मे जो क्रान्ति हुई हे उसके पीछ एक लम्बी प्रच्छन्न धारा रही है जो अनुकूल स्थिति आन पर प्रकट हो जाती हे। हम अपन दश की आध्यात्मिकता से कटकर सम्पूर्ण क्रान्ति लाना चाहते हैं जो असम्भव है। सम्पूर्ण क्रान्ति की आत्मा हमारे देश की आध्यात्मिकता है जा प्रेम करूणा तथा सवदनशीलता सहानुभूति मित्रता परापकार मानवीयता का सन्देश दती हे। महर्षि ने कहा 'मनुर्भव' इन्सान बन। हम हिन्दू बनत ह मुसलमान बनते हैं बौद्ध बनत हे जनी बनत हैं सिख बनते हैं परन्तु मानव नही बनना चाहते। अगर हम महर्षि के बताये रास्ते पर चलकर इन्सान बने होत तो गुजरात म क्रन्दन हाहाकार सिसकिया छोटे–छोटे बच्चो का कत्ल–आम विलाप बलात्कार नही हाता और गुजरात की धरती इन्सानियत के खून स नही रगी गई होती। सामवेदी ने कहा देश की आजादी के लिए कांग्रेस मे 80 प्रतिशत लोग आर्य समाजी थे। यह बात कांग्रेस के महान नेता पट्टाभिसीतारमैया ने लिखी है। तो आध्यात्मिक धार्मिक सामाजिक आर्थिक सास्कृतिक राजनैतिक क्रान्ति के लिए आर्य समाज के अक्षय स्रोत से हमे शक्ति लेनी होगी तभी सम्पूर्ण क्रान्ति का आन्दोलन फिर से जीवित हो सकता है।

गुजरात की घटनाए लोकतन्त्र पर आघात

—कुमार प्रशान्त

प्रख्यात चितक कुमार प्रशान्त ने कहा कि गुजरात की घटनाए दो सभ्यताओं का सघर्ष कही जा सकती है। सम्पूर्ण क्रान्ति में निहित है। कुमार प्रशान्त रविवार को आर्य समाज राजापार्क जयपुर की ओर से आयोजित सम्पूर्ण क्रान्ति विचार और आर्य समाज की भूमिका' विषयक गोष्ठी मे मुख्य वक्ता की हैसियत से बोल रहे थे। उन्होने कहा कि लोकतंत्र मे अपनी कमिया से लडने की ताकत होती है जबकि तानाशाही मे ऐसा नही होता। इस दौर मे सबसे ज्यादा लोकतत्र दाव पर लगा हुआ है। गुजरात मे जो कुछ हो रहा है वह लोकतत्र की जीर्ण–शीर्ण स्थिति है। प्रशान्त ने कहा कि गाधरा काण्ड और गुजरात मे उसके बाद की घटनाए कलक हे लेकिन अब गोधरा को एस पत्थर का रूप दे दिया गया है जिसे मारकर कोई भी जवाबदेह बनने स इन्कार कर रहा है। उन्होन कहा कि एक ऐसी विचारधारा को काफी दिन से सरक्षण दिया जा रहा है जिसमें कहा जा रहा है कि दश में एक धर्म के सबसे ज्यादा मानने वालो का वर्चस्व होना चाहिए। प्रशान्त ने कहा कि आजादी के बाद भारत ने यह रास्ता चुना जो भारतीय सास्कृतिक परम्परा के निकट था। हमारे यहा सब जगह से धर्म आए और नई सास्कृतिक परम्परा का विकास होता गया। करीब एक सौ नब्बे किस्म के धर्मो को अपने आचल में पालने वाली इस धरती के बारे मे पाकिस्तान यूरोप व अरब की तरह नहीं सोचा जा सकता। गाधीजी ने दो सभ्यताओं के सघर्ष की भविष्यवाणी की थी गुजरात मे यह बात परिलक्षित हो रही है। विभाजन के रूप मे मुस्लिम सकीर्णता के गम्भीर नतीजे हमने झेले है। हिन्दुत्ववादी ताकते इसकी प्ररणा यूरोप से ले रही है। गुजरात समस्या देश की विविधता की विरोधी है। अब आर्य समाज समेत सभी इन्सानियत पसन्द ताकतो को इनके विरूद्ध मजबूती क साथ खडा होना होगा।

एक धर्म का वर्चस्व समाज के लिए घातक

कुमार प्रशान्त ने भारत को किसी एक धर्म के वर्चस्व वाले समाज म बदलन की कोशिश को आत्मघाती एव विघटनकारी बताया। उन्होने कहा कि केन्द्र मे भाजपानीत सरकार एव हिन्दुत्व दर्शन मे विश्वास रखने वाला सघ परिवार भी अब यह समझन लगा है।

गुजरात के हालात पर चर्चा करते हुए उन्होने कहा कि मोदी सरकार के लिए वहा सामान्य प्रशासन चलाना कठिन हो रहा है। मोदी के चाहने पर भी वहा नरसहार रूक नही पा रहा है। यह एक धर्म के वर्चस्व वाला समाज बनाने की कोशिश का ही परिणाम है।

राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ और भाजपा सहित सभी राजनीतिक दल यह समझ चुके है कि सरकार बनाने के लिए जातिवाद एव धार्मिक उन्माद ही काफी नहीं है लेकिन इसके लिए देश को बहुत बडी कीमत चुकानी पडी है। समाज को तोडने वाली इन घटनाओ से देश कई साल साल पीछे चला गया है। समाज को सही दिशा मे ले जाने के लिए सामाजिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों एव सगठनों को मिलकर काम करना होगा।

गुजरात में हुए नरसहार की अखबारो मे छपी खबरो पर टिप्पणी करते हुए उन्होने कहा कि वहा अखबार अपनी भूमिका निभाने मे विफल रहे हैं। वहा उनकी भूमिका निभाने मे विफल रहे हैं। वहा उनकी भूमिका भी राजनीति की तरह विचलित हो गई। लोकतत्र बचाकर रखने की जिम्मेदारी पत्रकारों की ही है। केन्द्र की अटल बिहारी वाजपेयी सरकार पर कटाक्ष करते हुए उन्होने कहा कि अब तक केन्द मे इससे ज्यादा अप्रभावी सरकार नही देखी। यह सरकार तो दवेगौडा सरकार जिसमें सरकार नाम की कोई चीज ही नही थी उससे भी ज्यादा प्रभावी है। उन्होंने बताया कि युवाआ का जयप्रकाश नारायण की विचारधारा से जोडने के लिए राष्ट्रीय समग्र युवा सघ बनाया गया है जो इस समय 12 राज्यों में काम कर रहा है और उसकी सदस्यता सख्या करीब चार–पाच हजार है।

प्रशान्त ने सर्वोदय आन्दोलन में युवाओ की भागीदारी कम होने पर अफसोस जाहिर किया। एक प्रश्न में जवाब मे उन्होने कहा कि आज गाधीवादी विचार बचाने के बजाए अपनी सस्थाओं की सम्पत्ति बचाने की चिन्ता सता रही है।

मुम्बई आर्य महासम्मेलन की शव परीक्षा

गालियों के लिये धिक्कार नहीं, धन्यवाद

सुश्री सूर्या देवी आचार्या, पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी द्वारा

अन्तरराष्ट्रिय भार्य महासम्मलन तथ्यो के झरोख से नाम पुस्तिका मेरे पास आइ है जिसक सकलनकर्ता श्री जगदव सिह जी ठाकुर है। 39 पृष्ठीय इस पुस्तिका का प्राप्त कर महती प्रसन्नता हुई कि एक मरे अकेले सत्य प्रतिपादन पर इतन लाग का झूठ छिपान के लिय लखनी का व्यायाम करना पड रहा ह।

अन्तरराष्ट्रिय मुम्बई महासम्मलन मे हमन जा दखा उन झलकियो का मुम्बई आर्य महासम्मेलन की एक रपट इस शीर्षक स आय–जगत क समक्ष प्रस्तुत कग्ना आवश्यक समझा क्योंकि काय की सम्पन्नता के पश्चात सुन्दर–सुन्दर –बहुसुन्दरम' की ढपली प्राय बजाई ही जाती है सो यहाँ भी बजी जा बजनी भी आवश्यक थी लेकिन वास्तविक तथ्यो को उजागर करन का किसी मे साहस नहीं होता है।

मरी इस रपट की सत्यता का विचारा को अन्तरराष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन नही कबड्डी और मैच? शीर्षक से तथा सुश्री सूर्या देवी जी की असभ्यता और उद्दण्डता' आदि 14 अवान्तर शीर्षकों क साथ श्री ठाकुर जी' न ताड मराड के प्रस्तुत कर अपना कुत्सित मानस भली–भाँति प्रदर्शित किया है जिस शब्दश उसद्धृत करना महत्वपूर्ण नहीं समझती मात्र उनके पाण्डित्य का ही दिग्दर्शन करा रही हूँ।

श्री ठाकुर जी ने जिस प्रकार क भद्द शब्दो का प्रयोग किया है उससे सुस्पष्ट है कि जैसे पौराणिक भाई नारी जाति को प्रत्येक प्रकार से शोषित एव पदाक्रान्त करना चाहते हैं वैसे ही आर्य समाज मे घुसपैठ करके आर्य समाज क सदस्य बने हुये जन उस नारी के लिये जो वेद की दृष्टि में समाज की मूर्धा है उसके प्रति कुछ नहीं ता शाब्दिक दुराचार द्वारा अपनी कुत्सित भोंडी दुष्प्रवृति को प्रदर्शित करन मे नही सकुचाते एतादृश्या जन पौराणिक भाइया से कम नहीं है। काश! आज जगद्गुरू महर्षि दयानद अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द होते तो ठाकुर सदृश मानवों के धुर्रे उडा देते।

श्रीमान ठाकुर जी ने अपने 'अन्तर्राष्ट्रिय' शब्द की पुष्टि में लगभग डेढ पृष्ठ भरे है जो लोगों को मात्र दिग्भ्रमित करने के सिवाय और कुछ नहीं। ठाकुर जी अन्तर्राष्ट्रिय शब्द की साधुता मे लिखते हैं– अन्तर + राष्ट्रिय का अन्ताराष्ट्रिय ही होता है अन्तरराष्ट्रिय नहीं। प्राय सौ साल से प्रचलित अन्तर्राष्ट्रिय वैसे ही हिन्दी मे स्वीकृत है जैसे विश्वामित्र और दीनानाथ। विश्वामित्र से पाणिनि भी हार गये। अपने बेटे का नाम विश्व का मित्र कौन रखेगा?

ठाकुर जी! अन्त राष्ट्रिय अन्ताराष्ट्रिय तथा अन्तर राष्ट्रिय शब्दों के प्रयाग मात्र की बात नहीं है बात तो अर्थक्ता और तदनुरूप प्रयोग की है। एक देश में होने वाले सम्मेलनादि के लिए अन्तराष्ट्रिय अन्तर्राष्ट्रिय एव अन्तर्राष्ट्रिय' शब्द प्रयुक्त होंगे उनका वैसा अर्थ होने से और देश–देशान्तर के लिये अन्तरराष्ट्रिय शब्द प्रयुक्त होगा। इन दो अर्थ–भेदों का कारण अन्तर एव अन्तर हलन्त अजन्त दो शब्द भेदों का होना है। हलन्त से तीन शब्द बनेंगे और अजन्त से एक। इन शब्द भेदों को श्री जगदेव जी जानते ही नहीं अत ससार को अन्तर + राष्ट्रिय का अन्ताराष्ट्रिय ही होता है अन्तरराष्ट्रिय नहीं यह पढा रहे हैं। वे यह भी नहीं जानते कि राष्ट्रीय राष्ट्रिय दानों ही सस्कृत निष्ठ शब्द है तथा एकार्थक है। राष्ट्रीय की जगह राष्ट्रिय प्रयुक्त नहीं हुआ है। ठाकुर जी पाणिनि के शेषे (पा4/2/91) सूत्र जो लक्षण = विधि तथा अधिकार दोनो है से परिचित होते तो अन्धेरे में डण्डा न चलाते। शेषे से छ होने पर 'राष्ट्रीय' तथा राष्ट्रावारपाराद्घखौ (पा4/2/92) से घ होने पर राष्ट्रिय ये दो शब्द निष्पन्न होंगे।

इसी प्रकार राजनैतिक–राजनीतिक दो शब्द हैं और दोनों एकार्थक होते हुए भी सूक्ष्म अर्थ भेद रखते हैं। राज्ञा नीति = राजनीति राजनीति में होने वाला–कार्य हो, व्यक्ति हो वह राजनैतिक तथा जिसकी राजनीति अज्ञात हो जानने योग्य न हो या कुत्सित हो वह राजनीतिक होगा। भवार्थ मे राजनीति + ठक्अनुशतिकादीना च (पा7/3/20) सूत्र से उभयपद वृद्धि द्वारा 'राजनैतिक' शब्द निष्पन्न होगा और अज्ञाते' कुत्सिते' (पा5/3/7374) से 'क' प्रत्यय होकर राजनीति + क = राजनीतिक शब्द निष्पन्न होगा। इस प्रकार दोनों शब्द पृथक–पृथक हैं दोनों का प्रयोग साधु है न कि एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हुये हैं।

किञ्च उपरि + उक्त की उपरोक्त' सन्धि आप सदृश जनों की माया है दयानन्द भक्त सस्कृतज्ञ जनों की नहीं सस्कृतज्ञ' हिन्दी साहित्य का कलक नहीं ढोयेगा। इस प्रकार हिन्दी साहित्य का नाम लेकर मन चाहे शब्दों का प्रयोग उचित नहीं। हिन्दी का साहित्य शब्दों के अर्थो को नहीं बदल सकता जब सस्कृतनिष्ठ शब्द का प्रयोग हुआ है तो उसका अर्थ भी उसके साथ आयेगा ही क्योंकि शब्द अर्थ और उसका सम्बन्ध नित्य है– सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे (महाभाष्य) अत शब्दस्वरूप का भी ध्यान आवश्यक है।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

ओ३म्

"युवा लोग ध्यान दें"

क्या नशा सुख नहीं देता? नशा चढ़ाओं गम को भुलाओं।

प्रिय पाठक वृन्द! हमने इस प्रकार के शीर्षक को इसलिए देना उचित समझा हैं क्योंकि अधिकतर लोग नशा इस भ्रान्ति में करते हैं कि उनको उससे सुख मिलता हैं! अधि ाकतर विद्यार्थी और युवा लोग नशों मे इसलिये फसते हैं कि उनके सिगरेट पीने या होटल में बैठकर (तथाकथित ऊँचे कहलाने वालों मे) शराब पीने से उनका स्तर (दर्जा) समाज में ऊँचा हो जायेगा। अत वे इसी मे सुख कि अनुभूति करते हैं कि हमने धनाढय लोगो के साथ बैठ कर नशा किया।

मैंने एक इन्जीनियर होते हुए आज से लगभग 25 वर्ष पूर्व टकारा के महर्षि दयानन्द सरस्वती क जीवन से प्रेरणा लेकर आर्यसमाज का सच्चा सत्सग किया। और अपने कॉलेज तथा सरकारी नौकरी के समय भी कभी बीडी सिगरेट जर्दा बियर या शराब का ही सेवन नहीं अपितु चाय का भी सेवन नहीं किया। मेरा कभी भी न तो कोई सामाजिक कार्य ही रूका ओर न ही मैं कभी और लोगो कि तरह बिमार ही पडा। अपितु ठीक उससे उलटा चाय जिसमें कि कैफीन व टैनिक आदि विष होते हैं। उसके छोड देने से और गाय का दूध पीने से मेरे स्वास्थ्य मे अद्भूत सुधार हुआ। प्रात काल शीघ्र उठने व्यायाम करने ब्रह्मचर्य पालन करने तथा सब प्रकार के व्यसनो से दूर रहने के कारण मुझसे कमजोर कहलाने वील व्यक्ति मे इतनी शक्ति आ गई है कि मैंने बिना मॉस और अण्डा खाये व बिना किसी कि सहायता के अकेकले ही गाय को बॉधने वाली लोहे कि जजीर को तोड दिया। हाथ पर बल्ब के कॉच को पीस डाला। चार साबूत मोटी लोहे कि छडों को गले के नरम स्थान पर रख कर मोड दिया। इतना ही नहीं अपितु रोटी खाने वाली पीतल कि थाली को बिना ठेनी के हमात्र अपनी अगुलियो में दबाकर बीच से फाडकर यउसके दो टुकडे कर डाले। यह सब व्यसन रहित जीवन का हसी चमत्कार था।

मैंने इन्जीनियरिंग कॉलेज में पढते हुये भी वहाँ की कैन्टीन में जाकर कभी चाय नहीं पी। एक दिन आठ विद्यार्थी मिलकर गोलाई में बैठ गए। सब के सब लोगो ने (मुझे छोडकर) सिगरेट पी। जो भी न पीता उसे दूसरे कहते फॉरमतेलिटी के लिए पीकर साथ दो सिगरेट मेरे पास आई। पर उस समय तक मैंने अपने हाथों को अपना जूता खोलने में जान–बूझ कर व्यस्त कर रखा था। उन्होंने कहा फारमेलिटी के लिये आप पी पीओं मैंने कहा मैं नहीं पिता। सबके सब बोले आपको भी पीनी चाहिये। मैंने जूते को हाथ में उठाकर कहा क्या आप सब मेरा जूता फारमेलिटी में अपने–अपने सिर पर खायेंगे? वे नाराज हो कर बोले यह भी कोई सभ्यता है। तब मैंने कहा सिगरेट पीने से आयु कम होती है फेफडे खराब होते हैं दमा खासी व टीबी जैसे अनेक रोग लगते हैं। देखो, यदि आपको विश्वास न तो हो हर सिगरेट कि डिब्बी पर पढकर देख लो। सिगरेट स्मोकिग इज इन्ज्यूरिस फॉर हैल्थ अर्थात सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यही बात गुटके तथा शराब की बोतल पर भी लिखी रहती है। अत यदि जूता सिर मे मरवाना अच्छा नही जो कि केवल बाहर से ही चोट मारता * तो फिर अन्दर से रोग और मौत की चोट मारने वाले ये नशे क्यो अच्छे मानते हो? उनके पास मेरी इस बात का कोई उत्तर न था। पर मझे उस दिन के पश्चात कभी भी चाय पीने या सिगरेट पीने के लिए उन्होने नहीं कहा।

प्रिय पाठको! व प्यारे युवको! अधिकतर लोग दूसरे के कहने पर मित्रता निभाने के लिये फारमेलिटी की बात करने पर अथवा नशा अकेले करेगे ता लोग बुरा कहेगे एसा सोचने पर दूसरे भी लोगों को नशो मे फसा लेत है। मुझे अब तक जितेन भी बीडी सिगरेट शराब य गुटका आदि तम्बाकू खाने वाले लोग मेल। तो उन्होने मेरे यह पूछने पर कि आप इस नशे को क्यो करते है? अथवा क्यो पीना शुरू किया? एक ही उत्तर दिया कि हमे किसी दूसरे साथी या मित्र ने यू ही एक–दो बार पिला दिया और फर आगे चलकर यह हमारी गदी आदत बन गई।

प्रिय पाठको! सच्चा मित्र या साथी उसे नहीं कहते तो अपने साथी को रोगी भोगी या बीमार बना दे। यदि आपके आस–पास कुछ ऐसे नशों या विषयों का गदा काम करने वाले लोग हैं तो आप उन्हें अपना मित्र या साथी न समझकर उस जान लेवा मीठे जहर की तरह अपना शत्रु ही समझे। यदि भारत के बच्चों युवाओ तथा धनाढय लोगों को यह बात समझ मे आ जाये तो भारत के लगभग नब्बे करोड लोग नशो से बच जायें। क्योंकि कोई भी नशा फारमलेटी व्यवस्थित जीवन नहीं बनाता अपितु जलीवन को अव्यवस्थित unformality पैदा करता है। यह बात भी सब जानते है कि जो लोग ओलम्पिक आदि खेलों में नशा करते पकडे जाते है उन्हें खेलों से बाहर निकाल दिया जाता है। क्योंकि नशा करके उत्तेजिल होना अपराध हे।नशे से उत्पन्न हुई शक्ति विनाश ही करती हैं।

जैसे सिगरेट पीना बुरा है ठीक वैसे ही चिलम हुक्का या बीडी पीना भी बहुत बुरा है। जो मूर्ख शिवजी महाराज का नाम लेकर भॉग या धतूरा पीते हैं उन्हें यह बात कहकर लोगों को बहकाने में शर्म आनी चाहिए। क्योंकि 'शिवजी कैलाशपती थे महायोगी संयमी सत्यसनातन वैदिक धर्मी व परम देवता तुल्य पुरूष थे। उनका जीवन ईश्वर की वाणी वेद के अनुसार थी। वेद में बिलकुल स्पष्ट लिखा है। कि –सुरा मापिब मॉस न अनिश्नयात गर्भान खादनित अर्थात है धरती पर रहने वाले मेरे पुत्र तुल्य प्यारे मनुष्यों! तुम शराब कभी मत पीना मास व अण्डे कभी मत खना काई भी नशा न करना। सदा यज्ञ की अग्नि के समान उपर उठो तेजस्वी बनो परिश्रमी बनो जुआ मत खेलो और खूब खेती करे। अत इस वैदिक शिक्षा से यही सिद्ध होता है कि शिवजी महाराज नशे नही करते थे अपितु जीवन मे सदा सुखी रहने के लिए व स्वस्थ रहेने के लिए नित्य प्राणायाम पूर्वक आम के जप का योग किया करते थे।

कुछ नादान लोग इसलिए सिगरेट याशराब पीते हैं कि उसस सुख मिलता है। यह उनकी बहुत बडी भ्रान्ति हैं तनिक बुद्धि लगाकर विचार करे कि क्या मतुसीबत के समय उस समस्या काईक समाध ाान (हल)न करक कोई बहोश कर देने वाली या बुद्धि को खराब कर देने वाली चीज भी कभी सुख देने वाली हो सकती है? कदापि नहीं क्योंकि ज्ञान के बिना समाधन कैसा?

उदाहरण के लिए विचार कीजिए कि रात को आपके घर पर चोर आ गये और आपके साथी ने आपको शराब पिलाकर बहोश कर दिया। तो क्या इससे चोर आपका घर न लूटेगे? क्या उस चोरी से होने वाली लाखा रूपयो की हानि आप को कभी सुख दे सकेगी? अत नशा करके मुसीबत के आने पर उसे कैसे टाला जा सकता है? अथवा उससे कैसे मुकाबला किया जा सकता है? ऐसी कुशाग्र बुद्धि देने वाली वस्तु जैसे– ब्रह्मी शखावली व गाय का दूध और जडी– बूटियो से किया गया वैदिक हवन ही बुद्धि खराब करके नशा देने वाला तामसिक पदार्थ तम्बाकू।

अत इससे यही सिद्ध होता है कि सुख का साधन नशा नहीं अपितु दूध घी फल जैसा श्रेष्ठ खान–पान और वैदिक पुरूषो के सत्सग से बनी श्रेष्ठ बुद्धि। तथा ओम् का जप करते बोला प्रभु का योग ही हैं नशे तो प्रतिदिन करें या कभी –कभी वे तो जीवन को नष्ट ही करते हैं। ठीक उस चोरी की भॉति चाहे वह कभी–कभी होती हो चाहे प्रतिदिन कुछ लोगों को जब बस यरेल या किसी सार्वजनिक स्थान पर धूमपान करने से रोका जाता है तो वे झट उत्तर देते है– आप बुरा कहते है। तो क्या इसे तो आज सब पीते हैं और यहा तक कि डाकटर भी पीते है और यहां तक कि डाक्टर भी पीते है। इसका बुद्धिपूर्वक उत्तर यह है कि यदि चोरी एक व्यक्ति करें तो वह चोरी और यदि मूर्खता और घमण्ड के कारण सारे लोग करें भी और डाक्टर तथा मिनिस्टर भी करने लग जाए तो भी वह चोरी ही है। प्रश्न यह है कि यदि चोरी यदि दस लोग मिलकर करने लगे तो क्या वह पुण्य कर्म या सत्सग बन जाता है? नहीं तो ठीक ऐसे ही किसी पाप को यदि मूर्खता औ र घमण्ड के कारण सारे लोग भी और डाक्टर तथा मिनिस्टर भी करने लग जाये तो भी वह अच्छा कर्म नहीं कहला सकता। क्योंकि पाप तो सयपाप ही है। एक अकेला करे तो पाप अनेक करे तो पाप। अमीर करें तो पाप गरीब करे तो पाप! मूर्ख करे तो पाप! डाक्टर करे तो भी पाप एक बार करे तो पाप अनेक बार करे तो पाप। अत ग्राम के लोगो और विद्यार्थियो को दूसरे नेताओ व अमीरो एव शहरियों या डाक्टरो वकीलों अथवा बुद्धि भ्रष्ट नमताओ व इन्जीनियरो द्वारा नशे करने पर उन्हें कभी भी अच्छा समझ कर उसका अनुसरण नहीं करना चाहिये। क्योकि उसने अधिक पढा–लिखा होते हुये भी एक अशिक्षित बनकर नशा करने की गलती की। उसे तो एक साधारण व्यक्ति की अपेक्षा भी अधिक मूर्ख व दुष्ट समझना चाहिये और अधिक दण्ड देना चाहिये। समझदार लोग कुछ तथाकथित वेज्ञानिकों की तोजी खोजों को भी एकदम स्वीकार न करें। कयोंकि इनकी भी कोई सदा स्थिर रहने वाली बुद्धि नहीं है कभी कहते है सेहत के लिये अण्डे मास और रिफाईण्ड तेल और कभी कहते हैं अण्ड मास रिफाईण्ड तेल व शराब दिल की बिमारी का सबसे बडा कारण है। अत गाय का घी व दही खाये गाय का दूध पीयें और ओम का जप करते सदा हवन करे व स्वस्थ सुन्दर तथा सुखी रहें।

सच्चा सुख का साधन वही है हेजो कि शरीर को स्वस्थ बुद्धि को कुशाग्र मन को प्रसन्न जीवन को स्वतन्त्र तथा आत्मा को तनाव मुक्त करके सदा आनन्दित करता है। पर नशा अपने मे ऐसा कोई गुण नहीं रखता। इसमें दो मत नहीं कि ह नशा प्रारम्भ में कुछ सुख देता सा दिखाई देता है। पर यह क्षणिक सुख है जैसे कुत्ता जब उस मासरहित हड्डी को चबाता है तो उसके अपने ही मसूडो का खून निकलकर उसे कुछ स्वाद देने लगता है। यदि उस हड्डी के चबाते समय कोई सज्जन व्यक्ति अचानक उसके समीप से निकल जाए तो वह अपनी हड्डी के छिन जाने के भय से उसे काट खाने के लिये भौंकता व दौडता है। पर वही कुत्ता कुछ काल के पश्चात् जब उस हड्डी को छोडता है तो तब अपने घायल हुए मसूडों के दर्द के कारण जोर–जोर से चिल्लाने लगता है और कई दिनों तक पीडित रहता है।

ठीक ऐसा ही क्षणिक सुख नशों को भोगने वाले व्यक्ति को भी उसके प्रारम्भ में मिलता है। पर जब उसे रोग आ कर घेरते हैं ध ान समाप्त हो जाता है सर्वत्र लोग उसकी निन्दा करते हैं तो तब वह नशों को छोडने का विचार करते है पर नको पूर्ण लाभ नहीं होता। क्योकि नशे की आदत इतनी गहरी हो जाती है कि देर के पश्चात छोडने के विचार को उन्हें पूर्ण लाभ नही होता। क्याकि नशे का अन्धकार इतना पक्का हो जाता है कि वह छोडना चाहता है पर छोड नही पाता। कारण यह है कि सभी नशे मन को इतना कमजोर व बिमार कर देते हैं कि करने वाल के भीतर उसे छोडने की या निर्णय करने की शक्ति ही समाप्त हो जाती है। अत उसे उसी कुत्ते के समान क्षणिक सुख के पश्चात फिर सम्पूर्ण जीवन भर रोगो पीडाओ तनावयुक्त जीवन चचलता भरा मनक नशो की गुलामी लोगो का अपमान और आत्मा की फटकार का ही दु ख झेलता पडता है।

सो अन्त में हम नशा करने वालो को यह बता देना चाहते हैं कि नशे धन का चरित्र का इज्जत का व सेहत का नाश करते हैं और व्यक्ति के शरीर को व वायुमण्डल को गन्दा करके उसे प्रभु के सच्चे सुख से दूर ले जाकर भयकर दु खों व एडस जैसी बीमारियों में दु खी करते हैं। जबकि कोलस्ट्रोल व एसिडिटी युक्त अण्डा मास शराब जूआ व्याभिचार का सेवन न करने वाला व यू ही चाय काफी न पीने वाला तथा नशीले तत्व (एल्कोहल इस्टरगम और पशुओं से प्राप्त ग्लिस्रीन जैसे जहरीले पदार्थो से बने) कोका लिम्का व पेप्सी आदि न पीने वाला सयमी तथा बुद्धिमान व्यक्ति सदा लम्बी आयु पाकर सुखी एवम स्वस्थ रहता है।

इन उपरोक्त गन्दे पदार्थो से रहित उसका नशा मुक्त पावन प्रभु मन्दिर रूपी मान शरीर राष्ट्रीय सेवा के मान एव प्रभु के आनन्द को प्राप्त कर के अपना जीवन सफल कर लेता है।

ओज सभी पढे–लिखे और समझदार लोग यह जानते हैं कि विश्व स्वास्थ (WHO) तथा अमरीकन वैज्ञानिक डॉ0 ब्राउयन तथा डा0 गोल्ड स्टीन तथा अमरीका के द अर्थ आईलैण्ड जनरल के शोधकर्त्ता डॉ0 के अनुसारनशा–धूम्रपान– शराब–मास–अण्डे और सभी कोका पेप्सी को मृत्यु का ग्रास बना देते है। क्योंकि कोई भी नशा स्थाई रूप से शक्ति या स्फूर्ति नहीं देता।

अत सदा उपरोक्त नशों से बचें।

–आचार्य आर्यनरेश
वैदिक गवेषक उद्‌गीय साधना
स्थली हिमाचल
डोहर (राजगढ)सिरमौर
–173101

चिट्ठी आई है

श्री सत्यव्रत सामवदी जी

नमस्त।

मैं इस विश्व का सबस छाटा वद प्रचारक हूँ। मैंन निम्न स्थाना पर सबस छाटे स्तर का वेद प्रचार किया है। कृपया इस अपनी पत्रिका म छापन का कष्ट करे ताकि अन्य भी इसी प्रकार अपने सामर्थ्यानुसार इस पुनीत कार्य म कूद सक और वातावरण वदमय बनन लगे।

निम्न स्थाना क स्कूलो म–बैठका म सिलाई सन्टरा म लाईब्रेरी मे प्रशिक्षण शिविरा म गायत्री मत्र स्वामी दयानन्द सरस्वती जीवन चरित्र अडो व मास स हानिया क पैम्पलेटस शराब व तम्बाकू की हानिया क पर्चे वेदिक मान्यताआ सिद्धान्ता के ट्रक्ट आर्य समाज की पुरानी पत्रिकाए नारी विकास की पत्रिकाए सबला बाटी हैं–

इन के स्कूला म स्टाफ की मीटिंग (30–40 मिनट तक) लेकर उनका नैतिक शिक्षा कैसे?किस प्रकार? क्या दी जाए ? आदि आदि बाता का प्रशिक्षण दिया है–इन की सवा म सदाचार की पुस्तक की भट की है।

कई जगहा क आर्य समाज क जलसो मे शराब बन्दी व शाकाहारी की प्रदर्शनी भी लगाई है जिनका लाभ हजारा लोगा ने उठाया है।

स्थान –नाहरी सानीपत रोहतक पानीपत गुडगाव पलवाल गाहानर हिसार बहादुरगढ राजस्थान म सीकर उप्र मेरठ।

होश्यार सिह

सत्यप्रिय विशाषाक

आर्य सेवा (जन जागृति) अभियान

केन्द्र नाहरी (सानीपत)

हरियाणा–131103

क्या आप ध्यान से पढ़ोगे ?

1 यदि आपको जरा भी देश व राष्ट्र स प्रेम है तो अपने देश मे राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रयाग कर। जैसे हिन्दी म हस्ताक्षर करें अग्रजी मे सिगनचर न कर। निमत्रण पत्र इत्यादि हिन्दी म छपवायें। अग्रजी सीखने या पढने का मतलब यह नही है कि हम अपनी मातृ भाषा का भूलकर उसकी उपेक्षा करे।

2 आजकल लडकियाँ शर्म की सीमा का पार कर रही है। अग प्रदर्शन इनका फैशन बनता जा रहा है। इनका पढान का यह अर्थ नही है कि उनको मिस वर्ल्ड या मिस इण्डिया बनाया जाय। उर्दू मे निम्न पक्तियाँ बताती है– तालीम लड़कियों की जरूरी तो है मगर, वो खातून खाना हों किसी सभा की परी न हो।

अर्थात शिक्षा ग्रहण करके उन्ह अच्छी ग्रहणी बनना बहुत आवश्यक है।

3 आर्य समाज में एक लहर चल पडी है। नमस्त जी का भूलकर नमस्कार जी करते हैं। नमस्त और नमस्कार म जो अन्तर है उस समझाने पर भी समझने की कोशिश नही करते। उचित यह है जब भी मिलो तुम कभी किसी स करो नमस्त जी नमस्ते जी।

4 कुछ अधिकारी आर्य समाज में स्वामी विवकानन्द को थापन का प्रयास कर रह हैं। एम.डी.एच वाला का इसमें बडा हाथ है। स्वामी दयानन्द और विवकानन्द म जो विराधी अन्तर है उस समझन की चष्टा क्या नही करते? इनसे सर्तक रहने की आवश्यकता है।

5 आर्य समाज को कवल चन्दा दन वाल नकली फर्जी सदस्य मत बनो। सच्च सदाचारी और असली समाजी बना। अपनी बुद्धि का असत्य का जानकर धर्माचरण करा। आज हम दखत है कि आय समाज कवन यज्ञ हवन करक अपन कत्तव्य की इतिश्री समझता ह जबकि इतिहास बताता ह कि आर्य समाज बुराइया कुप्रथाओं क विरूद्ध एक आदालन है। अत इसका ईमानदारी स सक्रिय बनाआ। याद रखो! कृण्वन्ता विश्वआर्यम से पूर्व कण्वन्तो स्वय आर्यम करना होगा। कवल जय घोष लगान स काम नही चलगा।

आर्य समाजों में क्या हो रहा है ?

मै प्राय आर्य समाजा मे बिना बुलाये भी जाता रहता हूँ उनक सत्सग म बैठकर सुनकर आ जाता हूँ। वहाँ काई नही पूछता कि आप कहाँ से आय हा वहाँ क्या हा रहा है यह सब जानकर बडा खेद हाता है। अनेका आर्य समाजो म धन उपार्जन क निम्न लिखित अनुचित कार्य हो रह हैं जिन्हे तत्काल बन्द करना चाहिय।

1 आर्य समाज के भवन बारात घर बन हुए है बारात म शराबी कबाबी सब तरह क लाग आत है जो गलत काम करत है। शराब की काका काला पप्सी की खाली बातल मिलती है।

2 आर्य समाज के भवना म सह शिक्षा के इगलिश मीडियम स्कूल चल रहे है। स्वामी दयानन्द के मिशन पर कुठाराघात कर रह है। संस्कृत पाठशाला क्यों नही खोलत?

3 घर से भागे हुये चरित्रहीन लडक–लडकिया के अवैध विवाह कराय जात हैं।

4 इनके अतिरिक्त वेदिक सिद्धान्त क विरूद्ध अनक पाराणिक क्रियाए होती हैं जैस गणश पूजन चित्रा पर फूल–मालाये इत्यादि।

5 आर्य समाज क कई अधिकारी स्वय पश्चिमी सभ्यता का अनुसरण करत हुए सूटेड–बूटड टाई लगाकर अग्रजी का अखबार लेकर आर्य समाज क सत्सग म आत है। इनके बीबी बच्चे इनक विरुद्ध कहीं और पूजा स्थला म जात हैं। मुझ बडा अफसास है कि आर्य समाज के जा प्रधान या मत्री अपने बच्चा को आर्य नही बना सकत। वह दूसरा को क्या बनायेगा। इनका लक्ष्य हजारा लाखा बटारन की आर रहता है। ऐस भौतिकवादी अधिकारिया स आर्य समाज का बचाआ। क्षमा करना किसी क प्रति मुझ काई ईर्ष्या द्वष नही है। मै ता समाज क हित म सुधार की बात लिख रहा हूँ। माना न माना खुशी आपकी हम मुसाफिर हे कहकर चल जायेग।

दवराज आर्य मित्र

श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा

आर्य समाज अनारकली मदिर मार्ग नई दिल्ली–110001

श्री धर्मवीर खन्ना को शोक

आपको सूचित करते हुए अत्यन्त दुख हा रहा है कि टकारा ट्रस्ट के माननीय ट्रस्टी श्री धर्मवीर खन्ना प्रधान आर्य समाज जामनगर सौराष्ट्र गुजरात–361005 दूरभाष–0288–750796 क युवा दामाद का स्वर्गवास हा गया है। व मुम्बई म रहत थ आर उनका अन्त्यष्टि सस्कार वेदिक रीति स सम्पन्न हुआ।

मै अपनी आर स एव श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टकारा की आर से सवेदना प्रकट करत हुए परमात्मा स प्रार्थना हे कि दिवगत आत्मा का शान्ति एव सदगति प्राप्त हा और उनक परिवार का एव श्री खन्ना जी क परिवार का यह अपार दुख सहन करन की शक्ति प्राप्त हा।

ऋषि की आवाज सुनो!

जयघोष बोलने से पहले, ऋषि की आवाज सुनो।
ऋषि ने जो सदेश दिया है, उस पर जरा विचार करो।।
बच्चा पैदा होते ही, अग्रेजी भाषा सीख रहा है।
हिन्दी की गिनती नही आती, वन, टु थ्री बोल रहा है।
यज्ञोपवीत का नाम न जाने, नकटाई को धार रहा है।
नमस्ते करना भूल गया है, बाय-टा-टा हिला रहा है।
विदेशी भाषा से पहले, मातृ भाषा का ज्ञान का करो।
जयघोष बोलने से पहले, ऋषि की आवाज सुनो।
जिस कॉलेज में लड़का पढता है उसी में पढती है लड़की।
आकर्षण पैदा करने मे फैशन की है बू भड़की।
फिल्मी गाने गा-गा करके प्रेम की पींग बढाते है।
जब नही सुनाई होती है तब लव लेटर भिजवाते हैं।
दुष्परिणामों से बचने को, सहशिक्षा को बन्द करो।
जयघोष बोलने से पहले, ऋषि की आवाज सुनो।
लड़की पैदा होने पर घर में मातम सा छा जाता है।
लड़का यदि जन्म ले तो घर खुशियों से भर जाता है।
लड़की का पालन पोषण भी लापरवाही से होता है।
लड़का शीघ्र जवा हो जाये, ध्यान विशेष दिया जाता है।
लड़की को लड़का समझो, नारी का मत अपमान करो।
जयघोष बोलने से पहले, ऋषि की आवाज सुनो।

ले देवराज आर्य मित्र

आर्य समाज कृष्णानगर दिल्ली–51

आर्य समाज

महर्षि दयानन्द मार्ग मण्डियानी चोहटटा उदयपुर–1

आर्य समाज के सदा बहार दीवाने लालचन्द कालरा नही रहें

उदयपुर 28 अप्रल। आय समाज उदयपुर क उप प्रधान एव वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता लाल चन्द कालरा का दिनाक 28 अप्रल 2002 को सायकाल 6 बजे हृदय गति रूक जाने के अचानक दहात हो गया जिससे समूची झीला की नगरी क आय समाजा मे शोक की लहर छा गई। स्व लालचन्द कालरा सदेव हसमुख रहने वाले सदाबहार व्यक्तित्व थ जिनकी रग–रग मे महर्षि दयानन्द का मिशन समाया हुआ था। वे समाज क ऐसे दीवाने थ जो जिस काम म लग जाते थ उसे करके ही छाडत थ। मरा उनस पहली बार 1988 में स्वामी अग्निवेश के नाथद्वारा हरिजन प्रवश आन्दालन में परिचय हुआ था।

य प्राय समाज 3–4 घट का प्रतिदिन समय देकर निर्माण कार्यो म व्यस्त रहत थ। समाज क एस ऊजावान साथी का असामयिक निधन समाज के लिय एक भारी क्षति हे जिसे कभी पूरी नही की जा सकती है। गत 5 मई का समाज क सभागार म सभी समाज के सदस्या ने दा मिनट का मौन रख श्रद्धाजलि अर्पित की। साथ ही दीवगत आत्मा की शाति के लिय ईश्वर से प्रार्थना की।

संदेश

जाग गया है जुल्म और ईमान सो रहा है।
देश की स्थिति पर इन्सान रो रहा है।
उड़ायी जा रही है संस्कृति की खिल्ली।
पाखण्डीयों का पुनः सत्कार हो रहा है।।

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।
उग्राः वः सन्तु वाहवोऽनाधृष्यां यथासथ।।

हे साधना शील मनुष्यो उठो बढो और विजय प्राप्त करो, परमेश्वर तुम्हे सुख दे, आश्रय दे, तुम्हारी शत्रुओ को विलोडित करने वाली शक्तिया उग्र हो। जिससे कि तुम काम, क्रोध, लोभ आदि द्वारा न दबाये जा सकने योग्य हो जाओ।

–आर्य वीर दल जोधपुर आर्यसमाज,

जालोरिया का बास जोधपुर

धर्म यज्ञ

लोकहित में समर्पित भाव स किया गया कार्य ही मनुष्य को मोक्ष के रास्ते ले जा सकता है। मानव जीवन

प्राणीमात्र में व्याप्त आत्मा मे परमात्मा क दर्शन करत है और सबके कल्याण की सोचत हैं वही सही अर्थो मे श्रेष्ठ है क्योकि परम पिता परमेश्वर सबका मालिक अल्लाह एक ही है। आतक फैलाकर किसी क प्राण हरना दूसरा का सताना या किसी प्रकार के कष्ट दना मानवाचित एव धर्म सगत नही ह। धम का आतक स दूर दूर तक काइ रिश्ता नही है। महाभारत या रामायण काल म कस ओर रावण इत्यादि राक्षसा का वध बुराई पर भलाइ की विजय क कारण ही धार्मिक भावना स प्रेरित ह। कस का कष्ण क एव रावण का राम क पुरुष क तुल्य कर दखना ठीक नही ह। कस आर रावण म पाश्विक प्रवृत्तिया थी जबकि कष्ण आर राम को ससार न आप्त पुरुष माना है। 1 सितम्बर 2001 का अमरिका क व्यापार ओर रक्षा मुख्यालया पर आतकवारी सरगन द्वारा करवाया गया आत्मघाती हमला पशुता की चरम सीमा का लाघ कर किया गया कुकृत्य ह नीच की सर्वदा निन्दा की जान चाहिय। जबकि 7 अक्टूबरी 2001 का अमरिका द्वारा किया गया जवाबी हमला वास्तव म लाकहित म किय गय यज्ञ मे पावन आहुति ह जिस धर्मयज्ञ की सज्ञा दना न्यायाचित है। उक्त यज्ञ स फेली इव्य की सुगध स मानवता का बल मिलगा और पशुता का ह्रास हाता ह। आतकवाद म पल रह जुननिया का काई धम नही ह व सभी अधर्मी है। धर्म की परिभाषा ह जा वस्तु जिस

गुण कर्म और स्वभाव की दिखाई दे उसे वैसी जानना और मानना चाहिए न कि चोटी और तिलक से

सिख मियाकट दाढी रखन स मुस्लिम अथवा जिस रग के कपड पहनने से उसका सम्प्रदाय जानना नितात मिथ्या है जैसा तालिबानो ने अफगानिस्तान म कठमुल्लाओ ने पाकिस्तान में कर रखा है। जम्मू काश्मीर मे हो रह आतकी हमला म मरने वालो लाखो लागा पलायन कर गए साढे तीन लाख लागो और बलात्कार की शिकार हुई हजारा पुत्रिया अनाथ हो गए बच्चा की अनदेखी कर अगर काई काठ का उल्लू अधेरे मे रोशनी की कल्पना करता है तो उस जेसा पाजी धूर्त वाट बैंक का मतवाला इसान न हाकर देशद्रोही जयचन्द या विभीषण का भाई ही हागा। सिमी आर जामा मस्जिद के शाही इमाम तालिबानी जहाद के हमशा पक्षधर रह हे ओर ह। जहाद क नाम पर आतकवाद विशुद्ध कुकम हे ओर कुकर्मी का सजा दना राजा का पुनीत कर्त्तव्य ह। सविधान म सशाधन कर कुकर्मिया का अविलम्ब मृत्युदण्ड दिया जाना सवथा उचित प्रतीत हाता ह। महर्षि दयानन्द सरस्वती न सत्यार्थ प्रकाश क छटव सम्मुलास मे राजधर्म (राजा का धर्म आर कर्त्तव्य) की व्याख्या की है। देश स्वतत्र होने पर शासन म बठ राजनता ही आज के राजा हे यथा राजा तथा प्रजा जेसा राजा का व्यवहार एव आचरण हाता हे वैसा अनुसरण प्रजा भी करती हे। महात्मा गाधी न राम राज्य की कल्पना और रूपरखा तेयार की थी उनका प्रिय भजन था इश्वर अल्लाह तेरा

भारत म निवास करने वाले हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई सब आपस मे भाई–भाई की तरह रह सबको समान अधिकार ओर समभाव का सदेश दिया है। आसामा बिन लादन को मुसलमान कहना या मानना ही गुनाह है क्योकि वह पाच वक्त की नमाज ही अदा नही करता जो कि सच्चे मुस्लिम का पहला फर्ज है। इस्लाम क नाम पर अलकायदा और सिमी न जो गतिविधिया जारी रखी हे या रखन का इरादा रखते है व हर दश के वास्त घातक हे उनका सर्वदा विरोध किया जाना चाहिए एव सख्ती से कुचलना चाहिय। यह कहना सही नहीं है कि आतक का मूल कारण आर्थिक सामाजिक राजनैतिक असमानता है। मनुष्य का जैस सस्कार माता पिता ओर गुरू(पाठशाला) स मिलत ह उन्ह वह अपने आचरण म लाता है। कष्ण और सुदामा की मित्रता आथिक असमानता के बावजूद विश्व विख्यात है। सामाजिकता क कारण असमानता क रूप म सुश्री शबाना आजमी और अब्दुला बुखारी का एक तराजू पर तोला जा सकता है। वास्तविकता यह है कि सस्कारी मानव ही राष्ट्र धर्म का मानत ओर निभात है जबकि बहुसख्यक मुसलमान जा भारतीय हैं राष्ट्रधम का अपन मजहब से ज्यादा तरजीह देत है जबकि कुछ अनपढ या खिचडी ज्ञान रखने वाले ही ओसामा बिन लादन को अपना हीरा मानत हैं। हमे उन उन्मादी मुस्लिमा क साथ साथ वाट बेक क लालची

कठमुल्लाओ राजनेताओ से सावधान रहने की जरूरत है जा खाते भारत भूमि की हैं और उनका

निकलना है अथवा पाच तत्व में विलीन होकर मकबरा भी भारत म ही बनेगा मगर गुणगान पाकिस्तान का करते हैं। सिमी की गतिविधियो को परवान चढाकर हिमायत करके वे वोट बैंक का पुख्ता करना राष्ट्र धर्म या देश हित स ज्यादा उपयागी मानत हैं। भारत मे जितनी आजादी और समानता का अधिकार सबका प्राप्त है शायद ही विश्व क किसी अन्य दश म हा मगर सीमा को लाध कर दूसरा के अधिकारो का हनन आर आतकवाद का फेलाव दश मे कन्या कमारी स कश्मीर तक हुआ है उतना किसी अन्य देश म नही हुआ ह। आतकवाद क फेलाव का राक कर समाप्त करन हनु भारत का अमरिका या विश्व की आर नहीं ताकना हे। अपन बल बूत पर ही कचलना हागा। केन्द्र शासन का बल का प्रयाग अपन साधना स ही जुटाना है। पूरा दश शासन क साथ ह। ईश्वर पर भरासा करक मर्दानगी दिखाकर अधर्मिया का नाश करना हागा। भारत एक धर्म निरपेक्ष दश ह जहा सभी धर्मावलम्बिया का समान अधिकार प्राप्त ह और सभी इस व्यवहार म लात ह चाह कार्ड पाच वक्त की नमाज अदा कर या हवन कुण्ड म द्रव्य की सुगध स मानव मात्र का कल्याण दव पूजा करे या निराकार भगवान के अनन्त रूप का गुणगान कर। केन्द्र या कोई भी राज्य इस सत्य का नही झुठला सकता। यह सत्य सनातन और स्थापित है। काई किसी का शाषण नही कर सकता।

मगर आतकवादी डर और भय से जोर जबरदस्ती करके अपनी बात का मनवाना जैसा जम्मू कश्मीर मे

अनिवार्य करना आदेश की अवहलना पर तेजाब डाल कर चहरा बिगाडने का डर पैदा करना स्त्रियो का किसी मद टेलर से कपडे सिलवाना या क्रय–विक्रय पर प्रतिबन्ध लगाना किसी भी प्रकार से न्यायसगत नही है। मुख्यमत्री फारूख अब्दुल्ला ने साफ–साफ इन जहादी जुनूनिया का सर्वनाश उनके मदरसो पनाहगाहा मे जाकर करने का आहवान किया हे जा सर्वदा उचित है देवी इन्दिरा न जा साहस बग्लादश म हो रह नर सहार क वक्त दिखाया था और पूरे विश्व न उस की मर्दानगी का लोहा माना हे वही साहस हमार राजनेताआ का आज पुन दिखाना ह इसक वास्त अमरिका और अन्य दशा की गुहार लगान की जरूरत नही है। पूरा दश आपके साथ है। हिन्दू मुसलमान सिख ईसाई यहूदी पारसी बौद्ध जैन सभी आप पर भरासा करत ह। मुटठी भर दागल राजनताओ क बहकाव मे या धास म आने की जरूरत नही है। युग युग तक आपका नाम हा जाय एसी व्यवस्था करना चाहिय।

घुट घुट कर मरने की बजाये
एक बार शेर की तरह जीना होगा।
ईश्वर आपका कल्याण करे।
मेरा भारत महान हो।
ओ३म शान्ति शान्ति शान्ति।

बीरबल आर्य
गौरव स्पोर्टस नागपुर रोड
छिंदवाड म प्र

युवा शक्ति को खुला आमन्त्रण

आर्यवीर दल राजस्थान का छात्र व छात्राओं के लिए प्रान्त स्तरीय

चरित्र निर्माण एवं व्यायाम प्रशिक्षण शिविर

दिनाक 28 मई से 4 जून, 2002 तक केवल छात्रो के लिए, दिनाक 4 जून से 10 जून 2002 तक केवल छात्राओ के लिए

स्थान – ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर

मान्यवर

आपका यह जानकर सुखद अनुभूति हागी कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की निर्वाण स्थली एव आर्यो की एतिहासिक तीर्थ स्थली अजमेर मे आनासागर क सुरम्य तट पर स्थित ऋषि उद्यान म परापकारिणी सभा क तत्वावधान मे आर्य वीरदल राजस्थान का भव्य एव विशाल प्रान्तीय स्तर का चरित्र निमाण एव व्यायाम प्रशिक्षण शिविर का आयोजन रखा गया हे। शिविर शुल्क दो सौ रुपय (छात्राआ के लिए एक सौ साठ रुपये) रखा गया है। आवास बिस्तर भाजन अल्पाहार बतन आदि की व्यवस्था शिविर की ओर से नि शुल्क रहेगी। अपन साथ कान तक की लाठी कापी पेन खाकी नेकर सफेद बनियान व अन्य आवश्यक सामान लावे। शिविर के नियमो का पालन करना अनिवार्य होगा।

प्रशिक्षण – शिविर म शारीरिक उन्नति हतु आसन प्राणायाम दण्ड बैठक जूडो–कराटे आदि विविध व्यायामो का प्रशिक्षण दिया जावेगा। मानसिक व चारित्रिक विकास के लिए बोद्धिक व्याख्यान विचार गाष्ठी भाषण गीत वाद विवाद आदि प्रतियागितायें आर आत्मिक एव धार्मिक बल बढान हतु सध्या यज्ञ प्रवचन स्वाध्याय आदि की प्ररक व्यवस्था होगी।

अपील इन दाना शिविरो के प्रबन्ध भाजन आदि पर काफी खर्चा होगा जिसकी पूर्ति आप और हम सबका मिलकर करनी है। अत आप सभी दानी सज्जना सस्थाआ आर्य समाजो विशेषकर समृद्ध आर्य समाजो से निवेदन है कि युवाओ क चरित्र निर्माण म अपना तन मन धन दकर पुण्य क भागी बन ओर हमारा उत्साहवर्धन करे। आप अपनी सहायता राशि नकद/चक/ड्राफ्ट/धनादश आदि द्वारा परापकारिणी सभा अजमेर अथवा आर्य वीर दल राजस्थान गगापुरसिटी के नाम स ऋषि उद्यान पुष्कर रोड अजमेर के पते पर भेज सकत हैं तथा शिविर आर्य वीर हेतु दान इसका उल्लेख अवश्य करे। शिविर हेतु घी दाल चावल आदि भोजन सामग्री भी आप भेज सकते है।

सम्पर्क सूत्र शिविर सचालक/सयोजक ऋषि उद्यान पुष्कर रोड अजमेर फोन–0145–431331 व 621891

निवेदक

सत्यवीर आर्य	सीताराम आर्य वैदिक	डॉ धर्मवीर	कुमुदिनी आर्या	यतीन्द शास्त्री
प्रान्तीय संचालक	शिविर सचालक	प्रान्तीय बौद्धिकाध्यक्ष	शिविर सयोजिका	शिविर सयोजक

आर्य समाज की परिभाषा को सुरक्षित रखो

आर्य समाज श्रेष्ठ पुरुषो का समुदाय है जो सदाचार और कल्याण की सद्भावनाओ से ओत–प्रोत है। अविद्या और अज्ञानता के अन्धकार मे भूल भटके लोगों को वेदो क प्रकाश मे मानवता के सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।

आर्य समाज का उद्देश्य ससार का उपकार करना हे। हम यह दखकर बडा दु ख होता है कि कुछ आर्य समाजो म परोपकार की जगह धन उपार्जन क काम किये जात है। चरित्र निर्माण की बजाय भवन निर्माण मे लगे हुए है। जब भवन बन जाता है तो उसम धर्म प्रचार का काम कम होता हे अपितु बारात घर बनाकर घर से भागे हुए मनचले लडके–लडकियो क अवैध विवाह कराकर हजारा रुपये रोज प्राप्त किय जाते है। जब लाखे रुपयो की पूजी जमा हो जातीा है तब पद क लिये लडते झगडते हैं। एसी स्थिति म आर्य समाज का उद्धार कैसे हो सकता ह? मै हर समय सोचता हू ओर समझता हू कि सब समाजा का एक ऐसा परिपत्र भजा जाये जिसमे निर्देश किया जाय कि आर्य समाज के भवना को बारात घर मत बनाआ ओर जब तक लडक–लडकी के दोनो ओर से माता–पिता राजी न हो तब तक विवाह नही कराना चाहिय।

आर्य समाज की परिभाषा को बिगाडन वाल अयाग्य स्वार्थी और आचारहीन व्यक्ति हे जो स्वार्थवश पद से चिपटे हुए हैं। इनसे अपना परिवार ता सुधारा नही जाता य आय समाज का क्या भला करग? अन्त मं आपके सोचने विचारने क लिय निम्न प्रश्न लिख रहा हू जो महानुभाव सर्वोत्तम समाधान बतायग हम उनका हार्दिक सम्मान करेगे–

1 आर्य समाजा मे गुट पक्ष क्या बन हुए है? पद क लिय लडाई झगडे क्यो होत हैं?
2 आर्य समाजो म अयाग्य आचरहीन व्यक्ति केस प्रधान/मत्री बन जाते हैं या चुन जात हैं?
3 आय समाज क दैनिक/साप्ताहिक सत्सगा म उपस्थिति क्या कम रहती है या घटती जा रही है?
4 महर्षि दयानन्द जी न आर्य समाज की स्थापना क्या किसलिये की थी? आर्य समाज उनके उददश्य का पूरा करने के लिय क्या कर रहा है? क्या करना चाहिए?
5 जो विद्वान अपन आपका वैदिक प्रवक्ता या उपदेशक घाषित करते हैं भारी–माटी दक्षिणा क्या मागत हैं? क्या वा मूर्ख थे जिन्होन वैदिक धर्म के प्रचार के लिये अनका सकट सहन किय और अपना तन–मन–धन सब कुछ लुटा दिया?

ले देवराज आर्य मित्र
आर्य समाज कृष्णानगर दिल्ली–51

आर्य समाजों को आर्थिक सहायता

हम उस आर्य समाज की आर्थिक सहायता करेगे जिसके सब अधिकारी योग्य और चरित्रवान हैं अर्थात दैनिक सन्ध्या हवन करते हैं। यज्ञापवीत पहनत हैं उनके परिवार (पत्नी बच्चे) उनके अनुकूल आर्य समाज मे आते हैं। जहा पद के लिये कभी झगडा नही होता। सदैव सर्व सम्मति स अधिकारी चुने जाते है और कोई विपक्षी दल नही है। ऐसी समाज में जाना देखना पसन्द करगे और यथा सम्भव सहयाग भी दग।

सावधान – आर्य समाज के उज्ज्वल भविष्य के लिए ऐस व्यक्तियों को सदस्य बना कर कूडा करकट जमा मत करो जो दुर्वयसनी और चरित्रहीन है। कुछ दान देकर ऐसे स्वार्थी तत्व आर्य समाजो मे घुसे हुए हैं। उनस सावधान रहने की आवश्यकता है।

ले देवराज आर्य मित्र
आर्य समाज कृष्णानगर दिल्ली–51

आर्य समाज मन्दिर

बी–ब्लाक जनकपुरी नई दिल्ली–110058

प्राणायाम से बढ सकती है व्यक्ति की आयु

नई दिल्ली 5 मई। आर्य समाज बी ब्लाक जनकपुरी के साप्ताहिक सत्सग मे प्रवचन करते हुए आचार्य खुशीराम शर्मा ने कहा कि व्यक्ति को आयु वर्षों म नही श्वासो मे मिली है। भोग विलास म श्वास अधिक व्यय होते हैं और प्राणायाम से उनके व्यय को कम किया जा सकता है। इसलिए प्राणाजाम से व्यक्ति की आयु बढ सकती है। साधना मे इसीलिये प्राणायाम का विशेष महत्व है। उन्होंने मौसम के अनुरूप फलों व सब्जिया क आयाग ईश्वर की उपासना एव सयमित जीवन को भी आयु बढाने म सहायक माना।

इस अवसर पर वक्ता का ध न्यवाद करते हुए आर्य समाज बी ब्लाक क प्रधान डॉ सुन्दरलाल कथूरिया ने त्यागवृत्ति तथा आचरण की शुद्धता पर बल दिया। वक्ता से श्री सोहनलाल ओहरी एव श्रीमती लक्ष्मी देवी न कुछ प्रश्न पूछे। कार्यक्रम का सचालन आर्य समाज के मत्री श्री जगदीश गुलाटी ने किया। डॉ उदयमान बजाज सर्वश्री ओम प्रकाश गोयल धर्मवीर बनेजाजी राज मैहन प्रभा विमला आदि सम्मिलित तथा भारी सख्या मे श्रोता धर्म लाभ हेतु उपस्थित थे। व्याख्यान अत्युत्तम रूप से सराहनीय एव आर्य सिद्धान्तो के पूर्णतया अनुकूल प्रभावशाली रहा।

यागेश्वर चन्द्रार्य
प्रचार मत्री

राउरकेला में यजुर्वेद पारायण यज्ञ

दिनाक 2–6 अप्रेल 2002 को आर्य समाज सेक्टर–19 राउरकेला ओडिशा की प्रत्यक्ष तत्त्वाक्धान मे इस नगरी में एक पन्चदिवसीय यजुर्वेद पारायण यज्ञ का भव्य आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता उत्कल वेद–प्रचार–समिति के सचालक पूज्य स्वामी सधानन्द सरस्वती ने किया। इस यज्ञ मे प्राय 350 श्रद्धालु यजमान दम्पती हर्षोल्लास के साथ–साथ भाग लिया। साय यज्ञ पश्चात सन्ध्या भजन व वेद–प्रवचन के समय बडी सख्या मे लोगों ने अश ग्रहण किया। प्रवचन प्रसग में पूज्य स्वामीजी वैदिक धर्म की महानता को प्रकट करते हुए ईश्वर की शुद्धस्वरूप स्तुति–प्रार्थना–उपासना व सन्ध्या की विषय मे अपने विचार अत्यन्त भावपूर्ण व मार्मिक भाषा में प्रस्तुत करते हुए लोगों का मार्गदर्शन किया।

पदमनाभ स्वाइ सम्पादक
सेक्टर–19 राउरकेला–5
सुन्दरगढ उडिशा

सुमन कुमार आर्य

होलकोत्सव

होली के रंगों और गालियों की बौछाड का क्या-क्या कहूं,
अश्लीलता, खिलखिला, पाशविक बातों का कैसे बखान कहूं।
एसिड् के रंग, गंदे तेलों की कालिख परस्पर मलते हैं,
मां, बहनों, भाभियों के साथ कुचेष्टाएं करते हैं।
ब्रज बालाओं संग होली खेलत नंदलाला की मिसाल देते हैं,
झूठ बोलकर, कामक्रीडा भी भगवान के नाम करते हैं।
बुद्धि नाशक, मद्य-मांस सेवन से, खूब गालियां बकते हैं,
प्रमादी, मलीन बुद्धि से, प्रभु उपासना भी नहीं कर पाते हैं।
होली के तर्फर, मूर्ख मस्खरों को क्या खिताब अता कहूं,
होली के रंगों और गालियों की बौछाड का क्या-क्या कहूं।
स्त्री मात्रि शक्ति है, उनके पदकमलों पर शीष नवाना है,
रंग के बहाने उसका स्पर्श करना पाप कमाना है।
अग्नि में भुने, अधप के फली वाले
अन्न को "हो लक" कहते हैं,
ये वात, मेद, कफ, थकान के दोषों का शमन करते हैं।
वसंत ऋतु के पीताम्बर रंग में सब रंग जाते थे,
परस्पर कुसुमसार, गुलाब जल छिडकते थे।
झगडे की बात गुजर गई, यह होली का अर्थ क्या कहूं,
वैर शमन अर्थ क्षमा प्रार्थी की क्या प्रशंसा कहूं।
होली के रंगों और गालियों की बौछाड् का क्या-क्या कहूं।

चोरी संग्रह खोरी

राग की निवृति के लिये ये शरीर मिला चन्द रोज
सुख भोगों के परिग्रह से राग बढता गया रोज ब–रोज।
कई सामत आये हिंसा से खूब पदार्थ सग्रह कर गये
करोडो भूखे अधनगे ठड से ठिठुरते रह गये।
बेईमानी की वस्तुओं से अशाति के अभिशाप जुड गये,
तनाव, दु ख भोगे गये डाल दिया हृदय पर बोझ।
राग की निवृति के लिये ये शरीर मिला चन्द रोज,
एशो–आराम होगा जहा, सयम न होगा वहा।
विषय भोगी रुपैयों के बने दास जहा होगा अन्याय वहा,
आवश्यक चीजें होंगी जहा, चोरी, भ्रष्टाचारी होगी वहा।
कमाई अठनी, खर्चा रुपैया हो तो, चोरियों में मानते मौज,
राग की निवृति के लिये ये शरीर मिला चन्द रोज।
कम पारिश्रमिक के, अधिक की रसीद पर सही ले के,
घूसखोरी, मिलावट, तस्करी करके, झूठी गवाही देके।
गलत बीमा पास करवा के, कर चुराके, नकल करके,
नौकरी में कम समय काम करके, खोटी रसीदें देके।
तोल नाप में कम दे के, आढत में भावफरक खाके,
चौरी से नैतिक पतन हो रहा रोज–ब–रोज।
राग की निवृति के लिये ये शरीर मिला चन्द रोज,

अशिष्टाचार

हायरे घायल है व्यक्ति अशिष्टाचार के
आश्चर्य है दुराचारी सबक सिखाए शिष्टाचार के।
कितने शिक्षक गुटका धुम्रपानादि का नशा किया करते हैं
विद्यार्थियो को व्यसन–मुक्ति का पाठ पढाया करते हैं।
प्रणाम की जगह ले ली टा–टा हाय बाय–बाय ने
मधुर वाणी की जगह ले ली कटुभाषा कदाचार ने।
अपनी दुर्गति की दातो से नखो को काट करके
शिष्टाचारी की भर्त्सना पचा सके उदण्डता करके।
हायरे घायल है व्यक्ति अशिष्टाचार के।
बडो सत–महात्माओ का आदर सम्मान नही
मद्य मासाहारी द्वारा शुद्धहार से आतिथ्य सत्कार नहीं।
मैत्री करूणा दया उपकार का दिल मे भाव न आए
असमर्थ हैं भार वाहक के सहयोग में अह आडे आए।
अनाथ पीडित के सहयोग की तो याद भी न आए
अपनी बुराई न देखी दूसरों के दोषो की आलोचना की।
अपनी अधोगति की धूर्त कुकर्मी जुआरी का सग करके
हायरे घायल है व्यक्ति अशिष्टाचार के।
स्त्री सम्पत्ति एव भोजन जो हैं उस मे सतोष नही
स्वाध्याय मे बाधक परिग्रहादि को छोडा नही।
परगुणो की विस्तार से कभी स्तुति की नही
अपने अपमानादि के वैर विरोध की वृत्ति छोडी नहीं।
ये जुआरी अपने जीवन का भी दाव लगाते हैं आत्म कलह
करके हायरे घायल है व्यक्ति अशिष्टाचार के।

504 चेतन निवास
जवाहर कॉलोनी सरदार नगर
अहमदाबाद–382475

मुम्बई आर्य महासम्मेलन की शव परीक्षा

(पृष्ठ 2 का शेष)

मैंने अपनी रपट में यही इगित किया हैं क्योंकि एक दयानन्द भक्त आर्य को सस्कृतज्ञ होना अनिवार्य हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रिय और अन्तरराष्ट्रिय भिन्न–भिन्न शब्द हैं अत अर्थ भेद होने के कारण वे एक–दूसरे के स्थान में प्रयुक्त नहीं किये जा सकेंगे हॉं अविज्ञता कुछ भी करा करती है। अन्तर का अर्थ है मध्य बीच तो अर्थ होगा–एक राष्ट्र के बीच। अन्तर का अर्थ है–बाहर भिन्न तथा मध्य तो अर्थ होगा देश–देशान्तर।

श्री ठाकुर जी! आपके अन्तर + राष्ट्रिय शब्द का विवेचन ऊपर भली–भाति हो गया। अब विश्वामित्र शब्द को समझें–श्री जगदेव जी। वैदिक लौकिक शब्दों में अव्याहत गति रखने वाला एव मानव मस्तिष्क की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ प्रमाणभूत आचार्य पाणिनि ऋषि विश्वामित्र से क्यो हारने लगा? हारेगा तो वह जो अवैयाकरण होगा। विद्वानों की दृष्टि में विद्वत प्रमुख वैयाकरण ही होता है – प्रथमें हि विद्वासो वैयाकरणा आनन्दवर्धनाचार्य।

मित्रे–चर्षौ (पा. 6/3/129) द्वारा पाणिनि ने विश्व शब्द में दीर्घत्व का विधान किया है जिससे विश्वामित्र शब्द निष्पन्न होता हे। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि विश्वामित्र शब्द वेदों का है जो नाम विधान की परम्परा में वेद से तद्वत् लकर लोक में रखा गया है तदनु तद्वत ही विश्वामित्र शब्द की रूपसिद्धि जानी जायेगी अत विश्व का अमित्र' यह सन्धि विच्छेद पाणिनि अष्टाध्यायी का ज्ञाता कभी नहीं करेगा अपरिचित कुछ भी कर सकता है।

अन्येषामपि दृश्यते'(पा.6/3/136) इस पाणिनि सूत्र के रहते 'दीनानाथ' शब्द में भी कोई शब्दाशुद्धि की समस्या नहीं है दीन तथा नाथ शब्दों का षष्ठी तत्पुरूष समास होकर उपर्युक्त सूत्र से दीर्घ कर दीनानाथ शब्द सिद्ध हो जायेगा। यदि श्रृगार रस वाले दीना शब्द की ओर इगित हो, तो भी कोई परेशानी नही। दीनश्च दीना च इति दीनो पुमान् स्त्रिया' (पा 1/2/67)से एकशेष होकर पुल्लिग दीन शब्द शेष रहा तत षष्ठी समास एव दीर्घ होकर दीनयों नाथ = दीनानाथ 'स्वत सिद्ध है जो अविशेषेण अभिधायक होगा।

अरे ठाकुर भइया! जहॉं गति नहीं है वहॉं क्यों भिड गये? वह भी एक शाब्दिक से। आपका कार्य तो गाली देना है जो बहुत उत्तम है उसे ही पूर्ण करते रहते उधार का सुझाव देखा देता है। मै समझती हूँ अब ठाकुर जी मेरे जॉंच के मापदण्ड को समझ जायेंगे।

श्री जगदेव सिह ने मेरी वाक्य रचना में स्त्रीलिगादि का दोष दिखाते हुए कुछ वाक्य प्रस्तुत किये हैं। उस विषय में भी उन्हें विदित कर लेना चाहिये कि लिग सम्बन्ध वक्ता के वाच्य सम्बन्ध के अनुसार होता है तथाहि– महर्षि पतन्जलि ने महाभाष्य में बहुधा लिगमशिष्य लोकाश्रयत्वात् लिगस्य' (महा 4/1/3) लिखा है सो हो भवा' क्रिया का सम्बन्ध सम्मेलन के साथ है यह जान लें और भी जो अन्य अनर्थक दोष दिये हैं उनका समाधान भी इसी प्रकार जानें।

अहवादिता अहम्मन्यता शब्दों को एक बताते हुये लिखते है– कोई दोनों का अन्तर पूछे तो घिग्घी बध जायेगी आचार्या जी की। अरे! जब दोनों शब्दों मे धातुयें ही भिन्न हैं तो अर्थ स्वत पृथक हो गया। आचार्या जी की घिग्घी क्यों बॅंधेगी पूछने वाले की ही बॅंधेगी।

उपहास शैली मे ठाकुर जी ने अपने मित्र के ब्याज से लिखा है– ऐसी ही आर्यसमाज मे आचार्या होती है? मैंन कहा नही ये देवी जी ही अपवाद है? हमारे यहा प्रज्ञा देवी' जैसी आचार्या हो गई हैं जिन्होन करपात्री जी जैसे महापण्डित की स्थापनाओ की धज्जियॉं उडाई थीं।

मुझे अपनी पू आचार्या जी की दिग –दिगन्त में फैली हुइ इस प्रसिद्धि को जानकर अत्यधिक हार्दिक आनन्द हुआ। बडे सन्तोष और प्रसन्नता की बात है कि पू आचार्या जी अपने इस साहसिक कार्य से आर्यजगत को वचित नहीं कर गई अपितु अपनी अन्तवासिनी शिष्या सूर्या दवी आदि को अपना कार्य उत्तराधिकार रूप में देकर गई हैं। सम्प्रति सूर्या देवी पूर्व करपात्री के स्थानापन्न आचार्य करपात्री तथा शकराचार्य आदि की असैद्धान्तिक बातो की धज्जियॉं उडाकर पू. आचार्या प्रज्ञा देवी जी का कार्य आगे बढा रही हैं।

4 सितम्बर सन 1987 मे राजस्थान देवराला में सती प्रथा की घटना घटी उस समय काशी मे विराजे हुये पुरी के शकराचार्य श्री निरन्जनदेव तीर्थ (सम्प्रति दिवगत) के शास्त्र विरूद्ध तथा मानवता की कलकरूप सती प्रथा के समर्थन मे उद्गार समाचार पत्र में छपे उस ससमय तत्काल अगले ही दिन सूया देवी ने श्री शकराचार्य को दैनिक पत्रो के माध्यम से शास्त्रानुकूल मुँहतोड उत्तर दिया एव शास्त्रार्थ की चुनौती दी परिणाम स्वरूप श्री शकराचार्य काशीस्थ धर्म सघ को छोडकर भाग खडे हुये। पाणिनि कन्या महाविद्यालय की इस विजय पर काशी का प्राय प्रत्येक व्यक्ति कई मासों तक जयघोष करता रहा। दैनिक समाचार पत्रों के पत्रकार तथा अन्य सगठनों के प्रतिनिधि सूर्या देवी का इन्टरव्यू लेते रहे क्योंकि पाणियनि कन्या महाविद्यालय का पौराणिक भाईयों के समक्ष आमने–सामने का अत्यन्त साहसिक कार्य था। इस कार्य से सम्पूर्ण आर्य–जगत् प्रसन्नता से झूम उठा और शुभाशसाओ का अम्बार लगा दिया। तत्कालीन भारत के प्रधानमन्त्री श्री वी0पी0सिह जी के राजगुरू ने भी साधुवाद देकर सूर्या देवी के साहस की सरा[illegible]।

सन् 1998 नवम्बर [illegible] में करपात्री के उत्तराधिकारी को 'चारों वेदों की मूर्त्तियॉं नहीं हो सकती' इस विषय में अपनी पू0 आचार्या प0 मेधा देवी जी के साथ विस्तृत परिचर्चा के द्वारा सूर्या देवी ने उन्हें परास्त किया।

20 अप्रैल 2000 पौराणिक जगत की ओर से दैनिक पत्र दैनिक जागरण' मे सर्वथा असत्य विश्वनाथ मन्दिर की महिमा मे प्रकाशित हुआ कि महर्षि दयानन्द ने इस शिवलिग की पूजा की थी' लिखने वाले प्रसिद्ध पत्रकार आशीष बागची' थे। इसका सटीक उत्तर आचार्या सूर्या देवी ने दिया जिस पर सम्पादक न उदारता के साथ समाचार पत्र मे अपनी भूल प्रकाशित कर क्षमा मागी सूर्या देवी के उत्तर के साथ। जा आर्यजगत के लिये प्रसन्नता और गौरव की बात है।

सन 2001 जून मास मे काशी के प्रसिद्ध पोराणिक विद्वान बटुकनाथ शास्त्री' की वद सभी नहीं पढ सकत' आदि अवैदिक मान्यताओ का चुनौती को चुनौती' शीर्षक स लिखकर खण्डन किया। इसके अतिरिक्त काशीस्थ पण्डितो से अवैदिक मान्यताआ की स्थापनाओं के विराध मे प्राय एक–एक घण्टे के शास्त्रार्थ होत ही रहत हैं जिसमे सूर्या देवी की भागीदारी अनिवार्य होती है। ओर आर्य–जगत क सन्देहों पर सूर्या देवी द्वारा दिय गय समाधानो से सभी परिचित है।

सम्मेलन में सम्पन्न हुई जो ओउम स्वाहा' की अशास्त्रीय पद्धति थी जिसकी चर्चा मैंने अपनी रपट में की और पृथक रूप से भी शास्त्रीय चिन्तन प्रस्तुत किया जो वस्तुत यथार्थ अन्वेषण है जिस पर पाणिनि कन्या महाविद्यालय तथा आर्य–जगत को गर्व है क्योंकि उसमें सुन्दर ढग से शास्त्रानुकूल प्रतिपादन किया गया है वैसा अन्वेषण अभी तक नहीं हो सका था इस तथ्य का नहीं समझ सके ठाकुर जी अत उन्होने श्री ज्वलन्त शास्त्री जी का बारम्बार नीति और कूटनीति के कारण (आपके विरोध में होते हुए भी) नाम प्रस्तुत किया है। इस विषय मे विदित हो कि मान्य शास्त्री जी ने अपने लेख में अन्य विद्वानो के मन्तव्य ही मात्र प्रस्तुत किये है जिससे आप सबकी ओउम स्वाहा पद्धति की कलई तो खुली नहीं मात्र विरोध ही प्रकट हुआ है एतदर्थ शास्त्री जी प्रिय लग रहे है। मेरे अन्वेषण ने आपकी अशास्त्रीयता का नीर–क्षीर विवेक के सदृश पर्दाफाश ही कर दिया अत भारी बीत रही है। ओउम स्वाहा की स्थापना मे शास्त्रोचित कोई तर्क या प्रमाण है ही नहीं तो अब क्या करे अत किसी को गिरा किसी को उठा इसी में लग गये। आप किसी की भी दुहाई देते रहिये कोई अन्तर नहीं सच्चाई छिपेगी नहीं। विषय का प्रतिपादन शास्त्रविद् ही कर सकता है अन्य नहीं और ठाकुर जी! ओउम स्वाहा' की स्थापना में मान्य विद्वान सत्यानन्द वेदवागीश ने लेखान्दोलन या विद्वत्पीडा के शीर्षक से जो भी प्रतिपादित किया है वह भी मात्र वेदवित कर्मकाण्डवित् महर्षि दयानन्द के त्रुटयाभास का पिटारा है जिसे आर्य–जगत् भली–भॉंति जान रहा है। मान्य वेदवागीश जी की डॉ0 जयदत्त उप्रैती जी डॉ0 भवानीलाल भारती जी डॉ0 परमदेव मायमासक जी श्री ब्र रवीन्द्र जी आदि विद्वानों ने अच्छी खबर ली है एव मान्य विद्वान के पिटारे का निपटारा ओउम' स्वाहा के घेरे मे दयानन्द' में बढिया हुआ है। आश्चर्य है! आर्यसमाज के सदस्यों को दयानन्द ने गलती की है यह बात तो सहन हा रही है' पर शास्त्रीय कथन सहन नही हा रहा है। प्रसन्नता की बात है कि श्री ओकारनाथ जी के विक्षाभ का स्थिरीकरण भी रपट और सपट' म कर दिया गया हे।

रपट मे वश भूषा की चर्चा को पढकर तत्सबन्धित जना का जो चींटा काटा उसकी बेचैनी और खीज को ठाकुर जी ने इन शब्दो मे प्रकट किया हे

कैप्टन देवरत्न क्या पहनकर मच पर रहत तो दवी जी सन्तुष्ट हो जाती ? कबडडी की चडडी और बनियान या मैच क काई लगोटनुमा कपड? धन्य हैं दवी जी!

श्री ठाकुर के इन शब्दा को पढकर कोई भी आर्य सन्यासी आर्यसमाज का सच्चा पदाधिकारी अपना सिर ऊचा नही कर सकता नक्कटे लागो की दूसरी ही बात है जो निम्न स निम्न स्तर पर उतर सकते हैं करे भी क्या? खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे। इनका हास्यास्पद चिन्तन देखवाने योग्य है– मुम्बई महासम्मेलन के पश्चात 7 अक्टूबर 2001 मे आर्य समाज सान्ताक्रुज के 57 वे स्थापना दिवस पर विद्वत –सम्मान कार्यक्रम मे मुम्बई एस0एन0डी0टी0 महिला विश्वविद्यालय की उपकुलपति श्रीमती रूपा शाह जी' ने जब वहा के मन्त्री प्रधान सयोजक आदि के समक्ष वेश–भूषा की चर्चा मे पैंट शर्ट जीन्स का नाम लेकर उनको धारण करने वाले लोगो की धज्जियॉं उडाई तब ये नक्कटे लोग भीगी बिल्ली बने बडे गौरव से सुन रहे थे तब कहॉं सो गये।

श्री ठाकुर जी! अपने गुट के वदतोव्याघात को ठहर कर दखे– टकारा समाचार' पत्र के दिसम्बर 2001 14वे अक मे मान्य प्रधान कैप्टन देवरत्न की 14 परिकल्पनाये प्रकाशित हुई है जो उत्तम हैं जिनसे आर्यसमाज की प्रतिष्ठा नि सन्देह अत्यन्त बढेगी उनमे एक परिकल्पना यह भी है कि – मेरा ऐसा भी विचार है कि हमारे प्रचारको एव विद्वानो की वेश–भूषा एक सी हो ताकि दूर से देखकेर ही ज्ञात हो जाये कि यह आर्यसमाज के प्रचारक है। किन्चित विचार करे? क्या इस परिकल्पना पर स्वय बिना चले दूसरे चल पडेंगे? कभी नहीं हमे पहले चलना होगा हमें पहले वेश–भूषा द्वारा अपनी पहचान बनानी पडेगी।

जब आर्य महासम्मेलन के यज्ञ परिसर में ब्रह्मा आचार्य वेदपाठी गण एव यज्ञ की देख–रेख करने वाले अन्य आचार्य गण भारतीय और यज्ञीय वेश–भूषा मे थे तब उस यज्ञ परिसर में यज्ञ से पूर्व व पूर्णाहुति के दिवस जन समुदाय को उद्बोधन देने वाल यज्ञ के आयाजक सम्मेलन के कर्त्ता धर्ता मान्य सयोजक कैप्टन भ्राता जी का क्या उस भारतीय वेश–भूषा म नही होना चाहिये था? जो उनकी पयरिकल्पना की नींव बनता और आर्य जनता को एक आदर्श मिलता। ऐसा नही है कि श्री कैप्टन जी कभी इस वेश–भूषा को धारण नही करते? समय की बात ओर ही होती है। समय की चूक को ठाकुर जी चडडी –बनियान का नाम लेकर बिसारना चाहते है? ऐसी शब्दावलिया निम्न लोगा की होती हे।

श्री ठाकुर जी मुम्बई की लडकिया की वेशभूषा बताकर सूर्या देवी को गुर्राने चले हैं वे गुर्रायें? मैं महर्षि दयानन्द क पथ पर चलने वाली हू दबन वाली नहीं। महर्षि की जीवनी मे कई बार आया है कि उन्होने विदशी वस्त्र धारण करन पर किसी को बक्शा नहीं। मैं पेण्ट शर्ट क हिमायतियो से कहना चाहती हू आप बडे शाक स अपनी पुत्रिया का अपनी दविया का जो चाहें सो पहनाइय स्वय पहनिय परन्तु जो अपन मुह से अपनी मचा से घोषणा करते हो कि वेद सार्वदशिक हैं सार्वकालिक हैं तो जा शालीन वेष–भूषा की आर इगित करत हुय वद ने कहा मा ते कशप्लकौ दृशन ऋ.8/33/19 अर्थात तुम्हारे गुप्ताग न दीखे इस वदमन्त्र का क्या करोगे? जब आज की सभ्यता के अनुसार पैण्ट शर्ट पहनोगे और पहनाओगे तब वेद सार्वकालिक हैं कहने के अधिकारी बन सकत हा? थोडा साचना ठाकुर जी! ऐसे अधकचरे लोग ही आर्यसमाज के मन्त्री प्रधान एव सदस्य पदों पर प्रतिष्ठित है जा अपने घरों का प्रदूषण तो मूत्तियों के माध्यम स हटा रहे है साथ ही वेद और दयानन्द के सिद्धान्तों पर भी कुठाराघात कर रह है। ठाकुर जी! गालियों के लिए धिक्कार नहीं, कोटिश धन्यवाद! कुछ तो अज्ञान घटेगा आपका।

अच्छा होता इस पुस्तिका मे मान्य सत्यानन्द जी के लेख का श्री ओंकारनाथ जी प्रधान के विक्षोभ का एव श्रद्धेय स्वामी जी के प्रश्नो के उत्तरों का भी मेरे द्वारा लिखित ओउम स्वाहा का जल्पवितण्डावाद' रपट और झपट तथा स्वाहा या ओउम स्वाहा' शीर्षका वाले समाधान का भी प्रकाशित करते जिससे आर्य जगत क सामने दूध का दूध पानी का पानी हो जाता अस्तु? कोई बात नहीं वैसे भी सच्चाई सुस्पष्ट है।

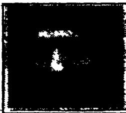
मैं बन्दर घुडकियो से और ग्राम्य गाली–गलौच से डरने वाली नही हूँ, और न ही मेरी प्रतिष्ठा गिरने वाली है। अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ (विदुर 5/15) की यह पक्ति आज शतश खरी है। सच्चाई को स्वीकार करना महात्मा श्रद्धानन्द का ही साहस था श्रद्धानन्द का जयघोष करन वालो का नहीं।

ज्ञानलवदुर्विदग्ध
ब्रह्माऽपि त नर न रजयति'

सुश्री सूर्या देवी आचार्या
पाणिनी कन्या महाविद्यालय
वाराणसी–10

AGNIVESH DEMANDS WHITE PAPER ON GUJARAT

Seeks United Nations intervention to check violence



HT Correspondent Jodhpur May 15

FOUNDER of the Geneva based Anti Slavery Foundation Swami Agnivesh has demanded that the Prime Minister should present a white paper on the Gujarat situation

He warned that an army of over a million Arya Samaj activists could pose a challenge to the Rashtriya Swayamsewak Sangh (RSS) and other like minded outfits Addressing a press conference here today Agnivesh said that the Central Government should also make public the list of passengers travelling in the railway coach that was burnt down at Godhara on Feburary 27

He said that there were credible reports that the Ram Sewaks were travelling without tickets and had occupied the seats reserved by passengers belonging to the minority community

He said there were also reports that the sewaks had used abusive language to address the minority community

The complete picture would become clear once the government releases the list of passengers of illfated bogie

He said nearly one lakh volunteers of the Arya Veer Dal would soon launch a movement against the RSS This would be followed by the formation of an Arya Veerangna Dal for women

Condemning yesterday s terrorist strike in Jammu Agnivesh strongly criticised Pakistan for launching terrorist strikes against innocent civilians

He also criticised the Union Government for failing to protect the life and honor of its citizens

Meanwhile talking to the *Hindustan Times* Agnivesh said the govern ment s failure to control the communal violence in Gujarat had created a need for international communities especially the United Nations to intervene and check the violence

Agnivash said he would take up the issue of statesponsored violence with the Univted Nationas Human Rights Commissions during his visit to Geneva on May

Agnivesh appreciated Attorney General Soli Sorabjee s remarks that India cannot brush aside concern voiced by some international countries on the Gujarat situation He alleged that the entire situation in Gujarat from the Godhra episode to recent incidents of violence was the handiwork of the Modi government

During his Gujarat tour he was surprised to learn that killings were well organised and that the state had worked with the BJP and its sister organisations to regain lost political ground in the country

He did not believe that the Godhra incident was a conspiracy by the Inter Services Intelligence (ISI) to destabilise India He said even if this was the case why did the government let it happen? He stressed that the post Godhra incidents were the handiwork of RSS and VHP leaders

He questioned why Narendra Modi was not sacked and President s rule was not imposed even when Gujarat has been facing communal tension for two and a half months

He said this raises the doubt that the BJP and its sister concerns were capitalising on the communal tension to gain political mileage

विशाल बनवासी आर्य महासम्मेलन

कारापुट जिला गौहत्या के लिए बदनाम है वहा प्रत्येक साप्ताहिक बाजार मे 30–40 गाय का काटकर उनका मास बेचा जाता है। वहा ईसाइयो के साथ हिन्दू भी गोमास खाते हैं। अत 'गावो विश्वस्य मातर मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्' भगवान की इस पवित्र वाणी का सन्देश देन के लिये पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षताम उडीसा के बनवासी एव ईसाई बहुल कोरापुट जिले के आदिम गुरुकुल आश्रम कुन्दुली हाटपदा मे बैशाल शुक्लपक्ष चतुर्दशी पूर्णिमा एव जेष्ठ वदी प्रथम 25–26–27 मई तत्नुसार शनि रवि सोमवार को वनवासी आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

इस सम्मेलन के मुख्यातिथि क रूप मे पू स्वामी इन्द्रवेश जी (पूर्व सासद हरियाणा) एव मुख्यवक्ता के रूप म उडीसा के वैदिक विद्वान् स्वामी सुधानन्द जी एव इ प्रियव्रत दास जी (भुवनेश्वर) तथा हरियाणा क ओजस्वी भजनापदेशक अपनी पार्टी क साथ श्री सहदेव बधडक आदि अनेक विद्वान उडीसा के आर्य समाज के अनक कर्मठ कार्यकर्ता एव अनक राजनेता भी पधार रहे हैं। उडीसा के मुख्यमत्री के भी पधारने के आशा है।

इसी शुभावसर पर उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर स चल रहे धमरक्षा महाभियान के अन्तर्गत पुनर्मिलन के कार्यक्रम मे अनक बिछुड हुए भाई पुन वैदिक धर्म की दीक्षा लग तथा तीनों दिन वेद के पवित्र मन्त्रा स विश्वशान्ति ब्रह्म महायज्ञ डा सुद्युम्न जी आचार्य सूफी एव प विशीकेसन जी का पौरोहित्य म चलगा।

निवदक
स्वामी व्रतानन्द सरस्वती
गुरूकुल आश्रम आमसना
खरियार राड जिला नावापारा
उडीसा

आर्य समाज, कोटा

जहा मुस्लिम बच्चो के मुख से झरते है श्लोक

काटा 20 मई। धर्म भले ही उनका इस्लाम हो मगर उन्हे वेदो क बार म जानकारी अनक हिन्दू बच्चा स ज्यादा है। इन मुस्लिम बच्चो क हाथो मे वद देख जा सकते है ता मुख स झरत हैं श्लोक। सर्वधर्म समभाव। का यह आदर्श प्रस्तुत किया जा रहा है कोटा शहर में आर्य समाज की आर से सचालित एक स्कूल म जहा अध्ययनरत एक तिहाई स भी अधिक विद्यार्थी मुस्लिम हैं।

रगपुर राड पर पुराने तेलघर माहल्ल एक काने मे स्थित महर्षि दयानद वैदिक विद्यालय एसे क्षत्र म चल रहा है जहा पढना अथवा बच्चो का पढाना फिजूलखर्ची व समय की बर्बादी समझा जाता है। इसक बावजूद बच्चा को घर से लाकर उन्ह शिक्षित करने मे म जुटा हुआ है। माध्यमिक स्तर तक सचालित यह विद्यालय। यहा अध्ययनरत विद्यार्थिया मे स 40 प्रतिशत विद्यार्थी मुस्लिम समाज स हैं। इनमे भी 60 प्रतिशत छात्राए हैं। इस विद्यालय का सचालित करने क लिए बनी विद्यार आर्य शिक्षा समिति के अध्यक्ष तजपाल कृष्ण व मत्री रामदयाल शर्मा ने बताया कि यहा पर विद्यार्थी ही नहीं मुस्लिम शिक्षक भी काफी सख्या मे हैं। मुस्लिम बच्चो स जब बातचीत की गई तो उन्हान सस्कृत क श्लोक व वदों के विषय म अपने ज्ञान का परिचय दिया। मात्र दो वर्ष पूर्व इस स्कूल मे दाखिल हुई पाचवी की छात्रा हिना बानो न गायत्री मत्र व प्रार्थना उपासना के आठो मत्र ओ३म् विश्वानी देव स शुरू कर ओ३म अग्नय सुपथा राय अस्मान' तक सस्वर धाराप्रवाह सुनाए। अकेली हिना ही नहीं वहा अध्ययनरत अनेक मुस्लिम व हिन्दू सभी बच्चा को इस तरह के दर्जना मत्र व श्लोक कठस्थ हे। यह इस बात का प्रतीक है कि बच्चो का किसी भी धर्म की अच्छी बातो स परहेज नही होता चाहे वे हिन्दू हो मुस्लिम या फिर ईसाई।

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग दें

1 देश–विदेश की आर्य समाजों में घटित घटनाओं से आर्य जगत को अधुनातन जानकारी देना।

2 आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।

3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोडना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओ पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।

4 आर्य समाज द्वार धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र मे किये जा रहे कार्यों की जानकारी देना।

5 समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओ का आर्य जगत को परिचय देना।

6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एव युवको का सगठन खडा करना।

7 आर्य समाज क आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाआ के माध्यम से देश मे सशक्त छात्र शक्ति खडी करना।

8 विश्व के आय परिवारो का सगठन बनाना।

9 देश के 100 विद्वानो की परिषद बनाना।

10 विश्व की समस्त भाषाओ मे वेद सन्देश प्रकाशित कर वैदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।

11 विश्वशाति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना। कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरूद्ध मुहिम छेडना तथा देश मे राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्रान्ति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीर्वाद देकि परमपिता परमश्वर हमें इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामर्थ्य दे।

आर्य बन्धुओ से अनुरोध

आर्य जगत की तेजी से लोकप्रियता की ओर अग्रसर पाक्षिक पत्रिका 'आर्य नीति में अपने विज्ञापन देकर सहयोग प्रदान करें।

तन मन धन से सहयोग दे पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने का कष्ट करे।

सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक 5ज 13 जवाहर नगर द्वारा नीतू प्रिन्टिग प्रेस बाबा हरिशचन्द्र मार्ग जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि 652697 का 622055 e-mail
आर्य समाज विद्या समिति एव शिक्षा समिति आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज राजापार्क जयपुर
राजस्थान

प्रेषित
70 श्री जगदीश वेदालकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरूकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार उत्तराचल यूपी

वेद प्रचार, आर्य समाज, विश्व शान्ति, राष्ट्रोत्थान, मानवता एवं सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र



वर्ष 2 अंक 36 8 जुलाई 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पजियन सख्या RJ 2637/2001 वार्षिक मूल्य 75रुपये

गुजरात में आयोजित आर्य वीर दल के शिविरो में

भारत के भावी राष्ट्रपति डॉ. कलाम का भाषण

आर्यवीरो! रात-दिन जागो मधुर सपने लिये

डॅा कलाम

आर्य जगत के युवा सन्यासी स्वामी धर्मबन्धु जी द्वारा गुजरात मे आर्यवीर एव आर्यवीरागना दल के दो शिविर आयोजित किए गए। पहला शिविर जिला राजकोट ता उपलेटा स्थल प्रासला मे 10 फरवरी से 17 फरवरी तक आयोजित किया गया जिसमे 5 हजार आर्यवीरो ने भाग लिया और दूसरा आर्यवीरागना शिविर जिला अमरेली मे स्थल बाबापुर मे 19 मई से 26 मई तक आयोजित किया गया जिसमे 1500 छात्राओ ने भाग लिया। इन दोनो शिविरो को भावी राष्ट्रपति डॅा अब्दुल कलाम ने सम्बोधित किया। डॅा कलाम स्वामी धर्मबन्धु के त्याग बलिदान के बहुत प्रशसक हैं। जब राष्ट्रपति पद के लिये डॅा कलाम के नाम की घोषणा हुई तब उन्होने स्वामी धर्मबन्धु जी को फोन किया और कहा कि आपकी शुभकामनाओ से मेरा नाम राष्ट्रपति पद के लिए प्रस्तावित हुआ है। इन दो शिविरो मे डॅा कलाम का सम्बोधन प्रस्तुत है।

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती भी स्वप्नद्रष्टा थे। असम्भव को सम्भव बनाने का स्वप्न। क्या स्वप्न के बिना मानवतावाद का परचम फहराय' जा सकता था? क्या मानव इन्सानियत के खून से लथ–पथ अन्धी गलियों में भटकना छोड़कर मावनता के पथ का पथिक बनेगा? मत–मतान्तरों की दुनियाँ को ध्वस्त कर देवताओं की सृष्टि बनाने का स्वप्न? हजारों साल सें पददलित मातृशक्ति को समाज के सर्वोच्च आसन पर बैठाने का स्वप्न। विश्व में करूणा दया प्रेम स्नेह सवेदना, सहानुभूति, सहृदयता की मदाकिनी प्रवाहित करने का स्वप्न। देश को हजारों साल की गुलामी से मुक्त करने का स्वप्न। जातिवाद के कैन्सर से भारत को मुक्त करने का स्वप्न। विश्व बन्धुत्व का स्वप्न। हजारो वर्षों से अन्याय और अत्याचार की चक्की में पिसते हुए पददलितों को मुक्त करने का स्वप्न। प्रत्येक नर–नारी को धर्म अर्थ काम मोक्ष प्रदान करने का स्वप्न। पाखण्ड एव अन्धविश्वास को जला कर राख करने का स्वप्न। अभाव और दरिद्रता को समाप्त कर इन्सानियत की जिन्दगी जीने का स्वप्न। दुःखी मानवता के आँसू पोंछकर उनके अधरों पर मुस्कान अंकित करने का स्वप्न। पशुओं की बलि देने वाले खूनी दरिन्दों से निरीह मूक पशुओं को मुक्त करने का स्वप्न। जनता स्वप्नदर्शी आर्यवीरों पर हसती थी। जब कोई आर्यवीर देश की आजादी के लिये फांसी पर चढ़ जाता था तब भारतवासी' कहते थे यें स्वप्नदर्शी कितने मूर्ख हैं। जब 1857 की क्रान्ति विफल हो गई सैनिक विद्रोह विफल हो गया तब ये मुट्ठीभर आर्य समाजी देश को आजाद कैसे कर सकते है?


बाबापुर की शिविर में उपस्थित लडकीयाँ


आर्य वीरागना शिविर मे डॅा सम्बोधित करते हुए

आर्यवीरों का एक ही काम था–स्वप्न ही स्वप्न स्वप्न ही स्वप्न।

यदि पंडित रामप्रसाद बिस्मिल शेरे पजाब लाला लाजपत राय शहीदे आजम भगतसिंह अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द श्यामी जी कृष्ण वर्मा राजगुरू सुखदेव अश्फाक उल्ला खॉ आदि हजारों आर्य वीरों ने देश की आजादी का स्वप्न नही लिया होता और इनमें से अनेक आर्य वीर देश की आजादी के लिये फासी के तख्त पर नहीं चढ़े होते तो क्या देश आजाद हो सकता था?

डॅा. कलाम ने कहा कि महर्षि दयानन्द एव उनके वीर अनुयायियों ने केवल स्वप्न ही नही देखा उसे विचारों में परिवर्तित किया और यथार्थ में साकार किया।

स्वप्नो के कारण ही मिसाइल बनी

भारत का पहला मिसाइल भी मैं स्वप्नों के कारण ही बना सका। भारत सरकार ने पाच मिसाइलें विकसित करने की जिम्मेदारी सौंपी। धन के अभाव में मिसाइलों का निर्माण कैसे हो? इस कार्य के लिये मैने दो दर्जन प्रयोगशालाओं, दस शैक्षणिक सस्थानों, सात रिसर्च लेबोरेट्री तथा 42 कम्पनियों की मदद ली। सर्वत्र मुझ सहयोग मिला।

अग्निमीळे पुरोहित

ऋग्वेद का प्रथम मत्र अग्निमीळे पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विजम। होतार रत्नधातमम।। सर्व प्रथम विश्व के गगन मण्डल मे गुजित हुआ था। अग्नि की उपासना करो उसका स्तुतिगान करो जो तुम्हारा पुरोहित है। जो पुर का नगर का राष्ट्र का हित करे वही पुरोहित हैं। जो अग्नि प्रज्ज्वलित करता है वही पुरोहित है। पश्चिम के अवैदिक लोगो ने हमारी मजाक उडाई कि ये अग्नि पूजक है। ये मूर्ख है निरक्षर है अज्ञानी है। अग्नि को ईश्वर मानते हैं। महर्षि दयानन्द ने पाश्चात्य दार्शनिको को चुनौती देते हुए कहा कि तुम मूर्ख और अज्ञानी हो। अग्नि की पूजा का अर्थ है सृष्टि के विकास मे अग्नि का प्रयोग। सारा चराचर जगत अग्नि पर अवलम्बित है। हम भी अग्नि के कारण ही जीवित हैं। जिस दिन हमारे शरीर से अग्नि समाप्त उस दिन राम–नाम–सत। अग्नि ही जीवन है अग्नि शून्य होना ही मृत्यु है। महर्षि दयानन्द ने हमें ईश्वर भक्ति सिखाई।

अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्नि स्वाहा।

प्रकाश स्वरूप अग्नि के लिये मैं यह यज्ञीय द्रव्य की आहुति देता हूँ। जिस समाज में अज्ञानी है वह कैसे उठ सकता है? महर्षि दयानन्द ने भी आग चारों तरफ प्रज्ज्वलित की। आर्य समाजी प्रतिदिन अग्नि की उपासना करते हुए ईश से प्रार्थना करते है– उदबुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि

हे अग्नि त प्रज्ज्वलित हो इध्यस्व– प्रदीप्त हो

वर्चस्व–बढ़ इद्ध–प्रकाशित हो तेजस्वी हो यह अग्नि हमे प्रजा पशु, धन, धान्य, तेज यश और भोग सामर्थ्य से बढ़ाता है। हम मत्रपाठ ही करते रहें। वास्तव में डॉ. कलाम ने अग्नि की स्तुति की। अनवरत परिश्रम के बाद एक दिन वह भी आया जब उन्होंने अग्नि मिसाइल बना लिया।

नर हो न निराश करो मन को–

अग्नि मिसाइल के प्रथम परीक्षण के लिये डॉ. कलाम अपने साथियों सहित लाउचिग पैड पर पहुच गए परन्तु पहला परीक्षण असफल रहा। सभी साथी निराशा में डूबे हुए। अपने निराश साथी श्री अग्रवाल एव श्री रमन के कधे पर हाथ रखते हुए कहा कि–सफलता की तरह



बाबापुर में आयोजित आर्य वीरागना शिविर में डॉ. कलाम और स्वामी धर्मबन्धु जी

असफलता भी हमें स्वीकार करनी चाहिए। हमारे प्रयोग में जरूर कहीं खामी रह गयी है। हम उसे दूर करेंगे और प्रयास करेंगे। जब दूसरी बार भी परीक्षण असफल रहा तो डॉ. कलाम ने कहा–कोई बात नही हम अभी लाचिग पैड तक पहुच गए हैं। बस हमें इससे आगे बढ़ना है। यह प्रेरणादायक शब्द सुन कर डॉ. कलाम और उनके साथी फिर अग्नि पूजा करने लग– अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्नि स्वाहा। जब तीसरी बार अग्नि मिसाइल का परीक्षण सफल हुआ तो डॉ. कलाम के साथी खुशी से नाचने लगे और डॉ. कलाम को कधे पर उठा लिया। दुनियाँ को आश्चर्य हुआ कि स्वदेशी साधनों से अग्नि मिसाइल कैसे तैयार की गई। इसकी रेन्ज अणुशास्त्र लेकर 1400 कि.मी. से 4000 कि.मी. तक की है। सारा विश्व अग्नि मिसाईल के सफल परीक्षण का समाचार सुनकर स्तब्ध रह गया।

न आधी रोक सकती है
न तूफा रोक सकते हैं।

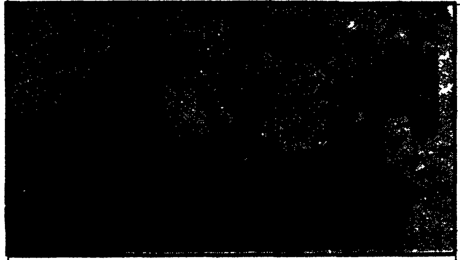
डॉ. कलाम ने शिविर मे आए हुए विद्यार्थियों से कहा कि आगे बढने वाले को दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। कोई भी व्यवधान सकल्पवान व्यक्ति की प्रगति को अवरुद्ध नही कर सकता। डॉ. बच्चों के बीच में अपने बचपन में खो गए। उन्होंने शिविर मे आए बच्चों को बताया कि मेरा जन्म हिन्दुओ की धार्मिक नगरी रामेश्वरम् में एक मस्जिद गली में हुआ था। सब जाति के लोग बहुत प्रेम पूर्वक रहते थे। मेरा परिवार बडा निर्धन था जो समुद्र से सीप शख आदि बीन कर अपना पालन–पोषण करता था। मेरे पिता जी ने पान की दुकान खोली। इससे परिवार की आर्थिक स्थिति कुछ सुधरी। महात्मा गाधी के नेतृत्व में जब आजादी का आन्दोलन जोर पकडने लगा तो लोगों मे समाचार पत्र पढने की रूचि बढने लगी। अत मेरे दादाजी ने अखबार बेचने का धधा शुरू कर दिया। इसी परिवार मे 14 अक्टूर 1931 को मेरा जन्म हुआ। मुझे बडे–बूढे बताते हैं कि तुम्हारे जन्म पर तुम्हारे घर पर खुशी का कोई अन्त नही था। मेरे दादा ने मेरा नाम अब्दुल रखा। पर मुझे वे बहुत प्यार से अबु कहकर पुकारते थे। मुझे दादाजी ने बताया कि तुम्हारे जन्म के समय पडौस मे रहने वाले ब्राह्मण लक्ष्मणशास्त्री टोपी और झबला लेकर आए थे। उनका पुत्र रामनधा शास्त्री मेरा अन्तरग मित्र था।

आपको राकेट से लगाव कब हुआ?

शिविरों में आए बच्चों ने डॉ. कलाम से पूछा कि आपको सर्वप्रथम राकेट का ज्ञान कब हुआ और राकेट बनाने की अदम्य कामना कब जागृत हुई? डॉ. कलाम ने हसते हुए उत्तर दिया कि– एक बार में रामनधा शास्त्री के साथ मदिर में रामलीला देखने गया। वहीं मैंने देसी राकेट देखे। यहीं से मुझे राकेट के प्रति लगाव उत्पन्न हुआ और हम दोनों समुद्र के किनारे कागज के राकेट बनाकर उड़ाते रहते थे।

जब हम 6 वर्ष के हुए तो हम दोनों को एक ही स्कूल में प्रथम कक्षा में प्रवेश दिला दिया। मेरे समय मे रामेश्वरम् में पाचवीं कक्षा के बाद कोई स्कूल नही था। मेरे पिता चाहते थे कि मैं कम से कम दसवी तक तो शिक्षा प्राप्त कर लू। मेरे पिता के मित्र रामास्वामी के पिता का भी आग्रह था कि अब्दुल को दसवी तक पढाओं ही। फिर मुझे रामनाथपुरम के मिशनरी स्कूल में दाखिला दिला दिया। मैं रोज दो घटे पैदल चल कर उस स्कूल मे जाता। दो घटे जाने में और दो घटे आने में। स्कूल से आने के बाद पान की दुकान पर भाई की सहायता करता। दसवीं पास करने बाद मेरे पिताजी ने कहा कि तुम बहुत पढ़ गए हो अत अब तुम मास्टर हो जाओ। परन्तु इस बार भी रामास्वामी के पिता जी ने मेरे पिताजी को सलाह दी कि अभी से इसे नौकरी में डाल कर इसका सर्वनाश मत करो। इसे बी.ए. तक पढ़ने दो। यदि तुम्हारे पास पैसा नही है तो मैं मदद करूगा और इसका पढाई का सारा खर्चा मैं उठाउगा। मेरे दादाजी की यही इच्छा थी कि मैं आगे पढ़ाई जारी रखू। मैंने त्रिचनापल्ली में सेन्ट जोसफ कॉलेज में प्रवेश ले लिया। एक दिन मैंने पेपर मे एक लेख पढा जिसका शीर्षक था 'स्प्रिटफायर'। यह दुनिया का प्रथम राकेट था। ब्रिटेन के वार म्यूजियम में यह राकेट आज भी रखा हुआ है। इस लेख में यह पढ़कर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा कि दुनिया का पहला राकेट भारत में टीपू सुल्तान द्वारा इस्टइण्डिया कम्पनी के साथ युद्ध में इस राकेट का इस्तेमाल किया था। इसी राकेट से प्रेरणा लेकर द्वितीय विश्व युद्ध में राकेट बनाये गए थे। इस पेपर को पढ़ने के बाद मेरे मस्तिष्क में राकेट बनाने की धुन सवार हुई और मैंने रामायण और महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन किया। इन ग्रन्थो से मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा कि आधुनिक काल में अस्त्र–शस्त्रों को देखकर हम आश्चर्य चकित होते हैं और पश्चिम के विद्वानों की विद्वत्ता की दाद देते हैं। वे अस्त्र–शस्त्र प्राचीन भारत में थे और इनका आविष्कार लाखों वर्ष पूर्व भारतीय अनुसन्धानकर्ताओं ने किया था।

ऐसा लग रहा था डॉ. कलाम– महर्षि दयानन्द के उद्घोष की पुष्टि कर रहे हों। शिविर के सयोजक युवा सन्यासी धर्मबन्धु जी ने इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द के विचारों को व्यक्त करते हुए



प्रासला के शिविर मे जाते हुए डॉ. कलाम एव श्री खैरनार

कहा–जिस युग में सम्पूर्ण भारत अग्रेजों से पदाक्रान्त हो चुका था पाश्चात्य देशों की विजय पताकाए, एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों के प्राय सभी देशों में फहरा रही थी। भारत का सुशिक्षित वर्ग अग्रेजी शासन को एक वरदान मान रहा था और हीन भावना सब भारतीयों में घर करती जा रही थी।

यूरोप के समुन्नत वैज्ञानिक आविष्कार भी महर्षि में हीन भावना उत्पन्न नही कर सके थे। उनका मन्तव्य था कि तोप बन्दूक आदि जिन अस्त्र–शास्त्रों यान्त्रिक शक्ति से चलने वाले जिन यानो और तार टेलिफोन आदि सचार के जिन साधनों पर पाश्चात्य लोग अभिमान करते हैं वे सब और उनसे भी उत्कृष्ट उपकरण प्राचीनकाल में भारत में विद्यमान थे। वेदों के आधार पर उन्होंने ऐसे यानों की सत्ता प्रतिपादित की जो आकाश जल और स्थल सर्वत्र समान रूप से आ–जा सकते थे। महर्षि ने जब यह सब लिखा तब तक विमानों का आविष्कार 20वीं सदी के प्रारम्भ तक भी नही हुआ था। भारत के लोग कहीं पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान के सम्मुख अपने को हीन न समझने लगे इसलिए महर्षि ने कहा– 'जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्यावर्त देश से मिश्र वालों उनसे यूनानी उनसे रूम और उनसे यूरोप देश मे उनसे अमेरीका आदि मे फैली है।

डॉ. कलाम ने अपने आविष्कारों से महर्षि दयानन्द के मन्तव्य की पुष्टि की। सेंट जोसेफ कॉलेज से प्रथम श्रेणी में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मद्रास इन्स्टीटयूट ऑफ टेक्नोलोजी मे प्रवेश लेने के बाद डॉ. कलाम ने ट्यूशन करके आगे अध्ययन जारी रखा। इसी समय विज्ञान पर 'हिन्दू' नामक प्रसिद्ध पत्रिका में उनके लेख छपने से उनकी ख्याति बढ़ने लगी और व्याख्यान के लिए कॉलेजों से निमन्त्रण मिलने लगे। इससे उनकी आर्थिक स्थिति भी ठीक होने लगी।

1960 से 1970 के बीच स्वदेशी तकनीक द्वारा अन्तरिक्ष में राकेट भेजने का काम सम्पूर्ण शक्ति और आस्था से प्रारम्भ किया गया। प्रक्षेपास्त्र के लिये राकेट में लगने वाले क्रायोजनिक इजन भी स्वदेशी तकनीक से तैयार किया गया क्योंकि अमेरीका ने तो क्रायोजनिक इजन देने से ही मना कर दिया और सोवियत सघ ने ऐसी शर्ते रखी जिन्हें पूरा करना भारत के लिए सम्भव नही था। 1983 में मिसाईल बनाने के महत्वपूर्ण कार्यक्रम डॉ. कलाम को सौंपे गए। वे 17–18 घटे प्रतिदिन काम करते थे। उन्होंने एक नई 5 मिसाईलों की डिजाइन तैयार की और 10 वर्षो में भारत को मिसाईल के क्षेत्र में स्वावलम्बी बना दिया।

बाबापुर के आयोजित आर्यवीरागना शिविर डॉ. कलाम एव स्वामी धर्मबन्धु जी

हथियार आत्मरक्षा के लिए जीवन का लक्ष्य ससार का उपकार

डॉ. कलाम का स्पष्ट दृष्टिकोण है कि आत्मरक्षा के लिए हथियारो का निर्माण किया जाता है। किसी के दमन या शोषण के लिए हथियार नही बनाये जाते हैं। असुरों द्वारा देवताओं की शक्ति पराजित नही हो इसलिए हथियारों का निर्माण करते रहना चाहिये ताकि हमारा देश अपराजेय रहे। दुखी लोगों की सेवा ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये।

डॉ. कलाम औषधि निर्माता भी

डॉ. कलाम के भाई को बचपन में पोलियो हो गया था। हकीम, वैद्य, डॉक्टर सब का बहुत ईलाज कराया पर कोई लाभ नही हुआ। डॉ. कलाम के मन में आया कि बहुत हल्का होने के कारण नये पदार्थ कार्बन–कार्बन से पोलियोग्रस्त लोगों के लिए कैलिपर्स बनाया जा सकते थे जिसका वजन मात्र 400 ग्राम होगा। इसी तरह के अन्य धातु से बने कैलिपर्स का वजन 4 किलो से कम नही होता।

डॉ. कलाम ने गरीबों के क्षय रोग के ईलाज के लिए अस्पताल खोला और विकलाग लोगों के लिए

"है कोई इस देश में?"

न्याय कही मिलता नहीं सभी ओर अन्याय।
है कोई इस देश में नष्ट करे अन्याय।।1।।
डूब गए आकण्ड ही यहाँ सभी नर–नार।
है कोई इस देश मे मेटे भ्रष्टाचार।।2।।
सभी ओर फैला हुआ बढा प्रदूषण पूर।
है कोई इस देश में करे प्रदूषण दूर।।3।।
दूषित हैं नदियाँ सभी नित्य मिले विष–धार।
है कोई इस देश मे करे शुद्ध जल–धार।।4।।
धुआँ धूल दुर्गन्ध से दूषित है पवमान।
है कोई इस देश में रोके दोष महान।।5।।
पीने को पानी नही मदिरा मिले अपार।
है कोई इस देश मे करे मद्य पर वार।।6।।
खाने को रोटी नही गुटको के अम्बार।
है कोई इस देश में करे बन्द व्यापार।।7।।
धूम्रपान भारी करे रोगी लाखो होय।
है कोई इस देश मे इन्हें देश से खोय।।8।।
गौ माता को मारते करूण–करूण रम्भाय।
है कोई इस देश मे उसके प्राण बचाय।।9।।
पशु पक्षी चिल्ला रहे करते करूण पुकार।
है कोई इस देश मे रक्षा करे हमार।।10।।
नष्ट–भ्रष्ट शिक्षा हुई बनी शुद्ध व्यापार।
है कोई इस देश मे शिक्षा करे सुधार।।11।।
आरक्षण इक रोग है राष्ट्र नष्ट कर जाय।
है कोई इस देश मे करे सभी का न्याय।।12।।
आतकी बढते रहे करते घोर विनाश।
है कोई इस देश मे करे उन्ही का नाश।।13।।
निर्वाचन की रीति जो सारे दोष समग्र।
है कोई इस देश मे देवे दोष मिटाय।।14।।
डाकू राजा बन रहे करे पाप के काज।
है कोई इस देश में करे धर्म का राज।।15।।
वैश्यावृत्ति पाप है भरे पडे बाजार।
है कोई इस देश में करे बन्द व्यभिचार।।16।।
सन्यासी लाखो यहाँ नेता कई हजार।
है कोई इस देश मे मेटे अत्याचार।।17।।
भूल गए सब धर्म को उदर भरे सो जाय।
है कोई इस देश में सबको धर्म सिखाय।।18।।
प्रेम कहू दिखता नहीं सभी स्वार्थ मे लीन।
है कोई इस देश मे करे स्वार्थ को क्षीण।।19।।
दूषित हैं सब नीतियाँ दूषित हुआ विधान।
है कोई इस देश मे लावे शुद्ध विधान।।20।।
अपनी भाषा छोड के बने अन्य के दास।
है कोई इस देश मे भाषा करे विकास।।21।।
अपने सुन्दर वेश को त्याग चले सब लोग।
है कोई इस देश में रोक सके यह रोग।।22।।
सभी ओर है नग्नता बनी खिलौना नार।
है कोई इस देश में रोके नग्न प्रचार।।23।।
सीमा पर अरि हैं खडे करते नित्य विनाश।
है कोई इस देश मे करे शत्रु का नाश।।24।।
ऊर्जा के साधन बडे नहीं कही उपयोग।
है कोई इस देश में करे सफल उद्योग।।25।।
अन्न बहुत है देश मे फिर भी भूखे सोयें।
है कोई इस देश मे कष्ट भूख का खोय।।26।।
देश धर्म हित मैं करू अपना सब बलिदान।
है कोई इस देश में जो देवे कुछ दान।।27।।
क्या सब के सब मर गए जीवित बचा न कोय।
देश–धर्म हित जो जिए जीवित केवल सोय।।28।।
जीवित है जो देश मे करे देश–उद्धार।
पत्र एक मुझको लिखे मैं भी देखू प्यार।।29।।
बोलेगा कोई नही बैठे मौन लगाय।
ईश्वर ही अब देश की नयया पार लगाय।।30।।

डॉ वेदप्रकाश वेदमदिर
एनएच–17 पल्लवपुरम–2 मेरठ–250110 यू पी

फैले फिर वेदों का रंग

स्वर्णिम रग चतुर्वेदो का आप्लावित हो धरती तल पर।
इसी रंग म सराबोर हो अवनी के सारे नारी–नर।
हवन हवाओं से सुरभि हो प्रकृति सुन्दरी का प्रति अग।
फैले फिर वेदो का रग

बढे परस्पर प्यार सभी मे द्वेष–बैर हो पूर्ण समाप्त।
समता–समरसता–सहिष्णुता जन–जन मे हो फिर परिव्याप्त।
निर्देशन हो मनीषियो को सन्तो का हो फिर सत्सग।
फैले फिर वेदों का रग

छोटा–बडा नही है कोई हम सब प्रभु की है सन्तन।
जीने का अधिकार सभी को प्राणि मात्र है एक समान।
गले मिले हम मित्र भाव से उठे हृदय मे मृदुल तरग।
फैले फिर वेदों का रग

ऐक्य भावना हो समाज मे जुड़े हमारे फिर परिवाद।
हो समान सकल्प हमारे करे परस्पर सद् व्यवहार।
पठने तथा पाठन वेदो का फिर हो उर मे उठे उमग।
फैले फिर वेदों का रग

राधेश्याम आर्य एडवोकेट
मुसाफिरखाना–227813 सुल्तानपुर उ प्र

उडीसा में शुद्धिमहायज्ञ में मुक्त हस्त से आहुति दें

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम्

सर्वत्र एक ही चर्चा है। आर्य समाज डूब रहा है आर्य समाज समाप्त हो रहा है आर्य समाज समाप्त हो गया है अब तो केवल शोक सभा ही बाकी है।

इसके लिए जिम्मेदार कौन है? वे सब जो दूसरों की तरफ उगली उठा रहे हैं और स्वय कुछ नही कर रहे हैं। वे आर्य समाज के प्रचार के लिए प्रतिदिन 30 पैसा भी नही देना चाहते। बाते बडी–बडी बनाते हैं। यदि आप यह पत्र पढकर स्वामी धर्मानन्द जी को 100रु भेजते हैं तो आप आर्य समाज के अनुयायी हैं अन्यथा आप ही सोचें की आप क्या हैं।

ईसाई मत के लोग विश्व मे ईसाई मत के प्रचार के लिये खरबों डालर फूक रहे हैं। मुसलमानों ने पेट्रो डालर से दुनिया मे तूफान मचा रखा है और लाखों आतकवादी अपनी जान हथेली पर रख कर मुस्लिम मत का प्रचार कर रहे हैं। भारत वर्ष में ऐसे लाखों पौराणिक परिवार है जहा एक–एक परिवार द्वारा आयोजित भागवत कथा का खर्चा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिक खर्चें से भी अधिक होता है। पौराणिक वर्ग मुरारी बापू को आसाराम बापू को जयगुरूदेव को सुधाशु महाराज को कुल 6 घटे के भाषण के लिये करोडो रुपया देते हैं। परन्तु आर्यों! आप अपने अन्दर झाक करके देखे आपने आर्य समाज के लिये क्या दिया?

ईसाई मत वाले उडीसा मे ईसाइयत के लिए 30 अरब रुपया खर्च कर रहे हैं। इस 30 अरब का मुकाबला स्वामी धर्मानन्द जी 30 लाख रुपये मे कर सकते हैं। 30 हजार आर्य समाजी यदि 100–100 रुपया भेजे तो 30 लाख रुपया एकत्रित हो सकता है।300 आर्य समाजें यदि 10–10 हजार रुपया देने का भी सकल्प लें तो 30 लाख रुपये की धनराशि दी जा सकती है। 30 आर्य समाजे 1–1 लाख रुपये देने की ठान लें तो 30 लाख रुपया इस शुद्धि यज्ञ के लिए दिया जा सकता है।

आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर ने 2 लाख रुपया एकत्रित करने का अभियान चलाया है। क्या आप अपनी समाज से 10 हजार रुपया एकत्रित करने का अभियान नही चला सकते? सब कुछ हो सकता है यदि सकल्प हो तो। इस सकल्प की अग्नि को कौन प्रज्ज्वलित करे। आप योगिराज कृष्ण के निम्नलिखित सदेश को पढ़ें–

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भविता।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङक्ते स्तेन एव स।।

यज्ञ से तृप्त देवता बिना मागे तुम्हारी हर इच्छा पूरी करते रहेंगे। देवताओं द्वारा प्रदत्त भोगों को जो व्यक्ति बिना दिये स्वय भोगता है वह चोर ही है। गत अक 34 तक एकत्रित धनराशि 11000 रु

आर्थिक सहयोग देने वालों की सूची

1 महर्षि शिक्षा समिति जयपुर	–1000 रु	2 विद्या समिति राजापार्क जयपुर	–1000 रु
3 श्री सुभाष वेदालकार जयपुर	–1000 रु	4 आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर	–1000 रु
5 श्री राजेन्द्र सिह 'मानव' जयपुर	– 500 रु	6 श्रीमती सरोज महाजन	– 500 रु
7 श्रीमती आशा वधवा	– 100 रु	8 श्री राजकुमार साहनी	– 100 रु
9 श्री बलदेवराज आर्य	– 100 रु	10 श्री डी आर चादना	– 200 रु
11 श्रीमती दमयन्ती नैयर	– 100 रु	12 श्रीमती मीना गुप्ता	– 200 रु
13 श्री कान्ता हरनेजा	– 100 रु	14 श्रीमती रमा चावला	– 100 रु
15 श्रीमती मृदुला सामवेदी	– 100 रु	16 श्रीमती कान्ता विनीता	– 100 रु
17 श्री चक्रकीर्ति सामवेदी	– 100 रु	18 श्री हरिबख्श जागिड	– 100 रु
19 श्रीमती शालिनी सामवेदी	– 100 रु	20 श्रीमती शकुन्तला क्षेत्रपाल	– 100 रु
21 श्रीमती कृष्ण कान्ता गुप्ता	– 100 रु	22 गुप्तदान	– 100 रु
23 डॅा अनिरूद्ध साहनी	– 100 रु	24 डॅा कविता साहनी	– 100 रु
25 श्रीमती वेद साहनी	– 100 रु	योग	7100 रु
		महायोग	18100 रु



डॅा0 सुभाष वेदालकार
प्रोफेसर सस्कृत एव अध्यक्षचर सस्कृत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर
जन्म – 13–4–1942 डेरा इस्माईलखान पाकिस्तान
पितृनाम– स्व0 गोवर्धन लाल तनेजा
शिक्षा –गुरूकुल कुरुक्षेत्र गुरूकुल कागडी विश्वविद्यालय हरिद्वार
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर महाराजा सस्कृत कॉलेज जयपुर
उपाधि –एम0ए0(सस्कृत) एम0ए0(वेद) पीएच डी साहित्याचार्य
राष्ट्रीय कार्य–हिन्दी रक्षा सत्याग्रह 1957
(क) 11 सितम्बर से 14 दिसम्बर तक जेल यात्रा (ससम्मान रिहा)
(ख) दिल्ली – दिवराला पद यात्रा (1988) सतीप्रथा के विरोध मे
पुस्तक लेखन– 60 पुस्तकें प्रकाशित
40 पुस्तके मौलिक स कृत रचनाये प्रमुख विषय– वेद एव सस्कृत साहित्य
सयोजन – 25 प्रान्तीय/राष्ट्रीय सस्कृत/वेद सम्मेलन/सगोष्ठी/व्याख्यानमाला
60 सस्कृत – सम्भाषण शिविर
पुरस्कार–सम्मान– (क) शिक्षा मत्रालय भारत सरकार से 8 बार पुरस्कृत
(ख) अखिल भारतीय वेद सम्मेलन बासवाडा (1984) मे सम्मान
(ग) राजस्थान सस्कृत अकादमी से अम्बिकादत्त व्यास पुरूस्कार
(घ) समर्पणानन्द – शोध –सस्थान मेरठ में सम्मानित
(ड) भारत सरकार एव राजस्थान सरकार से अनेक पुस्तको पर पुरस्कार
विशेष अभिरूचि – (क) वेद प्रचार/सस्कृत प्रचार
(ख) निर्धन/योग्य छात्रो के जीवन निर्माण मे 4–5 लाख व्यय किये।(ग) दान में विशेष

श्रीमती सरोज महाजन

पूर्व पता – पजाब म जिला गुरदासपुर तहसील शकरगढ़ ग्राम जलाला(वर्तमान पाकिस्तान)। पिजा जी श्री रामरत्न महाजन(1944 में स्वर्गवास)। पति श्री प्रकाश चन्द्र महाजन (स्यालकोट निवासी)। भाई श्री कर्मचन्द गुप्ता। पिताजी के निधन के उपरान्त मेरे भरण–पोषण का दायित्व मेरे भैया भाभी (श्रीमती शकुन्तला गुप्ता) ने वहन किया। ये दोनो आर्य समाज, आदर्श नगर जयपुर के कटटर कार्यकर्ता थे। इनके सान्निध्य में रहते हुए मेरे पूर्व सस्कार और भी पुष्पित पल्लवित हो गए।

पाकिस्तान बन जाने के बाद मेरा परिवार देहली आ गया और लोधी रोड जोर बाग आर्य समाज की मैं कटटर कार्यकर्त्री बन गई। वहा मैंने मत्री आर्य समाज का भार वहन किया। अपने मत्रित्व काल मे मैंने आर्य समाज शताब्दी समारोह एव सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह में तन–मन–धन से सेवा करते हुए अत्यन्त आनन्दानुभूति प्राप्त की। सन् 1993 मे अपने बेटे श्री प्रमोद महाजन के साथ जयपुर आ गई। मेरा बेटा अपना स्वतन्त्र कार्य करता है। पुत्रवधु श्रीमती किरण महाजन आर्य समाज के प्रति पूर्ण निष्ठा रखने वाली खुले दिल से आर्य सस्थाओ को दान देने वाली स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया मे कार्यरत हैं।

उत्तराखण्ड की यात्रा का रोमाचंक वर्णन

–सत्यव्रत सामवेदी

गताक से आगे – जयपुर से यात्रीदल 9 जून को प्रातःकाल 10 बजे रामगढ तल्ला से रानीखेत के लिए रवाना हुआ। 9जून को रामगढ़ तल्ला में आयोजित आर्य सम्मेलन में उत्तराखण्ड के विधान सभाध्यक्ष श्री यशपाल आर्य को आना था परन्तु उत्तराखण्ड की विधान सभा में आग लग गई थी इसलिए यशपाल आर्य का आना सम्भव नही हुआ। यदि हम 9 जून को प्रस्थान नही करते तो हमारा यात्री दल उत्तराखण्ड के अनेक दर्शनीय स्थलो को देखने से वचित रह जाता। अत हमें सौन्दर्य के आगार रामगढ तल्ला से विदाई लेने के लिए बाध्य होना पड़ा और हमारी पर्वतारोहण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई।

रामगढ तल्ला पर्वतो की तलहटी में है। अत वहा से प्रस्थान करने पर निरन्तर आरोहण ही आरोहण है। कुछ ऊँचाई पर जाने पर हमे हिन्दी की अमर कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा की साधना स्थली दिखाई दी और उनकी रहस्यमयी कविताओ की प्रेरणा स्थली के अनिर्वचनीय सौन्दर्य को देखा। जब हमारी गाडी भवाली पर पहुची तो अचानक एक वृद्ध सज्जन गाडी के सामने खड़े हो गए और हमारे ड्राइवर को ब्रेक लगाकर गाडी को रोकना पड़ा।

मौसम बडा सुहावना था। रिम–झिम–रिम–झिम बरखा हो रही थी। मैंने बस की खिडकी से झाका तो दो खूब सूरत बगले दिखाई दिये और उस हरीतिमा मण्डित प्रागण मे दो तख्तिया लगी हुई थीं। एक पर लिखा था सक्सेना विला और दूसरी पर जैन विला। इस सारे सुन्दर परिवेश को देखकर हमारी कामना हुई कि काश! हमारा भी ऐसा ही विला होता और हम भी कुछ दिन उस विला में रह पाते। ऐसा लग रहा था जैसे चारों तरफ सौन्दर्य की बरसात हो रही हो।

जिस वृद्ध सज्जन ने बस रोकी थी वे पूछ रहे थे कि क्या इस बस में सत्यव्रत जी हैं। अगर हैं तो उन्हे बाहर भेजो। मुझे भी आश्चर्य हुआ कि इस पर्वतीय नगर मे मेरे लिए बस को किसने रोका। ज्योही मैं बस के द्वार पर गया तो मैंने देखा कि श्री विद्यासागर शास्त्री खडे थे। मुझे देखकर लिपट गए और कहने लगे ऐ–सत्यव्रत! मुझसे मिले बिना कैसे जा सकते हो नीचे उतर! देख मैंने तुझे पकड ही लिया। आज अखबार मे भाषण देते हुए तेरी फोटो देखी। मैं गाड़ी लेकर रामगढतल्ला की ओर रवाना ही होने वाला था तुमसे मिलने के लिए। इतने मे तुम्हारी बस दिखाई दे गई और मैंने इसे रोक लिया। मैंने कहा–आपने याद किया और मैं आपके द्वार पर आ गया। मैं आपको रामगढ तल्ला आने की तकलीफ कैसे दे सकता था?

वे हम सब यात्रियो को प्रेमपूर्वक अपने विला मे ले गए। उनके पुत्र पुत्रवधु और उनके दामाद सभी वहीं थे। उनकी पुत्रवधु ने हमें नाश्ता कराया। 40 यात्रियों के लिए चाय बनाई। श्री विद्या सागर शास्त्री मे प्रेम और उपालम्भ का अद्भुत मिश्रण था। बार–बार कहते–सत्यव्रत बहुत बदमाश है! इसने मुझे आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पद से हटाया। मुझे धक्का देकर बाहर निकाला। इस पर भी वे खुशी में फूले नहीं समा रहे थे और बडे प्रेम पूर्वक मुझसे कहा–ऐ सत्यव्रत! देख कितनी सुन्दर जगह है। छोड आर्य समाज के झगडों को। जब तेरी मर्जी हो तब यहा पर आ और अपने परिवार के साथ जितने दिन रहना चाहे इस विला मे रहा कर। इस प्रकार हमारे दो घटे वही व्यतीत हो गए। सबको बहुत अच्छा लगा। वहा से सीधे रानीखेत की ओर रवाना हुए। क्योंकि अल्मोडा जाकर रानीखेत जाने से बहुत विलम्ब हो जाता।

रानीखेत बहुत सुन्दर पर्वतो की श्रृखला पर स्थित है। बडे–बडे गोल्फ के मैदान है। वहा से घुमावदार सडको पर चक्कर लगाते हुए शाम को 5 बजे अल्मोडा पहुच गए।

हम श्री जयदत्त उप्रेति का घर ढूढ रहे थे। उसी समय पहाड से आवाज आई–

सामवेदी जी सामवेदी जी

मैंने जब ऊपर की तरफ देखा तो श्री जयदत्त उप्रेति आवाज लगा रहे थे। वे भागे–भागे हमारे पास आए और उन्होने सार्वजनिक निर्माण विभाग यूनियन के सामुदायिक हाल में हमारी आवास की व्यवस्था की। वहा से चारो तरफ पहाडियो पर जगमगाता हुआ अल्मोडा दिखाई दे रहा था। समस्त यात्रीगण उस प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर भावविभोर हो गए और अत्यन्त प्रफुल्लित होकर कहने लगे– भाई जी! इस यात्रा में आज पहली बार परम आनन्द की अनुभूति हुई। कितना मनोहारी दृश्य है। वे दृश्य की अपेक्षा उत्तम आवास व्यवस्था से बहुत प्रसन्न थे। रात्रि को श्री जयदत्त उप्रेति ने अपने घर पर मुझे भोजन के लिए आमन्त्रित किया और अल्मोडा से 15–20 कि मी की दूरी पर स्थापित गुरूकुल के विकास के बारे में परामर्श करते रहे।

प्रातःकाल हम 9 बजे उठकर उत्तराखण्ड के सर्वश्रेष्ठ पर्वतीय नगर कोसानी चले गए। यहा से हिमालय की चोटिया दिखाई देती है परन्तु प्रात सूर्योदय के समय। दोपहर को बादल छा जाने के कारण ये चोटिया दिखाई नही देतीं। मैं यात्रियों के साथ महात्मा गाधी के अनासक्त आश्रम मे गया। जहा अनेक वर्ष पूर्व मैं एक रात रुका था और प्रातःकाल हिमालय की चोटिया देखी थीं। आज कल वहा का परिवेश बदला हुआ था।

इस आश्रम के चारो तरफ होटल ही होटल थे। जहा एक कमरे की एक दिन की दर 500रु से 5000रु तक थी परन्तु अनासक्त आश्रम में डारमेट्री में 10रु में बिस्तर सहित चारपाई उपलब्ध थी। वहा हमारी रहने की बहुत इच्छा थी परन्तु 2 बजे गुरूकुल के उत्सव में जाना था। अत हम गुरूकुल पहुच गए। उसी समय प्रो कैलाशनाथ सिह और स्वामी अग्निवेश जी भी वहा आ गए।

गुरूकुल की यह सुरम्य भूमि रानीखेत के मुख्य मार्ग पर थी। यद्यपि इस क्षेत्र में आर्य शब्द हरिजन का पर्याय है तो भी यह आश्चर्य जनक है कि अनेक ब्राह्मणों की आर्य समाज के प्रति असीम सहानुभूति है।

गुरूकुल के लिए ये 12.5 एकड भूमि भी एक ब्राह्मण ने दी थी। वहा पर 2–3 कमरे बने हुए है और उस गुरूकुल में केवल दो छात्र हैं। उस गुरूकुल के निर्माण में श्री जयदत्त उप्रेति के परिवार ने एक लाख रुपये का दान दिया। यह 12.50 एकड भूमि का दृश्य इतना मनोहारी था कि मानो कि सौन्दर्य पुजीभूत होकर बैठ हो। ऐसा लगता था कि क्षितिज तक गुरूकुल की हरीतिमामडित धरा का विस्तार हो। इस शान्त और मनोरम स्थल को देखकर यह इच्छा हुई कि कोलाहल की धरती से दूर इस पर्वत की गोद में बैठ कर रात–दिन परमेश्वर का स्मरण किया करें। शीतल मद समीर निश्छल प्रेम कथा के गीत गा रहा था।

अल्मोडा मे स्वामी विवेकानन्द आए थे। कविवर सुमित्रानन्दन पत ने अल्मोडा मे स्वामी विवेकानन्द के आगमन पर हर्ष विभोर होकर कविता लिखी थी।

इस गुरूकुल के सस्थापक प जयदत्त उप्रेति ने कहा कि उत्तराखण्ड में अधविश्वास, जातिवाद, अस्पृश्यता पशुबलि आदि कुरीतिया व्याप्त है। त्रासदी यह है कि कुलीन वर्ग अपने बच्चे को इसलिए नही भेजता कि कही ये बच्चे अस्पृश्य बच्चो के साथ खाना–पीना करके अपना धर्म भ्रष्ट न कर लें और दलित जातियो की वैदिक सस्कृति के प्रति कोई आस्था नही रह गई है। गुरूकुल के दो छात्रों ने वेदों का जटा पाठ सुनाया।

मैंने इस अवसर पर कहा कि दो विद्यार्थियों से गुरूकुल कैसे चलेगा और इसके लिए रुपया भी कौन देगा? प उप्रेति महान विद्वान है परन्तु उनकी विद्वत्ता का कितना दुरूपयोग हो रहा है? यह तो आर्य जगत का सौभाग्य है कि उत्तराखण्ड में प उप्रेति जैसा विद्वान आर्य समाज की सेवा कर रहा है। सारा आर्य जगत एडी से चोटी तक का जोर लगा ले परन्तु दूसरा जयदत्त उप्रेति खडा नही कर सकता।

रानीखेत के मुख्य मार्ग पर गुरूकुल का यह अत्यन्त मनोहारी प्रागण स्थित है। मैंने उप्रेति जी से पूछा कि आप के बाद इस गुरूकुल को कौन चलायेगा। उनके पास स्पष्टत कोई उत्तर नही था। मैंने सुझाव दिया कि यहा पर एक अत्यन्त भव्य वेद मन्दिर एव वानप्रस्थ आश्रम खोलने की योजना बनानी चाहिए। यहा इतना भव्य वेद मदिर हो कि उत्तराखण्ड आने वाले पर्यटको के लिए यह मदिर एक महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थल हो। इसे आर्यवीर दल के शिविरों का केन्द्र बनाया जा सकता है और वानप्रस्थ आश्रम भी बनाया जा सकता है। यदि विश्व की समृद्ध सौ आर्य समाजें एक–एक कमरा बनाने का सकल्प ले तो यह आर्य जगत का प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल हो सकता है। ऐसी ही योजना के अन्तर्गत रामगढ तल्ला में भी भव्य आश्रम का निर्माण किया जा सकता है और ग्रीष्मावकाश में धार्मिक सम्मेलन आयोजित किये जा सकते हैं।

इस गुरूकुल के सम्मेलन मे आर्य समाज आदर्शनगर जयपुर ने 5000/–रूपये की धनराशि दान में दी और अन्य यात्रियो ने भी तीन–चार हजार रूपया दान मे दिये।

हमे उसी दिन नेशलन कार्बेट पार्क देखने के लिए हल्द्वानी जाना था परन्तु अल्मोडा मे आर्य समाज के विवाद के कारण 8–9 बज गए और हमें उस दिन अल्मोडा ही रूकना पडा। हमारे साथ जो यात्री थे वे दूसरे दिन नैनीताल जाने का आग्रह करने लगे। बच्चो को नेशनल कार्बेट पार्क देखने की बजाय नैनीताल मे रोप–वे पर सवारी करने का अधिक शौक था। अत दूसरे दिन हम नैनीताल चले गए। वहा का रौक गार्डन नैनीताल मे अत्यन्त दर्शनीय स्थल है जहा पर चटटानो को चीर कर बडी–बडी गुफाए बनाई गई है।

नैनीताल के अनेक दर्शनीय स्थलों को देखा परन्तु यदि हमने गवर्नर हाउस (नैनीताल) नही देखा होता तो हमारा नैनीताल आना व्यर्थ था। गवर्नर हाउस में प्रवेश शुल्क प्रति व्यक्ति 50रु था। गवर्नर हाउस क्या था इन्द्र का कानन वन था। इतने भव्य और सुरम्य भवन देखकर सब आश्चर्य चकित हुए। विभिन्न प्रकार के फूल वृक्ष और रेशमी घास।

सायकाल 6 बजे हमने नैनीताल से जयपुर के लिए प्रस्थान किया। दिन की गर्मी से बचने के लिए हमने रात को यात्रा की। प्रातःकाल 7 बजे हम मथुरा पहुचे। वहा स्नान इत्यादि के लिए रूके। सफाई कर्मचारियो की हडताल के कारण सारा शहर नरक हो रहा था। हमारे साथ की कुछ महिलाओ की इच्छा थी कि विरजानन्द जी की कुटिया देखें। उस कुटि को देखने के लिए जब हमने बाजार में प्रवेश किया तो गटर के गदे पानी से सारी सडक भरी हुई थी। उस गदे पानी में हमारे कपडे खराब हो गए। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे किसी साक्षात नरक मे हमें पटक दिया हो। उस गदगी में मथुरावासी मजे से कचोरी–जलेबी खा रहे थे। चौबे लोग अर्द्ध नग्नावस्था में दुकानों के बाहर तख्तों पर बैठे हुए थे।

मथुरा के पेडे प्रसिद्ध हैं। जिन्हें जो खाये वो भी पछताए और जो न खाए वो भी पछताए। किसी भी यात्री ने पेडा खाने की इच्छा प्रकट नहीं की।

इस गदे पानी को चीरते हुए हम जब विरजानन्द कुटि पहुचे तो वहा ताला लगा हुआ था। अब वह कुटि नही है एक तीन मजिला भवन है। हमें बताया गया कि इस भवन की देखभाल करने वाले एक बुजुर्ग सज्जन है। वो रामगढ तल्ला में आयोजित आर्य महासम्मेलन में गए हैं और अभी तक लौटे नहीं हैं। आर्य जगत के इतने महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थल की यह स्थिति देखकर सब यात्री बहुत निराश हुए। यह है दर्शनीय स्थलों के प्रति हमारी श्रद्धा।

अब लू के थपेडो से यात्री परेशान होने लगे। हम चारों तरफ लू के थपेडे खाते साय 4 बजे जयपुर पहुच गए और गर्म हवा का हर एक झोंका हमें हिमालय की ठण्डी वादियों की याद दिलाता रहा। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हमने स्वर्ग से नरक तक की यात्रा की है। फिर भी जब हम अपने घरों में पहुचे तो हमें अपने घर स्वर्ग से भी अधिक अच्छे लगे।

(समाप्त)

कृत्रिम अग बनाने वाले एक सस्थान की भी स्थापना की। उन्होंने अनुराग नामक एक कम्प्यूटर विकसित किया जिससे ट्यूमर का ऑपरेशन आसानी से हो सकता है। कैंसर के रोग के ईलाज के कोरोनरी कैथघट सस्ते दामों में उपलब्ध कराने में डॅा कलाम का महत्वपूर्ण योगदान रहा। हैदराबाद के ह्रदय रोग विशेषज्ञ डॉ. राजू के साथ मिलकर बॉयोमेडिकल टेक्नोलोजी सोसायटी की स्थापना की जिसके द्वारा ह्रदय रोग के उपचार के लिये अनेक उपकरणों का निर्माण होता है। डॅा कलाम और डॅा राजू ने सस्थान प्रयोगशाला में एक द्रव्य की खोज की जिसका उपयोग स्टेन्ट बनाने में किया जाता है। पहले यह स्टेन्ट विदेश से मगाया जाता था और इसका मूल्य पाच गुना अधिक होता था। इसका उपयोग ह्रदय की बाई–पास सर्जरी में होता है। डिफेन्स मेटालर्जिकल



प्रासला के शिविर में प्रशिक्षण लेने आए आर्य वीर

लेबोरेटरी द्वारा विकसित टिटेनियम धातु का उपयोग दात बनाने के लिए होता है। इसी धातु की प्लेटे हड्डी जोडने के उपयोग में लाई जाती है। इनका नाम भव्य और दिव्य रखा गया है। ये प्लेटे पहले विदेश से मगाई जाती थी। डॅा कलाम ने तुलसी के भी आश्चर्यजनक उपयोगों का पता लगाया है और इसके प्रयोग से महिलाओं के स्तन एव गर्भाशय के कैंसर का उपचार होता है। शरीर के अन्दर के उपयोगी अगों के लिये कृत्रिम अग बनाना डायलेसिस की सस्ती पद्धति का विकास ऑखों के लिये दृष्टि नाम के साधन का विकास एव प्लास्टिक टेक्नोलोजी के विकास में डॅा कलाम लगे हुए हैं।

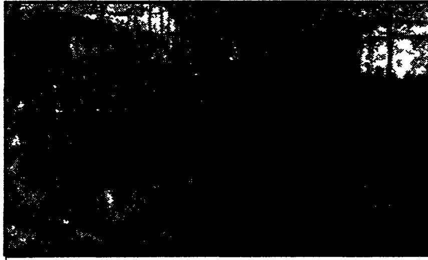
सस्कृत साहित्य के अध्येता

शिविर में आर्यवीरों को यह जान कर आश्चर्य हुआ कि डॅा. कलाम गीता रामायण महाभारत एव अन्य सस्कृत ग्रन्थों का भी अध्ययन करते हैं और उनसे प्रेरणा लेते हैं। सस्कृत साहित्य के प्रति उनमें असीम आदर भाव है।

महान देशभक्त

उन्होंने विदेशों में बसने वाले वैज्ञानिकों को सदेश दिया है कि यदि पैसे के पीछे नही भागना हो तथा सघर्ष की क्षमता हो तो तुम्हारी प्रतिभा के निखार के लिये भारत से अच्छी जगह नही है।

भारत रत्न कलाम– मातृदेवो भव,पितृदेवोभव



डॅा कलाम का भाषण सुनती हुई आर्यवीरागनाए

भारत रत्न की उपाधि से केवल दो वैज्ञानिकों को ही सम्मानित किया गया। पहले वैज्ञानिक डॅा सी वी रमन और दूसरे वैज्ञानिक डॅा कलाम। 25 नवम्बर 1997 को शाम साढे सात बजे जब रेडियों और टेलिविजन से उन्हें भारत रत्न से सम्मानित करने का समाचार प्रसारित हुआ तब डॅा कलाम को अपने 103 वर्षीय पिताजी और 97 वर्षीय माताजी की याद आई जिन्होंने घोर गरीबी के बावजूद उच्च शिक्षा के लिये अपने पुत्र को प्रोत्साहित किया। उन्हें याद आई अपने बचपन के मित्र रामास्वामी की और उसके परिवार की जिसने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्हें आर्थिक सहायता दी। उन्हें याद आई महान वैज्ञानिक विक्रम साराभाई की जिन्होंने उनकी प्रतिभा को पहचाना और हमेशा आगे बढने के लिए प्रेरित किया। इस अवसर पर कृतज्ञ डॅा कलाम ने महान वैज्ञानिक सतीश धवन एव ब्रह्मप्रकाश जैसे वैज्ञानिकों को याद किया।

भारत रत्न मिलने पर उन्होंने वैज्ञानिकों को नई पीढी को सदेश दिया– दोस्तो! तुम्हारे हाथ में मशाल है उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित करो। मैं तो उन परम्पराओं पर चलने वाला एक साधारण वैज्ञानिक हूँ। भारत रत्न की उपाधि मिलने पर उन्होने बडी नम्रतापूर्वक कहा था– मुझे भारत रत्न से सम्मानित होने पर खुशी हुई। यह पूरे वैज्ञानिक समुदाय का सम्मान है जिसके कारण मुझे यह सम्मान मिला इससे मेरे साथ काम करने वाले साथियों का उत्साहवर्धन होगा।

डॅा कलाम द्वारा श्री गगास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गगे त्रिभुवनतारिणी तरल तरगे
पतितोद्धारिणी जाह्नवी गगे दूरी कुरु मम दुष्कृतिभारम।

डॅा कलाम पायलट बनना चाहते थे परन्तु 1958 में वायु सेना ने उन्हें इस पद के योग्य नहीं माना और उनकी विमान चालक बनने की कामना कुचल दी गई। निराश कलाम न जाने क्यो ऋषिकेश की ओर रवाना हो गए और गगा की शीतल धारा में डुबकी लगा कर गगा मैया से प्रार्थ ा की–

दूरी कुरु मम दुष्कृतिभारम्।

इस सम्बन्ध मे आर्यवीरों को अपनी व्यथा सुनाते हुए डॅा कलाम ने कहा कि गगा स्नान के ब द

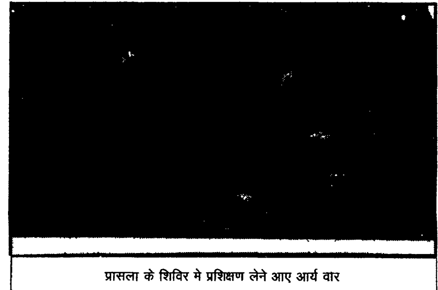


प्रासला के शिविर मे श्री खैरनार और डॅा कलाम का स्वागत करते स्वामी धर्मबन्धु जी

मैं स्वामी शिवानद के पास गया और व्यथा सुनाई। स्वामी जी न मुझे सान्त्वना देते हुए कहा कि तुम व्यर्थ में ही दु खी हो रहे हो। ईश्वर नही चाहता कि तुम विमान चालक बनो। तुम अपने हित में इसे ईश्वर की इच्छा मानते हुए साहस के साथ जीवन पथ पर बढते चलो। स्वामी जी के इन शब्दों से मेरी सारी व्यथा दूर हो गई। मैं पुन उत्साहपूर्वक कार्य में जुट गया और नई दिल्ली लौट गया। अगले ही दिन मुझे रक्षा मत्रालय के तकनीकी विकास एव उत्पादन निदेशालय मे वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक की 250रु की नौकरी मिल गई। आज मैं सोचता हू कि यदि मुझे पायलट की नोकरी मिल गई होती तो क्या मैं वैज्ञानिक बन सकता था? और विज्ञान की इन ऊचाईयों तक पहुच सकता? इसलिए ईश्वर जो करता है सो ठीक करता है।

ईशावास्यमिद सर्वम

अणुबम बनाने के औचित्य पर विचार व्यक्त करते हुए डा कलाम ने कहा कि दुनिया मे शक्तिशाली का ही अस्तित्व रहता है। दुष्टों और राक्षसो के विनाश के लिए हथियारों की शक्ति बहुत जरूरी है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम को भी ऋषि विश्वामित्र से जो अद्भुत हथियार मिले थ उसी से वे रावण एव राक्षसों का वध कर सकें। महर्षि दयानन्द ने भी सत्यार्थ प्रकाश मे लिखा है ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो! तुम्हारे आग्नेयास्त्रादि अस्त्र ओर शतघ्नी भुषुण्डी धनुष बाण तलवार आदि शस्त्र



प्रासला के शिविर मे प्रशिक्षण लेने आए आर्य वार

शत्रुओं के पराजय करने और राकने के लिये प्रशसित हों और तुम्हारी सेना प्रशसनीय होवे कि जिससे तुम सदा विजयी होवो।

देशोन्नति के पॉच उपाय

डॅा कलाम ने शिविरार्थियो को सम्बोधित करते हुए कहा कि आप सब देश की उन्नति के लिये चिन्तित रहते हो। इसीलिए आर्य समाज देश मे हजारो शिविर आयोजित करता है। मैं आर्य समाज के युवा सन्यासी स्वामी धर्मबन्धु जी का बहुत बडा प्रशसक हूँ। वे मुझे कही भी और जब भी बुलाते है मैं आ जाता हूँ क्योंकि वे राष्ट्र की नई पीढी को तैयार कर रहे हैं। इस महान कार्य मे उनको मदद करना हमारा फर्ज है इसीलिए मैं यहा आया हूं। मेरी दृष्टि में देशोन्नति के पॉंच उपाय है

1 शिक्षा और स्वास्थ्य 2 कृषि और खाद्य प्रसस्करण 3 सूचना और सचार तकनीक 4 आधारभूत ढॉचे का विकास और 5 महत्वपूर्ण क्षेत्रो मे आत्मनिर्भरता

डॅा कलाम ने शिविरार्थियों से पूछा कि जब हमारे पास पडौस में परमाणु हथियार भरे पडे हो तो क्या हमें बैठकर तपस्या करनी चाहिए। भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के पास अणुबम हैं इसीलिए दोनों देशों के बीच युद्ध नही हुआ और न होगा। अणुबम शाति के लिए आवश्यक है।

शेष पृष्ठ 4 पर

चिट्ठी आई है

प्रिय भाई साहब

आप यमराज को अंगूठा बतला कर लौट आए हमारा सौभाग्य है। आपको अभी यहा कई पुत्री पाठशालयए खोलनी है। इतनी जल्दी कैसे जा सकते हैं? चिरजीव भव। शतायु भव।

बागे बहिश्त से हुक्मे सफर
दिया था क्यो?
करे जहा दराज है अब
मेरा इन्तजार कर।

आपने अच्छा किया सर्व श्री मगलसेन और विजय चतुर्वेदी के पत्र छाप कर।

पहले विजय जी के पत्र के बारे में लिखते हैं 20 000 वर्ष से यह मुसलमान हिन्दुओं पर अत्याचार करते चले आ रहे हैं। इस्लाम को अभी केवल 1400 वर्ष हुए हैं। गीता और महाभारत को 5 000 वर्ष राम–रावण यद्ध को ज्यादा से ज्यादा 10 000 वर्ष हुए हैं और 20 000 वर्ष से हिन्दू मार खाते आ रहे हैं। क्या इतने नपुसक है वह?

रही बात मगलसेन जी की ठीक ही कहते हैं। महर्षि का आदेश है–
यथा योग्य व्यवहार करे।

दुष्टो का सहार करे शिशुपाल वध करे। निरपराध स्त्रियो बच्चो की बर्बर हत्या क्यो? गोधरा के खल नायको को दण्ड दें। राज्याधिकारी की अयोग्यता है कि उन्हे अभी तक दण्डित नही कर सके। कलक्टर एस पी स्थानीय राजा हैं उन्हें मालूम होना चाहिए कि उनके इलाके मे कौन दुर्जन हैं। उन पर निगाह रखें वक्त पर उन्हे बाधें। दो हजार व्यक्ति रेलवे लाइन पर पहुच जाते हैं। रेलगाड़ी का डिब्बा जला देते है। उनको भी प्रशासन रेलवे पुलिस सो रही है उनको भी दण्डित करना चाहिए। राज्य सरकार कभी भी अपनी जिम्मेवारी से बरी नही हो सकती।

गोधरा काण्ड हुआ। इसका यह मतलब नहीं कि गुण्डा तबका कानून अपने हाथ मे लेले और जहा चाहे वहा जुल्मों–सितम व बहशीपन ढाए। गर्भवती स्त्रियों के गर्भ गिराये, बच्चों, बूढ़ों को जलती आग मेंझोंके बलात्कार करें। क्या शिवाजी की वीर दुर्गादास की यही शिक्षा थी। राजा का कर्त्तव्य है दीन दुखियों की आततायी बलवान से रक्षा करें। प्रजा को जालिमों से बचाये दुष्ट दमन करे। तभी वह राजा बनने योग्य है। वरना उसे हटा देना चाहिए। ऐसा ऋषि का फरमान है। देखें सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 6 राजधर्म। यही मनु का आदेश है। इस कसौटी पर गुजरात सरकार को तोलें तो हल्की पडेगी।

क्या हमने जिन्ना की राष्ट्र की थियौरी कुबुल कर ली है? हमे तो रेड विकल्प की सीमावर्ती लकीर को मिटाना है बल्कि और लकीरे दीवारे खडी करनी है। इस्लाम केवल तलवार से फैला पर गलत इतिहास है। ईसाइयों द्वारा रचा गया इतिहास है। इस्लाम इसलिए भी फैला कि हमने दलित तबके से दुर्व्यवहार किया उन्हे कुओं पर पानी नहीं पीने दिया तालाबों मे नहाने नहीं दिया गया मदिरों में जाने नहीं दिया गया सड़को पर चलने नही दिया गया घोड़ी पर चढने नहीं दिया गया वेद पढने नही दिए गए। रोटी–बेटी का रिश्ता हुक्का पानी वर्जित कर दिया। आज भी यही कर रहे हैं। ऋषि की सन्तान कब जागेगी? पूर्ण क्राति कब होगी? यही आर्य समाज का आज मुख्य कर्त्तव्य है।

दयानन्द के गुजरात मे बेबस बच्चों बूढों स्त्रियों पर राक्षस लोग बर्बरता से अत्याचार करें और राज्य शक्ति देखती रह जाए शर्म की बात है।

मजहब जुदा हुआ तो क्या? वेद कहता है एकसू सद्‌विप्रा बहुधा वदन्ति। प्रजा तो प्रजा है चाहे शैव हों वैष्णव हों बौद्ध हों सिख हों मुसलमान हो राजा का कर्त्तव्य है सदा जागृत रहें। साधारण निस्सहाय प्रजाजन की रक्षा करे दुष्टों का दमन करे नही कर सकता तो उसे हटा दें यही ऋषि का फरमान है।

कुमार हूजा भारती पूर्व कुलपति
गुरूकुल कागडी विश्वविद्यालय
ए–15–ए तिलक नगर जयपुर–4

माननीय सामवेदी जी

सादर नमस्ते।

नारायण स्वामी आश्रम तल्ला रामगढ गाथा। आपके पत्र 21 जून 2002 में पढने को मिली। इसमें आर्य समाज हल्द्वानी द्वारा स्वागत में रही कुछ त्रुटियो की ओर ईशारा है। आपके सामने छुपी बाते भी आ जावे और सत्यता की जानकारी हो जावे इस आशय से यह पत्र लिख रहा हू।

मान्यवर! रामगढ जाने के लिए हल्द्वानी समाज बेस कैम्प की तरह हैं। उसने अपने सीमित साधनों में से लगभग 6000रु की राशि इस आयोजन के भाग लेने वालों की भोजन आदि की व्यवस्था में खर्च की। जिसका आपके पत्र में कहीं उल्लेख नही हैं। शायद आपको इसकी जानकारी भी नही होगी। उत्तराचल राज्य उत्तर प्रदेश से सन 2000 से अलग हो गया है। यहा की प्रतिनिधि सभा अलग तभी से गठित एव पजीकृत है कार्य कर रही हैं। उसे इस आयोजन की कोई जानकारी भागीदारी नहीं दी गई। हल्द्वानी समाज जो इस सभा का एक घटक है उसे भी कोई जानकारी नहं दी गई। आयोजकों द्वारा केवल इतना ही कहा गया कि जो आदमी आवे उनके ठहरने की व्यवस्था कर दें। कितने आदमी आयेंगे उनको कहा–कहा ठहराया जायेगा। हल्द्वानी की आर्य सदस्य भी चाहते थे कि सुव्यवस्था हो। आपके फोन को कार्यालय में उपस्थित व्यक्ति समझ नही सका। भविष्य मे आप हमें सीधा फोन करे।

आशा है सब स्थिति को समझ कर आप आर्य समाज हल्द्वानी को क्षमा करेंगे। हमारे मत्री जी कभी–कभी जयपुर जाते हैं। श्री श्रीकान्त जी। वह आपसे व्यक्तिगत मिलेगे भी।

दिल्ली मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा कितनी है? हमे पूरा विवरण देते हुए मार्ग दर्शन देने की कृपा करें। आर्य नीति पत्र हमे भी नियमित भजते रहे।

आपका शुभेच्छु
नानकचन्द लोहिया

आदरणीय सत्यव्रत सामवेदी जी

नमस्ते।

मुझे आप द्वारा सम्पादित आर्य पत्रिका आर्य नीति का अवलोकर करने का अवसर मिला। पत्रिका बहुत ही उपयोग है। पत्रिका में आर्य समाज में हो रही प्रत्येक गतिविधि पर लेख सूचना आदि होते हैं। पत्रिका की जितनी प्रशसा की जाये कम है। दो पक्तिया लिख रहा हू–

आर्यावर्त मे आर्य नीति का शोर सुनाई दे इसके जैसी पत्रिका ना और दिखाई दे।
इसके सम्पादकीय सूचना और लेख शब्द ज्ञान कोष का करे इजाफा बने आनन्दमय माहौल।
अब तो आर्य नीति कलेजे की कोर दिखाई दे इसके जैसी पत्रिका ना कोई और दिखाई दें।
कहे बोहल आर्य नीति तो सिरमोर दिखाई दे इसके जैसी पत्रिका ना और कोई दिखाई दें।

नरेश सिहाग 'बोहल'
आर्य समाज घटाघर भिवानी हरियाणा

आर्य समाज घटाघर भिवानी हरियाणा के चुनाव सम्पन्न

सरक्षक – डॅा अमीर चन्द   प्रधान – श्री अमृतलाल आर्य   उपप्रधान – श्री सुभाष चन्द्र
मत्री – डा रामफल आर्य   उपमत्री – श्री विमलेश आर्य   कोषाध्यक्ष – श्री राधेश्याम
पुस्तकालयाध्यक्ष – श्री वेद प्रकाश प्रचार मत्री श्री ज्ञानेन्द्र आर्य

नरेश सिहाग 'बोहल'

आर्य वीर दल

महर्षि दयानन्द मार्ग रातानाड़ा जोधपुर

क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की 105वीं जयन्ती मनाई

आर्य समाज महामदिर तथा आर्यवीर दल क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल शाखा के सयुक्त तत्वावधान में दिनाक 21 06.2002 को क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की 105वीं जयन्ती मनाई गयी। सबसे पहले दिन प्रात 5 बजे महामदिर क्षेत्र में प्रभात फेरी निकाली गयी। प्रभातफेरी में क्रान्तिकारी गीत कोरस और शहीदों की याद में वीरगान व जयघोष लगाये गये। प्रभात फेरी का सचालन प्रदीप आर्य और भैंवरलाल आर्य ने किया। प्रभातफेरी को ओ३म् का झण्डा उपसचालक हेमसिह ने दिखा कर प्रारम्भ किया।

दूसरे सत्र में साय 6.30 यज्ञ से प्रारम्भ हुआ। यज्ञ का सचालन प्रदीप आर्य ने किया। यज्ञ के पश्चात आर्यवीर दल जोधपुर के सचालक नारायण सिह ने क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल के क्रान्तिकारी कार्यो जैसे काकोरी रेल डकैती में सरकारी धन को लुटना गोरखपुर जेल मे लिखि उनकी आत्मकथा तथा क्रान्तिकारी अशफाक उल्ला खाँ चन्द्रशेखर आजाद ठाकुर रोशनसिह राजेन्द्र लाहिड़ी जैसो का सगठन करना आदि विषयों पर प्रकाश डाला। आर्यवीर दल जोधपुर के सचालक ने कहा रामप्रसाद बिस्मिल भारत को आजाद कराने वाले आर्य समाजी देव दयानन्द का दिवाना तथा इस विप्लव यज्ञ के ज्वाला मुखी थे। अपने बच्चो को अच्छे सस्कार देने के लिये तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के लिये सभी को आर्यवीर दल मे आने का निमन्त्रण दिया। आर्यवीर दल राजस्थान के अध्यक्ष रामसिह आर्य ने इस अवसर रामप्रसाद बिस्मिल के कार्यो पर प्रकाश डाला और उनके द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। सभी आर्यवीरो को वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे अपने विचारों को शहीदो क इतिहास को साक्षी मानकर अपनाना चाहिये।

इस अवसर पर राजस्थान सयुक्त महासघ प्रदेश वरिष्ठ उपाध्यक्ष डी पी जोशी भी उपस्थित थे उन्होंने बताया कि क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल जैसे समर्पित नौजवानों की आज राष्ट्र को जरूरत है। इस दिन कार्यक्रम का मुख्य आर्कषण स्थानीय व्यायामशाला का व्यायाम प्रदर्शन रहा। आर्यवीरों ने आसन लाठी बॉक्सिग आग के गोले में से निकलना मुह से आग निकालना जिम्नास्टिक आदि रोमाचकारी प्रदर्शन किया। सभी नन्हें–मुन्हें तथा बडों ने व्यायाम प्रदर्शन में भाग लिया। व्यायाम प्रदर्शन का सचालन शाखा नायक प्रदीप आर्य ने किया। अन्त मे आर्य समाज, राम मौहल्ला के प्रधान सेवाराम आर्य ने सबको धन्यवाद दिया तथा शान्ति पाठ किया।

हे! ईश भारत मे शत बार मेरा जन्म हो।
कारण सदा ही मृत्यु ही देशोपकारक कर्म हो।
सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल मे है।
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।

–क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल
सचालक आर्यवीर दल, जोधपुर

भावी राष्ट्रपति डॅा कलाम का भाषण

शेष पृष्ठ

मन को शिवसकल्प वाला बनाऐं

डॅा कलाम ने शिविर में आए आर्य वीरों को प्रेरणा दी कि वे अपने अन्तर्मन की ज्योति को प्रकाशित करे और यह सब कुछ इस प्रकार के शिविरों में ही सम्भव हो सकता ह। यहीं आपको ऐसा परिवेश मिलेगा कि आप सब स्वामी धर्मबन्धु जी के सान्निध्य में अपने अन्तर्मन को प्रकाशित कर सकते हो। डॅा कलाम ने कहा कि आप सबकी कठिनाई यह है कि आपके पास शिक्षा के अवसरों अथवा औद्योगिक ढॉंचे का अभाव नही है पर आप सही विषय के चुनाव और अपने चुनाव के साथ न्याय करने के अन्तर को नही समझे हों। उन्होंने उच्च शिक्षा के इच्छुक छात्रों को परामर्श दिया कि आप हमेशा इस बात का ध्यान रखें कि आप द्वारा विषय का

की कसौटी पर खरा उतरता है या नहीं।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का अन्तर बताते हुए डॅा. कलाम ने कहा कि विज्ञान अन्तहीन और अन्वेषणकारी है जबकि विकास की एक समयबद्ध अवधारणा है। विज्ञान एक जज्बा है। वादों और सम्भावनाओं की कमी खत्म न होने वाली यात्रा है।

हाँ,हाँ मैं शाकाहारी हूँ।

शिविरार्थियो की यह जिज्ञासा थी कि डॅा. कलाम शाकाहारी हैं या मासाहारी? शिविर में शाकाहारी भोजन था। जब युवा सन्यासी धर्मबन्धु जी ने शिविरार्थियों की जिज्ञासा से डॅा कलाम को अवगत कराया तो वे बहुत जोर से हसते हुए कहने लगे–हा हा मैं शाकाहारी हूँ। मैं गरीब घर मे पैदा हुआ। हमारे घर में शाक के लिए भी पैसे नही होते थे तो मास कहा से खरीदते? मैं मजबूरी मे शाकाहारी बना किसी आदर्श से नहीं पर यह अच्छा ही हुआ। अब हमें मास से परहेज है। शाकाहार हमारे जीवन का अभिन्न अग बन गया है।

जब डॅा कलाम शिविरार्थियों के बीच मे से हसते–हसते रवाना हुए तो शिविरार्थियों का मन मुर्झाने लगा। उनकी उपस्थिति में ऐसा लग रहा था कि उन्हें प्रेरणा का ऑक्सीजन मिल रहा हो। जब रवाना होने के लिए डॅा कलाम खडे हुए तो स्वामी धर्मबन्धु जी ने आर्य वीरों से कहा–बच्चो! क्या तुम जानते हो कि डॅा साहब कवि भी है। उन्होंने अग्निमीढ़ेपुरोहित पर कविता लिखी है। इस पर डॅा कलाम ने फिर ठहाका लगाया और कहा कि मैनें यह मत्र न तो देखा है और न ही सुना है। अनजाने में ही या पूर्वजन्म के सस्कारवश मैंने उस मत्र के भावों को व्यक्त करने वाली कविता लिखी है।

अग्नि में मत ढूढो,
शत्रु को भयभीत करता,
शक्ति का स्तम्भ कोई,
यह तो एक आग दिल में,
जो सुलगती हर भारतीय के
सम्यता के स्रोत सी
एक छोटी सी मूर्ति है यह
भारत के गौरव की उ
प्रदीप्त जो

आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान का विवाद

स्वामी तत्त्वबोध आर्य प्रतिनिधि सभा,राजस्थान के साथ गद्दारी कर रहे है

अन्तरंग सभा की बैठक बुलाई जाये : रामसिंह आर्य

जोधपुर 8 जुलाई। हमने कितने अरमान से स्वामी तत्त्वबोध को श्री सत्यव्रत सामवेदी जी के कहने पर आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का अक्टूबर 1999 में प्रधान बनाया था। हमें उस समय उदयपुर के एव राजस्थान के अनेक आर्यो ने चेतावनी दी थी कि आप इस आशा से स्वामी तत्त्वबोध को प्रधान बना रहे हों कि वे सभा की आर्थिक समस्या हल कर देंगे परन्तु वे न तो अपनी घोषणा के अनुसार आर्थिक सहयोग देंगे और न ही आपको काम करने देंगे। लोगों ने यह भी कहा था कि स्वामी तत्त्वबोध तानाशाही प्रकृति के आदमी है और शीघ्र ही वे सबसे झगड़ा कर लेंगे। उनके विरोधियों ने और भी न जाने क्या–क्या बातें कहीं जिन्हें लिखने में हम लज्जा का अनुभव करते हैं। हमने स्वामी तत्त्वबोध के विरोधियो की एक भी नहीं सुनी परन्तु अनुवर्ती घटनाओ ने सिद्ध कर दिया कि उनके विरोधियों ने जो कुछ भी कहा वह अक्षरश सत्य था। आज आर्य प्रतिनिधि सभा उसी का परिणाम भुगत रही है।

स्वामी तत्त्वबोध ने चुनाव से पूर्व घोषणा की थी कि मैं आर्य प्रतिनिधि सभा के लिये एक लाख रुपये दूगा और प्रतिमाह पाच हजार रुपये दिया करुगा परन्तु जब उनसे रुपये मागे गए तो कह दिया कि उदयुपर में जो साधारण सभा की बैठक हुई थी उसमें 56 हजार रुपये व्यय हुए थे। अत 56 हजार रुपये मैंने एक लाख में से काट लिये है और शेष 37 हजार रुपया मैं सभा को दे चुका हू। यह विश्वासघात है कि नही?

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान द्वारा आयोजित प्रान्तीय महासम्मेलन में स्वामी जी ने केवल 20 हजार की सहयोग राशि दी जबकि आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर के 2.50 लाख रुपये व्यय हो गए। आर्य प्रतिनिधि सभा को श्री सत्यव्रत सामवेदी के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये या स्वामी तत्त्वबोध के प्रति?

यह सब जानते है कि स्वामी जी पूर्णत अस्वस्थ व्यक्ति हैं और कार्य करने म पूर्णत अक्षम हैं। भाषण भी आप किसी से लिखाते हैं और सम्मेलनों में उस लिखित भाषण को पढ देते हैं। इसीलिए हमने श्री सत्यव्रत सामवेदी को आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्यकारी प्रधान बनाया था। उनकी असाधारण क्षमताओं से कौन परिचित नही हैं। जब वे भाषण देते हैं तो पौराणिक वर्ग मुसलमान ईसाई सब मन्त्रमुग्ध होकर उनके प्रवचन सुनते रहते हैं। आर्थिक सहयोग देने में भी उनका कोई सानी नही हैं। उनकी आवाज पर लोग लाखों रुपया दान में देने के लिए तैयार रहते हैं। आर्य जगत के समस्त विद्वान सामवेदी जी की विद्वत्ता लगन निष्ठा समर्पण और त्याग के प्रसशक हैं। उन्होंने चुनाव से पूर्व घोषणा की थी कि मैं कोई भी पद नही लूगा और बिना पद के कार्य करूगा परन्तु अन्तरग सभा ने सर्व सम्मति से उन्हें कार्यवाहक प्रधान बनाने के लिए बाध्य किया क्योंकि प्रधान कार्य करने में समर्थ नही था। परन्तु स्वामी तत्त्वबोध ने निर्लज्जतापूर्वक उन्हें कार्यवाहक प्रधान पद से हटाने का आदेश जारी कर दिया और समस्त आर्य समाजों को लिखा कि मैं पुन आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रधान बनना चाहता हू ताकि प्रतिनिधि सभा का हाल बच जाए। स्वामी जी की इस हरकत से अन्तरग सभा में विद्रोह हो गया। परन्तु सत्यव्रत जी ने विद्रोह को शान्त करते हुए कहा कि हमें आर्य एकता के लिये सब कुछ बलिदान करने के लिए तैयार रहना चाहिये। यही नही श्री सत्यव्रत जी ने सभा में विवाद समाप्त करने की दृष्टि से स्वामी तत्त्वबोध को सर्वसम्मति से प्रधान बनाने की अपील जारी की और सब प्रतिनिधियों को इसके लिए सहमत कर लिया। श्री सत्यव्रत जी ने 5 व्यक्तियों की कमेटी बनाकर सर्वसम्मति से अन्तरग सभा का गठन करने का प्रयास किया परन्तु उसमें भी स्वामी तत्त्वबोध विघ्न डालते रहें। चुनाव एक वर्ष के लिये हुए थे और नये चुनाव अक्टूबर 2000 में कराने थे परन्तु विधान के अनुसार एक वर्ष कार्यकाल बढ़ाया जा सकता था। अत बढ़ा दिया गया। एक वर्ष पूरा होने पर स्वामी तत्त्वबोध ने त्याग पत्र दे दिया परन्तु फिर भी आज तक पद पर बने हुए हैं और भविष्य में भी अनेक वर्षों तक बिना चुनाव के प्रधान बने रहना चाहते हैं।

क्या उनके पद त्याग की घोषणा ढोंग और पाखण्ड नहीं था? अक्टूबर 2001 में चुनाव प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। प्रतिनिधियों की सूची आर्य मार्तण्ड में प्रकाशित कर दी गई। स्वामी तत्त्वबोध जी को यह मालूम था कि अब वे किसी भी हालत में प्रधान नही बन सकते। उन्होंने षड्यन्त्र किया और जोधपुर की मृतप्राय आर्य समाजों के पदाधिकारियों से एक मुकदमा दायर करवा दिया। जिसमें जोधपुर की 33 आर्य समाजों के प्रतिनिधियों की वैधता को चुनौती दी गई और चुनाव पर निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना की गई। इन 33 आर्य समाजों के प्रतिनिधियों के विरूद्ध स्वामी तत्त्वबोध गत अनेक मास से विषवमन कर रहे थे और जो लोग गत चुनाव में स्वामी जी का विरोध कर रहे थे उन्हें इन आर्य समाजों का जाँच अधिकारी बनाया। स्वामी जी का आरोप था कि इन आर्य समाजों के भवन नही है। क्या भवन को आर्य समाज कहते हैं? जो नवयुवक प्रातःकाल 4 बजे आर्यवीर दल की शाखा लगाते हैं प्रतिदिन सध्या हवन करते हैं वैदिक धर्म की जयनाद से आकाश गुजाते हैं वे तो आर्य समाजी नही हैं और जिन आर्य समाज के विशाल भवनों में साप्ताहिक सत्सग में 2–4 व्यक्ति आते हैं उनके 15–20 प्रतिनिधि भी वैध हैं।

जोधपुर के न्यायालय में जो मुकदमा दायर किया गया वह एक सुनियोजित षड्यन्त्र था। इस वाद में स्वामी तत्त्वबोध को एव सार्वदेशिक सभा को पार्टी बनाया गया। सार्वदेशिक सभा का प्रतिनिधित्व भी स्वामी तत्त्वबोध ही कर रहे थे। स्वामी तत्त्वबोध और सार्वदेशिक सभा ने मुकदमा करने वालों के साथ मिलकर चुनाव रूकवाने के लिए न्यायालय में 07 09 2001 को सहमति दे दी। क्या यह आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ गद्दारी नही है? जिन 33 आर्य समाजों के प्रतिनिधियों ने स्वामी तत्त्वबोध को प्रधान बनाया था आज उन्हीं प्रतिनिधियों का वे विरोध कर रहे हैं? आश्चर्य की बात तो यह है कि यही मुकदमा गत चुनाव से पहले जोधपुर और भरतपुर में भी किया गया था। परन्तु न्यायालय ने इन 33 आर्य समाजों के प्रतिनिधियों के विरूद्ध प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया था। इन्हीं 33 आर्य समाजों के प्रतिनिधियों को न लेने के कारण ही राजस्थान उच्च न्यायालय ने स्वामी सुमेधानन्द द्वारा कराये गए चुनावों को रद्द कर दिया था और प्रतिनिधि सभा पर रिसीवर की नियुक्ति कर दी थी। बार–बार इन आर्य समाजो के विरूद्ध मुकदमें करके आर्य समाज के साथ खिलवाड किया जा रहा है। प्रतिनिधि सभा के चुनावों में जब एक बार प्रतिनिधियो ने भाग ले लिया तब उन्हे किस आधार पर हटाया जा सकता है?

अन्तरग सभा ने प्रस्ताव पारित कर दिया था कि राजस्थान का किसी भी सार्वदेशिक सभा से सम्बन्ध नही हैं। सार्वदेशिक सभा ने उदयपुर में निर्वाचित अन्तरग सभा को भग करने का नोटिस दे दिया परन्तु अन्तरग सभा के उक्त प्रस्ताव के कारण सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा अन्तरग सभा को भग नही कर सकी क्योकि जिला न्यायालय जयपुर ने आदेश जारी कर दिया था कि सार्वदेशिक सभा को आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यों मे हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नही है। तत्पश्चात सार्वदेशिक सभा ने चुपचाप उच्च न्यायालय से एक तरफा फैसला कराके जिला न्यायालय के आदेश पर रोक लगवा दी।

स्वामी अग्निवेश एव स्वामी सुमेधानन्द के कहने पर हमने उच्च न्यायालय के एक तरफा फैसले के विरूद्ध कोई कार्यवाही नही की क्योंकि हमें मुकदमेंबाजी से दूर हटकर परस्पर मिलजुल कर विवाद समाप्त करने के लिए कहा गया। इसका परिणाम हमें भुगतना पड़ा। सार्वदेशिक सभा जोधपुर के न्यायालय मे पार्टी बन गई और चुनाव स्थगित कराने की सहमति दे दी। अब आप ही निर्णय करें कि आर्य समाज के प्रचार में सार्वदेशिक सभा कितनी सहायक हो सकती है? परन्तु राजस्थान उच्च न्यायालय ने दिनाक 14.02.2002 को आदेश जारी कर अपने एक तरफा फैसले को निरस्त करते हुए पुन जिला न्यायालय के आदेश को बहाल कर दिया। जिसके अनुसार सार्वदेशिक सभा आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यों में हस्तक्षेप नही कर सकती। (यह आदेश आर्य नीति के दिनाक 08 मई के अक में मुद्रित किया जा चुका है)

चुनाव को स्थगित हुए नौ मास हो गए है। तब से प्रतिनिधि सभा का काम ठप पड़ा है। इसका परिणाम यह निकला कि प्रतिनिधि सभा को एक वर्ष का शताश जो सवा लाख रुपया होता है वह भी नही मिला और प्रतिनिधि सभा की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गई। सेवक को पदमुक्त कर दिया गया। लिपिक को भी वेतन नही मिल रहा। रोजमर्रा के कार्यों के लिए भी सभा के पास पैसे नही हैं। स्वामी तत्त्वबोध ने मत्री श्री ओमप्रकाश पर अनेक अनर्गल आरोप लगाए हैं और चैक पर दस्तखत करने से मना कर दिया।

स्वामी तत्त्वबोध श्री ओमप्रकाश के हमेशा ही विरोधी रहे है और उन्हें मत्री पद से हटाने के लिए दबाव डालते रहे हैं परन्तु श्री सत्यव्रत सामवेदी ने उनके विरोध की कोई परवाह नही की और श्री ओमप्रकाश को मत्री पद से हटाने से साफ इन्कार कर दिया।

स्वामी तत्त्वबोध ने कुछ दिन पूर्व एक पत्र जारी कर अपना मन्तव्य प्रकट किया है कि चुनाव प्रक्रिया प्रारम्भ होने के कारण अन्तरग सभा भग हो गई है और अब भविष्य में 7–8 पदाधिकारियो की काम चलाऊ कमेटी ही काम करेगी। स्वामी जी ने 14 जुलाई को उदयपुर में इन्हीं आठ पदाधिकारियो की बैठक बुलाई है जिसकी विषय सूची में श्री सत्यव्रत सामवेदी एव श्री रामसिह आर्य एव अनेक सदस्यों के निष्कासन का विषय हैं और अन्तरग सभा के स्थान पर काम चलाऊ कमेटी के गठन को भी विषय सूची में रखा गया है। अधा बाटे रेवडी फिर–फिर अपने का देय वाली कहावत चरितार्थ होती है।

श्री सत्यव्रत सामवेदी एव रामसिह आर्य का अपराध क्या है?

स्वामी तत्त्वबोध के अनुसार सार्वदेशिक सभा के चुनाव के समय सत्यव्रत सामवेदी और रामसिह आदि ने स्वामी अग्निवेश आदि उपद्रवियों का साथ दिया और एक अवैध सार्वदेशिक सभा बना ली। उसके ये पदाधिकारी एव सदस्य बन गए। अत वे अन्तरग सभा की सदस्यता से स्वत ही पृथक हो गए। स्वामी जी ने यह कैसे मान लिया कि राजस्थान की सभा कैप्टन देवरत्न वाली सार्वदेशिक से सम्बद्ध है। जबकि वास्तविकता यह है कि राजस्थान की सभा का किसी भी सार्वदेशिक सभा से सम्बन्ध नही है और श्री सत्यव्रत जी ने भी यह अपील जारी की थी कि सार्वदेशिक सभाओं के विवाद को हम राजस्थान में नही आने दें। स्वामी जी को भी मालूम है कि सार्वदेशिक सभा के चुनाव के समय दीवानहाल के दरवाजे बद कर दिये गए थे। प्रतिनिधियों को अन्दर नही जाने दिया गया था और श्री कैप्टन देवरत्न और उनके साथियों ने अपने को सार्वदेशिक सभा का पदाधिकारी घोषित कर दिया था। क्या यह लज्जाजनक बात नही है कि जो स्वामी अग्निवेश ससार के अनेक देशों में दयानन्द और वेद की दुन्दुभी बजा रहे हैं जिनके भाषणों को लाखों मुसलमान ईसाई बौद्ध सिख और विश्व के धर्माचार्य मत्र मुग्ध होकर सुनते हैं उन्हें स्वामी तत्त्वबोध उपद्रवी कहते हैं। स्वामी अग्निवेश ने आर्य जगत के इतिहास में पहली बार देश–विदेश में आर्य समाज की पताका को फहराया है। अभी हाल ही में विश्व के सबसे बडे मुस्लिम राष्ट्र इण्डोनेशिया में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में स्वामी अग्निवेश के भाषण को इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति और उनकी पत्नी रोमाचित होकर विश्व शान्ति के लिए वैदिक सदेश को सुनती रही।

मेरी मान्यता है कि आर्य जगत स्वामी अग्निवेश और श्री सत्यव्रत सामवेदी का विरोध छोडकर यदि सहयोग देना प्रारम्भ करें तो कृण्वन्तो विश्मार्यम् का स्वप्न पूरा हो सकता है और आर्य समाज विश्व का नेतृत्व कर सकता है। परन्तु स्वामी तत्त्वबोध तो आज स्वामी धर्मानन्द स्वामी ओमानन्द प्रो शेरसिह प्रो कैलाशनाथ सिह स्वामी इन्द्रवेश आदि आर्य जगत के मूर्धन्य नेताओं को ही उपद्रवी कह रहे हैं। मतभेद कोई बडी बात नही है और मतभेद होना भी चाहिए। परन्तु मतभेद का मतलब यह नही है कि आप सम्मानित नेताओ के लिए अपशब्दों का प्रयोग करने लगे।

हम स्वामी तत्त्वबोध को पुन स्पष्ट कर देना चाहते है कि आज की तारीख में आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान का किसी भी सार्वदेशिक सभा से सम्बन्ध नही है। सार्वदेशिक सभा से सम्बद्धता के बारे में अन्तरग सभा ही निर्णय ले सकती है और यदि स्वामी तत्त्वबोध ने अपनी मर्जी से राजस्थान की सभा को सार्वदेशिक सभा से सम्बद्ध करने के निर्णय को उचित माना तो यह उच्च न्यायालय की अवमानना होगी और इसके गम्भीर परिणाम होंगे।

अत अन्तरग सभा के अधिकाश पदाधिकारी एव सदस्यों का आग्रह है कि 14 जुलाई को उदयपुर में आहूत अनौपचारिक बैठक में कोई काम चलाऊ कमेटी बनाने का निर्णय नही लें क्योंकि काम चलाऊ कमेटी बनाने का विधान में कोई प्रावधान नही है और न ही अनौपचारिक बैठक में इस प्रकार के निर्णय लिये जा सकते हैं। सभा के विधान के अनुसार जब तक चुनाव नही होते तब तक पुरानी अन्तरग सभा ही काम करती रहेगी। आप तत्काल अन्तरग सभा की बैठक आमंत्रित करने के लिए सभा के मत्री को निर्देश दे ताकि अन्तरग सभा आर्य प्रतिनिधि सभा के लिए भावी कार्यक्रम तय कर सके।

श्री सत्यव्रत जी को एव हमें सभा के पदों की कोई लालसा नही है। अन्तरग सभा यदि चाहे तो हम हमेशा के लिए सभा से अलग होने के लिए तैयार हैं ताकि हम अपनी शक्ति और समय रचनात्मक कार्यों में लगा सकें।

हमारा तो एकमात्र लक्ष्य है कि आर्य समाजों में विवाद समाप्त हो और सब मिलजुल कर आर्य समाज का प्रचार–प्रसार करें। आपको एक वर्ष के लिए प्रधान बनाया गया था और अब आप मुकदमेबाजी के जरिये अनेक वर्षों के लिए इस पद पर बने रहना चाहते हैं। आपने स्वय अपने पत्र में लिखा है कि आप अस्वस्थ रहते हैं और जयपुर आने में भी असमर्थ हैं। अत यह समाज के हित में होगा कि आप तत्काल त्याग पत्र दें दें और अन्तरग सभा को आपके स्थान पर दूसरा प्रधान चुनने दें। आपके त्याग पत्र देने से आर्य प्रतिनिधि सभा की समस्त समस्याओं का समाधान हो जायेगा।

इण्डोनेशिया में आयोजित विश्व धर्म एवं शान्ति सम्मेलन में स्वामी अग्निवेश का आह्वान

विश्व शान्ति के लिए वेदों की ओर लौटो

इण्डोनेशिया की सास्कृतिक राजधानी जोगजकार्ता में आयोजित

बाये से स्वामी अग्निवेश श्रीमती दीपाली मनोट श्रीमती प्रभात शोभा पडित और फादर पैन्टों

'एशियन कान्फ्रेंस ऑन रिलीजन एण्ड पीस' के कीनोट स्पीकर (प्रमुख वक्ता) के रूप में स्वामी अग्निवेश ने आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द की क्रातिकारी भूमिका और उनके 'वेदों की ओर लौटने' के आह्वान का प्रतिपादन किया।

24 जून से 28 जून 2002 तक चले इस महासम्मेलन का उद्घाटन इण्डोनेशिया की राष्ट्रपति महामहिम मेघवती सुकर्णपुत्री ने 24 जून प्रात सत्र मे किया। उद्घाटन के बाद पूरे सम्मेलन के प्रमुख वक्ता के रूप में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यवाहक प्रधान स्वामी अग्निवेश ने अपना विचारोत्तेजक प्रवचन दिया। लगभग 40 मिनट के अपने धाराप्रवाह अग्रेजी मे दिये वक्तव्य की महासम्मेलन में उपस्थित लगभग सभी 300 धर्माचार्यों ने सराहना की और व्यक्तिगत रूप से मिलकर अपनी बधाई दी।

भारत से भाग लेने वाले अन्य धर्माचार्यों में सार्वदेशिक सभा के उप प्रधान प्रो शेरसिह जी की पत्नी एव स्व स्वामी समर्पणानन्द जी की पुत्री श्रीमती प्रभात शोभा पण्डित भी प्रमुख अधिकारियों में थी। सम्मेलन के अंतिम सत्र में जब अगले 5 वर्षों के लिए नये पदाधिकारियों का चुनाव हुआ तो श्रीमती पडित ए सी आर पी की 5 अध्यक्षों में से एक अध्यक्ष(एकमात्र महिला अध्यक्ष) निर्वाचित हुई। आर्य समाज और भारत के लिए यह विशेष गौरव की बात है।

इण्डोनेशिया में आयोजित इस विश्व धर्म एव शान्ति सम्मेलन में स्वामी अग्निवेश ने कहा कि आज से एक शताब्दी पूर्व स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मत–मतान्तरो के विरोध में आध्यात्मिक सुधार आदोलन का प्रवर्तन किया। महर्षि दयानन्द ने सिह गर्जना करते हुए विश्व को बताया कि किस प्रकार घृणित और जन्मगत ब्राह्मणवाद ने वेदों के सार्वदेशिक सनातन एव शाश्वत दृष्टिकोण को धूलि धूसरित कर दिया और विश्व शाति के लिए वेदो की ओर लौट आने का निमत्रण दिया।

महर्षि दयानन्द ने आख मूद कर किसी मत सम्प्रदाय या विचार को मानने का एव विवेकरहित होकर भेडचाल चलने का विरोध किया। समस्त मत और सम्प्रदाय अपने अनुयायियो से यह कहते हैं कि आप अपनी आखे बद करके हमारे पीछे चलो परन्तु महर्षि दयानन्द ने कहा कि पहले अपनी आखे खोलो और 'श्रवणचतुष्टय' अर्थात श्रवण मनन और निदिध्यासन तथा साक्षात्कार के माध्यम से धर्म का मार्ग अपनाओ। धर्म के चयन के लिए बुद्धि का दखल जरूरी है। बिना बुद्धि के मनुष्य पशुवत है। जितने भी मत और सम्प्रदाय है उन्होंने अपने अनुयायियो को बुद्धिहीन बनाया। बिना सोचे विचारे किसी भी मत का अनुकरण करना केवल पशुता ही है।

महर्षि दयानन्द ने किसी भी विषय पर प्रश्न चिन्ह लगाने, बहस–मुबाहसा शास्त्रार्थ करने और यहा तक कि असहमति व्यक्त करने की भी छूट दी। महर्षि दयानन्द ने समस्त मत–मतान्तरों की कटु आलोचना करते हुए धज्जियाँ उडाई और यहा तक कि जिस मत और ब्राह्मण कुल में उनका जन्म हुआ था उसकी भी उन्होंने सबसे अधिक आलोचना की। उनका यह स्पष्ट मत था कि धर्म का लक्ष्य व्यक्ति को कल्याण का पथिक बनाना है न की पतन की ओर धकेलना है।

विश्व में भद्र और श्रेष्ठ पुरुषों और स्त्रियो में भाई बहन का सम्बन्ध स्थापित करना या 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श को स्थापित करना उनका उद्देश्य था। उन्होंने अमानवीय जातिवाद एव मूर्तिपूजा की विवेकहीन प्रथा को उखाड फेंकने मे कोई कसर नही छोडी। उन्होने विवेक को आध्यात्मिकता का मूलाधार माना और बडी बात यह है कि उन्होंने आत्मालोचन के आध्यात्मिक महत्व पर बल दिया।

धर्म के क्षेत्र में महर्षि दयानन्द ने जो पथ प्रशस्त किया उससे भारतवर्ष एव अन्य देशा के धर्मों के बीच सद्भाव या सामनस्य स्थापित हो सकता था परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नही हुआ। इसके विपरीत अत्यन्त शक्तिशाली ब्राह्मणवादी वर्ग ने जाति सम्प्रदाय शोषण एव अस्पृश्यता आदि बुराईयों की जड़ों को और गहरा किया। यही कारण है कि भारत वर्ष मे विघटन और सामाजिक अन्याय निरन्तर बढता ही गया।

विश्व के समस्त धर्मों के बीच सामनस्य एव सद्भाव उत्पन्न करने के पाच साधन स्वामी अग्निवेश ने बताए– 1 प्रत्येक राष्ट्र मे स्थापित विभाजक एव प्रतिस्पर्द्धात्मक धार्मिकता के स्थान पर वैश्विक आध्यात्मिकता के दृष्टिकोण को विकसित करना। 2 बिना किसी लाग–लपेट के दृढ शब्दो मे भौतिकवाद और युद्धोन्माद को जन्म देने वाले सैन्यवाद की जडों को खोखला करना। 3 विघटन उत्पन्न करने वाली और द्वेष घृणा प्रतिशोध के लिए प्रेरित करने वाली विचारधाराओं को निष्प्राण करना और जनता को आस्तिक या नास्तिक धार्मिक या अधार्मिक भेदों में बाटने वाली विचारधाराओ को निरुत्साहित करना। जनता के प्रशिक्षण के लिए बहुत बडे पैमाने पर प्रचार तत्र की स्थापना करना। इसके लिए मीडिया को चुनौती दी जानी चाहिए और इस दिशा मे रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिए मीडिया पर दबाव डालना चाहिए। धार्मिक नेताओं की दशा और दिशा बदलने की योजना बनाई जानी चाहिए और धर्म के ठेकेदारों और भगवानों की जो बाढ़ आई हुई है उसका प्रतिरोध करना। 5 विश्व कुटुम्ब के दृष्टिकोण को विकसित करते हुए सर्वव्यापी परमेश्वर केन्द्रित दृष्टिकोण को विस्तृत करना जो मत–मतान्तरों की सकीर्ण सीमाओं से ऊपर हो।

सामनस्य का अर्थ यह है कि वह सत्य प्रेम करूणा और न्याय की कसौटी पर खरा उतरे। इस तथ्य से इन्कार नही किया जा सकता कि समाज को वैमनस्य के विपरीत सामनस्य की ओर उन्मुख करने के लिए अन्य महाद्वीपों की अपेक्षा एशिया महाद्वीप अधिक अनुकूल है। इस प्रक्रिया की कुजी जैसा कि मैं पहले स्पष्ट कर चुका हू आत्मालोचन की आध्यात्मिकता में निहित है। जब तक व्यक्ति धार्मिक समुदाय और सामाजिक वर्ग की यह मान्यता रहेगी कि उनका मत या पैगम्बर या अवतार अन्तिम सत्य है और निर्दोष है तब तक विश्व मे घृणा द्वेष वैमनस्य मार–काट लडाई–झगडे खून–खराबा जारी रहेगा। केवल वही लोग जो आध्यात्मिक दृष्टि से उन्मुक्त हैं और उदात्त भावनाओं से प्रेरित हैं वही सहृदयता सामनस्यता एव अविद्वेष के सदेश वाहक हो सकते हैं। सामनस्य का लक्ष्य मुक्ति या स्वतत्रता है। वैमनस्य के अनुयायी विघटन और घृणा के कैदी हैं।

सामनस्य वह प्राकृतिक पुष्प है जो आध्यात्मिक एव मानवीय जीवन पद्धति के वृक्ष पर पुष्पित होता है। यह कोई कृत्रिम पुष्प नहीं हो सकता जिसे विस्तृत जीवन पद्धति की धरा से दूर एकान्त में लगाया जाए।

प्रसिद्ध गांधीवादी श्री वासुदेवन के साथ स्वामी अग्निवेश

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग दें

1 देश–विदेश की आर्य समाजो में घटित घटनाओं से आर्य जगत को अधुनातन जानकारी देना।

2 आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।

3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोडना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओ पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।

4 आर्य समाज द्वारा धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र मे किये जा रहे कार्यों की जानकारी देना।

5 समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओं का आर्य जगत को परिचय देना।

6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एव युवको का सगठन खडा करना।

7 आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाओ के माध्यम से देश मे सशक्त छात्र शक्ति खडी करना

8 विश्व के आर्य परिवारो का सगठन बनाना।

9 देश के 100 विद्वानो की परिषद बनाना।

10 विश्व की समस्त भाषाओ मे वेद सन्देश प्रकाशित कर वैदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।

11 विश्वशाति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरूद्ध मुहिम छेडना तथा देश में राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्रान्ति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीर्वाद दे कि परमपिता परमेश्वर हमें इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामर्थ्य दे।

तन मन धन से सहयोग दे पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने का कष्ट करें।

[illegible] सामवेदी, सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक [illegible]–13, जवाहर नगर, [illegible] जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन [illegible] e-mail [illegible]
आर्य समाज, [illegible] के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी, सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज, राजापार्क जयपुर–4
राजस्थान

डाक टिकट

70 श्री जगदीश वेदालकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार उत्तराचल यू पी

वेद प्रचार, आर्य समाज, विश्व शान्ति, राष्ट्रोत्थान, मानवता एवं सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र

।।ओ३म्।।
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य नीति

वर्ष 2 अंक 37 21 जुलाई 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पंजियन संख्या RJ-2637/2001 वार्षिक मूल्य 75रुपये

जम्मू में हिन्दूओं का संहार

क्रन्दन का आकाश, पिशाचों का अट्टहास, सिसकियों के शोक गीत

जम्मू में मुस्लिम पिशाचो द्वारा बडे बूढों जवानों स्त्रियों व बच्चों का कत्लेआम जारी है। इन मुस्लिम पिशाचों का दृढ विश्वास है कि इन काफिरों की बेरहमी से हत्या करने पर उनका खुदा बहुत खुश होगा और उन्हें जन्नत मिलेगी। दुनिया में धर्म और दीन के नाम पर जो खून खराबा हो रहा है उसका मूल कारण यही है कि कुछ मतावलम्बी अपने पैगम्बर को खुदा का देवदूत मानते हैं और उस तथाकथित देवदूत के कथन को ईश्वर का सदेश मानते हैं। वास्तविकता यह है कि शैतान देवदूत का लबादा ओढकर दुनिया को धर्म का सदेश देता है।

15 जून को उधमपुर जिले के बदर गॉव में सात आतंकवादियों ने एक घर में घुसकर अधाधुंध गोलिया चलाई और एक हिन्दू परिवार के पाच सदस्यों की हत्या कर दी तथा चार अन्य को घायल कर दिया। इसी दिन इन्हीं पिशाचो ने तीन तीर्थ यात्रियों की हत्या कर दी। तीर्थ यात्री तीर्थ स्थल शारदा माता के दर्शन कर लौट रहे थे। इस वारदात के बाद आतकवादी पास कुतवाड़ा गाव मे घुसे। ग्राम रक्षा समिति के सदस्यो ने उन्हें ललकारा परन्तु पिशाचो ने उनकी भी हत्या कर दी।

इस हत्याकाण्ड को अभी एक मास भी नही था कि खूनी भेडियो ने जम्मू शहर की एक झुग्गी बस्ती कासिमनगर में 12 जुलाई की शाम को 24 मजदूरों की हत्या कर दी और 31 जने घायल हो गए। मरने वालों में 12 महिलाए 11 पुरुष और 3 वर्ष का एक बच्चा भी शामिल है। मरने वाले सभी हिन्दू थे।

मृतकों के परिवारों ने आडवाणी की खबर ली

शैतानियत के घृणित दरिंदों ने उप प्रधानमंत्री को 24 श्रमिकों की लाशो का शानदार तोफा दिया और उनकी वही घिसीपिटी बासी प्रतिक्रिया– यह हत्याकाण्ड आतकवाद का सबसे नगा रूप है और भारत इस हमले का मुह तोड जवाब देगा। जब आडवाणी कासिमनगर झुग्गी बस्ती में गए तो झुग्गी बस्ती वालो ने शोर मचाया– बाहर आओं आडवाणी फारूख का साथ छोड दो 'फारूख को भी बाहर लाओं। कुछ लोग यह भी कह रहे थे कि इन सबके लिए फारूख जिम्मेदार है।

लश्कर जिम्मेदार

जम्मू–कश्मीर पुलिस ने जम्मू नरसहार के लिए आतकी सगठन लश्कर–ए–तोएबा को जिम्मेदार ठहराया है। पुलिस प्रमुख एके सूरी ने कहा कि हमारे पास इस बात की पुख्ता सूचना थी कि लश्कर जम्मू में हमले की साजिश कर रहा है। उन्होंने कहा हमलावर अभी जम्मू के आस पास ही हो सकते हैं।

पाक दोषी : सिन्हा

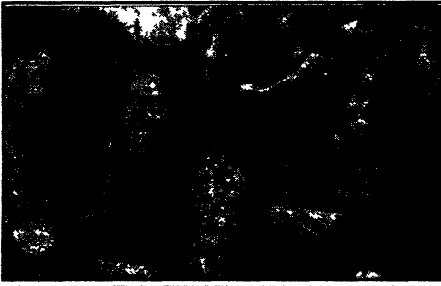
विदेशमंत्री यशवंत सिन्हा ने जम्मू नरसहार के लिए पाकिस्तान को जिम्मेदार ठहराते हुए कहा कि यह नरसहार विधानसभा चुनावों में गड़बड़ी पैदा करने के लिए किया गया। एक निजी टीवी को दिए साक्षात्कार में उन्होंने कहा कि इस काण्ड को अजाम देने वाले अपराधियों को पाक से समर्थन मिलता है।

जब भी आतकवादी कुत्ते जम्मू–कश्मीर मे नरसहार करते हैं तब आडवाणी जी भी घोषणा करते है कि मुँह तोड़ जवाब देंगे तो देते क्यों नही मुँह तोड जवाब? ये आतकवादी पागल कुत्ते जम्मू की सीमाओ तक घुसाने की हिम्मत कैसे करते हैं? हमारा खुफियातत्र इतना निकम्मा क्यो है?

हमे मनु महाराज के इस सदेश को ह्रदयगम करना चाहिये– 'जिस राजा और उसके राजपुरुषो के देखते हुए चीखती पुकारती प्रजा को दस्युलोग पकड़कर ले जाते हैं उसे मरा हुआ समझो जीवित नही।

काश्मीर को तीन भागों में बांट दो

29 जून को कुरूक्षेत्र में राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के अखिल भारतीय कार्यकारी मच की बैठक हुई जिसका उद्घाटन सघ के प्रमुख के सी सुदर्शन ने किया। इसमे देश भर के 250 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस बैठक मे जम्मू और काश्मीर को तीन भागो मे बाटने का एक प्रस्ताव पारित किया गया। जम्मू और काश्मीर को अलग–अलग राज्य तथा लद्दाख को केन्द्र शासित क्षेत्र बनाने की बात कही गई जो एक तीन सदस्यीय समिति की रिपोर्ट पर आधारित थी। इस समिति के अध्यक्ष थे–पजाब एव हरियाणा के पूर्व मुख्य न्यायाधीश जितेन्द्र वीर गुप्ता एव अन्य दो सदस्य थे–बजरग लाल गुप्ता आर बाल आप्टे। इस समिति की रिपोर्ट के अनुसार जम्मू काश्मीर की सरकार पर काश्मीर घाटी वालों का कब्जा है जो हिन्दू बहुल जम्मू और बौद्ध बहुल लद्दाख से भेदभाव करती है आर सौतेला व्यवहार करती है। यदि जम्मू और लद्दाख काश्मीर से अलग कर दिया जाता है तो मुस्लिम बहुल सरकार हिन्दुओ और बौद्धों पर अत्याचार नही कर सकेगी। समिति का कहना है कि भाषा और संस्कृति की दृष्टि से भी जम्मू, लद्दाख आर काश्मीर घाटी में कोई समानता नही है। काश्मीर में कश्मीरी बोली है जबकि जम्मू में डोगरी बोली है लद्दाख की अलग भाषा लद्दाखी है। धार्मिक मतभेद भी है। काश्मीर में मुसलमानो का बहुमत है और जम्मू में हिन्दुओं और लद्दाख में बौद्धों आर मुसलमानों की मिश्रित आबादी है। सघ के प्रस्ताव में कहा गया है कि काश्मीर के हिन्दुओं को जेहादी तत्वों द्वारा अपने घरो से भगाया जा रहा है और उनके काश्मीर घाटी में जहा वे हजारों वर्षों से रह रहे हैं सुरक्षित ढग से पुनर्वास की जरूरत है। काश्मीर के हिन्दुओं के खिलाफ जातीय उन्मूलन का जघन्य अभियान चलाया गया।


कासिम नगर (जम्मू) नरसहार में मारे गए लोगों के बिलखते परिजन

संघ कश्मीर पुनर्गठन के लिए जनजागरण करेगा

राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ जम्मू–काश्मीर के पुनर्गठन की माग को लेकर जनजागरण अभियान चलाएगा।

सघ के अखिल भारतीय सह सम्पर्क प्रमुख इन्द्रेशकुमार ने बताया कि जिस तरह कुछ दशक पूर्व पजाब के पुनर्गठन से हरियाणा एव हिमाचल बने उसी तरह से जम्मू–कश्मीर का पुनर्गठन कर जम्मू को राज्य एव लद्दाख को केन्द्र शासित प्रदेश बनाने की माग की जा रही है। लद्दाख क्षेत्र में लगभग 33 प्रतिशत और जम्मू क्षेत्र में 35 प्रतिशत मुस्लिम होंगे। विकास के मामले में इन क्षेत्रों के साथ भेदभाव किया जा रहा है। इसी कारण लद्दाखी और जम्मू के लोग लम्बे समय से अलग राज्य की माग करते रहे हैं।

सघ का आरोप है कि जम्मू एव लद्दाख में जनसख्या सतुलन को बदलने का षड्यत्र भी चल रहा है। इसी नीति के तहत राज्य में पुनर्वास विधेयक लागू करने का प्रयास चल रहा है। यह कानून लागू होने पर वर्ष 1947 से 1954 तक पाकिस्तान चले गए या उनकी अगली पीढी के लोग वापिस आकर जम्मू–कश्मीर में बस सकेंगे। दोहरी नागरिकता के प्रावधान को भी जनसख्या सतुलन बिगाडने के लिए काम में लिया जा रहा है। हजारों लोगो को नोटिस भेजकर यह प्रमाणित करने के लिए कहा गया है कि वे राज्य के नागरिक हैं। इस गम्भीर परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए सघ ने यह प्रस्ताव पारित किया है। उनका कहना था कि पुनर्गठन से कश्मीर घाटी भारत से अलग नहीं होने वाली। काश्मीर घाटी में पाक प्रेरित आतककारियों द्वारा कत्लेआम के बावजूद वहा अच्छी तादाद में राष्ट्रभक्त मुसलमान है।

सदन में आडवाणी का बयान

परन्तु सघ परिवार के छद्म नेता श्री आडवाणी ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा कि धार्मिक आधार पर किसी प्रदेश को बाटने का सवाल ही नही उठता। आडवाणी ने सदन में कहा कि यदि पाकिस्तान आतकवाद पर लगाम कसने में नाकामयाब रहता है तो अमेरिका को उसे आतकवादी देश घोषित कर देना चाहिए। बहस के दौरान कांग्रेस समेत सभी विपक्षी दलों ने आरोप लगाया कि सरकार के पास आतकवादियों से निपटने की न तो कोई नीति है और न ही इच्छा शक्ति। केवल पाकिस्तान को जिम्मेदार ठहराने से पार नही चलेगा।

काश्मीर और आर्य समाज

काश्मीर का भारत में विलय आर्य समाजी नेता जस्टिस मेहर चन्द महाजन के कारण हुआ। महान देश भक्त श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने काश्मीर रक्षा का अभियान आर्य समाज के चरण रज अपने सिर पर डालकर प्रारम्भ किया था और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए काश्मीर रक्षा के लिये आर्य समाज को आह्वान किया था परन्तु आज आर्य समाज की कोई भूमिका नही है। वह मृत्यु की गोद मे बैठा हुआ सजल नयनो से देश के विनाश के चित्र को देख रहा है।

श्री सत्यव्रत सामवेदी की चुनावी विवादो को तिलांजलि देने की घोषणा

आर्य समाज को केवल रचनात्मक कार्यों के लिए संघर्ष का आह्वान

विवाद समाप्त करने के लिए आर्य एकता मच की स्थापना

जयपुर 20 जुलाई। आर्य जगत के विद्वान प्रखर वक्ता श्री सत्यव्रत सामवेदी ने आर्य समाज के निष्ठावान कार्यकर्ताओ को आह्वान किया है कि अब वे अपना समय और धन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाओ और प्रान्तीय सभाओ के विवादो में बर्बाद न करें। सामवेदी जी ने कहा कि इन विवादो मे उलझकर मैंने एव मेरे जैसे अनेक कार्यकर्ताओ ने अपनी जवानी बर्बाद की है। हमे अनेक आर्य सन्तो और महात्माओ ने समझाया था कि आप लोग मूर्खो के स्वर्ग मे रह रहे हैं। सभाओं के ये विवाद कभी भी समाप्त नही हो सकते क्योकि इनसे तथाकथित नेताओं के निहित स्वार्थ जुडे हुए है। जब अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द और आर्य मुसाफिर प लेखराम एव प गुरूदत्त जैसे उद्‌भट विद्वान एव तपस्वी नेता भी विवाद समाप्त करने में असमर्थ रहे तो आप लोग किस आधार पर उसी काटो भरी राह पर चलने का साहस कर रहे हैं।

विकल्प क्या है? लोकशक्ति

सामवेदी जी ने समर्पित कार्यकर्ताओ से आग्रह किया है कि अब हम अपने गौरवमय अतीत पर भाषण देना बन्द करे और सगठन को सशक्त बनाने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम की योजना तैयार करें। आर्य समाज का उत्थान न तो लेख लिखने से होगा और न कविताए लिखने से। कर्महीन ज्ञान का कोई महत्व नही है।

सामवेदी जी की दृष्टि में सगठन को मजबूत बनाने के लिए हमें निम्न लिखित कार्यक्रमो को अम्ली–जामा पहनाना चाहिए–

विश्व स्तर पर आर्य विद्वानों की परिषद्

प्रत्येक धर्म में विद्वानो की प्रतिष्ठा है। केवल आर्य समाज ही ऐसा धार्मिक सगठन है जहा चुनावी राजनीति के जरिये ही कोई आर्य समाज का नेता बन सकता है। आर्य समाज के चुनावो मे भी वे ही खामिया है जो राजनीतिक दलों मे है। राजनीतिक दलो की भाति आर्य समाज का भी अपराधीकरण हो चुका है। राजनीति का अपराधीकारण रोकने के लिए चुनाव आयोग ने सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर कुछ निर्देश जारी किए परन्तु समस्त राजनीतिक दलों ने उसका प्रतिरोध किया। इसी प्रकार आर्य जगत मे शुद्धिकरण के लिए हम कितने ही अच्छे सुझाव क्यो न दे परन्तु उसे वर्तमान नेतृत्व मानने वाला नही है। आर्य समाज के चुनावो में भी अब जातिबल पूजीबल भुजबल आदि घटक काम करने लगे है। जिसकी लाठी उसकी भैस की कहावत चरितार्थ हो रही है। जिन लोगों को ईश्वरोपासना के मत्र तक नही आते वे आर्य समाज के महान नेता बने हुए है और वेदो के विद्वान तथा अनेक तपस्वी नेता ऐसे धूर्तों का जयनाद कर रहे हैं और बहुत तन्मयता से उनके अनर्गल प्रलाप सुनते हैं।

सामवेदी जी का विचार है कि अब आर्य समाज का नेतृत्व विद्वानों को अपने हाथों मे लेना चाहिए। इसके लिए सार्वदेशिक सभाओ प्रतिनिधि सभाओं की कोई आवश्यकता नही है। पौराणिकों मे शकराचार्य का महत्व है। जैनियों में त्यागी तपस्वी विद्वान ही उनका गुरू हो सकता है। अरबपति–खरबपति जैनी हाथ जोड़कर इन तपस्वियों के पीछे भागते दिखाई देते है। इसी प्रकार ईसाइयों मे अभी तक पोप और पादरी का महत्व है। केवल आर्य समाज ही ऐसा धार्मिक सगठन है जहा पर वेद ज्ञान से अनभिज्ञ कोट पेंट और टाई पहने हुए मामूली सा आदमी भी इसका सर्वोच्च नेता बन जाता है।

अत आर्य समाज को नेतृत्व प्रदान करने के लिए स्वामी दीक्षानन्द स्वामी सुमेधानन्द (चम्बा) स्वामी धर्मानन्द स्वामी आत्मबोध (आर्यभिक्षुजी) स्वामी अग्निवेश स्वामी इन्द्रवेश प्रो शेरसिह स्वामी सत्यपति स्वामी धर्मबन्धु, श्री उमाकात उपाध्याय जैसे यदि 50–100 विद्वान सगठित होकर कार्य करने का मन बना लें तो आर्य समाज 24 घटे में उठ सकता है। न जाने ये विद्वान लोग सगठित होने के लिए तैयार क्यों नही होते हैं और अपनी आँखों के सामने आर्य समाज की विनाश लीला क्यों देख रहे हैं?

इन विद्वानो और सन्यासियो को सारे भारत वर्ष का भ्रमण करना चाहिये। निष्ठावान कार्यकर्ताओ से मिलकर आर्य समाज के उत्थान के लिए भावी योजना बनानी चाहिए। सन्यासी होकर किसी स्थान विशेष से चिपके रहने का क्या औचित्य है? सन्यासी को तो निरन्तर भ्रमण करते रहना चाहिये। इन समस्त तपस्वी सन्यासियों में अब केवल अधिक से अधिक 5–10 वर्ष तक कार्य करने की क्षमता है। यदि इन सन्यासियों ने इस अल्पकाल का सदुपयोग नही किया तो फिर सर्वनाश ही सर्वनाश है।

प्रत्येक प्रान्त में 1000 निष्ठवान कार्यकर्ताओं का सगठन

सामवेदी जी ने घोषणा की है कि आर्य समाज के पुनर्जागरण का अभियान हमें राजस्थान से करना चाहिये। इसके लिये हमें सक्रिय आर्य समाजों के प्रधानों और मन्त्रियों को भी बुलाना चाहिए। राजस्थान में लगभग 130 आर्य समाजें सक्रिय हैं। इस प्रकार 250 या 260 प्रतिनिधि 1000 निष्ठावान कार्यकर्ताओ का सगठन खडा कर सकते हैं और आर्य समाज के प्रचार के लिय सुदृढ आर्थिक आधार तैयार कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक प्रान्त में 1000 नवयुवको का और 1000 महिलाओं का सगठन खडा करने का प्रयास करना चाहिए।

एक लाख आर्य परिवारों का संगठन

सामवेदी जी की मान्यता है कि धार्मिक दृष्टि से आर्य समाज पूर्णत विघटित हो गया है। 80 प्रतिशत आर्य समाजी आर्य समाज में नही आते। वे सामाजिक दृष्टि से तो जुड़ना चाहते हैं परन्तु धार्मिक दृष्टि से सगठित होने मे उनकी कोई रूचि नही है। एक शहर में 50–100 आर्य परिवार भी एक दूसरे का नाम तक नही जानते। जो समाज में सुख दु ख मे एकत्रित होना नही जानता वह कभी जिदा नही रह सकता।

आदमी उसी समाज के साथ रहता है जो उसके सुख दुःख में काम आए। किसी आर्य जन के दु ख के अवसर पर आप उसके घर जाए तो आपको कितने आर्य मिलेंगे। उस समय उस व्यक्ति के समाज के लोग ही उसके दु ख में भागीदार बनने आते हैं। वहा पौराणिक होंगे मुसलमान होंगे ईसाई होंगे परन्तु आर्य समाजी नहीं होंगे। हम वसुधैव कुटुम्बकम् की बात करते है परन्तु हम आर्य समाजी परिवारों को भी अपना परिवार का अग बनाने का प्रयास भी न्ही करते।

सामवेदी जी प्रतिदिन अब आर्य परिवारों में जाते है। उनके साथ बैठते है परिवार के समस्त सदस्यों से परिचय करते है। एक रजिस्टर साथ ले जाते है उसमें परिवार के समस्त सदस्यो के नाम योग्यता एव पते लिखते हैं। उनके पुत्र और पुत्रिया यदि जयपुर से बाहर या विदेशो मे हैं तो उनके भी पते लिखते है ताकि वे पर्व और त्यौहारो पर उन्हे शुभकामना सदेश भेजकर उन्हें आर्य समाज से जोडने का प्रयास किया जा सके। उनकी मान्यता है कि एक लाख परिवारों का सगठन बनने पर गुण कर्म स्वभाव से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने मे भी काफी सुविधा हो जायेगी। सामवेदी जी का कहना है कि प्रत्येक शहर में आर्य समाजी परिवारों की निदेशिका या डायरेक्टरी होनी चाहिए और सुख दु ख में उन सबको आमत्रित करना चाहिए।

सामवेदी जी की योजना है कि आर्य परिवार सघ के लिए सारे देश का भ्रमण करके 100 निष्ठावान कार्यकर्ताओं को तैयार करना चाहिए जो 1000–1000 आर्य परिवारो की सूची तैयार करे। प्रारम्भ मे निम्नलिखित 5 कार्यकर्ताओ ने 1000–1000 आर्य परिवारों की सूची बनाने का सकल्प लिया है–

1 श्री सत्यव्रत सामवेदी जयपुर 2 श्री जगदीश आर्य अलवर 3 श्री रामसिह आर्य जोधपुर
4 श्री मदनमोहन आर्य भरतपुर सवाई माधोपुर 5 श्री विटठल राव आर्य आन्ध्र प्रदेश

शेष 95 व्यक्तियों की घोषणा कार्यकर्ताओं से सम्पर्क करने के बाद की जाएगी। यदि देश के प्रसिद्ध सन्यासी और विद्वान इस कार्य में सहयोग दे तो यह कार्य असम्भव नहीं है। अब यह तो भविष्य ही बतायेगा कि इस कार्य में कितने आर्य जन सहयोग देते हैं।

सामवेदी जी का कहना है कि यदि एक लाख आर्य परिवारों का सगठन बन जाता है तो आर्य समाज के किसी भी योजना के लिए धन की कमी नही रहेगी और बिना धन के कोई काम हो नही सकता। यदि 1–1 परिवार प्रतिवर्ष 100 रु या धर्म या देश के लिए प्रतिदिन 0 30 पैसे भी देता है तो वर्ष मे एक करोड रुपया एकत्रित होता है। जिस सगठन में एक आवाज पर एक करोड रुपया एकत्र करने की क्षमता हो उसको करोड़ो रुपयो का सहयोग देने वाले लोग और भी मिल जाते हैं।

सामवेदी जी की इस योजना को सुन्कर कुछ लोग हसते हैं कुछ लोग मुस्कराते हैं कुछ लोग बगले झाकते हैं। उनकी पीठ पीछे कुछ उन्हें हवाई किले बनाने वाला भी कहते हैं कुछ उन्हे मूर्ख तक कहने का भी दु साहस तक करते हैं परन्तु सामवेदी जी इन विशेषणों की कोई भी चिन्ता नही करते। उनका कहना है कि ऐसे मूर्खो ने ही दुनिया मे हमेशा क्रान्ति की है। काश! आर्य समाज को ऐसे सैंकडो हजारों मूर्ख मिल जाए ताकि दयानन्द और वेदो के सपनों का विश्व बनाया जा सके।

प्रस्तुतकर्ता सुनील भादू,
पुस्तकालयाध्यक्ष
आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान एव
उप प्रधान आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर।

उत्कल आर्यप्रतिनिधि सभा

गुरूकुल आश्रम आमसेना,

कलियार रोड नवापारा उडीसा–1

उत्कल प्रान्तीय वनवासी आर्य महासम्मेलन सोल्लास सम्पन्न

उडीसा के काश्मीर कहे जाने वाले परन्तु गौ हत्या के लिये बदनाम ईसाइयों के षड़यन्त्र से आक्रान्त कोरापुट जिले में आदिम गुरूकुल कुन्दुली बाजार के विशाल मैदान मे 25 26,27 मई को 108 वनवासी युवतियों की कलशयात्रा के साथ पूज्य स्वामी इन्द्रवेश जी पूर्व सासद के करकमलो से ओ३म ध्वज उत्तोलन पूर्वक वनवासी आर्य महासम्मेलन एव महायज्ञ पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। महायज्ञ के मुख्य यजमान स्थानीय विधायक श्रीयुत जयराम पागी बने। कार्यक्रम प्रारम्भ होते ही यज्ञ एव समारोह में भाग लेने वालों की भीड़ उमड पडी। सायकाल तक लगभग 10 हजार वनवासी जनता सम्मेलन में भाग लेने के लिये पहुच गयी थी यद्यपि विशाल उपस्थिति को देखते हुए पहले ही पाच यज्ञकुण्ड बनाये गये थे परन्तु श्रद्धालु लोगों का यज्ञ मे भाग लेने का उत्साह अपूर्व था। जिन्हें अशिक्षित कहा जाता है उनमें अधिक श्रद्धा सात्विकता के इस उत्साह और श्रद्धा को देखकर आश्चर्य में पड गए। तीनों दिन इसी प्रकार जनता की उपस्थिति बढ़ती गयी परन्तु कहीं कोई अव्यवस्था नही हुई। 26 को मध्यान्होत्तर गुरूकुल आश्रम आमसेना और आदिम गुरूकुल आश्रम कुन्दुली के ब्रह्मचारियों के व्यायाम प्रदर्शन देखने हेतु सारा मैदान भर गया था। महोत्सव का उद्‌घाटन उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी व्रतानन्द जी ने किया। श्री स्वामी इन्द्रवेश जी उड़ीसा के प्रसिद्ध विद्वान ई प्रियव्रत दास उत्तर प्रदेश से पधारे प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री सहदेव बेधड़क एव उड़ीसा के श्री वैरागीचरण साहू की भजन पार्टियो ने तो अपने कार्यक्रमों से जनता को मोहित कर लिया। यज्ञ का सचालन श्री प विशिकेसन जी शास्त्री ने अत्यन्त कुशलता से किया। शास्त्री जी श्री विश्वबन्धु एव गुरूकुल के स्नातक आचार्य आनन्दकुमार जी बीच–बीच में वेदोपदेश द्वारा लोगों को मन्त्रमुग्ध करते रहें।

इस समारोह की सफलता में विधायक श्री जयराम पांगी के प्रशंसनीय सहयोग के साथ श्री सुरेश साहू, श्री निरजन पात्र आचार्य कुजदेव जी, श्री पीताम्बर जी आचार्य विनय कुमार जी श्री रोहित आर्य श्री करूणाकर आर्य श्री कैलाश स्वाई श्री प्रहलाद प्रसाद आर्य आदि का महत्वपूर्ण सहयोग रहा। इसी प्रकार यह सम्मेलन आशा से अधिक अपूर्व रूप से सफल रहा। जिसका स्थानीय जनता पर व्यापक प्रभाव पडा। हजारो लोगों ने यज्ञोपवीत ग्रहणकर मद्य-मांस आदि छोड़ने की प्रतिज्ञा ली।

यहा पुनर्मिलन का भी विशाल कार्यक्रम होना था परन्तु कलेक्टर के ईसाई और एस पी के मुसलमान होने से उन्होंने दुराग्रह करके प्रतिबन्ध लगा दिया अत इस क्षेत्र में अशांति न फैले यही सोचकर आयोजको को कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा।

ब्र.सुदर्शनदेवार्य उपमन्त्री
उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा

श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टकारा की गतिविधियाँ

1. ट्रस्ट द्वारा नि:शुल्क उपदेशकविद्यालय चलाया जा रहा है जिसमें लगभग 100 ब्रह्मचारी शिक्षरत हैं।
2. टकारा ट्रस्ट द्वारा स्वामी जी के जीवन पर आधारित एक चित्रशाला, गौ–सवर्धन केन्द्र सार्वजनिक पुस्तकालय अतिथिगृह निशुल्क औषधालय सचालित किया जा रहा है।
3. वह गृह जहा स्वामी जी का जन्म हुआ था ट्रस्ट ने अपने अधिकार में ले लिया है इस स्थान पर सत्सग हॉल वैदिक सहित्य विक्रय केन्द्र आडियो–विजुअल ऑडीओरिम के निर्माण की योजना है। इसको विश्वदर्शनीय बनाने के लिये लाखो रुपये दान स्वरूप आवश्यकता है।
4. प्रतिवर्ष ऋषि मेला/ऋषि बोधोत्सव के आयोजन पर हजारो ऋषि भक्त टकारा पधारते हैं। सभी के आवास और भोजन की पूरी व्यवस्था टकारा द्वारा निशुल्क की जाती है।
5. ट्रस्ट परिसर में नये निर्माण का कार्य प्रतिवर्ष किया जा रहा है जिसमें पिछले दो वर्षों में लगभग 40–45 लाख का व्यय हुआ। नवनिर्मित भवन पूर्ण सुविधाओ से युक्त है जिनसे पधारने वाले ऋषि भक्त अपने प्रवास के दौरान सुविधा प्राप्त कर सके।
6. टकारा में जो इतना कार्य हो पा रहा है वह केवल आपके सहयोग एव दान राशि से ही सम्भव हो पा रहा है। प्रत्येक ऋषि भक्त का कर्त्तव्य है कि ट्रस्ट द्वारा किये जा रहे कार्यों के लिय हर वर्ष अधिक से अधिक राशि भेजकर ऋषि ऋण से उऋण होकर पुण्य के भागी बनें। आप अपना दान नई दिल्ली टकारा अथवा मुम्बई के पतों पर भेजकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।
7. टकारा ट्रस्ट को दान दी जाने वाली राशि आयकर से मुक्त है।



श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टकारा

ऋषि जन्म भूमि टकारा ग्राम पर

महर्षि दयानन्द द्वार

निर्माण हेतु अपील

ऋषि ग्राम टकारा जो कि राजकोट –मोरबी राजमार्ग पर स्थित है पर कोई ऐसा चिन्ह अकित नहीं है जो जन साधारण को ऋषि जन्म भूमि की ओर आकर्षित करें।

इसी सदर्भ में इस वर्ष ट्रस्ट ने ऐसा निश्चय किया है कि टकारा गाँव के प्रवेश स्थल पर ही एक विराट 'महर्षि दयानन्द द्वार' का निर्माण किया जाये। 60 फुट लम्बे और 20 फुट ऊँचे इस द्वार में तीन द्वार होंगे जिसमें मध्य मे 40 फुट चौड़ा और इसके दाए बाए 10–10 फुट के दो छोटे–छोटे द्वार पैदल आने जाने वाले व्यक्तियों के लिये होंगे और बीच का द्वार वाहन इत्यादि के लिए होगा। इस द्वार हेतु स्थानीय पचायत ने ग्राम की सीमा पर जमीन ट्रस्ट हेतु आवटित कर दी है और द्वार निर्माण हेतु स्वीकृति भी लिखित रूप मे दे दी है। इस विराट 'महर्षि दयानन्द द्वार' हेतु सुप्रसिद्ध आर्य समाज के कार्यकर्ता श्री लेखराम कटारिया (साकेत,दिल्ली) के सुपुत्र अचल कटारिया जो कि विश्वविख्यात आर्किटेक्ट है जिन्होंने जन्म भूमि स्थित यज्ञशाला का रेखाचित्र तैयार किया था वह इस कार्य हेतु भी अपनी नि शुल्क सेवाए अर्पित कर रहे हैं और रेखाचित्र तैयार करवा रहे हैं।

समस्त आर्य जनता एव ऋषि भक्तो से अपील है कि ट्रस्ट का जो सकल्प है ऋषि जन्म भूमि को विश्वदर्शनीय बनायेगे में अपना योगदान देते हुए इस 'महर्षि दयानन्द द्वार' हेतु अधिक से अधिक धनराशि 'महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट' के नाम केवल खाते मे चैक/मनीआर्डर/नकद/बैंक ड्राफ्ट द्वारा आर्य समाज, अनारकली मन्दिर मार्ग नई दिल्ली–110001 अथवा टकारा जिला राजकोट गुजरात–363650 के पते पर भिजवाने की कृपा करे। इसके लिये हम आपके अत्यन्त आभारी रहेगे।

आपकी जानकारी के लिये टकारा ट्रस्ट को दी जाने वाली राशि आयकर से मुक्त है।

– निवेदक –

ओंकार नाथ	आचार्य विद्यादेव	रामनाथ सहगल
मैनेजिग ट्रस्टी	प्राचार्य	ट्रस्ट मत्री

वाणी सफलता की कुंजी

ईश्वर ने मनुष्य को कई महत्वपूर्ण विशेषताए प्रदान की है। उनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रभावशाली माध्यम है मनुष्य की वाणी। यदि हमारी बोलने की तथा अपने विचार व्यक्त करने की क्षमता के बारे में गम्भीरता से विचार करेंगे तो हम जान जायेंगे कि परमात्मा ने हमें यह कितनी दिव्य उपलब्धि प्रदान की है। किन्तु हम इस अमूल्य योग्यता के बारे में उदासीन रहते हैं। इस पूरे ससार में ईश्वर ने अनेक प्राणी पशु, पक्षी आदि को उत्पन्न किया है। किन्तु अपने विचार तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति की योग्यता सिर्फ मनुष्य को वाणी द्वारा प्रदान की गयी है। सृष्टी का कोई भी प्राणी अपनी भावना वाणी द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। कितनी विवशता है कि वह अपना सुख दुख नहीं प्रकट कर सकता। वाणी की महत्ता हमको इन पशु–पक्षियों को देखकर हो सकती है।

हमें बोलना आता है इतना ही पर्याप्त नहीं है। हमें वाणी की शक्ति तथा महत्ता को भलीभाँति पहचानना होगा। हमें अपनी वाणी को परिमार्जित करना होगा। जैसे एक कलाकार अपनी कलाकृति को सवारता है उसी प्रकार हमें अपनी वाणी को भी सवारना होगा। एक सोची समझी नपीतुली और सुसस्कृत वाणी द्वारा आप अनेक समस्याओं को हल कर सकते हैं। इस गुण द्वारा आपका व्यक्तित्व चमकेगा। आपका यश ससार में चहू ओर फैलेगा। आप सबके सम्मान के पात्र बनेंगे। आप चाहें किसी भी क्षेत्र में काम करते हो। सतुलित विनम्र और सुससकृत वाणी द्वारा आप उस क्षेत्र मे उन्नति के शिखरपर विराजमान हो सकते हैं। इस योग्यता की हर क्षेत्र में नितान्त आवश्यकता है। आप इसकी उपयोगिता से इन्कार नहीं कर सकते। उदाहरण के रूप म आप एक व्यापारी का विचार कीजिये। यदि व्यापारी अपने ग्राहकों से नम्रतापूर्वक स्नेह और मधुरता से बोलता हो तो ग्राहक बार–बार आना चाहेगा। इस तरह उसके ग्राहकों के साथ सम्बन्ध दृढ हो जायेंगे। उसका ग्राहक परिवार हमेशा बढता चला जायेगा। कुछ समय मे वह अपने व्यापार को सफलता के शिखर पर ले जा सकता है। जबकि एक असभ्य कठोर वचन बोलने वाले व्यापारी के पास कोई नही जाना पसद करेगा। उसका व्यापार तुरन्त ठप्प हो जायेगा। इसलिए यह जरूरी बनता है कि हम अपनी वाणी को प्रयत्नपूर्वक मधुर बनाए।

बुद्धिमान लोग आपके बात करने के ढग से ही आपकी शिक्षा सस्कृति तथा वातावरण को पहचान लेते हैं। सफल बनने के लिए जिन जरूरी गुणो की आवश्यकता होती है उनमे वाणी बहुत महत्व रखती है।

अपनी वाणी मधुर रसपूर्ण तथा नम्र बनाने के लिए हमें कुछ गुणों को धारण करने की आवश्यकता होती है। हमारे बोलने मे हमेशा सकारात्मक दृष्टीकोण होना चाहिए। हमें हमेशा आशा यश और विजय की बातें करनी चाहिए। नकारात्मक बातचीत से आप लोगों को निरूत्साहित करते हैं। हमे लोगों के अच्छे कामों की सराहना करनी चाहिए और उनको उत्साह और प्रेरणा देनी चाहिए। कुछ लोगों को अपना दुखड़ा गाने की आदत होती है।

अगर आप उनसे हालचाल के बारे में पूछेंगे तो वे अपना दुखडा गायेंगे। हमें यह समझलेना चाहिए कि दुखी व्यक्ति के पास कोई आना नही चाहेगा। सब सुख के भागीदार बनना चाहते हैं। इसलिए हमें केवल प्रसन्नता सुख और आशावादी बाते करनी चाहिए। इस प्रकार के बर्ताव से लोग आपकी तरफ आकर्षित होंगे। वो आपको पसद करेंगे तथा आपका सग चाहेंगे। ऐसा क्यों होता है किसी समारोह या किसी सार्वजनिक उत्सव में किसी व्यक्ति के साथ अधिक लोग बात करना चाहते हैं। इसका कारण कि उसका व्यवहार, वाणी और आचरण मधुर होता है। वह अपनी बातों से किसी का दिल आहत नहीं करता। वह सबको आनंदित करता है। सबको खुश रखने की कला से ही आप आगे बढ सकते हैं। सबको खुश करने का मेरा मतलब असत्य और झूठ बाते बोलना नहीं किन्तु यथार्थ व सत्य बोलने से है। कुछ लोगों को लगता है कि सत्य कटु होता है और किसी का सुधार करना हो तो हमें सच बोलना ही होगा। उनको लगता है कि अगर आपको सत्य बोलना हो तो आपको कटुता का आधार लेना ही होगा। परन्तु यह तर्क बिल्कुल तथ्यहीन है। हमें सत्य बोलते समय या किसी सुधारात्मक सुझाव देते समय माधुर्य का सहारा लेना होगा।

अगर हम सत्य को मधुरता के साथ प्रकट करेंगे तो जो हम कहना चाहते हैं वह भी कहेंगे और साथ ही में किसी का मन भी आहत नहीं होगा। अक्सर यह होता है कि हमारे कठोर और कटुवचन से लोग हमसे दूर हो जाते हैं। जिन सम्बन्धों को हमने वर्षो से स्थापित किया था वो सम्बन्ध एक कटुवचन से बिगड जाते हैं। कटुवचन आपका बडा अहित करता है। यह आपकी सफलता का मार्ग अवरूद्ध करते हैं।

इसी कारण वाणी को शस्त्र कहा गया है। जिस तरह धनुष्य से निकला तीर वापस नहीं आ सकता उसी तरह वाणी से निकला शब्द भी वापस नहीं आता। वह तो अपना प्रभाव करके ही रहेगा। शस्त्र से लगा घाव भर जायेगा किन्तु वाणी से लगा घाव नहीं भरता। इसलिए बोलते समय पूरा विचार करके बोलना चाहिए। बोलकर पछताने की बजाय हमे सोचकर बोलना चाहिए। अक्सर हम क्रोध में अपना सन्तुलन खो देते हैं और ऐसा कुछ बोल देते हैं जिसका पछतावा हमें बाद मे होता है। एक पल का क्रोध भी आप ा बहुत नुकसान करता है। हमे अपने आप पर नियन्त्रण करना सीखना होगा।

वाणी की मधुरता–

मधुरता वाणी अतिशय महत्वपूर्ण गुण माना गया है। वेदों में हमेशा मधुरवाणी की बात आती है–

मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसदृशः।।

अर्थात– मेरा जाना मधुर्ययुक्त हो। मेरा लौटकर आना भी मधुयुक्त हो। मैं वाणी से मीठा बोलू। मैं मधु के सामन हो जाऊँ।

मधुरता के बिना हमारा बोलना निरस होता है। बिना मधुरता के साथ बोली गयी वाणी से लोग ऊब जाते हैं। वह आपसे पीछा छुड़वाना चाहेंगे। इसलिए जिसे अपने आप को अच्छा बनना हो उसे मधुरता पर ध्यान देना होगा। आपके व्यवहार और आचरण से मधुरता टपकनी चाहिए। वेद तो कहते हैं कि आप मधु समान बन जावो। हमें केवल वाणी से मधुर नहीं होना है किन्तु हमारा अतःकरण भी माधुर्य से भरा हो। अगर वाणी मीठी और अतःकरण में कटुता है तो ऐसे नाटकीय व्यवहार को लोग जल्दी ही पहचान लेते हैं। हमको अन्दर बाहर से पवित्र, प्रेममय बनना है।

जीवन में मधुरता का इतना महत्व है जितना कि किसी सब्जी में नमक का या मिठाई में चीनी का। बिना चीनी के बनायी गयी मिठाई खायी नहीं जा सकती। उसी प्रकार सब्जी कितनी भी महगी क्यों न हो यदि उसमें नमक नहीं होगा तो वह बेकार होगी। इसी प्रकार जीवन मधुरता के बिना रसहीन है। यदि आपकी बोली में मधुरता नहीं है तो आपकी अच्छी बात भी दुसरों को अच्छी नहीं लगेगी। अत मधुरता जीवन में अपना विशेष महत्व रखती है। आपका मधुर व्यवहार आपकी बहुत सी कमियों को ढक कर आपको आगे बढाने में सहायक सिद्ध होगा।

वाणी ऐसी बोलिये मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे आप ही शीतल होय।।

लेखक–सुमत चद्रशेखर लोखडे
सीताराम नगर
लातूर महाराष्ट्र

समस्त वेद प्रेमियों को खुश खबर

समस्त वेद प्रेमी जनता को सूचित करते हुए हर्ष होता हो रहा है कि आर्य समाज जामनगर द्वारा एक वेबसाईट तैयार की जा रही है जिसके द्वारा चार वेद सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वेदाग तथा आर्ष उपनिषदो की सम्पूर्ण विश्व मे प्रचार करने की योजना है। इस महान कार्य के लिए आर्य समाज जामनगर सभी धर्म प्रेमि सज्जनों से तन मन–धन से सहयोग की आशा करना है। क्योकि इस कार्य हेतु पयाप्त धन की आवश्यकता होगी।

वेबसाईट– www aryasamajjamnagar org
ई–मेल– info@aryasamajjamnagar org

श्री दुलाल चन्द्र विद्यावाचस्पति पीएच.डी. की उपाधि से सम्मानित

सुधी आर्य जनों को यह जानकर खुशी होगी कि केन्द्रीय सरकार से मान्यता प्राप्त महात्मा गाँधी जी द्वारा सस्थापित 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास' विश्वविद्यालय विभाग ने 66वें दीक्षान्त समारोह में भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री रगनाथ मिश्र तथा श्री डॉ हरिगौतम (अध्यक्ष राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान सस्थान) के अध्यक्ष तथा मुख्य आतिथ्य में 'राष्ट्र को महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रदेयता' विषय पर प्रो डॉ निर्मला एस.मोर्य के

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास का 66वाँ दीक्षान्त समारोह में श्री दुलाल चन्द्र विद्यावाचस्पति को पीएच.डी की उपाधि लेते हुए

निर्देशन में विश्वविद्यालय विभाग की ओर से 26.06.2002 को श्री दुलाल चन्द्रविद्यावाचस्पति को पीएच.डी की उपाधि से सम्मानित किया गया। कर्नाटक विश्वविद्यालय के प्रो डॉ टी आर भट्ट के अनुसार महर्षि दयानन्द सरस्वती विषय पर दक्षिण भारत में विस्तृत रूप से यह पहला शोध प्रबन्ध है जिसमें महर्षि दयानन्द विषय पर विस्तृत जानकारी दी गई है।

उन्होंने वायवा के तुरन्त बाद ही विश्वविद्यालय विभाग के कुल सचिव श्री सेतुमाधव राव जी को इस शोध प्रबन्ध को प्रकाशित करने की अनुमति दे दी। ध्यान रहे इससे पहले एम फिल में दुलाल चन्द्र जी को तमिलनाडू में प्रथम आने के कारण तथा आंध्र, कर्नाटक केरल और तमिलनाडू में प्रथम आने के कारण दो स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया।

दीक्षान्त समारोह भवन खचाखच भरा हुआ था। सयोग से अजमेर से पधारे परोपकारी सभा के मत्री डॉ धर्मवीर आर्य तथा ओमप्रकाश जी सभागार में उपस्थित थे जिन्होंने दुलाल चन्द्र जी के शोध कार्य को देखकर बडी प्रसन्नता व्यक्त की और उन्हें आशीर्वाद दिया।

इन पक्तियों के लेखक तथा आर्य समाज ईसगाव के प्रसिद्ध भजनोपदेशक प ओमप्रकाश जी आर्य दुलाल चन्द्र जी की धर्मपत्नी सीमा तथा पुत्री सुदक्षा भी उपस्थित थे। यह समाचार तमिलनाडू के प्रसिद्ध समाचार पत्रिका 'दिन मलर' ने दुलाल चन्द्र जी के फोटो सहित छपा तथा दूरदर्शन चेन्नई से भी समाचार मे दिखाया गया है। इन कार्य के पीछे गुरू जनो मित्रगणों पूज्या माता जी का स्व पिता जी का भाईयों का तथा विशेष रूप से स्व आचार्य शम्भू प्रकाश वर्मा का आर्य समाज ईसगाव तथा आर्य समाज सेन्ट्रल के एव पजाब एसोशिएशन के सभी महानुभावों का एव इन पक्तियों के लेखक का सदा आशीर्वाद बना रहा।

परमात्मा से यही प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर दुलाल चन्द्र जी को और भी अधिक तरक्की दे तथा वे दयानन्द के कार्य को आगे बढाने में समर्थ हो।

'इत्योम्'

प निर्मलचन्द्र शास्त्री
वेद प्रचारक बगलौर कर्नाटक
ARYA SAMAJ (Central) CHENNAI
183, Avvai Shanmugam Salai,
Chennai-600 086, Phone 8113267

एक चिड़िया की सुनो कहानी, कहती हूँ मैं अपनी जुबानी।
एक डाल पर उसका बसेरा, था एक सपने ने उसे घेरा॥
दूर देश की सैर को जाऊ, नील गगन को छूकर आऊ।
देखू दुनियाँ को जी भर के, कर लू पूरे अपने सपने॥
पर मन में वो डर जाती, अपने से ही वो घबराती।
सोचे गर मैं उड़कर जाऊ, कभी देख उन्हें मैं खाऊ॥
हो शिकारी का वहाँ फेरा, बिछा रखा हो जाल घनेरा।
जाल में उसके मैं फंस जाऊ, फिर बाहर मैं कैसे आऊ॥
मिले कोई जो ये बतलाये, जाल से बचने की राह सिखाए।
कभी देख न मन ललचाये, अपनी मंजिल खुद वो पाए॥
पूरा हो चिड़िया का सपना, फिर लगे सारा जग अपना।
दुनियाँ से प चान हो जाये, मन में वो फूली न समाये॥
बस चिड़िया की यही कहानी, कह दी पूजा ने अपनी जुबानी॥

श्रीमती कृष्णा प्रजापति 'पूजा'
313 दीपक आटा चक्की के सामने
गाधीग्राम कॉलोनी नागदा ज

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार का भूमि विक्रय प्रकरण

गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के पूर्व कुलपति, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के पूर्व प्रधान, आर्य समाज के वरिष्ठ नेता डॉ धर्मपाल के सम्बन्ध में कुछ समय से समाचार पत्रों के माध्यम से यह कुप्रचार किया जा रहा है कि उन्होंने गुरुकु कागड़ी की भूमि भूमाफिया को बेच दी।

डॉ धर्मपाल का कहना है कि यह आरोप सरासर गलत, भ्रामक, निराधार और उनकी प्रतिष्ठा को हान पहुचाने वाला है। गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय की कोई भी भूमि उनके कार्यकाल में नही बेची गयी और न ही कुलपति को भूमि बेचने का अधिकार है। यह विवाद दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य प्रतिनिधि सभा, हरियाणा और आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के बीच में है।

आर्य विद्या सभा के प्रधान, आर्य समाज के सुप्रसिद्ध नेता और पूर्व ससद सदस्य स्वामी इन्द्रवेश इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब ने 1980-90 के बीच गुरुकुल कागड़ी की भूमि बेची है और इसके माध्यम से लगभग डेढ करोड़ रुपया लिया है, जो अब लगभग सात करोड़ रुपया हो चुका है। यह सारा धन आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब, जालधर के पास है। विवादित भूमि का विक्रय इकरारनामा भी आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब ने 1991 में पैंतीस लाख रुपये में तीन लाख पचास हजार रुपये चैक और बैंक ड्राफ्ट से लेकर कर दिया था। आर्य विद्या सभा ने पजाब सभा के द्वारा जमीन बेचने में की जा रही मनमानी पर अकुश लगाया है और इसी जमीन का सत्तर लाख रुपया लेकर सावधि खाते में हरिद्वार में आर्य विद्या सभा के नाम जमा कर दिया ताकि यह रुपया गुरुकुल के काम आवे और पजाब सभा वालों की भाँति इस रुपये को दूसरी सभायें न ले जा सकें। आर्य विद्या सभा के नाम भूमि हो, इसके लिये तीनों सभाओं की सहमति थी। रजिस्ट्री के समय यह भूमि आर्य विद्या सभा के नाम थी। 1975 में आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब का त्रिशासन हुआ था। तभी से गुरुकुल कागड़ी और सम्बद्ध सस्थाओं का सचालन तीनों सभाए कर रही है। यह स्पष्ट है कि गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय और इसके कुलपति ने कोई भूमि नही बेची।

डॉ धर्मपाल
पूर्व कुलपति, गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

नाराज न हो आत्म निरीक्षण करो

आर्य समाज में निरन्तर बढ़ती जा रही पण्डागिरी

आर्य परिवार सस्था कोटा के आह्वान पर आर्य लेखक परिषद् दिल्ली के तत्वावधान में कोटा में 22 से 24 दिसम्बर 2000 को षष्ठ राष्ट्रीय आर्य लेखक सम्मेलन सम्पन्न हुआ। जिसमे देश के कोने से लगभग 35 लेखक और विद्वान सम्मिलित हुए थे। तीन दिन चले इस सम्मेलन की विभिन्न गोष्ठियों और सस्कार विधि पर समग्र दृष्टि से विचार गोष्ठी में निम्न प्रकार प्रस्ताव पारित कर उपस्थित सभी लेखक/विद्वानों ने वैदिक सिद्धान्तो और यज्ञादि विकृतियों की ओर निरन्तर बढ़ते जा रहे आर्य समाज पर अत्याधिक चिन्ता प्रकट की थी।

पारित प्रस्ताव– आर्य लेखक परिषद यह अनुभव करती है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों पचमहायज्ञों सोलह सस्कारों से युक्त यज्ञों का ही विधान किया है। सन्ध्या और यज्ञ पर कुछ वाद–विवाद चला आ रहा था। उन पर सार्वदेशिक सभा की धर्मार्य सभा ने आचार्य विश्वश्रवा जी व्यास और आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री के काल में विचार विमर्श कर जो दयानन्द प्रणीत सन्ध्या और यज्ञ पद्धति निर्धारित की है उसी के अनुसार सन्ध्यादि पचमहायज्ञ और विशेष (वृहद् और वेदपारायण आदि) यज्ञ करें। यदि इसमे किसी को कुछ असगति लगती हो तो वह धर्मार्य सभा में विचारार्थ रखें। स्वय मन मान कर्मकाण्ड और यज्ञ पद्धति मे सशोधन और मिलावट प्रचलित न करें। सशोधन और परिवर्धन धर्मार्य सभा का ही मान्य हो तभी सार्वदेशिक स्तर पर आर्य समाज मे एक रूपता रह सकती है।

आचार्य श्रीराम शर्मा लिखित 'षोडष सस्कार पद्धति' प इन्द्रदेव पीलीभीत लिखित सस्कार पद्धति और प मदन मोहन विद्यासागर लिखित सस्कार समुच्चय तथा इसी प्रकार की या इसी के समकक्ष लोकाचार या अन्य यज्ञपद्धतियों और तथाकथित बहुकुण्डीय, सत्यार्थभृत राष्ट्रभृत गायत्री महायज्ञ इत्यादि यज्ञों के प्रचलन से महर्षि दयानन्द द्वारा अनुमोदित आर्ष प्रणाली के यज्ञों और कर्मकाण्डों की अवहेलना और उपेक्षा हो रही है। अत आर्य लेखक परिषद् आर्य विद्वानों, परोपकारिणी सभा सार्वदेशिक सभा प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं, पुरोहितों और आर्य समाजों तथा आर्य समाज के सभासदों से अनुरोध करती है कि सभी स्थानों में महर्षि दयानन्द की आर्ष प्रणाली के अनुसार ही पंचमहायज्ञों और वृहद्यज्ञों (वेद पारायण यज्ञ सहित) का आयोजन किया और कराया जाए तथा दयानन्द प्रतिपादित यज्ञ परम्परा से अन्य किसी प्रकार की छेड़छाड़ न की जाए।

इस प्रस्ताव को विस्तृत करने या इसकी व्याख्या करने और लेख, पम्पलेट आदि के माध्यम से जन–जन में इसका प्रचार करने के लिए श्री वेदप्रिय शास्त्री और डॉ रामकृष्ण आर्य कोटा को अधिकृत किया जाता है। यह प्रस्ताव लगभग 35 आर्य लेखको विद्वानों और आर्य समाजों के लगभग 40 पदाधिकारियों और कार्यकर्ताओ की उपस्थिति में सर्वसम्मति से पारित किया गया। इस प्रस्ताव के अनुरूप हम इस पर्चे में उन वैदिक सिद्धान्तो और यज्ञो में जानबूझ कर पैदा की जा रही या देखा देखी पैदा हो रही या बढती जा रही प्रमुख विकृतियो की गिनती कर आर्य विद्वानो आर्य कार्यकर्ताओ, आर्य लेखकों आर्य नेताओ तथा सामान्य आर्य बन्धुओं से आग्रह करते हैं कि वे इन पर विचार कर आत्म निरीक्षण करे कि इन विकृतियो का समूल नाश कर वैदिक सिद्धान्त और यज्ञ पद्धति की रक्षा वर्तमान परिस्थितियों में कैसे की जाए जबकि आर्य समाज के अधिकतर पुरोहित विद्वान यज्ञाचार्य और साधु–सन्यासी तथाकथित पण्डे पुजारी बन इन विकृतियों से अपनी रोटी–रोजी और नाम कमाकर आर्य समाज मे पण्डागिरी बढा रहे हैं।

इन पक्तियो के लेखक द्वारा नवम्बर 1984 से जुलाई 1985 तक दयानन्द सन्देश दिल्ली में 'अवैदिक यज्ञ पद्धति समीक्षा' शीर्षक से एक लेखमाला लिखी गयी थी। जिसमें कई यज्ञ विकृतियाँ गिनायी गयी थीं यथा–गायत्री महायज्ञ शतधारा और सहस्रधारा महायज्ञ लक्ष्मी या श्रीमहायज्ञ महामृत्युजय महायज्ञ सत्यार्थभृत महायज्ञ तथा बहुकुण्डीय महायज्ञ इत्यादि। इनमे से शतधारा और सहस्रधारा महायज्ञीय आदि विकृतियाँ इसलिए बद हो गयीं कि इनको कराने वाले यज्ञाचार्यगण इन यज्ञों के यजमानो की स्वर्ग मे सीट बुक कराते कराते स्वय ही स्वर्ग सिधर गए। शेष सब विकृतियाँ वैसी की वैसी चल रही है अपितु उनमें अत्यधिक वृद्धि भी हो गयी है।

1 मन्त्रान्त मे ओ३म उच्चारण अर्थात 'ओ३म स्वाहा' बोल कर यज्ञाहुति कराना। यो यह बहुत पहले से चली आ रही यज्ञ विकृति है। कमाधिक होती रही है। वर्तमान में फिर विवाद का विषय बनी है। इस पर कलम द्वारा काफी वाद–विवाद हो चुका है। निष्कर्ष यही निकला है कि मन्त्रान्त मे ओ३म स्वाहा बोलकर आहुति देना दिलवाना एक यज्ञ विकृति है। सार्वदेशिक धर्मार्य सभा भी इसे यज्ञ विकृति मानकर इसको अशास्त्रीय घोषित कर चुकी है। (देखें–यज्ञ पद्धति प्रकाश–ब्रह्मपारायण यज्ञ पद्धति–प्राक्कथन पृष्ठ 1 से 3 आचार्य विश्वश्रवा व्यास)

2 बहुकुण्डीय यज्ञ विकृति भी बहुत पहिले से चल रही है। बीच में सार्वदेशिक धर्मार्य सभा ने 21 03 1982 की अपनी विज्ञप्ति मे इसे अवैदिक अशास्त्रीय अवैज्ञानिक और दयानन्दीय यज्ञ पद्धति को बाह्य घोषित कर इसे एक ढोंग और पाखण्ड मान लिया था। परन्तु 7–8 वर्षो से इस विकृति ने पुन तेजी से सिर उठाया है। जिसका खण्डन इन पक्तियों के लेखक ने पुन 29 अप्रेल 01 जुलाई 29 जुलाई 2001 के आर्य जगत दिल्ली के अका मे किया है।

3 सन्यासी पुरोहित/ब्रह्मा बन यज्ञ व अन्य पौरोहित्य कर्म नहीं करा सकता। परन्तु वर्तमान आर्य समाज मे धडल्ले से सन्यासी पुरोहित और ब्रह्मा बन सस्कारों के यज्ञ और अन्य वृहद् यज्ञ सम्पन्न करा रहे हैं जो एक यज्ञ विकृति है।

4 कपूर के स्थान पर रूई की बत्ती आदि बनाकर उसके माध्यम से यज्ञ कुण्ड मे अग्नि प्रवेश कराना भी एक यज्ञ विकृति है।

5 अधिकतर यज्ञो मे यज्ञाचार्य लोग प्राय यजमान और यजमान पत्नी दोनो से यज्ञ कुण्ड मे अग्नि प्रवेश खडे होकर कराते हैं। यज्ञ पद्धति मे ऐसा कोई विधान नही है। हा यज्ञ कुण्ड बडा हो तो खडे होकर अग्निप्रवेश कराने मे सुविधा रहती है। परन्तु वही प्रक्रिया छोटे से कुण्ड मे छोटे से यज्ञ मे अपनाना यज्ञ विकृति है।

6 यज्ञ पद्धति के अनुसार यज्ञ के प्रारम्भ में 8–8 अगुल की तीन समिधाए लेना चाहिए। परन्तु देखा गया है कि कहीं कहीं डेढ–दो फुट तक की आहुत की जाती है। यह एक यज्ञ विकृति है।

7 अयन्त इध्म मत्र से पच घृताहुति देने का विधान है। अनेक यज्ञाचार्य ऐसी आहुतियाँ न देते न दिलाते है और देने दिलाने का विरोध भी करते है। यह एक यज्ञ विकृति है।

8 छोटे–छोटे यज्ञ कुण्डों के यज्ञों में दो–दो व्यक्तियों से घी की आहुति देना दिलवाना एक यज्ञ विकृति है। क्योंकि कुण्ड का आकार और घी सामग्री का अनुपात आहुतियो की सख्या के हिसाब से होगा।

9 स्विष्टकृत आहुति केवल भात या घी की ही देनी चाहिए। पेडा पेठा खीर हलवा बूदी शकरदाना आदि की देना एक यज्ञ विकृति है।

10 वैज्ञानिक और शास्त्रीय दृष्टि से पूर्व और उत्तर दिशा प्रकाश और उत्तरोत्तर उन्नति की दिशा मानी गयी है। इसलिए यज्ञ कुण्ड के चारों ओर यज्ञाहुति के दौरान जो जल छिडका जाता है वह पूर्व में दक्षिण से उत्तर की ओर और पश्चिम में भी दक्षिण से उत्तर की ओर तथा उत्तर में पश्चिम से पूर्व की ओर और चारों ओर प्रदक्षिणा विधि से पूर्व से प्रारम्भ करके छिडका जाता है। यद्यपि सस्कार विधि में जल छिडकने की कोई विधि नही दी है। केवल यज्ञ कुण्ड के आस–पास पूर्व, पश्चिम और उत्तर तथा चारो ओर जल छिडकने का ही निर्देश है। आर्य विद्वानों ने शास्त्रीय दृष्टि से उसकी व्याख्या कर जो विधि तैयार की उचित है। आज इसका क्रम मनमाना हो गया है जो एक यज्ञ विकृति है। इतना ही नही पद्धति में मात्र जल छिडकना लिखा है परन्तु इसका अनुचित आशय लेकर आर्य विद्वानों और आर्य बन्धुओ ने यज्ञ कुण्ड के चारो ओर पक्की नालियाँ ही बना डाली। जिसमे यज्ञ समाप्ति के बाद भी हर समय पानी भरा रहता है कि नालियो में काई ही जमी रहती है।

11 महर्षि ने यज्ञ समाप्ति के प्रसग मे मात्र इतना ही कहा है कि अधिक आहुति देना हो तो विश्वानि देव और तत्सवितु मत्रों से दे लें। अधिक का अर्थ लक्षाहुति गायत्री महायज्ञ कैसे ले लिया गया? शास्त्रो मे अश्वमेध यज्ञ के दौरान सावित्री इष्टि करने की चर्चा तो आयी है परन्तु 'गायत्री महायज्ञ' नाम से किसी यज्ञ का शास्त्रो मे अता पता नही मिलता। यह एक यज्ञ विकृति है।

12 लेखक जब 1968 मे पहली बार कोटा मे आर्य समाज मे प्रवेश हुआ था तब आर्य समाज के साप्ताहिक यज्ञ सहित किसी भी छोटे–बडे यज्ञो मे श्मशान घाट मे अन्त्येष्टि सस्कार यज्ञ मे दी जाने वाली सामूहिक आहुति की तरह सामूहिक आहुति देने की प्रक्रिया नहीं थी। अब यज्ञ छोटा हो या बडा उपस्थित सभी लोग खडे–खडे मुट्ठिया भर–भर कर आहुतिया देते है यहा तक कि सामग्री की आहुति से यज्ञ कुण्ड पूरा भर कर कभी कभी यज्ञाग्नि ही बुझा कर धुंआ ही धुआ कर देते हैं। यह भी एक यज्ञ विकृति है जो गायत्री और अन्यत्र देख देखी मूर्खता से प्रारम्भ हुई है। जिसे आर्य पुरोहितो और यज्ञाचार्यों ने आर्य समाज मदिर के पुजारी या पण्डा बन दान दक्षिणा के लोभ मे अत्यधिक बढाकर यज्ञ को पूरी तरह विकृत करने मे कोई कसर नही छोडी है। कौन सा ऐसा पाखण्ड है जो ये वैदिक कर्मकाण्ड के नाम पर सम्पादित नहीं कराते हैं।

13 देवयज्ञ मे बलिवैश्वदेव यज्ञ की आहुतिया देना एक यज्ञ विकृति है। योगधाम ज्वालापुर के श्री रणजीत मुनि जी ने इस विकृति के साथ–साथ याज्ञिक पाखण्ड तक मान लिया है।

14 यज्ञ मे पूर्णाहुति करने का अधिकार प्रारम्भ से आखिर तक केवल यज्ञ के यजमान और यजमान पत्नी तथा तीनों ओर बैठे यज्ञ कार्यकर्ताओ या यजमान सहायको का ही है। यज्ञ और उत्सव मे सम्मिलित सभी लोगो द्वारा पूर्णाहुति के समय आहुति देना और दिलवाना एक यज्ञ विकृति है।

15 पूर्णाहुति केवल घी से ही करनी चाहिए वह भी मात्र तीन बार पूर्णाहुति मत्र बोलकर उसके साथ मात्र तीन बार आहुति देकर करनी चाहिए। पूर्णाहुति में नारियल गोला आधा काटकर उसमें घी भरकर उससे करना और उपस्थित सभी लोगों से यज्ञ कुण्ड मे नारियल पेडा आदि डालना एक यज्ञ विकृति है।

16 किसी भी यज्ञ का यजमान एक ही होता है। परन्तु आजकल बहुत से यजमान मानकर यज्ञ समाप्ति पर बहुवचन में आर्शीवाद दिया जाता है। यह भी एक यज्ञ विकृति है।

17 विवाह सस्कार मे लाजा होम की प्रथम तीन पदक्षिणाओं मे वधू को वर के आगे रखना विवाह सस्कार की एक विकृति है। समस्त पदक्षिणाओं मे वर आगे ही रहता है।

18 सम्पूर्ण विवाह सस्कार मे वधू को वामाग बैठाने का कोई विधान का सकेत तक नही पाया जाता है। हा हृदय स्पर्श के दौरान महर्षि ने निर्देश दिया है कि वर वधू के दक्षिण स्कन्ध पर से अपना दक्षिण हाथ लेके उससे वधू का हृदय स्पर्श करे उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करे। यह कर्म काण्ड जब वधू करेगी तो उसे वामाग आकर ही करना पडेगा। यह एक विशिष्ट कर्मकाण्ड पूर्ण करने की एक प्रक्रिया मात्र है। परन्तु वामाग बैठाने का स्पष्ट कोई कर्मकाण्ड नहीं है। बिना विधान के बैठाना विवाह सस्कार की एक विकृति है।

19 महर्षि दयानन्द प्रतिपादित वैदिक यज्ञ और कर्मकाण्ड पद्धति मे कही भी लच्छा–कलावा बाध कर या तिलक लगाकर पुरोहित का वरण करना नही लिखा न पुरोहित द्वारा यजमान को कलावा बाध कर या तिलक लगाकर पौरोहित्य कर्म कराना स्वीकार करना लिखा है। फिर भी आर्य समाज में यह पुरोहित वरण का पौराणिक तरीका धडल्ले से चल रहा है जो एक यज्ञ विकृति है।

20 महर्षि ने आर्य समाज को समाज रूप मे ही स्थापित किया था। फिर भी हम आर्यसमाज भवन को मदिर कहकर मदिर का स्वरूप क्यो दे रहे हैं। यद्यपि मदिर शब्द का अर्थ वैदिक अर्थ में होता है। तथापि मदिर शब्द मूर्तिपूजा के प्रसग मे रूढ हा गया इसलिये महर्षि ने आर्य समाज के साथ मदिर शब्द नहीं लगाया तो हम क्यों लगाकर आर्यसमाज को विकृति कर रहे हैं? आर्यसमाज एक समाज है धार्मिक सस्था नही है।

21 उसी प्रकार महर्षि ने सर्वत्र यज्ञशाला को यज्ञशाला या वेदी ही कहा है। किसी एक भी स्थान पर उन्होने यज्ञशाला को यज्ञमदिर नही कहा न ही यज्ञशाला या समाज के भवनो के ऊपर मदिर जैसे गुम्बदे बनाने के लिए कहा है तो हम गुम्बदे बनाकर क्यो आर्यसमाज को मदिर की शक्ल देकर हिन्दू धर्म का एक सम्प्रदाय बना रहे हैं। (देश में लाखो रुपयो की लागत से विशाल यज्ञशालाए बनायी गयी जो विरान ही पडी हुई है। व्यर्थ मे लगी इस लागत से कितना साहित्य प्रचार होता।) महर्षि ने तो इसे आर्यों का समाज ही कहा है(देखे–महर्षि द्वारा 1878 मे मैडम ब्लेवस्टकी को लिखा पत्र)

शेष पृष्ठ 5 पर

चिट्ठी आई है

मान्यवर सामवेदी जी

सादर नमस्ते।

इससे पूर्व कि मैं आप द्वारा इस सप्ताह के प्रकाशित अक की चर्चा करू मैं यह बता देना चाहता हू कि मैं और गुड़गावॉ के अधिकत्तर निष्ठावान एव प्रबुद्ध जन स्वामी अग्निवेश जी पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। स्वामी अग्निवेश हरियाणा की धरती पर सबसे पहले गुडगावॉ में आर्य वीर दल के शिविर मे जब वह प्रो श्याम राव थे पधारे थे। तब मैं आर्य वीरद दल गुडगावॉ का मत्री था तब से लेकर आज तक उन की धार्मिक यात्रा का गुडगावॉ की आर्य समाजें पूरा साथ एव मान देती रही है और आज भी देती हैं।

पिछले दिनों 17 दिसम्बर से 24 दिसम्बर तक एक विशाल उत्सव स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के मुख्य अतिथि एव प्रमुख प्रवक्ता के रूप में आर्य केन्द्रीय सभा गुडगावॉ ने उन्हें अपनी पलकों पर बिठाया था। कुल मिलाकर गुडगावॉ की पूरी जनता आज भी (चाहे कुछ हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा के नेता नहीं चाहते) स्वामी जी को सच्चा एव सही मानती है। आपके दर्शन करने का सौभाग्य गुड़गावॉ की जनता को नहीं हुआ।

हम चाहते हैं कि आप जैसे सदविचार रखने वाले महात्मा के दर्शन किये जायें परन्तु फिर भी हम आप द्वारा प्रकाशित आर्यनीति के माध्यम से पिछले नौ मास से पूर्ण परिचित हैं। यह मैं मानता हू कि सत्य कडवा होता है परन्तु सदैव कडवा होता है ऐसा मैं नही मानता।

मान्यवर सामवेदी जी! इस मई के अक में आपने अपने लेख में आर्य समाज का पतन नामक शीर्षक में आर्य समाज की भूमिका के ऊपर प्रश्न चिन्ह लगाये हैं। गुजरात की साम्प्रदायिकता के लिए आपने आर्य समाज को कटघरे में खडा कर दिया है। क्या मैं यह जानने की धृष्टता कर सकता हू कि गुजरात को आग मे झोंकने का काम आर्य समाज के कार्यकर्ताओं ने किया? ऐसे आक्षेप तो शायद हम पर विरोधी भी न लगा पायेंगे। यदि कोई ऐसी बात जाने या अनजाने में हुई है तो उसे प्रकाशित करके क्या हम आर्य समाज का कितना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भला कर रहे हैं। यह बात विचारणीय है।

आपने लिखा है– 'हमारी भाषा हमारा व्यवहार हमारा दृष्टिकोण हमारा ज्ञान हमारा कर्म वही हो गया जो राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ विश्व हिन्दू परिषद बजरग दल का था। यदि हमें उनके स्वर में ही स्वर मिलाना हो तो फिर आर्य समाज के पृथक अस्तित्व की क्या आवश्यकता है? सम्भला दो आर्य समाज की सम्पत्ति गिरिराज किशोर को डालमिया को सिघल को टॉगिया को या धर्म का व्यापार करने वाले बनियों को' पृष्ठ 2, 8मई।

मैं आपकी इस बात से पूर्ण रूपेण सहमत हू कि जो अन्तर कोयल और कौवे में हैं वही अन्तर आर्य समाज और विश्व हिन्दू परिषद में हैं। एक बात और मैं स्पष्ट कर दू कि मेरा जन्म आर्य वीर दल आर्य समाज की कोख से हुआ है। मैं केवल और केवल दयान्दी हू। बड़े से बड़े राजनैतिक प्रलोभन मुझे सघ और परिषद की ओर ने झुका पायें परन्तु इस प्रकार की आर्य समाज की उपेक्षा एव अपमान सहन न कर सका इसलिए आप जैसे निष्ठावान सरल स्वभाव एव क्रान्तिकारी विद्वान के सम्मुख धृष्टता कर बैठा हूँ परन्तु फिर भी एक छोटा सा कार्यकर्ता होने के नाते अपने स्पष्टीकरण इस प्राकर मागे हैं जैसे एक पुत्र या छोटे भ्राता को अपने अग्रज से पूछने का अधिकार हमें आर्य समाज ने घुट्टी में दिया है। यदि आप बेहतर समझें तो इसका उत्तर अपने अगले अक के माध्यम से प्रकाशित करें ताकि मेरे जैसे अनेक अबोध नवयुवक भ्रमित न हों। पुन धृष्टता के लिए क्षमा चाहता हुए समुचित पत्रोत्तर की आकाक्षा रखता हूँ।

विनीत कन्हैया लाल आर्य
आर्य केन्द्रीय सभा गुड़गावॉ
4/48 शिवाजी नगर गुड़गावॉ–122001

— —

आदरणीय श्रीमान सत्यव्रत सामवेदी जी
सम्पादक आर्यनीति

सादर नमस्ते।

आशा है आप स्वस्थ एव सकुशल होगे। मुझे आप द्वारा प्रेषित आर्यनीति की एक प्रति प्राप्त हुई। मैं इसके लिए आपका तहदिल से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

आर्यनीति को पढते वक्त मुझे स्वामी अग्निवेश जी की पूर्व निकाली जाने पत्रिका क्रान्तिधर्मी की याद आ जाती है। जिस तरह की शैली स्वामी जी की है वैसी ही आपकी होती है।

मुझे आशा है अगर आप रात–दिन इसी प्रकार मेहनत जारी रखेंगे तो प्रदेश मे समाज एव अपना विशेष स्थान जयपुर से बाहर भी बना पाने में सफल होंगे।

मुझे आशा है कि प्रदेश की सभी समाजे आपका भविष्य मे सहयोग करने पर विचार करेंगी। इसी विश्वास मे,

आपका श्रीराम
आर्य समाज उदयपुर

माननीय सम्पादक जी

सादर नमस्ते।

जिसकी जैसी भावना होती है उसे सफलता उसी प्रकार की मिलती है। इसलिए महर्षि दयानन्द महाराज का उपदेश है– जीवन में व्यक्ति ईश्वर भक्त अवश्य बनें।

जो भक्त नही है वही विभक्त है इसलिये विभक्ति से बचने का सही इलाज है व्यक्ति भक्ति करें।

यह जो लोग पदों के लिये लड रहे हैं यश के लिये लर रहे हैं या अन्य कारणों से लड रहे हैं। सच बात यह है कि आज अभी आर्य समाज की दुर्दस्था को ठीक करने के लिए नहीं लर रहे है। यह सब विभक्त लोग है और पहले से ही विभक्त लोग हैं।

भक्त को तो लड़ने की कोई जरूरत ही नही। जिनका भगवान से कोई नाता नही दयानन्द से कोई नाता नही और आर्य समाज से कोई नाता नहीं।

विभक्त वही लोग है जो पद पाने के लिये लडते हैं तो कभी पद बचाने के लिये लडते हैं।

भवदीय
प भूदेव साहित्याचार्य
आर्य समाज आनन्द विहार दिल्ली–92

आदरणीय सत्यव्रत जी

यह लीजिए उड़ीसा गुरुकुल के लिये 100रु की तुच्छ राशि।

आप का गोधरा के बारे में लेख पढ़ा। गोधरा के मुजरिम अधिकारियों को क्या सजा मिली। यह जानने की उत्सुकता हैं। दो हजार गुण्डें इक्ठ्ठा हो कर रेलवे लाईन पर पहुच गए और स्थानीय लाएड आर्डर अधिकारी सोते रहें।

वह फौरन सस्पेंड किए जाने चाहिये थे और उनके विरूद्ध कानूनी कार्यवाही तेज हो यह पहला तकाजा है। आपको जानकारी हो तो सूचित करें।

मोहनपुरा के बारे में क्या किया?

आपने अन्तर्जातीय जोड़ों का सम्मान किया यह अच्छी पहल है। पर यह जोड़े तो अभिजात वर्ग के हैं।

दलित अभिजात जोडों को भी तालाशियें।

–जिन्दाबाद–

29 03 1857 को मगल पाण्डे ने बैरकपुर छावनी में क्रान्ति की आग जलाई थी। आपका लेख आना चाहिए।

जुल्मो सितम की आग ने चेहरा झुलसा दिया।
शीशे में अपना सकल देखा न जा सका।
सारे सुबूत कत्ल के पाये पर मगर
कातिल का चेहरा सामने लाया न जा सका।

कुमार भारती पूर्व कुलपति
गुरूकुल कागड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
ए–15–ए, तिलक नगर, जयपुर–4

ये शरीर तो मिला, सकाम कर्मों के नाश के लिए
इस शरीर से कोई पाप यर करे तो भगवान क्या करे?
ये जीव तो आया कर्म फल भोगने के लिए
जीव सकाम कर्म करे योनियों में भटके तो कोई क्या करें?
ये पानी तो मिला प्यास बुझाने के लिए
इस पानी में कोई डूबकर मरे तो पानी क्या करे?
ये शुद्ध हवा तो चली दीर्घश्वास लेने के लिए
इसे प्रदूषित कर कोई बीमार पड़े तो हवा क्या करें?
ये चादनी तो फैली मन की शीतलता के लिए
इस चादनी मे कोई आग उगले तो चाद क्या करें?
ये माली तो रखा चमन की रक्षा के लिए
रक्षक ही गर भक्षक बन जाए तो चमन क्या करें?
ये ज्ञान का दीया तो जले अन्तर मे रोशनी के लिए
दीपक से अधेरा दूर न करे तो गुरू क्या करे?
ये ज्ञान तो ध्यान करने के लिए
आचरण न करे ज्ञान का भार ढोता फिरे तो अह ही बढे।

सुमन कुमार आर्य
504 चेतन निवास
जवाहर कॉलोनी सरदारनगर
अहमदाबाद–382475

स्वर्णिम रग चतुर्वेदो का
आप्लावित हो धरती तल पर।
इसी रग मे सराबोर हो
अवनी के सारे नारी–नर।।
हवन हवाओ से सुरभित हो
प्रकृति सुन्दरी का प्रति अग।
फैले फिर वेदो का रग।।

बढे परस्पर प्यार सभी मे
द्वेष–बैर हो पूर्ण समाप्त।
समता समरसता सहिष्णुता
जन–जन में हो फिर परिव्याप्त।
निर्देशन हो मनीषियो का
सन्तो का हो फिर सत्सग।
फैले फिर वेदो का रग।।

छोटा बड़ा नही है कोई
हम सब प्रभु की है सन्तान।
जीने का अधिकार सभी को
प्राणि मात्र है एक समान।
गले मिलें हम मित्र भाव स
उठे ह्रदय मे मृदुल तरग।
फैले फिर वेदो का रग।।

ऐक्य भावना हो समाज मे
जुडे हमारे फिर परिवार।
हो समान सकल्प हमारे
करे परस्पर सद्व्यवहार।
पठन तथा पाठन वेदों का
फिर हो उर मे उठे उमग।
फैले फिर वेदो का रग।।

राधेश्याम आर्य एडवोकेट
मुसाफिरखाना–227813 सुलतानपुर, उ प्र

आदरणीय श्री सत्यव्रत सामवेदी जी

सादर नमस्ते। अत्र कुशल तत्रास्तु।

आर्यनीति का 8 जुलाई,2002 का अक प्राप्त हुआ उसमें भारतरत्न डॉ अब्दुल कलाम जो कि निकट भविष्य में भारत के राष्ट्रपति पद को गौरवान्वित करने वाले हैं का भाषण और उत्तराखण्ड की यात्रा का रोमाचक वर्णन विशेष महत्व के और उल्लेखनीय है। एतदर्थ धन्यवाद। आपने म द आर्य गुरूकुल में एक भव्य वेद मंदिर एव वानप्रस्थाश्रम के निर्माण का जो विचार व्यक्त किया है कृपया उसके लिए एक बृहद योजना का प्रारूप आप ही बनायें और एतदर्थ धन सग्रह भी शनै शनै आर्यजनों के विज्ञापन द्वारा दानी महानुभावों से प्राप्त किया जाये। आपने इस हेतु एक ट्रस्ट बनाने का भी सुझाव दिया था। यह अच्छा सुझाव है। वर्तमान उत्तरांचल वेद विद्या सभा अल्मोड़ा को ही एक ट्रस्ट के रूप मे परिवर्तित, विकसित किया जा सकता है। इसके लिए आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश जिसके नाम यह भूमि दान में प्राप्त है के प्रधान प्रो कैलाशनाथ सिंह जी की भी लिखित सहमति आवश्यक है। मैंने इस बीच उन्हें दो पत्र लिख डाले हैं कोई उत्तर नही अभी नही मिला। कृपया आप भी उनसे भावी योजना के लिए एव स्वामी अग्निवेश जी से परामर्श करने का कष्ट करें। जो भी उचित हो उसमें विलम्ब नहीं करना है। देखें इस सत्र में गुरूकुल में नये छात्र कितने आते हैं? पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में।

भवदीय,
जयदत्त उप्रेती
स्वास्त्ययने तल्ला थापलिया अल्मोड़ा–263601
फोन–05962–30693

आर्य वीर दल

लाल सड़क, हाँसी-125033, हरियाणा

हाँसी में आर्य वीर प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न

हाँसी नगर के इतिहास में पहली बार

स्थानीय आर्य वीर ने हरियाणा प्रदेश आर्य वीर दल के तत्वावधान में डी ए वी स्कूल लाल् सडक हासी मे 8 दिवसीय आर्य वीर चरित्र निर्माण प्रशिक्षण शिविर 26 मई से 2 जून 2002 तक वैदिक विद्वान आचार्य रामसुफल शास्त्री लाल सडक हासी के नेतृत्व में लगाया गया।

शिविर का उद्घाटन श्री मामनराम सैनी पूर्व प्रधान नगर परिषद हासी ने किया तथा अध्यक्षता मा भगवानदास प्रधान आर्य वीर दल खाण्डाखेडी ने की जिसके विशिष्ट अतिथि प्रो कवल नैन थे।

शिविर में कुल 52 छात्रों ने भाग लिया। जिनकी भोजन व आवास की व्यवस्था गुरूकुलीय वातावरण मे एक समान की गई। शिविर के दौरान स्वामी कीर्ति देव प भरतलाल शास्त्री प्रिंसिपल भगवान दास कैप्टन चौप्रताप सिह आर्य प ओमकारनाथ शास्त्री भिवानी मा जगदीश सैनी श्री देवराज आर्य रोहतक व श्री सोहनलाल भयाणा उपप्रधान आर्य समाज हासी आदि विद्वानों ने बौद्धिक कक्षाओं द्वारा बच्चो को वैदिक सिद्धान्त की जानकारी दी।

2 जून को शिविर का भव्य समापन समारोह आर्य कन्या विद्यालय हासी में किया गया। जिसमें मुख्य अतिथि चौ हरिसिह सैन पूर्वमंत्री हरियाणा सरकार अध्यक्षता श्री अमीर चन्द मक्कड पूर्व विधायक हासी विशिष्ट अतिथि डॉ रमेश कुमार लीखा उपप्रधान आर्यसमाज हिसार तथा प्रमुख वक्ता श्री वेदप्रकाश आर्य महामत्री आर्य वीर दल हरियाणा व आचार्य विश्वमित्र शास्त्री हिसार थे। बच्चो को शिविर में सिखाये गए करामात का विशाल प्रदर्शन दिखाया जिसे दर्शक टकटकी बाध कर देखते रहें।

शिविर में चौभीमसिह आर्य, श्री राकेश कालड़ा प विजय पाल आर्य प्रभाकर श्री रामफल ड्राइवर अमित वर्मा पकज गोयल अभिषेक वर्मा नरेन्द्र कडेक्टर एव देवेन्द्र वर्मा का प्रशसनीय योगदान रहा। शिविर बहुत ही सफल रहा जो हासी शहर व आस-पास के गावों में सर्वत्र चर्चा का विषय बना हुआ है।

मत्री आर्य वीर दल हासी

आर्य समाज मंदिर,

जनकपुरी, बी ब्लाक

बी-2/आर-3 नई दिल्ली-58

आचार्य हरिप्रसाद जी आर्य का वेदोपदेश

नई दिल्ली 2 जून 2002 आर्य समाज बी-ब्लाक जनकपुरी के साप्ताहिक सत्सग में एक वेद मत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य हरि प्रसाद आर्य ने कहा कि वह ईश्वर वर्चस्वी है वही र्चस्व को देने वाला है।

अत हम उससे वर्चस्विता को प्राप्ति की कामना करते है जिसके पास जो वस्तु होत है उसी से उस वस्तु की याचना की जाती है।

वह ईश्वर सर्वशक्तिमान दयालु, न्यायकारी और सर्वसामर्थ है। वह शरीरो का पालन व रक्षा करने वाला आयु प्रदान करने वाला एव वर्चस्वी बनाने वाला है।

आयुर्वेद मे यह कहा गया है कि और सब चीजों को छोडकर शरीर का अनुपालन करना चाहिए क्योकि उसके अभाव में आर सभी चीजों का अभाव हो जाता है। सुख-दु ख का भोक्ता शरीर नही शरीरी है और शरीरी का अर्थ है जीवात्मा। कर्मफल का भोक्ता वही जीवात्मा है। परमात्मा निर्लिप्त है द्रष्टा है अत वह सुख-दु ख से भी रहित है। वही शरीर आयु और वर्चस्विता का देने वाला है।

आचार्यवर के प्रवचन को सभी श्रोताओ ने मत्रमुग्ध होकर सुना। इन श्रोताओ में आर्य समाज बीब्लाक के प्रधान डॉ सुन्दरलाल कथूरिया मत्री श्री जगदीश चन्द्र गुलाटी डॉ उदयमान बजाज श्रीमती प्रभा आर्या श्री ओइमप्रकाश गुप्ता आदि गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

योगेश्वर चन्दार्य
प्रचारमत्री
आर्य समाज जनकपुरी
बी-ब्लाक नई दिल्ली

देशोद्धारक महर्षि दयानन्द

बागे हिन्द मे लाया मौसम बहार का

गीत

ऋषि ने बिगुल बजाया देश के सुधार का।
दलित दुखियों के उद्धार का वैदिक बिचार का।।
लोप हो रहा था वेदज्ञान का ससार से।
घोटते गला ये सत्य का जो अहकार से।
आया ले सकल्प सत्य के प्रचार का।
सत्य के लिए ही सत्रह बार गरल भी पीया।
जब तलक जीया जगत मे सत्य के लिए जीया।
मरते दम भी दे गया सन्देश प्यार का।
सत्य की तलाश मे बन-बन मे रहा घूमता।
बर्फीली चोटियो पर चढके रहा झूमता।
सामना किया जो सिह की दहाड का।
घोर अपमान राव कर्णसिह ने किया।
हाथ ले तलवार मारने को भी उद्यत हुआ।
दिखलाया पौरुष तभी ब्रह्मचर्य अपार का।
उम्र भर बुराइयो के साथ जो लडता रहा।
पाव न पीछे हटे आगे सदा बढता रहा।
भय नहीं किया कभी सागर पहाड का।
चाहाना कविइन्द्र न थी उसको तख्तो ताज की।
कामना थी दिल मे एक वैदिक समाज की।
बागे हिन्द मे लाया मौसम बहार का।
बिष भी देने वाले को थैली दे जो किया बिदा।
प्राण निछावर किया अपना धर्म पर हो फिदा।
मिलता न कोई सानी ऐसे ऋषि उदार का।

इन्द्रस्वामी इन्द्रकवि
ग्रा पो बिष्णुपुरा कला भाया एकमा
जनपद सारण छपरा बिहार-841208
फोन-09155-94902 (चमरहिया बाजार)

राजस्थान के प्रखर आर्य वक्ता श्री मदनमोहन आर्य की अग्रिम जमानत का प्रार्थना पत्र उच्च न्यायालय में भी नामंजूर

जयपुर 15 जुलाई। राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले में गगापुर सिटी नाम की एक प्रसिद्ध नगरी है। इस क्षेत्र मे मुसलमानो का भी वर्चस्व है। अत हमेशा हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष की आशका बनी रहती है। गगापुर सिटी के पास एक गाव है बड़ी उदई जो देशद्रोही प्रतिबन्धित मुस्लिम सगठन सिमी का केन्द्र है। साम्प्रदायिक मुसलमानों से नगर की रक्षा का दायित्व आर्य समाज सदा से निभाता आ रहा है इसलिए आर्य समाज साम्प्रदायिक मुसलमानों के द्वेष और आक्रोश का शिकार बना हुआ है। साम्प्रदायिक मुसलमानो से हिन्दुओं की आबरू की रक्षा सवाई माधोपुर की जिला सभा के प्रधान एव राजस्थान में आर्य समाज के प्रखर वक्ता एव आर्य समाज के प्रति समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ता श्री मदन मोहन आर्य के नेतृत्व में आर्य समाज के सैकड़ों आर्य वीर करते हैं। श्री मदन मोहन आर्य अब तक 26 हिन्दू युवतियों को गुण्डे मुसलमानों से छुडा चुके हैं। एक युवती तो एक ब्रह्मण भारतीय प्रशासनिक अधिकारी की बहिन थी। उस युवती को मुक्त कराने पर ब्राह्मण परिवार बहुत रुष्ट हुआ। उनका कहना था कि हमारी लडकी भ्रष्ट हो गई है। अब वह हमारे घर नही आ सकती और मदनमोहन आर्य ने इस लड़की को मुसलमानों से छुड़वाकर हमारे लिये मुसीबत खड़ी कर दी है। हम कही भी मुँह दिखाने लायक नही रहे। श्री मदन मोहन आर्य ने एक ब्राह्मण नवयुवक तलाश कर उसके साथ उस युवती का विवाह करा दिया और वे दोनो आनन्द पूर्वक दाम्पत्य जीवन व्यतीत् कर रहे हैं। आज तक भी यह है मानसिकता पौराणिक हिन्दुओं की। गगापुर रेलवे स्टेशन पर [illegible] के [illegible] गायों से भरे हुए थे। इन गायो को काटने के लिये कहीं ले जाया जा रहा था परन्तु मदनमोहन और उनके साथियों ने [illegible] के डब्बों के दरवाजे खोलकर गौओं को मुक्त करा दिया और वे कसाईयों के कब्जों में आने से बच गयी। मदनमोहन जी पर 20 साल तक मुकदमा चलता रहा और वे अकेले इसका मुकाबला करते रहें। उनकी मदद में न तो प्रान्तीय आर्य सभा आई और न ही सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।

मार्च 2002 में कुछ गुण्डे मुसलमानों ने एक पिछडी जाति की 14 वर्षीया बालिका के साथ बलात्कार किया। जब इस बालिका के परिवार वाले पुलिस थाने में रिपोर्ट लिखाने गए तो थानेदार ने रिपोर्ट करने वालो के साथ अभद्र व्यवहार किया और पुलिस थाने से बाहर निकाल दिया। ऐसी स्थिति में उन दलितो का आर्य समाज के अतिरिक्त और कौन सहायक हो सकता था। वह परिवार मदनमोहन जी के पास आया आर अपनी व्यथा सुनाई। गगापुर सिटी के थानेदार का जनता पर आतक छाया हुआ था। वह बहुत बडी-बडी मूछे रखता था। थाने मे जाने से लोगो की रूह कापती थी। लोग उसे लकेश कहते हैं। उस लकेश से लडने के लिये जनता मदनमोहन जी को थाने मे ले गयी। थानेदार ने मदनमोहन जी से भी अभद्र व्यवहार किया और कहा कि अगर तुम में दम है तो मेरी मूँछ उखाड देना जाओ भाग जाओ यहा से। श्री मदनमोहन उस बलात्कार से पीडित दलित एव नाबालिग लडकी को लेकर श्री सत्यव्रत सामवेदी के पास आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर मे आए। सामवेदी जी ने जयपुर के समस्त पत्रकारो को बुलाया और पुलिस तथा असामाजिक तत्वों के अपवित्र गठबन्धन के बारे में विस्तार से बताया। रात को 12 बजे मुख्यमत्री श्री अशोक गहलोत ने सत्यव्रत जी को फोन किया और दूसरे दिन अपनी कोठी पर मिलने के लिए सबको बुलाया। मुख्यमत्री जी ने बलात्कार पीडिता और उसके परिवार के लोगों की व्यथा को सुना। उन्होंने पुलिस के आई जी को बुलाया हुआ था। उन्हे तत्काल जाच के लिये भेजा और उस लकेश को लाइन हाजिर कर दिया गया। मदनमोहन जी ने उसकी मूँछ उखाड कर दिखा दी। (यह दु खद काण्ड आर्य नीति के दिनाक 21 मार्च,2002 के अक में प्रकाशित हो चुका है)

8 जून,2002 को कुछ मुस्लिम गुण्डों ने माथुर परिवार की नाबालिग लडकी का अपहरण कर लिया। जब पुलिस उस लडकी को बरामद नहीं कर पाई तो माथुर परिवार ने श्री मदनमोहन को अपनी व्यथा सुनाई। श्री मदनमोहन के अनुसार वे 26 जून को उपपुलिस अधीक्षक के कार्यालय में धमक गए और धमकी दी कि [illegible] में अपहृत युवती को बरामद नही किया तो आन्दोलन शुरू हो जाएगा और हम आपके कार्यालय के आगे धरना देंगे। पुलिस उपअधीक्षक ने मदनमोहन को पाठ पढाने की सोची और देशद्रोही प्रतिबन्धित मुस्लिम सगठन सिमी के कार्यकर्ताओं को बुलाया और उन्हें श्री मदनमोहन आर्य के खिलाफ एक झूठी रिपोर्ट लिखने के लिए प्रेरित किया। सिमी वालो को और क्या चाहिए था? सिमी के कार्यकर्ता मुस्तफा खाँ ने गगापुर सिटी के थाने मे एक झूठी रिपोर्ट लिखकर दी कि दिनाक 21 06 2002 को मदनमोहन आर्य मेरी दुकान पर आया। दिन के करीब 4 बजे थे। उसने आकर पहले मेरा नाम पूछा। मैंने अपना नाम बताया तो कहा कि यह जो तुम्हारी कुरआन है उसमें 24 आयतें गलत हैं। मैंने उनका अर्थ पढा है। यह आयतें गैर मुसलमानो (हिन्दुओं) को मारने का आदेश देती है। दुनिया में जो आतकवाद है वह कुरआन की देन है और आप लोगों की वजह से इस देश के टुकडे-टुकडे हुए हैं। तुम लोग नमक हमारा खाते हो और हमदर्दी पाकिस्तान की करते हो और जो तुम्हारे मोहम्मद साहब थे वे भी आतकवादी थे। कुरआन की बात करने को जब मैंने मना किया तो वे झगडे पर उतारू हो गया।

इस रिपोर्ट के आधार पर जब पुलिस द्वारा मदनमोहन आर्य को गिरफ्तार करने के षड्यत्र की भनक पडी तो गगापुर सिटी के प्रसिद्ध वकील अग्रिम जमानत के लिए अतिरिक्त जिला एव सत्र न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो गए। परन्तु दुर्भाग्यवश अग्रिम जमानत का प्रार्थना पत्र खारिज कर दिया गया और जज ने अपने निर्णय में लिखा- 'इस रिपोर्ट पर मुकदमा दर्ज कर अनुसधान किया जा रहा है। इस स्टेज पर बिना कोई गुणावगुण पर राय व्यक्त किये मैं प्रार्थी अभियुक्त का प्रार्थना पत्र स्वीकार किये जाने योग्य नही पाता हूँ। अत प्रार्थी अभियुक्त का अग्रिम जमानत का आवेदन अस्वीकार कर खारिज किया जाता है।' आदेश आज दिनाक 01 07 2002 को खुले न्यायालय में लिखा जाकर सुनाया गया। इस निर्णय के विरुद्ध राजस्थान उच्च न्यायालय में अपील की गई परन्तु वहा भी अपील दुर्भाग्यवश खारिज हो गई।

पंजियन संख्या RAJHIN(RNI)/2000/2567
डाक पजीकरण संख्या RJ 2637

आर्य समाजियों! खबरदार! अगर तुमने मोहम्मद साहब एव कुरआन की आलोचना की तो तुम जेल की हवा खाओगे और तुम्हारी जमानत भी नहीं होगी

श्री मदनमोहन आर्य का गगापुर सिटी में एक विद्यालय है। 1जुलाई को नया शिक्षा सत्र प्रारम्भ हुआ और मदनमोहन जी का विद्यालय भी एक जुलाई को खुला। गैर सरकारी विद्यालयो मे सारा काम जुलाई के प्रथम दो सप्ताहों में होता है परन्तु गगापुर सिटी मे अग्रिम जमानत न होने के कारण उन्हें 1 जुलाई को ही जयपुर आना पडा और श्री सत्यव्रत सामवेदी उन्हे इस सकट से मुक्त कराने के लिये रात–दिन भाग दौड करने लगे। उन्हें जयपुर आए 20 दिन हो गए हैं। उनका विद्यालय राम भरोसे चल रहा है। इस दौरान श्री मदनमोहन को कितनी आर्थिक क्षति और मानसिक पीडा हुई इसकी आप कल्पना नही कर सकतें।

यदि आर्य समाज के पास कोई लोक शक्ति होती या आर्य समाज का कोई विधायक या सासद होता तो अब तक षडयत्र करने वाले अधिकारियों के विरूद्ध कार्यवाही हो गयी होती। यदि आर्य समाज जिन्दा होता तो सारे राजस्थान में आग लग जाती परन्तु आज तो आर्य समाजों में सन्नाटा छाया हुआ है। किसी निष्ठावान नेता को आर्य समाज से निकालना हो तो अपने कधे पर गमछा रखे हुए और अपने जेब से सैकडों रुपये खर्च करके सैकडों तथाकथित कार्यकर्ता आ जाएगें। परन्तु आर्य समाज क लिये अपने प्राणों की आहुति देने वालों पर कोई सकट आएगा तो कोई व्यक्ति मदद के लिये नही आएगा और न ही कोई आर्थिक सहायता देगा। ऐसे अवसरों पर जब तथाकथित नेताओं को बुलाया जाएगा तो वे या तो शादी का बहाना करेगा और किसी बीमारी का।

पाठकगण स्वय विचार करें कि क्या यह कोई मुकदमा है? क्या मदनमोहन जी पागल थे जो एक दर्जी की दुकान पर जाते और मोहम्मद साहब व कुरआन की आलोचना करते? मोहम्मद साहब और कुरआन की आलोचना तो आर्य समाज अपने जन्मकाल से ही करता आ रहा है। दयानन्द के अनुयायी तो खुले आम शास्त्रार्थ करते आए हैं और यह कहते आए हैं कि जब तक इन अनार्ष ग्रन्थो का अस्तित्व है तब तक विश्व में शांति नही हो सकती। इन आयतों की आलोचना के कारण निजाम ने हैदराबाद में और मोहम्मद अली जिन्ना ने सिंध में सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबध लगाया था परन्तु इन सरकारों को आर्य समाज द्वारा प्रवर्तित जन आदोलनों के सामने झुकना पडा और सत्यार्थ प्रकाश पर से प्रतिबध हटाना पडा।

गगापुर धधकने लगा

उच्च न्यायालय में अग्रिम जमानत के लिये अपील खारिज होने के बाद गगापुर धधकने लगा है। सैंकडों आर्य युवक व अन्य सहयोगी लोग आदोलन की तैयारी में जुट गए। गगापुर वासियों का कहना है कि यदि मदनमोहन को हाथ लगाया तो गगापुर सिटी में आग लग जायेगी। आर्य युवक राजस्थान सरकार से पूछ रहे हैं कि कर्फ्यू एव सरकार की हर चौकसी के बावजूद विश्व हिन्दू परिषद के नेता तोगडिया पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर गगापुर सिटी में कैसे घुस गए? वहा सार्वजनिक सभा को कैसे सम्बोधित किया? जब श्री तोगडिया ने सभा में यह कहा कि हम सारे भारत वर्ष को गुजरात बना देंगे तब उन्हें गिरफ्तार क्यों नही किया गया? उन्हे गगापुर सिटी से बिना किसी व्यवधान के कैसे जाने दिया गया? दिल्ली के ईमाम बुखारी मस्जिद की चोटी पर खडे होकर चीखते हैं कि मैं पाकिस्तान का एजेन्ट हूँ। सरकार की हिम्मत हो तो मुझे पकडकर दिखाये। पुलिस अधिकारियो को ऐसे देशद्रोही को पकडने की हिम्मत नही होती और झूठी रिपोर्ट लिखवाकर बेचारे मदनमोहन आर्य को गिरफ्तार करने का षडयत्र रचा जाता है क्योकि आज आर्य समाज एक बुझी हुई आग है।

फिर भी गगापुर सिटी के आर्य युवक सिहनाद करते हुए घोषणा करते हैं– मदनमोहन ने दिनाक 21 जून को देशद्रोही प्रतिबधित मुस्लिम सगठन सिमी के कार्यकर्ता मुस्तफा खाँ की दुकान पर जाकर तो यह नही कहा था कि कुरआन की 24 आयतों से दुनिया में खून खराबा हो रहा है युद्ध हो रहे हैं शाति भग हो रही है। पर हम आज यह घोषणा करते हैं कि हम हर मच से हर दरो दीवार से न्यायालय में या न्यायालय के बाहर दहाड़ कर कहेंगे कि कुरआन की इन 24 आयतों से विश्व की शाति भग होती है। इन आयतों के कारण ही इन्सानियत का खून होता है इन आयतों के कारण ही धरती मानवता के खून से लाल होती है इन आयतो के कारण ही बच्चों का खून होता है और उनके करूण क्रन्दन से आसमान का कलेजा कापने लगता है इन्ही आयतों के कारण ही हमारी करोड़ों बहिनें विधवा होती है और उनके करूण क्रन्दन से चराचर जगत द्रवित होकर आसू बहाता है। अगर इन 24 आयतों की आलोचना करना जुर्म है तो हम अपना जुर्म कबूल करते हैं और बार–बार यह जुर्म करने की घोषणा करते हैं। यदि इसकी सजा फासी है तो हम फासी पर एक बार नही लाख बार चढने के लिये तैयार हैं। अब हम सब नारे लगायेंगे–

जो बोले सो अभय
वैदिक धर्म की जय।
वेदोद्धारक महर्षि
दयानन्द की जय।
भारत माता की जय।

राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत आर्य समाज के शिष्ट से बलात्कार की घटना की जानकारी लेते हुए। श्री मदनमोहन आर्य मुख्यमंत्री से बातचीत करते हुए एव बैठी हुई पीड़िता व उसकी माँ

गगापुर सिटी के इस हादसे से उत्पन्न गगापुर सिटी की गम्भीर स्थिति को देखते हुए श्री सत्यव्रत सामवेदी आर्य समाज के शिष्ट मण्डल को लेकर राजस्थान के पुलिस महानिदेशक श्री शान्तनु कुमार से मिले और उन्हें सारी स्थिति बताते हुए कहा कि यदि जाच से यह सिद्ध हो जाए कि श्री मदनमोहन आर्य सिमी के कार्यकर्ता मुस्तफा खाँ की दुकान पर गए थे तो आप मदनमोहन को गगापुर सिटी के चौराहे पर सारी जनता के बीच गोली से उडा देना। आप इसकी निष्पक्ष जाच करायें। उन्होने तत्काल आदेश दिया कि इस प्रकरण की सी आई डी के आई जी से जाच कराई जायेगी और मेरे से बिना पूछे श्री मदनमोहन को गिरफ्तार नही किया जायेगा। निष्पक्ष जाच एव न्याय प्रदान करने के लिये आर्य जगत श्री शान्तनु कुमार के प्रति अपना आभार प्रकट करता है और आश्वासन देता है कि आर्य समाज हमेशा साम्प्रदायिकता के विरूद्ध–चाहे वह हिन्दू की हो या मुसलमान की– हमेशा अपनी आवाज बुलन्द करता रहेगा और सहयोग देता रहेगा। श्री शान्तनु कुमार से मिलने गए शिष्ट मण्डल मे आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर के उपप्रधान श्री सुनील भादू, पूर्व जिला जज श्री राजेन्द्र सिंह मानव श्री मदनमोहन आर्य थे।

गुरूकुल आश्रम आमसेना

अरियार रोड़ नवापारा उडीसा–1

गुरूकुल आश्रम में नये छात्रों का प्रवेश

गुरूकुल आश्रम मे नये छात्रों का प्रवेश 16 जून से प्रारम्भ होगा। जो सज्जन अपने बालक को विद्वान बलवान और राष्ट्रभक्त बनाना चाहते है वे अपने सुपुत्रों को गुरूकुल मे प्रविष्ट कराये। गुरूकुल में आर्ष पाठयक्रम से कक्षा 6 (प्रथमा) से एम ए (आचार्य) तक शिक्षा का उत्कृष्ट प्रबन्ध है। यहा प्राचीन व्याकरण उपनिषद दर्शन वेद रामायण महाभारत निरूक्त आदि की शिक्षा दी जाती है शिक्षा के नियमित दिनचर्या कृषि बागवानी गौशाला चिकित्सा औषध निर्माण कम्प्यूटर आदि में विषयों में क्रियात्मक ज्ञान करवाया जाता है। भोजन साहित्वक सादा मिर्च मसाले से रहित होता है। भोजन खर्च 150रु मासिक है। गुरूकुल में महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक के द्वारा परीक्षा ली जाती है प्रमाण पत्र भी विश्वविद्यालय से मिलते हैं।

इसी प्रकार की व्यवस्था कन्याओं के लिए आदर्श कन्या गुरूकुल आमसेना में है। वहा अध्यापक सरक्षक आदि सब महिलायें हैं। विशेष जानकारी के लिए– आचार्य जी गुरूकुल आश्रम आमसेना नवापारा से सम्पर्क करें।

निवेदक
आचार्य

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग दें

1 देश–विदेश की आर्य समाजों मे घटित घटनाओं से आर्य जगत को अधुनातन जानकारी देना।

2. आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।

3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोडना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।

4 आर्य समाज द्वारा धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र मे किये जा रहे कार्यों की जानकारी देना।

5 समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओ का आर्य जगत को परिचय देना।

6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एव युवको का सगठन खडा करना।

7 आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाओ के माध्यम से देश मे सशक्त छात्र शक्ति खड़ी करना।

8 विश्व के आर्य परिवारो का सगठन बनाना।

9 देश के 100 विद्वानो की परिषद बनाना।

10 विश्व की समस्त भाषाओं में वेद सन्देश प्रकाशित कर वैदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।

11 विश्वशाति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरूद्ध मुहिम छेडना तथा देश में राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्रान्ति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीर्वाद दे कि परमपिता परमेश्वर हमे इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामर्थ्य दे।

तन मन धन से सहयोग द पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने का कष्ट करे।

सत्यव्रत सामवेदी, सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक [illegible]–13 जवाहर नगर, द्वारा [illegible] प्रिन्टिंग प्रेस [illegible] जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि. 652687 का. 622056 e-mail [illegible]
आर्य समाज शिक्षा समिति एव शिक्षा समिति आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज राजापार्क जयपुर–4
राजस्थान

प्रेषित
2
श्री धर्मपाल आर्य
उप कुलपति
गुरूकुल कागडी
विश्वविद्यालय हरिद्व

वेद प्रचार, आर्य समाज, विश्व शान्ति, राष्ट्रोत्थान, मानवता एवं सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र



वर्ष 2 अक 40 08 सितम्बर 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पजियन सख्या RJ-2637/2001 वार्षिक मूल्य 75रुपये

वेद प्रचार सप्ताह

महर्षि दयानन्द के सपनों का आर्य समाज

जिसका प्रधान होगा श्री नारायण चतुर्वेदी, मत्री होगा श्री ए आर अहमद, कोषाध्यक्ष होगा श्री डब्ल्यू राबर्ट एव पुस्तकालयाध्यक्ष होगा सरदार जोगेन्दर सिह

– स्वामी आत्मबोध सरस्वती

जयपुर 18 अगस्त। आर्य समाज आदर्श नगर, जयपुर मे 18 अगस्त से 25 अगस्त, 2002 तक वेद प्रचार सप्ताह अत्यन्त उल्लास और उमग के साथ मनाया गया जिसमें हजारों धर्म प्रेमी आर्य नर–नारियों ने भाग लिया। इस वेद प्रचार सप्ताह में आर्य जगत के मूर्धन्य सन्यासी स्वामी आत्मबोध जी सरस्वती वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर, हरिद्वार ने अपने प्रेरणा–दायक भाषणों से श्रोताओ को भावविभोर कर दिया। स्वामी जी ने महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश और वेद महिमा का रोमांचक वर्णन करते हुए बताया कि यज्ञ एक वैज्ञानिक परिशोध है किन्तु कालान्तर मे स्वार्थी और अनपढ़ लोगों के हाथों में पड़ जाने से इसे विविध मान्यताओं से सज्जित कर दिया गया। ऋषिवर दयानन्द ने इसकी महत्ता को पुन: सही रूप में प्रस्तुत किया और बताया कि यज्ञ व्यक्ति से समष्टि तक के लिए लाभदायक है। ऋषिवर के अनुसार जो भी व्यक्ति प्रतिदिन यज्ञ करता है, अनिवार्य नहीं है कि उसे उपलब्धि प्राप्त हो ही जाये। उपलब्धि प्राप्त करने हेतु परोपकारी बनना होगा। याज्ञिक जीवन में अपने व्यवहार पर ध्यान देना अत्यावश्यक है कि हम अपने से छोटे, अपने बराबर अपने से बड़ों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। अपने से छोटों को प्यार करो, प्यार करो। अपने से बड़ों का सत्कार करो, सत्कार करो। व्यवहार बराबर वालों से करो।





वेद प्रचार सप्ताह में उपस्थित श्रोतागण एव स्वामी आत्मबोध जी सरस्वती को राजस्थानी साफा पहनाकर सम्मानित किया गया

सन्यासी को स्पर्धा में नही आना चाहिए। लोकेषणा से पीड़ित व्यक्ति को संन्यासी बनने की सोचना ही नहीं चाहिए। संन्यासी तो समाज का पथ प्रशस्त करता है। वह स्वय किसी पद पर आसीन नहीं होता। गृहस्थी कैसा हो? मेरे ऋषिवर का वक्तव्य पढ़ो और उस पर आचरण करो– "जो सांसारिक सुख और मोक्ष का आनन्द चाहते हैं तो नियम पूर्वक गृहस्थ जीवन में प्रवेश करो। पुरुषार्थ से धन कमाओ और ऐश्वर्य का उपभोग करो।

देव दयानन्द ने कहा कि समझाना छोड़ो और दूसरों को समझने की चेष्टा करो। एक दूसरे की भावनाओं की कद्र करो। समझने की चेष्टा में ही सच्चा आनन्द और मोक्ष प्राप्ति है।

समाज में निर्धन धनवान से डरता ह निर्बल बलवान स मूर्ख विद्वान से और तीनो चरित्रवान से डरते हैं। तो हे मनुष्यों! चरित्रवान बनो जिससे विश्व तुमसे डरे। विलक्षण प्रतिभाशाली देव दयानन्द ने चरित्रवान बनने हेतु मानव के क्रियाकलापों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में किया है– 'मनुष्य जन्म का लक्ष्य सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य को ग्रहण करने के लिए होता है। व्यर्थ का वाद–विवाद आर झगड़ा करने के लिए नहीं। क्या ऐसा सदेश किसी और ने दिया–नहीं। अत अपनी इस धरोहर को सुरक्षित रखो। अपने को चरित्रवान बनाओं।

ऋषि ने बताया कि मस्तिष्क और हृदय के योग का नाम ही मनुष्यत्व है। सत्यासत्य का निर्णय लेने में मस्तिष्क साधक है वही निर्णीत निर्णय को धारण करने में बाधक है। अत: अपने में श्री बुद्धि का का विकास करो श्रद्धा और विश्वास को जीवन म उतारन का प्रयास करो। अपन प्रयोजन की सिद्धि को समष्टि में डाल दो। मूलशकर ने अपने अभूतपूर्व चिन्तन से समाज की विकृतियों को जड़ से नष्ट करने का जीवन भर प्रयास किया।

मात्र प्रभु पर विश्वास करने से ईश कृपा नहीं प्राप्त होती। वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट है कि मनुष्य जितना–जितना उपकार करता है परमात्मा भी उस पर दयादृष्टि रखता है कृपा करता है। ऋषि की कामना है कि ससार के सब प्राणिमात्र केवल स्वस्थ ही न हों अपितु सबकी आत्मा भी बलवती हो जिससे वह श्रेष्ठ और योग्य व्यक्ति का चुनाव कर सके जिससे समाज और राष्ट्र उन्नतशील बन सके।

हमें गर्व है कि हम आर्य समाज के सदस्य हैं। सज्जन व्यक्तियों का सगठन ही आर्य समाज है। परोपकार की भावना से युक्त मनुष्य ही सज्जन है, अन्यथा दुर्जन है। मेरे ऋषि की कल्पना का भावी आर्य समाज इस प्रकार का होगा–उस आर्य समाज का प्रधान होगा श्री नारायण चतुर्वेदी मत्री होगा श्री ए.आर.अहमद, कोषाध्यक्ष होगा डब्ल्यू राबर्ट पुस्तकाध्यक्ष होगा सरदार जोगेन्दरसिह। अगर ऐसी ऋषिवर दयानन्द की आर्य समाजें विश्व में बन जाये तो कल्पना करिये कि विश्व कितना सुन्दर होगा। मन्दिर मस्जिद गुरुद्वारा, गिरजाघर के झगड़े ही समाप्त हो जायेंगे।

अन्त मे मै यही कहूगा–
न मस्जिद से गरज मुझको
न मन्दिर से मुझे मतलब।
सिजदा ही करना है अगर
कर लेंगे कहीं भी खड़े होकर।

इन मिट्टी के बर्तनों को अब तो चमकने दो। देव दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज की श्रृंखला में अपने को बाध कर उसके आदर्शों के अनुकूल बनायें। पारिवारिक सम्बन्ध बना कर समाज को सगठित एव सुदृढ़ बनाओं।

इस अवसर पर श्री सत्यव्रत सामवेदी ने कहा कि परमपिता परमेश्वर ने मानवजाति को अभ्युदय और नि:श्रेयस की प्राप्ति के लिये वेदों का ज्ञान दिया। जब से मानव ने वेदो की उपेक्षा करके मत–मतान्तरों की सृष्टि की है तब से विश्व में क्रन्दन है हाहाकार है विलाप है हिंसा है मार–काट है, असुरों को ताण्डव नर्तन है घृणा है पशुता है भोगवाद है। अत ससार में आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक शान्ति के लिये हमें सारे विश्व में वेदों का प्रचार करना चाहियें और ससार को आर्य बनान के लिए अहर्निश प्रयत्न करना चाहिये।



स्वामी आत्मबोध जी सरस्वती के साथ आर्य समाज आदर्श नगर,जयपुर के पदाधिकारीगण

श्री सत्यव्रत सामवेदी के विरूद्ध परिपत्र जारी करने वाला यह ओमप्रकाश कौन है?

—:: प्रतिक्रिया ::—

ओमप्रकाश के छदम नाम से किसी व्यक्ति ने श्री सत्यव्रत सामवेदी के विरूद्ध हजारो लोगो को एक उदयपुर से परिपत्र भेजा है। आर्य जगत मे इस पत्र की तीव्र प्रतिक्रिया हुई और जो पत्र आर्य नीति को प्राप्त हुए उन्हे प्रकाशित किया जा रहा है।

ओमप्रकाश के हस्ताक्षर से श्री सत्यव्रत सामवेदी के विरूद्ध एक परिपत्र मेरे पास भी आया आय जगत मे ओमप्रकाश के नाम से लाखो व्यक्ति है। आर्य प्रतिनिधि सभा के मत्री ओमप्रकाश है एक ब्यावर का ओमप्रकाश है ऐसे हजारो ओमप्रकाश है। इस ओमप्रकाश ने चोरो की तरह यह पत्र भेजा है इससे साफ है कि इसके आरोपो मे कितनी सत्यता है जैसे इस पत्र को पढकर राजस्थान की समस्त आर्य समाजो ने अनुमान लगा लिया है कि यह ओमप्रकाश कौन है?

अगर यह ओमप्रकाश अपना नाम नही बताना चाहता तो हम भी इसका नाम जाहिर [illegible] मे स्वामी गुण्डानन्द सरस्वती के नाम से कुख्यात है। हरियाणा के किसी गाव मे इसकी चार बीघा जमीन है। वहा पर जब यह भूख से मरन लगा तब इसने गुरूकुल झज्झर मे शरण ली। वहा भी चोरी के आरोप म इसे जूते मारकर निकाल दिया गया और फिर इसन राजस्थान मे आर्य समाज के नाम पर व्यवसाय करना शुरू कर दिया। वेद प्रचार के नाम पर जीप खरीदन के लिए यह व्यक्ति धन एकत्रित करता है और फिर जीप बेच कर [illegible] यह गुण्डानन्द सरस्वती राजस्थान मे भटकता रहा इसने बहुत हाथ पाव मारे पर यह आर्य प्रतिनिधि सभा का कभी सदस्य भी नही बन सका परन्तु श्री सत्यव्रत सामवेदी ने हिमालय जैसी भूल करके इस प्रतिनिधि सभा [illegible] बडा पदाधिकारी बना दिया [illegible] इसने सारे भारत का दौरा करना शुरू कर दिया और लाखो रुपया ठग कर ले आया। राजस्थान मे आर्य प्रतिनिधि सभा की करोडो की सम्पत्ति को कौडियो के भाव बेचना शुरू कर दिया। आर्य प्रतिनिधि सभा पर कब्जा करने के लिए इसने सैकडा नकली प्रतिनिधि बनाए परन्तु सत्यव्रत जी ने इसे प्रतिनिधि सभा से बाहर उठाकर फेक दिया। यह विश्वासघाती अपने को स्वामी ओमानन्द जी और स्वामी सर्वानन्द जी का चेला बताता है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने भी इसे निष्कासित किया हुआ है इस व्यक्ति ने कै देवरत्न पर प्रहार किया और जब गत चुनाव मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के दो टुकडे हो गए तो यह स्वामी ओमानन्द जी वाली सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का पदाधिकारी बना परन्तु जब इसे यह पता चला कि स्वामी ओमानन्द जी वाली सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का पदाधिकारी बनने पर इसके ठगी के व्यवसाय मे बाधा उपस्थित होगी तो इसने घोषणा कर दी कि मेरा किसी भी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बन्ध नही है। जिस स्वामी ओमानन्द जी ने इसे पाल पोष कर बडा किया यह विश्वासघाती आज उनके साथ भी नही है जब श्री सत्यव्रत सामवेदी ने इसे आर्य प्रतिनिधि सभा का इसे पदाधिकारी बनाया तो इस दुष्ट ने पहला काम आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर पर एव शिक्षण सस्थाओ पर कब्जा करने का किया और तदर्थ समितिया बना दी परन्तु सामवेदी जी ने इसकी एक भी नही चलने दी और इस साप को कुचल दिया तब से यह धूर्त श्री सत्यव्रत जी के विरूद्ध विषवमन करता रहता है।

श्री सत्यव्रत सामवदी की आर्थिक शुचिता पर कभी उनके दुश्मनो ने भी उगली नही उठाई उन्होने करोडो के भवन बना दिए। 100 वर्ष तक जो प्रतिनिधि सभा अपना दफ्तर नही बना पाई थी उसे लाखो रुपयो का भूखण्ड दे दिया सामवेदी जी ने सभा को लाखो रुपयो की मदद की। आज ऐसे निष्काम कर्मयोगी पर कीचड उछालते हुए इस व्यक्ति को शर्म नही आई क्योकि आर्य प्रतिनिधि सभा के चुनाव होने वाले है और उसमें नकली प्रतिनिधियो के जरिये यह पुन प्रधान बनना चाहता है परन्तु इस कार्य मे सामवेदी जी सबसे बडी बाधा है इसीलिए यह गुण्डानन्द सरस्वती ओमप्रकाश के छदम नाम से उनके विरूद्ध पत्र भेजता रहता है।

भगवे कपड पहनकर भी काई व्यक्ति इस नीचता पर उतर सकता है इसकी हमे [illegible] आर्य जगत की [illegible]

रामसिह आर्य
उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान

ओमप्रकाश के नाम से जिसने श्री श्री सत्यव्रत सामवेदी के विरूद्ध पत्र जारी किया है मैं उसकी भर्त्सना [illegible] गुमनाम व्यक्ति ने सामवेदी जी पर यह आरोप लगाया है कि बर्फखाना स्थित भूखण्ड पर सामवदी जी ने कब्जा कर लिया है और इस भूखण्ड पर बनी हुई सैकडों दुकानों की पगडी और किराया खा जाता है

इस भूखण्ड पर पहले दयानन्द स्कूल का सचालन होता था और आज कल डी ए वी स्कूल का [illegible] उसका उपयोग भवन निर्माण और शिक्षा के प्रचार—प्रसार मे होता है।

इस भूखण्ड के लिए आर्य समाज ने एक भी पैसा नही दिया। दयानन्द पब्लिक स्कूल ने ही इस भूखण्ड के लिए रुपया जमा कराया था। इस विद्यालय की कमेटी ने केवल आर्य समाज क सदस्यो को ही नही बल्कि आम जनता को विद्यालय के खातो को देखने का अधिकार दे रखा है। ओमप्रकाश जी जब भी चाहे वे विद्यालय मे आकर विद्यालय के खातो को देख सकते है। सामवेदी जी तो इस विद्यालय के पदाधिकारी भी नही है। ऐसी धूल फेकने से धूल फैंकने वाले की छवि ही खराब हुई है। यह धूल फैंकने वाला कौन है इसे हम अच्छी तरह जानते हैं।

नरेन्द्र मोहन पालीवाल
प्रधान डी ए वी स्कूल बर्फखाना जयपुर

ओमप्रकाश नामक किसी गुमनाम व्यक्ति ने यह आरोप लगाया है कि मानसरोवर स्थित वैदिक बालिका महाविद्यालय के भवन का निर्माण आर्य समाज के रुपयो से हुआ है। यह [illegible] आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर का एक भी पैसा नही लगा। आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर का सारा हिसाब—किताब मेरे पास रहता है। ओमप्रकाश जी जब भी चाहे आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर मे आकर आर्य समाज के खाते देख सकते है।

ओमप्रकाश का यह आरोप है कि मानसरोवर स्थित भवन पर सामवेदी जी के पुत्र चक्रकीर्ति ने कब्जा कर रखा है यह एक हस्यास्पद आरोप है। मानसरोवर स्थित यह ये सस्थाए आर्य समाज के प्रचार—प्रसार की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट शिक्षण सस्थाए हैं। इसका श्रेय श्री चक्रकीर्ति सामवेदी को जाता है। हमारे लिये तो यह प्रसन्नता की बात है कि किसी नवयुवक ने शिक्षण सस्थाओ को सम्भाला तो। [illegible] पूर्व न्यायाधिपति श्री [illegible] लाल महता है। सामवेदी जी ने शुरू शुरू म अपने खातो मे जो थोडा बहुत रुपया था उस देकर निर्माण कार्य शुरू किया था। आज वहा करोडो का भवन है जिसमें आर्य समाज द्वारा एक भी पैसा का सहयोग नही दिया गया।

सुनील भादू — पुस्तकाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान

नन्द किशोर वैदिक — व्यवस्थापक दयानन्द पब्लिक स्कूल मानसरोवर

ओमप्रकाश नामक गुमनाम व्यक्ति ने श्री सत्यव्रत सामवेदी पर यह आरोप लगाया है कि आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर मे सामवेदी जी ने अपने परिवार के सदस्यो को भरा हुआ है और वे [illegible] आर्य जगत म इससे बडा झूठ न मैन देखा न सुना।

आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर विश्व की उत्कृष्ट आर्य समाजो मे से एक है जहा अत्यन्त सुशिक्षित और प्रभावी लोग इसके सदस्य है। आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सगो मे सर्वाधिक सख्या आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर मे ही होती है। श्री सामवेदी जी तो आर्य जगत के ओजस्वी वक्ता है नेता एव प्रकाण्ड विद्वान है। राजस्थान मे श्री सत्यव्रत सामवेदी आर्य समाज का पर्याय है। राजस्थान म मुख्यमत्री से लेकर किसी भी स्तर के नेता के सामने आप आर्य समाज का नाम ले तो उसके मुह से सहसा यह शब्द सुनाई देगा—सत्यव्रत!

मै इस आर्य समाज का कार्यवाहक अध्यक्ष हू। इस समाज के लगभग 150 सदस्य है इनमे से केवल चार सदस्य श्री सत्यव्रत सामवेदी जी के परिवार के हैं। आर्य समाज के हर उत्सव मे वे आर्य समाज के सदस्यो को प्रेरणा देते हैं कि अपने परिवार के सब सदस्यो को आर्य समाज का सदस्य बनाना चाहिये। यह उनकी प्रेरणा का ही परिणाम है कि आज आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर के 150 सदस्य है। इस ओमप्रकाश ने इस आर्य समज को निगल जाने का बहुत प्रयास किया परन्तु आर्य समाज के सदस्यो ने धूर्त साप को कुचल कर बाहर फेक दिया। इस दुष्ट आदमी ने सामवेदी जी पर यह आरोप लगाया कि उन्होने अपने लडके को एक शोरूम दे रखा है जबकि सत्य यह है कि सामवेदी जी ने प्रधान पद पर रहते हुए कभी अपने पुत्र को कोई दुकान नही दी। उनके प्रधान पद से हटने पर ही अन्तरग सभा ने सर्वसम्मति से उनके पुत्र को दुकान दी। श्री सामवेदी जी ने 250 दुकाने लोगो को दी है और किसी भी आर्य समाजी को आज तक दुकान देने से मना नही किया। ऐसे निष्कलक व्यक्ति पर इस प्रकार का बेहूदा आरोप लगाना नीचता की पराकाष्ठा है। अधिकाश दुकानो से 40रु से लेकर 150रु प्रतिमास तक किराया मिलता है पर तु उनके पुत्र से 250रु किराया लिया जाता है। साच को आच नही। इस प्रकार के पत्र लिखने वाले लोग आर्य समाज मे घुसे हुए भेडिये है जिनसे आर्य जगत को सावधान रहना चाहिये।

बलदेवराज आर्य
कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा एव
कार्यवाहक प्रधान आर्य समाज

मुझे ओमप्रकाश के नाम से श्री सत्यव्रत सामवेदी के विरूद्ध एक पत्र मिला। उस पत्र मे इस मक्कार ओमप्रकाश ने यह आरोप लगाया है कि सत्यव्रत सामवेदी सहमति के आधार पर बिना चुनाव के निर्विरोध अन्तरग सभा का गठन करना चाहता है ताकि एक कमजोर अन्तरग सभा बन सके और [illegible] पर शिक्षा सस्थाओ पर कोई कार्यवाही नही हो सके। क्या सर्वसम्मति से अन्तरग सभा का गठन करना अपराध है? यह तो एक आदर्श स्थिति है जिसके लिए आर्य जगत निरन्तर प्रयत्न करता रहा है। यदि सर्वसम्मति से राजस्थान मे अन्तरग सभा का बिना चुनाव के गठन हो जाता तो आर्य जगत में क्रान्ति आ जाती और आर्य जगत को भी प्रेरणा मिलती। आर्य समाज से लडाई—झगडे समाप्त होते परन्तु निहित स्वार्थी दुष्टो को यह सब पसन्द नही आ रहा क्योंकि इसरो इनका व्यवसाय खत्म होता है। फिर वे करोडो की सम्पत्तियों को कौडियो मे कैसे नीलाम कर पाएगे। यही उन्हे डर है।

सामवेदी जी तो हमेशा कहते हैं कि जब तक समर्पित और निष्ठावान कार्यकर्ता सगठित नहीं होंगे और एक लोक शक्ति खडी नही होगी तब तक न तो आर्य समाज का उत्थान हो सकता है और न ही आर्य समाज म झगडे समाप्त हो सकते हैं। वे उस लोक शक्ति को खडा करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर सतत प्रयास कर रहे हैं। उनके इस प्रयास से भारत वर्ष के निहित स्वार्थी तत्व बोखला गए हैं।

ओम प्रकाश का यह कहना हास्यास्पद है कि आर्य समाज और शिक्षण सस्थाओं को बचाने के लिए वे सहमति से कमजोर अन्तरग सभा का गठन करना चाहते है। इस ओमप्रकाश और इसके धूर्त साथियो ने आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर एव शिक्षण सस्थाओं पर कब्जा करने का प्रयास किया और सर्वोच्च न्यायालय तक इसने अपन घोड़े खोल लिये परन्तु सामवेदी जी के नेतृत्व मे आर्य समाज के सदस्यो ने इन धूर्तो की एक चाल भी नही चलने दी और इन्हे धूलि—धूसरित कर दिया। अगर ये धूर्त आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर एव शिक्षण सस्थाओ पर फिर आख उठाने की कोशिश करेगे तो अपने सर्वनाश को ही निमन्त्रण देगे।

इस धूर्त के बहकावें में शुरू—शुरू में हम भी आ गए थे परन्तु जब हमने सामवेदी जी को नजदीक से देखा तो यह पाया कि वह शुद्ध कुन्दन की तरह तपा हुआ व्यक्ति है और आर्य जगत के उज्जवल भविष्य की आशा की किरण है इसीलिए हम उनको तन—मन—धन से सहयोग देने के लिए तैयार रहते हैं। जिस ओमप्रकाश ने यह पत्र भेजा है उसे हम सब जानते हैं और हम उसके पत्र से धोखे मे आने वाले नही है।

जगदीश प्रसाद आर्य उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा

आर्य साम्राज्य के संस्थापक - योगिराज कृष्ण

(आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर मे कृष्ण जन्माष्टमी पर श्री सत्यव्रत सामवेदी के भाषण के कुछ अंश)

आज सारे विश्व मे हिन्दू और आर्य समाजी अत्यन्त उत्साह उल्लास और आनन्द के साथ कृष्ण जन्माष्टमी मना रहे है पौराणिक वर्ग ने योगेश्वर कृष्ण को सिर से लेकर पाव तक वासना के कीचड मे पोत दिया है पौराणिको ने अनक च किया तैयार की रास लीला करते हुए माखन की चोरी करते हुए चीर हरण करते हु राधा के साथ केलि क्रीडा करते हुए कुब्जा के साथ समागम करते हुए धोखे से भीष्म कर्ण दुर्योधन दु शासन और जयद्रथ का वध करते हुए

इस अधर्म के समुद्र में भारतवर्ष को महर्षि दयानन्द ने डूबने से बचाया और भारत वर्ष ईसाई ह ब य

धर्म को समाप्त करने के पौराणिको ने ... कि इनके जन्म हो ध के उन्मूलन के लिये हुआ हो पौराणिको की इसी बेशर्मी से पादरियो को ईसाई मत के प्रचार का स्वर्णिम अवसर मिला ईसाई प्रचारको ने हिन्दुओ को समझाया कि हिन्दू धर्म ... मूर्खो ... चरित्रहीनो का पतितो का धर्म है तुम लोग स्वय ही कहते ह

गोपाल कामिनीजार चोर जार शिरोमणि

गोपाल परस्त्रिय के साथ व्यभिचार करता और वह चोरो और लम्पटो का शिरोमणि है

बिशप काल्डवेल ने लिखा पुराणो मे वर्णित श्रीकृष्ण का कथा आ न भारत य स ज क चरित्र क मा यम कर दिया आज हिन्दू समाज मे व्याप्त चरित्रहीनता का कारण यही पौराणिक कथाए है

रेवरेन्ड मर्रे मिक्ल ने अपनी पुस्तक भारतीय युवको के नाम पत्र मे लिखा कि पुराणो मे ब्रह्मा इन्द्र और कृष्ण का जो चरित्र प्रस्तुत किया गया है वह अत्यन्त निन्दनीय और घृणाजनक है यदि किसी मनुष्य ने ऐसे घृणित कार्य किए होते तो वह भय और लज्जा के मारे स्तब्ध हुए बिना नही रहता

टी ए एम गर्बियर नामक एक कैथालिक पादरी ने हिन्दू धर्म पर प्रहार करते हुए लिखा कृष्ण किसी सुन्दरी को देखकर उसके पीछे पड जाता है और उसके सतीत्व को भग करके ही दम लेता है आश्चर्य की बात है कि हिन्दू कवि इस व्यभिचार का निर्लज्ज होकर अपनी कविताओ मे वर्णन करते है क्या यह आश्चर्यजनक नही है कि हिन्दू लोग एक ऐसे व्यक्ति को ईश्वर मानकर पूजा करते है जो व्यभिचारी और लम्पट है

ईसाइयो द्वारा पौराणिक कृष्ण विरोधी प्रचार से भारत वर्ष के करोडो भारतवासी ईसाई बनने लगे थे और सारा भारत वर्ष ईसाई धर्म को स्वीकार करने वाला था भारतवर्ष के तत्कालीन महान धार्मिक नेता ब्राहमसमाजी केशवचन्द्र सेन ने तो ईसाई धर्म स्वीकार कर ही लिया था और वे गैर ईसाइयो को ईसाई बनने की प्रेरणा दे रहे थे इस गम्भीर स्थिति मे महर्षि दयानन्द ने ईसाई धर्म पर आक्रमण की घोषणा कर दी और ललकारते हुए कहा कि पौराणिको द्वारा योगेश्वर कृष्ण का जो चरित्र प्रस्तुत किया गया है वह वैदिक धर्म के विरूद्ध एक षडयन्त्र है यह गुण्डो बदमाशो और चरित्रहीन लोगो ने वैदिक धर्म को समाप्त करने के ... किय ... श्री ... क स्तति ... लते है जिसमे लिखा है

> वेद वेदाग विज्ञान बल चा यधिक तथा
> नृणा लोके हि कोऽयोऽस्ति विशिष्ट केशव दृते

अर्थात् वेद वेदाग विज्ञान और बल आदि सभी गुण श्री कृष्ण मे विद्यमान है मनुष्य लोक में केशव के अतिरिक्त और कौन अधिक गुण सम्पन्न है?

भागवत पुराण मे गोपियो के साथ लीला करते हुए योगिराज कृष्ण को चित्रित करने का पौराणिको ने अक्षम्य अपराध किया है आश्चर्य की बात है कि आर्य समाजियो को छोडकर समस्त हिन्दू बडे चाव से भागवत कथा सुनने जाते हैं भारतवर्ष के लाखो बनिये करोडो रुपये खर्च करके भागवत् कथा का आयोजन करते हैं और पौराणिक योगिराज कृष्ण की ...पी लीला का वर्णन सुनकर पहले तो सिर हिलाते हैं और फिर नाचने लगते हैं आश्चर्य तो यह है कि भारत की सती साध्वी नारिया बेशर्मी से इन लीलाओं को सुनती हैं और वासना की उफनती नदियों में आपाद मस्तक निमज्जित होकर अपनी वासनात्मक चित्तवृत्तियो पर पर्दा डालने के लिये भक्ति भाव से गाने लगती हैं हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे, जैसे कि कृष्ण से अनुरोध कर रही हो कि गोपियों की भाति हमे हर जाओ।

आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान प चमूपति ने अपने ग्रन्थ योगेश्वर कृष्ण मे लिखा है 'महाभारत में गोपी प्रेम की गन्ध भी नही है। और तो और किसी प्रसग में भी कृष्ण के होंठों से वशी तक न छुआने की कसम खा ली है। महाभारत का कृष्ण चक्रधर है गदाधर है असिधर है मुरलीधर नही।

बगला के साहित्य सम्राट बंकिमचन्द्र चटटोपाध्याय ने कृष्ण चरित्र में लिखा है महाभारत में गोपियों की कथा नहीं है विष्णुपुराण में पवित्र भाव से है हरिवश में विलासिता की कुछ गन्ध है भागवत में उसकी अधिकता है पर ब्रह्म वैवर्त मे कुछ मत पूछिये। उसमें तो विलासिता की नदी उमड चली है।

भागवत मे रास का वर्णन गोपियो की चीर हरण लीला से ... है इस पौराणिक यहा तक बंकिमचन्द्र जैसे साहित्यकार भी भक्ति का गूढ रहस्य मानते है

अब ये पौराणिक यह सिद्ध करने मे लगे है कि ये सब रूपक उनके अ ... की चित्तवृत्तिया गोपिया है भगवान कृष्ण अन्तरात्मा ... यमुना असम्प्रज्ञात समाधि है कदम्ब वृक्ष ब्रह्म रन्ध्र है कोई मूढ पौराणिक चीर हरण के रहस्य बताते हुए कहते है कि गोपिया नदी मे निवस्त्र स्नान करती थी अत ... शिक्षा ... चीर हरण किया ताकि भविष्य मे नग्न होकर वे नदी ... विद्वा ... ता

स्वदेशी स्त्र ... लिय यु ... शिक्षा ... तिलाजलि देने के स्थान पर पौराणिक कलक करते है ... कृष्ण की ... ... पौराणिक नीचता के स्तर पर उतर आये कि उन्होने गोपियो के पूर्व जन्म ... बना दिया ... राम ...

इच्छा व्यक्त ... कहा तब ... रमण ... पत्नी ... अब्दुल ... रोली थी इसी पाप के परिणाम ... मुसलमान हिन्दुओ का धर्म परिवर्तन करने मे सफल हुए इन पौराणिको ने अपनी ... के समुद्र मे योगेश्वर कृष्ण को डुबो दिया

जब परीक्षित ने शुकदेव से कृष्ण द्वारा रास लीला के बारे मे सुना तो वह स्तब्ध रह गया और पूछे बिना नही रह सका हे ब्रह्मन आपने कहा था कि भगवान जगदीश्वर धर्म की स्थापना तथा अधर्म के नाश हेतु अवतार धारण करते है स्वय धर्म मर्यादा के वक्ता कर्ता तथा रक्षक होकर भी ऐसे भगवान ने मर्यादा के विपरीत परस्त्री स्पर्शरूपी महान अधर्म का कार्य क्यो किया शुकदेव ने परीक्षित की जिज्ञासा शान्त करते हुए जो उत्तर दिया उसे सुनकर निर्लज्ज व्यक्ति का भी सिर शर्म से झुक बिना नही रहेगा शुकदेव ने उत्तर दिया जिस प्रकार सर्वहुत अग्नि मे अपवित्र वस्तु डाल देने पर भी वह अपवित्र नही होती उसी प्रकार सर्वसमर्थ भगवान के ऐसे कृत्य भी जो मर्यादा का उल्लघन करते है अनुचित नही माने जा सकते

योगिराज कृष्ण का निम्नलिखित सदेश पौराणिको का पदाफाश करता है परन्तु बेशर्म पौराणिको को इसकी कोई चिन्ता नही है

> यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन
> स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनुवर्तते

श्रेष्ठ पुरुषो के आचरण का ही अनुकरण सामान्य जन भी करते हैं अत उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने आचरण को आदर्श और पवित्र बनाये ताकि अन्य लोग भी उनका अनुकरण कर सदाचारी बने

पौराणिको की व्यभिचार की कथाओ ने ही देश का चारित्रिक पतन किया है प्रत्येक शहर मे आर्य समाजी परिवार कितने है 50 100 परिवार शेष हिन्दू वर्ग तो पौराणिक है जो कृष्ण के वासनामय रूप की ही पूजा करता है इन्ही पौराणिक कथाओ के कारण भारतवर्ष के सा ... ह ... कानन बन गए है

यही कारण है कि आये दिन पौराणिक समाज की खूबसूरत बेटिया हथियारो और नशीले पदार्थों के सौदागरों अरबपतियो सम्पादको पत्रकारो न्यायविदो सरकारी अधिकारियो और सत्ता के केन्द्र मे वासना और मनोरजन का साधन बन रही हैं और एक बार इनके जाल मे फसने के बाद अगर वे बचने का प्रयास करती है तो उनकी सजा है मौत इसीलिए नैना साहनी जेसिका लाल शिवानी भटनागर की लाशे चीख चीख कर चेतावनी दे रही है कि देश के इन चरित्रहीन नेताओ से दूर रहो ये नेता नही पिशाच हैं जब तक जी चाहेगा तब तक ये तुम्हारी खूबसरती के साथ खिलवाड करेंगे ये जिस्म फरोश लोग तुम्हे अपनी वासनाओ का शिकार बनायेगे जन्म जन्मान्तर ... साथ ... करो ... सत्ता ... के प्रलोभन देगे और जब तुम वादा निभाने के लिए आग्रह करोगे तो तुम्हारे खूबसूरत शरीर को वे लाश मे बदल देगे

हमारा देश योगेश्वर कृष्ण के पदचिन्हो पर क्यो नही चलता? जिस क्रान्तिकारी कृष्ण के लिये भगवान वेद व्यास ने घोषणा की

> यत्र योगेश्वरो कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर
> तत्र श्रीर्विजयो भूतिध्रुवा नीतिर्मतिर्मम

जहा योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन है वही श्री विजय अचल विभूति एव नीति है

> यतोधर्मस्तत कृष्णो यत कृष्णस्ततो जय

जहा धर्म है वहीं कृष्ण है। जहा कृष्ण है वहीं विजय है

आर्यो! आप कृष्ण के स्वर मे स्वर मिलाते हुए यह सकल्प क्यों नही लेते

> न त्वह कामये राज्य न स्वर्गं न नापवर्गकम
> कामये दु ख तप्ताना प्राणिनामार्तिनाशनम

चिट्ठी आई है

आदरणीय सत्यव्रत सामवेदी जी

नमस्ते।

आर्य नीति मे प्रकाशित लेख आर्य एकता मच तथा आर्य विद्वत परिषद की कल्पना पसन्द आई एसीलिए विद्वानो को एकत्रित करने का काम आप ही कर सकते हैं। क्योकि प्राय आपको कोई भी विद्वान नकार नही देगा। ऐसा मुझे विश्वास लगता है। एक बार आर्य जगत के सब प्रश्नों का विवादो का निपटारा हागा तो बहुत अच्छा होगा।

आर्य जगत की एकता के बगैर आर्य समाज द्वारा कोई भी प्रभावशाली कार्य नही हो सकेगा। सबमे एकता रहना अथवा [illegible] विरोध द्वेष तथा कोई भी सिद्धान्त विरूद्ध बर्ताव न करेगे तो ही देव दयानन्द का सपना साकार होगा अन्यथा नही।

आपका अपना ही

सभाजी पवार महाराष्ट्र

प्रिय सामवेदी जी

साद नमस्ते।

यह पत्र लातर [illegible] मे प्रचार यात्रा मे [illegible] हुए मै भेज रहा हू। यहा एक आर्य ने आर्य नीति का 21 जुलाई 2002 का अक मुझे दिखाया। मुझे प्रसन्नता हुई यह जानकर कि आपने अब एक सूचनात्मक कार्य हाथ मे लिया है व महसूस कर लिया है कि विवादो मे पडकर वैदिक धर्म की सेवा नही हो सकती। इससे पूर्व गुजरात मे मई मे रहकर आपकी पत्रिकाकिसी के यहा पढकर मुझे दु ख हुआ था। किसी भी प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने किसी पीडित की कोई सेवा न करके राजनैतिक व साम्प्रदायिक बयानबाजी की थी। अब आपके विचारो मे परिवर्तन आ गया है व आपने रचनात्मक कार्य लेकर उसे ही करने का निश्चय किया है तो मैं इसका स्वागत करता हू।

भवदीय

इन्द्रजितदेव

चूना भटिठया पुरानी सब्जी मण्डी मार्ग

यमुनानगर–135001 हरियाणा।

गा प्यार से

गीत

पाव न पीछे हटे बिपद हजार से गा प्यार से।
गीत धर्म के प्रचार के गा प्यार से।। १।।
धर्म के लिए [illegible]
[illegible]
चाहे हो छलनी बदन भी बम प्रहार से गा प्यार से।।२।।
धर्म के लिए पडे पर्वत से चाहे कदना।
होना न भयभीत पड़े सागर मे डूबना।
[illegible] गा प्यार से।।३।।
धर्म ही बनाता है इन्सान हैवान से।
धर्म ही बनाता देव दानव नादान से।
[illegible] गा प्यार से।।४।।
धर्म से मिलती है मुक्ति पाप नर्क द्वार है।
धर्म ही दिलाता सुख स्वर्ग का अपार है।
फल बन लगा न दिल कभी तृ खार से गा प्यार से।।५।।
धर्म बिन मानव का जीवन नि सार है।
धर्म पर टिका हुआ समस्त ससार है।
धर्म धार कर न प्यार चोर जार से गा प्यार से।।६।।
धर्म के प्रचार से कभी न मुख को मोड़ना।
जब तलक रहे ये जिन्दगी धर्म न छोड़ना।
कहता इन्द्रकवि पुकार नर व नार से गा प्यार से।।७।।

इन्द्रस्वामी इन्द्रकवि (ठा इन्द्रदेवसिह)
ग्राम पो बिष्णुपुरा कला माया एकमा
जनपद–सारण (छपरा) बिहार–8

ला रामशरणदास वेद प्रचार स्मारक स्थिर निधि एवम् आर्य समाज,हासी, चार जिलो का आर्य सम्मेलन सम्पन्न

दिनाक 04 08 2002 रविवार को लाला रामशरणदास वेद प्रचार मण्डल हासी द्वारा आर्य समाज मदिर हासी मे महत्वपूर्ण कार्यकर्ताओ की एक विशेष मीटिग हुई जिसमे जिला हिसार भिवानी सिरसा फतेहाबाद के आर्य कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ जयसिह जी आर्य प्रोफ [illegible] की। सभा के मुख्य अतिथि श्री हीरानन्द जी आर्य (पूर्व शिक्षा मत्री हरियाणा सरकार) थे। सम्मेलन का सचालन आर्य जगत के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री जबरसिह जी खारी ने किया। मीटिग से पूर्व विशाल यज्ञ पुरोहित [illegible] शास्त्री द्वारा सम्पन्न किया गया तत्पश्चात मीटिग मे मुख्य वक्ताओ मे बहन सुमित्रा आर्या श्री गौड साहब प्रधान आर्य समाज बहल श्री जगदीश जी शिवर प्रधान आर्य समाज सिरसा चौ बदलूराम जी आर्य प्रधान वेद प्रचार मण्डल हिसार श्री शेरसिह आर्य निम्णीवाली भिवानी श्री सुरेन्द्र आर्य आर्य समाज बोदीवाली बहन सुधेश जी आर्या चिड़ौद हिसार श्री बल्वन्तसिह आर्य शीशर श्री जवाहर सिह आर्य आर्य ढाणीपाल श्री दलबीर सिह आर्य आर्य समाज डिफेन्स कॉलोनी हिसार के विभिन्न विद्वानो ने भाग लिया। आर्य समाज के प्रचार–प्रसार को किस तरह बढाया जाय इस विषय पर निम्नलिखित विचारो द्वारा सुझाव प्रस्तुत किये– आर्य सज्जनों के भवनो पर ओ३म ध्वज एव विद्यालयो मे वैदिक सस्कृति का प्रचार–प्रसार तथा उपदेशको के पास वेद प्रचार–प्रसार हेतु वाहन साथ ही सुमधुर कैसटे तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वरचित साहित्य भी गाडी मे मौजूद हो। गन्दे अश्लील चुटकले बोलन वाले प्रचारको पर पाबन्दी लगाई जायें तथा मन से वचन से कर्म से एक ही रास्ते पर चला जाय आदि। इस समय आर्य समाज के पदाधिकारी श्री चौ देवदत्त जी प्रधान श्री सतीश कुमार आर्य मत्री तथा अन्य अधिकारी व सदस्य भी मौजूद थे। सभी सुझावो को सर्वसम्मति से पारित किया गया।

सतीश कुमार आर्य मत्री

लाला रामशरणदास वेदप्रचार स्मारक

स्थिर निधि

श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट के मैनेजिग ट्रस्टी श्री ओकारनाथ जी का निधन

मुझे यह सूचित करते हुए अत्यन्त दु ख हो रहा है कि श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट,टकारा के मैनेजिग ट्रस्टी, आर्य प्रतिनिधि सभा, मुम्बई के प्रधान, प्रतिष्ठित समाज सेवी एव उद्योगपति श्री ओंकारनाथ जी, 279 ओ३म सदन, 36वा रास्ता, बान्द्रा, मुम्बई–400050 का दिनाक 07 08 2002 को 5 30 बजे हृदयगति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया है।

रामनाथ सहगल,मत्री

श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्मारक ट्रस्ट,टकारा

आर्य समाज अनारकली,

मदिरमार्ग, नई दिल्ली–1

वेद प्रचार सप्ताह पर

तिमिर समस्त मिटाओ

उठो सपूतो! इस धरती का तिमिर समस्त मिटाओ।
वेदो का पावन प्रकाश ले जागो और जगाओ।।
अन्धकार विस्तृत है भू पर
हुआ श्रेय का पथ अवरूद्ध।
फैल रहा अज्ञान तिमिर अति
लुप्त हुआ अब ज्ञान विशुद्ध
वृत्ति दानवी शक्ति द्विगुणित
करके होती निर्भय क्रुद्ध।
[illegible] धरा का
होता नही तनिक उद्बुद्ध।
उठो! कृष्ण के वशज बीरो! ज्ञान पुन सिखलाओ।
वेदो का पावन प्रकाश ले जागो और जगाओ।।
ऋषि–मुनियो की वसुन्धरा पर
होता मानवता उपहास।
दानवता के तत्व अडिग हो
करते धरती पर अट्टहास।
सत्य शिवम सुन्दरता [illegible]
सस्कृति का हो रहा विनाश।
कस तथा रावण निर्भय हो
मनानुकूल कर रहे विलास।
बढो! रामके वशज! निद्रा त्यागो धनुष उठाओ।
वेदो का पावन प्रकाश ले जागो और जगाओ।।
आज मानवी वृत्ति धरा पर
रोती और सिसकती।
आर्त निनादो की लहरी है
व्यथा–कथा कटु कहती।
स्वर्गिक सुषमामयी धरणियह
नरक दुखो का सहती।
गगा की पावन धारा
प्रतिकूल दिशा मे बहती।
शक्ति पुज तुम! सत्य प्रणेता! उठ कर्त्तव्य निभाओ।
वेदो का पावन प्रकाश ले जागो और जगाओ।।
उठो! सपूतो इस धरती का तिमिर समस्त मिटाओ।।।

राधेश्याम आर्य विद्यावाचस्पति

मुसाफिर खाना सुल्तानपुर उप्र

अन्धविश्वास

सुख भोगकी आशा से बन्धन है होता
कर्मफल भोग वास्ते योनि भ्रमण है होता।
राग से मुक्त होने मनुष्य शरीर है जीवन पाया
निज वतन प्रभु के घर में रहने आया
सम्प्रदायो ने प्रभु व कर्म फल बाबत भरमाया
दुकानदारी चले ऐसा उन्होने मार्ग बताया
क्या कर्म फल भोगते सम रह पाया?
परमात्मानुभव साथ दु ख समता से सह पाया?
हजारो धर्म मत नही कैदखाने है ये!
तृष्णा पूर्ति का व्यापार चलाते है ये!
परिग्रह अविरति असाधन हो जहा
चाहे लगती हो भीड वहा
कोई भी विरक्त सन्त पैदा हो पाया न वहा।
डोरा धागा, मत्र तत्र से भ्राति को बढाया
वित्तैषणा लोकैषणा पुत्रैषणा हो जहा
गुरू शिष्य के बीच अज्ञानता हो जहा
पूरा मनुष्य भी पैदा न हो पाया वहा!
जीव निज वतन प्रभु से दूर होता गया
पाप कर्म का भार और ढोता गया।
जागो लोगो! अन्धविश्वास मे मत उलझो,
घोषणा करो कि धर्म के नाम दुकानदारी बन्द करो।

–सुमन कुमार आर्य –

594 चेतन निवास

जवाहर कॉलोनी सरदारनगर

अहमदाबाद–382475

राष्ट्र भाषा (हिन्दी) प्रचार

हिन्दी देश की राज भाषा है। सविधान मे उसे राष्ट्र भाषा का दर्जा प्राप्त है। पर विडम्बना है कि हिन्दी जनता की भाषा नही बन पाई। स्वामी दयानन्द जी की दिव्य दृष्टि ने देख लिया था कि सारे भारतवर्ष मे एक भाषा का प्रचार होना चाहिए क्योकि ऐसा हुए बिना न धर्म प्रचार का ही कार्य सुगमतौ से हो सकता है और न जातीयता के भावों का सचार ही हो सकता है। उन्होंने देखा कि भारत वर्ष की राष्ट्र भाषा होने की योग्यता केवल हिन्दी मे ही है। इसी विचार से गुजराती होते हुए भी उन्होने अपने ग्रन्थ आर्य भाषा मे ही लिखे व्याख्यान भी उसी भाषा मे दिया। आर्य समाजियो को [illegible]

[illegible] स्वतन्त्रता से पहले हुआ स्वतन्त्रता के पश्चात गति मे वह उत्साह नही रहा। यही कारण है कि स्वतन्त्रता के 55 वर्ष [illegible] का भविष्य चिन्ता का कारण बना हुआ है। आज उच्च [illegible] बच्चे पब्लिक स्कूलो मे पढते है। पब्लिक स्कूलो का जाल बिछा हुआ है। हर व्यक्ति अपने बच्चे को विदेश भेजना चाहता है। अपने देश के उत्थान की तो किसी को परवाह नही है। हिन्दी बेचारी सविधान के पन्ने पर ही राजभाषा का मुकुट पहने खडी है। अब तो वर्ष मे एक दो बार गोष्ठिया करके या हिन्दी दिवस मना कर श्रद्धा सुमन अर्पित कर दिए जाते हैं जो केवल औपचारिकता ही रह जाती है।

सरकार को प्रस्ताव पारित करके एव ज्ञापन दिए जाते हैं किन्तु वोटो की राजनीति मे सब रद्दी की टोकरी मे चले जाते है। यदि सरकार तक अपनी आवाज पहुचानी है तो इसे जनता की आवाज बनाना पडेगा और सार्थक पग उठाने पडेगे।

महात्मा गाधी जी का उदाहरण हमारे सामने है। जब तक स्वतन्त्रता सग्राम काग्रेस तक सीमित रहा अग्रेजो पर कोई प्रभाव नही पडा। जब गाधी जी ने आम जनता को जागृत किया उनके दिल मे आजादी की आग भडकाई बच्चा बूढा जवान सभी के दिलो में आजादी का प्यार और अग्रेजो के [illegible] दूभर हो गया। अग्रेज तो निकाल दिये गए परन्तु देशवासियो ने अग्रेजी को गले लगा लिया और अपने घर कार्यालय एव कार्य व्यापार की भाषा बना दिया। एक विदेशी भाषा लोक प्रिय हो गई और इस देश की भाषा हिन्दी उपेक्षित हो गई। लोगो के अग्रेजी के प्रति प्यार को देखते हुए सरकार उसको और बढावा दे रही है अग्रेजी जो सरकारी स्कूलो मे छठी कक्षा से आरम्भ होती थी उसे पब्लिक स्कूलो की भाति प्रथम कक्षा से कर दिया गया है। हिन्दी को उसका स्थान दिलवाने के लिए जन जागरण जन आन्दोलन की आवश्यकता है। आमूल चूल परिवर्तन कठिन है। सहज परिवर्तन से कार्य आरम्भ करना [illegible]

[illegible] यह कार्य कोई सस्था जैसे आर्य प्रतिनिधि सभा या अन्य सगठन जिसका मजबूत आधार हो योजनाबद्ध तरीके से पूरे देश मे एक साथ आरम्भ करे [illegible]

1 सभी हिन्दी प्रेमी अपने हस्ताक्षर हिन्दी मे ही करे

[illegible] नाम पटट हिन्दी मे ही लिखवाए।

3 दुकानो एव व्यावसायिक केन्द्रो के बोर्ड हिन्दी मे लिखे।

4 किसी के साथ जोर जबरदस्ती न की जाए बल्कि अपने देश और अपनी भाषा का वास्ता देकर उनके मन परिवर्तन करके उनके बोर्ड हिन्दी मे लिखवाए जाए1 बाजार की सडक पर चलते हुए नजर उठाकर देखे तो लगे कि हम हिन्दुस्तान के किसी नगर मे है

5 बाजार मे जन्म दिवस एव विभिन्न त्यौहारो पर कार्ड [illegible] बनाने वालो से सम्पर्क करके उन्हे हिन्दी भाषा मे परिवर्तित करने का आग्रह किया जाए।

6 बाजार मे बच्चो के कपडो के द्वारा एव कई उपहारो द्वारा अग्रेजी का प्रचार होता है। इनमे यदि हिन्दी शब्दो का प्रयोग हो तो हिन्दी के प्रचार को बढावा मिल सकता है।

7 शादी के कार्डो के लिए आकर्षण शब्दावली बनवाई जाए। जैसे लोग अब बच्चो के नाम सस्कत भाषा से चुनकर रखते है। इसी प्रकार शब्दो का लालित्य उन्हे हिन्दी के कार्ड छपवाने पर बाध्य करेगा

8 दूरदर्शन मे जो फिल्म एव सीरियल आते हैं उसमे 50 प्रतिशत सवाद मे अग्रेजी बोली जाती है। सीरियल बनाने वालो से आग्रह किया जाए कि हिन्दी सीरियल एव हिन्दी [illegible] यह भी लिखाजाए कि हिन्दी सीरियल एव हिन्दी फिल्मो के नाम हिन्दी मे लिखे। प्राय यह नाम अग्रेजी लिपि मे होते हैं इससे हिन्दी लिपि का ह्रास हो रहा है। अग्रेजी ने हिन्दी भाषा को हानि तो पहुचाई ही है। अब हिन्दी शब्दों को अग्रेजी लिपि मे लिख कर देवनागरी लिपि का लोप किया जा रहा है

9 पुस्तक मेलो मे बच्चो की पुस्तके अग्रेजी मे बहुत बिकती है हिन्दी में भी उत्तम कागज एव आकर्षक नमूने की छपवा कर प्रदर्शित की जाए।

मै पिछले 8 वर्षो से इश्तहार छपवा कर मेलो मे उत्सवो मे वितरित करके जन जागरण का कार्य कर रही हू। यद्यपि यह समुद्र में बूद के समान है। नमूना सलग्न है। प्रत्येक व्यक्ति जिसे अपनी भाषा एव सस्कृति से प्यार है अपने स्तर पर प्रयत्न करे तो जन जागरण में सहायता मिलेगी।

अन्त मे एक कवि के शब्दो मे –

निज भाषा उन्नति अहे सब जीवन को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय का शूल।
परभाषा परभाव परभूषण परपरिधान
पराधीन जन की अहे यह पूरी पहचान।

भवदीया
चन्द्रकान्ता सेवा निवृत्त प्राचार्या
प्रधान स्त्री आर्य समाज
सदर बाजार करनाल हरियाणा 1

हिन्दू जाति के नाम, हिन्दू संस्कृति की पुकार

[illegible] भटके हुओं को राह दिखा दो।
मैं कराह रही हू मैं तडप रही हू
[illegible]
मुझ पर अग्रेजियत का भवन बन गया है। मेरा शोषण हो रहा है। मेरी पहचान अपने घरो मे वापिस लाओ।

हिन्दी अपनाओ

मम्मी–डैडी पापा अकल–आटी हाय–बाय टाटा मिटाओ।
मॉ–पिता चाचा–चाची मामा–मामी
मासी–मासड बुआ–फूफा नमस्ते।
इन शब्दो मे तुम्हारे घर मे मेरी पहचान है। मुझे मारने वालो! मुझे पुनर्जीवित करो।

प्रेरक– कष्णचन्द्र काठपालिया धर्मार्थ न्यास ई ए 362 माया एनकलेब नई दिल्ली।

आर्य समाज गरोठ

जिला– मन्दसौर मध्यप्रदेश–458880

श्रावणी पर्व का शुभारम्भ

दिनाक 22 अगस्त से 31 अगस्त तक आर्य समाज गरोठ [illegible] पर आर्य समाज मदिर से यज्ञ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ जिसमें शहीदो को श्रद्धाजलि दी गई। 23 अगस्त को शीतलामाता मदिर 24 अगस्त को सूर्यवशी राममदिर 25 अगस्त को हरदेव लाला का मदिर 26 अगस्त गुप्तेश्वर महादेव मंदिर 27 अगस्त को प्राचीन गणपति मदिर 28 अगस्त को बागरी मोहल्ला ढाबा चौराहा, 29 को प्राचीन खाखी जी का मदिर, 30 अगस्त को राम गोपाल जी सेठीया के निवास पर 31 अगस्त को शिवमार्ग बस स्टेण्ड शामगढ पर भव्य यज्ञ एव वेद प्रवचन का आयोजन के पश्चात आर्य वीर दल गरोठ द्वारा चल समारोह व शारीरिक व्यायाम प्रदर्शन किया जा गया।

वेद प्रचार सप्ताह का कार्यक्रम श्री मोहनलाल सोनी पूर्व प्रधान के मार्ग दर्शन में सफलता पूर्वक मनाया गया।

मत्री, आर्य समाज
गरोठ मन्दसौर म प्र

जग मे है कितना अन्याय

एक दुराचारी रह कर भी ब्राह्मण पद को पाये
एक मनुष्य करे जग सेवा फिर भी शूद्र कहाय।
जग मे है कितना अन्याय
एक ओर जग जड प्रतिमा का मोहन भोग लगाये
एक ओर इक जावित प्राणी बिलख–बिलख मर जाये
जग मे है कितना अन्याय
[illegible]
सेठ गद्दो पर नट तरसा–तरसा कर खाये
जग मे है कितना अन्याय
नारी विधवा बन पर आजीवन कष्ट उठाय
पर [illegible] एक नर [illegible] बार बार ब्याह [illegible]
जग मे है कितना अन्याय
[illegible]
सरल चित्त हो दुखिया दिन–दिन और कपटी मुस्काय।
जग मे है कितना अन्याय

श्री उत्तम चन्द जी शरर
म न 30/8 कलन्दर चौक
सब्जीमण्डी
पानीपत रियाणा

आर्य समाज

पो सुजानगढ–33157 जि–चूरू

विधानोक्त आर्य समाजीय पद्धति के अनुकूल समाधान बताये

सुजानगढ मे आर्य समाज के पवित्र प्रागण मे दिनाक 22 07 02 से 28 07 2002 पर्यन्त श्री चिन्तामणी शास्त्री के ब्रह्मत्व मे वृष्टि यज्ञ का आयोजन हुआ हमारी समझ मे यह नही आया कि यह यज्ञ किस पद्धति से हुआ।

आर्य समाज के विद्वान सन्यासी एव पुरोहित पृथक पृथक तौर तरीको से कार्य कराते है ऐसा क्यो?

[illegible] रखवाते हैं कि इन पर सात दिन तक निरन्तर एक ही यजमान बैठे। पाच दूसरे कुण्डो पर प्रतिदिन नये–नये यजमान बैठ बिना जोडे एक एक आदमी एव औरत को बैठाकर आहुति दिलवाते है।

दो दिवस के उपरान्त जो मुख्य वेदी पर दो यजमान विराजमान है उनको पुरोहित ने जीवणें से बाये बैठा कर खीर [illegible] आहुति दिलवाई इसके पश्चात खीर के स्थान पर चिडवा घृत एव शक्कर की आहुति दिलवाई। तीन दिन लगातार तीन–तीन समिधा घी मे भिगोकर आहुति दिलवाई गई। इसके पश्चात दोनो यजमानो से छ समिधा दिलवाना प्रारम्भ किया।

हमारी समझ मे यह नही आ रहा है कि इस प्रकार भ्रान्ति व अन्य कार्य का निवारण कैसे सम्भव हो। अत आप उचित विधानोक्त आर्य समाजीय पद्धति के अनुकूल समाधान पत्रोत्तर माध्यम से करने की कपा करे साथ ही स्वामी दयानन्द सरस्वती विरचित प्रामाणिक पुस्तक उपलब्ध करवाये।

निदेशक
सोहनलाल प्रधान
आर्य समाज सुजानगढ

आर्य महासम्मेलन — बरेली

भारत के भविष्य की ठोस आधारशिला हेतु आर्य तरूणाई आगे आई

प्रो कैलाश नाथ सिह

बरेली 0* सितम्बर 2002 आर्य उपप्रतिनिधि सभा जनपद–बरेली द्वारा आयोजित जनपदीय आर्य महासम्मेलन मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली एव उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा कप्रधान, तरूणाई के प्रतीक प्रो कैलाश नाथसिह ने विशाल आर्य जनसमूह एव युवका का आह्वान करते हुए कहा कि युवा पीढी हमारे राष्ट्र की आधारशिला है युवको को आर्य [illegible] क्रान्ति रथ निकाला जायगा। इसम आय वीर दल आर्य कुमार सभा तथा आर्य युवा परिषद के सदस्य पूर्ण सहयोग करेगे।

आर्य हमेशा श्रेष्ठ ओर निर्भीक होने है ओर कण्टकाकीर्ण पथ पर चलने से कभी घबराने नही है वह सत्य के रास्ते से कभी डिगते भी नही हैं। आर्य समाज के सस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने देश मे फैले हुए अज्ञान और अधकार को दूर करने मे कोई कसर नही छोडी थी। पानी मे बहता हुआ व्यक्ति शव के समान होता है और जो विपरीत धारा मे तैरता हुआ चलकर पार करता है वह शिव कहलाता है निराशा और हताशा आर्यजनो क शब्दकोष म ह ही नह।।

सभा प्रधान जी जैसे ही अपने प्रदेशीय अधिकारियो के साथ सम्मेलन के सभा मण्डप मे पहुचे विशाल आर्यजनो जिनमे भारी सख्या मे आर्य नौजवान एव आर्य वीरागनाए सम्मिलित थी इन्होने गगनभेदी जयघोषो के साथ सभा प्रधान को फूलमालाओ से लाद दिया। सुसज्जित सभास्थल पर प्रात काल यज्ञ भजन उपदेश (प्रवचन) के उपरान्त प्रात 9 30 बजे मा0 सभा प्रधान प्रो0 कैलाश नाथ सिह के करकमलो द्वारा ओ३म ध्वज का आरोहण हुआ। ध्वजगान समवेत स्वर मे श्री रामचन्द्र शर्मा भजनोपदशक ने गाया।

ध्वजारोहण के समय स्वामी अग्निवेश जी कार्यकारी प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली श्री अर्जुनदेव आर्य 'विषम' सभा मत्री डॉ जयप्रकाश भारती उपमत्री श्री प्रेम किशोर कुलश्रेष्ठ मत्री विद्यार्य सभा के अतिरिक्त श्री हर्षवर्धन प्रधान आर्य उप प्रतिनिधि सभा बरेली सहित सारे जनपद की आर्य समाजो के प्रतिनिधि गणो के अलावा सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश से पधारे हुए आर्य नेता एव कार्यकर्तागण उपस्थित थे।

इसक उपरान्त सभा प्रधान प्रो कैलाश नाथ सिह की अध्यक्षता मे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश 5–मीरा बाई मार्ग लखनऊ की अन्तरग सभा एव विद्यार्य सभा की बैठकें हुई जो अपराह्न 1 30 बजे तक समाप्त हो गई।

इस अन्तरग सभा के कतिपय अत्यन्त सामयिक एव समीचीन विषयो पर सर्वसम्मत निर्णय लिये गये हैं।

मध्यान्होत्तर 2 00 बजे से जिला आर्य महासम्मेलन का आयोजन हुआ जिसके अध्यक्ष माननीय प्रो0 कैलाश नाथ सिह प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश थे जिन्होने अपने अध्यक्षीय भाषण मे भारत की तरूणाई को आर्य समाज मे सहयोग देने हेतु आमत्रित किया।

इस सम्मेलन का उद्घाटन मा0 सन्तोष गगवार केन्द्रीय पेट्रोलियम एव प्राकृतिक गैस राज्यमत्री भारत सरकार ने किया। मुख्य अतिथि पूज्य स्वामी अग्निवेश जी थे जिन्होने अपने भाषण मे कहा कि धार्मिक पाखण्ड एव [illegible] होकर [illegible] होगा। इसी अभियान के तहत 27 सितम्बर को अयोध्या से 'मिल कर चलो' यात्रा प्रारम्भ की जाएगी। इसका समापन 2 अक्टूबर को दिल्ली मे होगा।

स्मृति चिन्ह सभा प्रधान प्रो0 कैलाश नाथ सिह श्री सन्तोष गगवार श्री स्वामी अग्निवेश जी तथा अन्य सभी मचस्थ नेताओ को स्मृति चिन्ह सर [illegible]। भेट किए गऐ [illegible] माननीय सभा प्रधान प्रो0 कैलाश नाथ सिह [illegible] को श्री रामकुमार 'वीरेश' द्वारा रचित अभिनन्दन पत्र पढकर सुनाते हुए ससम्मान भेट किया गया।

विशिष्ट अतिथि के रूप में आधुनिक गार्गी डॉ निष्ठा [illegible]लकार ने कहा कि वेदा मे परमात्मा के बाद दूसरा स्थान नारियो को दिया गया है। महान पुरूषो के निर्माण मे माताओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उन्होंने स्त्री शिक्षा पर जोर देते हुए कहा कि पुरूष को शिक्षित करने पर पूरा परिवार शिक्षित होता है। आज के युग मे नारी को सुशिक्षित करना बहुत अनिवार्य है।

इस अवसर पर ग्रामीण जनता भी भारी सख्या मे उपस्थित थी। श्री अर्जुनदेव आर्य 'विषम' सभा मत्री ने रोचक कविता सुनाई तथा अन्य वक्ताओ मे डॉ धीरज सिह श्री देवेन्द्रपाल वर्मा श्री प्रेमकिशोर कुलश्रेष्ठ डॅा. जयप्रकाश भारती आदि के अलावा श्रीमती आशा शर्मा ब्र0 श्री कड़कदेव आर्य श्री रामचन्द्र शर्मा के सुमधुर सगीतमय भजनों ने जनता का ह्रदय मोहित कर लिया। श्री सच्चिदानन्द गुप्त ने सम्मेलन का समापन किया।

सचालन श्री सुनील कुमार सक्सेना कर रहे थे तथा जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री हर्षवर्धन आर्य इस सम्मेलन के सयोजक थे। समवेत स्वर में शान्तिपाठ के पश्चात् सम्मेलन की कार्यवाही समाप्त हुई। —आर्य मित्र सवाददाता

लोकतन्त्र के सजग प्रहरी—कृष्णकान्त

—चौधरी अमर सिह

भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम कृष्णकान्त की मृत्यु का समाचार सुनकर एकाएक विश्वास नही हुआ। दूरदर्शन पर घोषणा हुई कि कृष्णकान्त अब नही रहे। गाधी वादी आदर्शों एव लोकतन्त्र को समर्पित एक नायक [illegible] क बावजूद सादगी और अपन आदर्शो को नही छोडा। उन्होने लोकतन्त्र को मजबूती प्रदान करने के लिए बराबर धैर्य एव साहस के साथ प्रयास किये। कृष्णकान्त जी ने काग्रेस मे रहते अनेक पदो पर काम किया। जनता पार्टी [illegible] भी जनता सगद [illegible] कार्य समिति [illegible] सदस्य रहे। वर्ष 1977–80 मे चण्डीगढ से लोकसभा सदस्य 7 फरवरी 1990 से 21 अगस्त 1997 तक आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल [illegible] 1997 [illegible] तक भारत के उपराष्ट्रपति एव राज्य सभा के सभापति रहे।

आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल के रूप मे उन्होने केन्द्र राज्य सम्बन्धो को नया आयाम देने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एन टी रामाराव के मुख्यमन्त्रित्व काल मे उनके ही दामाद चन्द्रबाबू नायडू वर्तमान मुख्यमत्री के विद्रोह करने पर आन्ध्र प्रदेश की समस्या का विवेकपूर्ण समाधान कर चन्द्रबाबू नायडू आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमत्री बने। उपराष्ट्रपति के रूप मे भी उन्होने भारतीय राजनीति पर अपनी छाप छोडी। आज के समय मे जहा राजनीतिज्ञ छोटे–छोटे स्वार्थों के लिए अपनी लडाई सडको पर ले जाते हैं वहीं कृष्णकान्त जी जैसे राजनेताओं ने राजनीतिक पूर्वाग्रहो से हटकर राष्ट्रहित मे व्यापक सहमति बनाने के भरपूर प्रयास किये। इसी कारण उनके राज्य सभा के सभापति के रूप में भी पुरानी काग्रेस की पृष्ठभूमि होने के बावजूद उन्हे भारतीय जनता पार्टी काग्रेस तेलगूदेशम वामदलो समाजवादी पार्टी तथा अन्य अनेको राजनीतिक दलो का समर्थन मिलता रहा।

अपने प्रारम्भिक दिनो मे वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसधान की गतिविधियो से जुडे रहने के कारण विज्ञान टैक्नोलाजी परमाणु ऊर्जा अन्तरिक्ष अनुसन्धान के विभिन्न कार्यक्रमो को आगे बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे राजनेता न होते तो शायद वैज्ञानिक होते। सार्वजनिक [illegible] रहत थे। इन बुराईयो को दूर करन के लिए विभिन्न राजनीतिक पार्टियों से आग्रह करते रहे। प्रेस की आजादी के वे प्रबल समर्थक थे। भारतीय प्रेस परिषद को सशक्त बनाने मे उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

कृष्णकान्त जी ने जीवन के हर मोड़ पर अधिकारों की लडाई लड़ी। आजादी के बाद भारतीय राजनीति मे चन्द्रशेखर मोहन धारिया के साथ युवातुर्क के रूप में उस समय की राजनीतिक व्यवस्था को हिलाकर रख दिया था। इन्दिरा गाधी के काल मे इस मण्डली ने देश मे सामाजिक और आर्थिक बदलाव के लिए व्यापक परिवर्तन लाने में पूर्ण समर्थन दिया था। काग्रेस विभाजन और 1971 भारत पाक युद्ध में भारत की ऐतिहासिक विजय के बाद श्रीमती इन्दिरा गाधी से इनकी वैचारिक दूरी बढती गयी और धीरे–धीरे वे जयप्रकाश नारायण के आदर्शो से जुडते चले गये तथा 1975 में इमरजेन्सी लगने पर इन्हे अन्य विरोधी नेताओं के साथ जेल जाना पडा।

भाजपा द्वारा कृष्णकान्त के साथ घिनौना मजाक

कृष्णकान्त जी भारत के नौवे उपराष्ट्रपति थे। पाच उपराष्ट्रपति स्वभाविकरूप से राष्ट्रपति बनें। वी वी गिरी जी कागेस से विद्रोह कर इन्दिरा गाधी के समर्थन से राष्ट्रपति बने। भाजपा श्री के आर नारायण को दुबारा राष्ट्रपति नही बनाना चाहती थी इसलिए श्री पी सी एलैक्जेण्डर महाराष्ट्र के राज्यपाल थे उनकी राष्ट्रपति बनाने की बात चली परन्तु श्री एलैक्जेण्डर के नाम पर [illegible] नाम सवसम्मत उम्मीदवार के रूप मे लिया और सोनिया गाधी के सूचना भेजन पर सोनिया गाधी ने उनके नाम पर तुरन्त स्वीकृति द दी। सोनिया गाधी ने उन्हे बधाई दे डाली। न केवल सोनिया गाधी बल्कि अन्य अनेक नेताओ और श्री अटल बिहारी वाजपेयी [illegible] चुनाव क लिए फोन कर कृष्णकान्त जी को बधाई दी परन्तु घटना क्रम एकाएक तेजी से बदला और प्रधानमत्री का प्रस्ताव [illegible] दबाव डाला और प्रधानमत्री की ओर से कृष्णकान्त जी से खेद प्रकट करना भी उचित नही समझा। तुच्छ राजनीति किसी सीधे–सादे व्यक्ति के साथ कैसा क्रूर मजाक कर सकती है और फिर उन्होने कभी राष्ट्रपति पद के लिए दावा नही किया। उनमे गौरव व आत्मसम्मान था वे राजनीतिक स्वार्थों प्रचार व जोड तोड की राजनीति से दूर रहते थे। वे भले व्यक्ति थे अत अपने दिल की चोट व निराशा व्यक्त नही करते थे। फिर उन्होने तो पद मागा नही था। राष्ट्रपति पद के लिए प्रयास भी नही किया था लेकिन उनके साथ किये गये अपमानजनक व्यवहार से उन्हे गहरी चोट लगी जिससे उनकी जीवन लीला समाप्त हुई। आने वाला समय इसका जवाब मागेगा और उसकी कीमत चुकानी होगी। उनके जीवन की राजनीतिक उपलब्धिया कम महत्वपूर्ण नही थी।

इतना लम्बा राजनीतिक जीवन बेदाग कोई लोकतन्त्र का सच्चा सेनापति ही जी सकता है। भारतीय इतिहास मे इस सेनानी का नाम स्वर्णाक्षरो मे लिखा जायेगा। ऐसे निर्भीक लोकतन्त्र के प्रहरी को शत–शत नमन

अमर सिह एडवोकेट
सी–12 महेश नगर
80 फिट रोड जयपुर–15

हार नहीं होती

[illegible]
कोशिश करने वालो की हार नही होती।।
नन्हीं चीटी जब दाना लेकर चलती है।
चढ़ती दीवारो पर सौ बार फिसलती है।।
मन का विश्वास रगो मे साहस भरता है।
चढ़कर गिरना गिरकर चढ़ना न अखरता है।।
आखिर उसकी महनत बेकार नहीं होती।
कोशिश करने वाला की हार नहीं होती।।
[illegible]
जा जा कर खाली हाथ लौट आता है।।
मिलते न सहज मे मोती गहरे पानी मे।
बढ़ता दुगुना उत्साह इसी हैरानी मे।।
मुट्ठी उसकी खाली हर बार नहीं होती।
कोशिश करने वालो की हार नही होती।।
असफलता एक चुनौती है स्वीकार करो।
क्या कमी रह गई देखो, और सुधार करो।।
अब तक न सफल हो नींद चैन को त्यागो तुम।
सघर्षों का मैदान छोड मत भागो तुम।।
कुछ किये बिना ही जय जय कार नहीं होती।
कोशिश करने वालों की हार नही होती।।

प्रेषक— आर्य समाज [illegible]

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित वृष्टि यज्ञ

सार्वदेशिक सभा एक प्राईवेट लिमिटेड कम्पनी बनकर रह गई है

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के महामंत्री श्री इन्द्रदेव जी के निमन्त्रण पर दिनांक 03 08 2002 को प्रात साढे सात बजे आर्य समाज मिन्टो रोड नई दिल्ली मे उपस्थित हुआ अत्यन्त ध्यानपूर्वक जब देखा तो ज्ञात हुआ कि न यहा सार्वदेशिक सभा के अधिकारी है न कोई विद्वान न कोई यजमान। हा यज्ञप्रेमी दानवीर श्री गणेशदास जी मुख्य यजमान के आसन पर विराजमान थे। अन्य सब आसनो पर स्वतन्त्रतापूर्वक आहुति देने वाले व्यक्ति उपस्थित होकर आहुति दे रहे थे।

यज्ञ के विशेषज्ञ श्री पूज्य स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती के ब्रहमत्व मे वृष्टि यज्ञ हो रहा [illegible] से निराश वातावरण पाया।

वृष्टि यज्ञ के अनुकूल न सामग्री और न ही समिधाए। वेदपाठी तोता रटन्त की भाति मन्त्र पाठ कर रहे थे मानो कही रेल या हवाइ जहाज पकडना हो। अश्रद्धा पूर्ण वृष्टि यज्ञ एक उपहास मात्र रहा।

सार्वदेशिक सभा का आयोजन हो और उपस्थिति कुल 40 50 व्यक्ति हो यह शोभानीय नहीं है न कोई पूर्व सूचना जनश्रुति के आधार पर व्यक्ति उपस्थित हो रहे थे। यह सारा दृश्य श्री रामफल जी बसल सपत्नी चिन्तित मुद्रा से देख रहे थे।

वृष्टि यज्ञ मे आर्यों से अन्य वर्ग का कोई व्यक्ति न था। व्यर्थ समय व्यतीत कर रहे थे [illegible] दिखाई दे रही थी। न कोई राष्ट्रीय नेता था।

यज्ञ ता श्रद्धापूर्ण विधि से किया हुआ ही फलीभूत होता है। सार्वदेशिक सभा स्तर पर राष्ट्र की राजधानी दिल्ली मे आयोजित वृष्टि यज्ञ किया और वह भी उस ऐतिहासिक स्थल पर जहा भारतवर्ष की हिन्दुवादी सरकार ने एक वर्ष पूर्व आर्य समाज मदिर को बुलडोजरो से ध्वस्त कर दिया हो। उसके लिए जानकारी यह है कि इस वृष्टि यज्ञ के लिए न तो अन्तरग सभा बुलाई गई न दिल्ली के आर्य जनो को विश्वास मे लिया गया न समाचार पत्रो मे कोई सूचना दी गई यह इस बात का प्रमाण है कि सार्वदेशिक सभा को 2 3 अधिकारी ही प्राईवेट लि कम्पनी की भाति चला रहे है।

मिन्टो रोड आर्य समाज मदिर की भूमि वापिस लेने के लिए हो रहे प्रयासो पर मीडिया एव गुप्तचर विभाग द्वारा दी गई रिपोर्ट का सरकार पर क्या प्रभाव पडगा

भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम श्री कृष्णकान्त का अन्त्येष्टि सस्कार सार्वदेशिक सभा की देख रेख में सम्पन्न हुआ। राष्ट्रीय समाचार पत्रो मे इस बात का कोई वर्णन नही परन्तु सार्वदेशिक तथा आर्य सन्देश पत्रो म सभा के अधिकारियो के चित्र और वर्णन ही भरे पडे है। [illegible] भविष्य मे उपदेशको पुरोहितो तथा विद्वानो की आवश्यकता नही रहगी क्योकि सभा के अधिकारी ही सार्वदेशिक सभा की देख रेख मे सभी कर्मकाण्ड सम्पन्न कराया करेगे।

वृष्टि यज्ञ के सम्बन्ध मे ग्राम्य समाज मे कुछ टोने टोटके प्रचलित हैं। जैसे मेढक–मेढकी का विवाह गीदड गीदडी का विवाह मेढको की बारात लेकर चलना आदि। कुछ ग्राम अचलो मे यह प्रसिद्ध है कि इन्द्र भगवान को प्रसन्न करने के लिए नग्न महिलाये खेता मे हल चलावे। बिना विधि विधान के बिना श्रद्धा के विधि विहीन सामग्री के बिना विशेष चयनित वेद मत्रो के बिना यजमान और ब्रह्मा के एकनिष्ट तपस्या के लिये आर्य समाजी यज्ञ भी टोने टोटके तो साबित नहीं हो रहे हैं। प्रा लि कम्पनी क्या इसी दिशा की ओर चल रही है।

गुरूकुल कागडी गुरूकुल विश्वविद्यालय मे पिछले दिनों अन्तर्राष्ट्रीय शताब्दी महासम्मेलन का आयोजन भी इसी प्रा लि कम्पनी ने आयोजित किया था। कहने को तो गुरूकुल कागडी का सचालन आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब हरियाणा तथा दिल्ली समाये करती है परन्तु देखने मे यह आया है कि वहा पर हरियाणा सभा का कोई स्थान नही है स्वामी ओमानन्द प्रो शेरसिह [illegible] पजाब सभा का दुमछल्ला मात्र है। दिल्ली से केवल दो महानुभाव विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी मे हैं। वर्चस्व वहा केवल पजाब सभा का ही है और क्यो न हो? सारी सम्पत्ति आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब लाहौर के नाम थी

अब वह आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के नाम है। कहते है कि गुरूकुल कागडी की भूमि विक्रय से प्राप्त करोडो रुपया भी जालन्धर मे ही जमा है विश्वविद्यालय का स्वामी भी पजाब सभा ही है। यह भी प्रा लि कम्पनी का ही चमत्कार है।

(सब काम धर्मानुसार अर्थात सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए– महर्षि दयानन्द)

सम्पादक–राजपालसिह शास्त्री मधुरलोक

सभी आर्य बन्धुओं को भजनोपदेशक की सूचना

सभी आर्य बन्धुओ को सूचित किया जाता है कि आप जन्म दिन विवाह सस्कार उत्सव आदि कार्यक्रमो के लिये आप एक मास पहिले कु उदयवीरसिह आर्य भजनोपदेशक को बुलाकर एक बार सेवा का अवसर देवे सम्पर्क–प जानकीप्रसाद शर्मा आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर–४ फोन–६२१८५९ अथवा कु उदयवीर सिह आर्य ग्राम पो उसपार जिला–मथुरा–२८१००२ फोन–४०६४३१

आर्य समाज मन्दिर, बी–ब्लाक, जनकपुरी, नईदिल्ली–58

हमारी ज्वलन्त समस्याओ का समाधान–सस्कारित जीवन

नई दिल्ली आर्य समाज बी ब्लाक जनकपुरी के मच से बोलते हुए प्रसिद्ध आर्य विदुषी डा रमाजी ने कहा कि आज जीवन म बहुत समस्याये है प्रत्येक प्राणी दुखी और तनावग्रस्त है। दैनिक जीवन के अनेक उदाहरण देकर उन्होने यह सिद्ध किया कि आज की युवा व किशोर वर्ग अपने बुजुर्गों का सम्मान नही करते बच्चो के पास अपने बडे बूढो के पास बैठकर उनके सुख दुख बाटने का समय तो नही है किन्तु रात के 12 बजे तक टी वी या कम्प्यूटर के सामने बैठे रहते है। आज वृद्ध पीढी एकाकीपन की पीडा से गुजर रही है और परिवार के सदस्यो मे त्याग भावना एव सामजस्य भावना का अभाव है अपने जीवन मे हमे आज जिन ज्वलन्त समस्याओं का सामना करना पड रहा है उसका एकमात्र कारण यही है कि हम अपने बच्चो को अच्छे सस्कार नही दिए हमारा प्रयास होन चाहिए कि हम अपने बच्चो को आर्य समाज [illegible] सुन्दरलाल कथूरिया न डा रमा जी क प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा कि पहले हमे अपने जीवन को आदर्श तथा सस्कारित करना होगा तभी हमारे बच्चो पर प्रभाव पडेगा कायक्रम का सफल सयोजन सचालन मत्री जगदीशचन्द्र गुलाटी ने किया प्रवचन से पूर्व सध्या यज्ञ एव भजनोपदेश भी हुआ

[illegible] के वानप्रस्थी श्री चैनमुनि जी ने सब का मनमोह लिया शातिपाठ एव प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ

मत्री

आर्य समाज, जवाहर बाजार, टोक

महामहिम उपराष्ट्रपति का हार्दिक बधाई

राजस्थान की पावन धरती शेखावाटी अचल मे जन्मे श्री भैरोसिह शेखावत द्वारा महामहिम उपराष्ट्रपति के पद का शपथ ग्रहण करने का दायित्व सम्भालन पर आय समाज परिवार टोक की ओर से हार्दिक बधाइया एव उनके जीवन की दीर्घायु होने की शुभकामनाये प्रदान करता है। राजस्थान के लिए यह गौरव का विषय है कि श्री शेखावत के मुख्यमन्त्रित्व काल मे उदयपुर मे महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित 'सत्यार्थ प्रकाश' वैदिक ग्रन्थ के लिये 'सत्यर्थ प्रकाश' न्यास स्थापित कर जनहित के लिये सराहनीय कार्य किया है 1991 मे गुलाब बाग उदयपुर मे स्थित नवलखा महल सिर्फ एक रुपये क पटटे पनर आय समाज को आवटन कर एक महान पुण्य का कार्य किया है जिसे इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखा जायेगा शेखावत जी को उपराष्ट्रपति बनने पर बधाइया देते हैं

श्री सुखलाल आर्य प्रधान श्री रामरतन आय कोषाध्यक्ष श्री केदारनारायण विनय श्री सीताराम शर्मा श्री जगदीशचन्द्र कसेरा मत्री श्री नानगराम आर्य श्री गोरधनदास श्री मनीष कुमार सुरेश कुमार आदि

जगदीशचन्द्र कसेरा
मत्री

आर्य समाज कसेरा भवन पर आज दिनाक 18 08 2002 का साप्ताहिक विश्व शाति महायज्ञ एव साप्ताहिक सत्सग का आयोजन किया गया इसमे यज्ञ पर मुख्य यजमान श्री जगदीशचन्द्र कसेरा रहे तथा पुरोहित श्री रामरतन आर्य ने वैदिक मत्रो से यज्ञ कार्य सम्पन्न करवाया।

श्री रामरतन जी ने अपने प्रवचन द्वारा वैदिक ज्ञान को मानव क जनकल्याण के लिए आवश्यक बताते हुए यजुर्वेद के 46 वे अध्याय के मन्त्र का व्याख्यापूर्वक उपस्थित श्रोताओ को सविस्तार समझाते हुए बताया कि यथेमाम वाच कल्याणी मा वदानि जनेभ्य अर्थात वेद पढने [illegible] को क्षत्रिय अपनी शास्त्र शक्ति से राष्ट्र को वैश्य अपनी धनोपार्जन कला से राष्ट्र के अभाव को शूद्र अपने पावन श्रम से सहयोग देकर कर्त्तव्य भाव से अपने राष्ट्र धर्म का पालन करना सिखाते हैं।

जगदीशचन्द्र कसेरा
मत्री

महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टकारा मे भव्य ऋषि मेला

28 02 2003 से 02 03 2003 नई दिल्ली

आर्य जगत को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि हर वर्ष की भाति अगले वर्ष 2003 में महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टकारा मे ऋषि बोधोत्सव 28 02 2003 से 02 03 2003 को सम्पन्न होगा। मेरी विश्व की समस्त आर्य समाजो स्त्री आर्य समाजो शिक्षण सस्थाओ गुरूकुल एव समस्त आर्य जनता से प्राथना है कि यह तिथिया अभी से अकित कर ले और इन दिनों मे और कोई कार्य न रखकर महर्षि दयानन्द जन्म टकारा मे सपरिवार पधारे वहा आपके ठहरने और भोजन आदि की सब सुव्यवस्था टकारा ट्रस्ट की ओर से होगी। टकारा पहुचने के लिये राजकोट गुजरात तक रेल द्वारा हवाई जहाज द्वारा प्रतिदिन भारत से गाडिया चलती है और राजकोट और टकारा केवल 46 मिलोमीटर की दूरी पर है।

रामनाथ सहगल
श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टकारा
आर्य समाज अनारकली मदिर मार्ग नई दिल्ली 1

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग दें।

1 देश-विदेश की आर्य समाजो मे घटित घटनाओ से आर्य जगत को अधुनातन जानकारी देना।

2 आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।

3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोडना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओ पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।

4 आर्य समाज द्वारा धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र मे किये जा रहे कार्यों की जानकारी देना।

5 समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओ का आर्य जगत को परिचय देना।

6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एव युवको का सगठन खडा करना।

7 आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाओं के माध्यम से देश मे सशक्त छात्र शक्ति खडी करना।

8 विश्व के आर्य परिवारो का सगठन बनाना।

9 देश के 100 विद्वानो की परिषद बनाना।

10 विश्व की समस्त भाषाओं मे वेद सन्देश प्रकाशित कर वैदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।

11 विश्वशाति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरुद्ध मुहिम छेडना तथा देश में राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्राति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीर्वाद दें कि परमपिता परमेश्वर हमे इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामर्थ्य दे।

तन मन धन से सहयोग दें
पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने का कष्ट करे।

सगच्छध्वं—मिल के चलो

स्वामी अग्निवेश के संयोजकत्व में आर्य समाज की पहल पर अयोध्या से दिल्ली तक सद्भावना यात्रा

भारत के निवर्तमान राष्ट्रपति श्री के.आर.नारायणन इस अभियान के प्रमुख संरक्षक

मान्यवर

सादर नमस्ते

आपको विदित है कि कुछ साम्प्रदायिक ताकते आम आदमी को धर्म के नाम पर लडाकर देश को तोडने की कोशिश कर रही हैं। इन साम्प्रदायिक तत्वो का यदि समय रहते [illegible] नही दी गई तो [illegible] राष्ट्र भयकर नासूर

भारत निर्माण महाअभियान द्वारा सञ्चलित

''मिल के चलो''

(अयोध्या से राजघाट तक)

27 सितम्बर से 2अक्टूबर,2002 तक

सर्व धर्मशांति सद्भावना तीर्थ यात्रा का कार्यक्रम

को झेलने के लिए मजबूर होगा। विडम्बना की बात यह है कि इन साम्प्रदायिक ताकतों को अने राजनैतिक फायदे के लिए कुछ राजनीतिज्ञ व राजनैतिक दल सरे आम समर्थन व सहयोग देकर उनका मनोबल बढा रहे हैं। देश भक्त नागरिकों के लिए यह चिन्ता की बात है। एक राष्ट्रवादी सगठन होने एव 'वसुधैव कुटुम्बकम' के सिद्धान्त के मानने वाले आर्य समाज का यह दायित्व है कि इस एतिहासिक मोड पर वह आगे आय तथा सभी धर्मो में निहित सहिष्णुता और करुणा की भावना को जागृत करने के लिए राष्ट्रीय अभियान प्रारम्भ करें। आर्य समाज के सस्थापक महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है— 'यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड सर्वतन्त्र सिद्धात अर्थात जो-जो बाते सबके अनुकूल सब मे सत्य है उनका ग्रहण और जो एक दूसरे के विरुद्ध बाते हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से बर्तें-बर्तायें तो जगत का पूर्णहित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानो मे विरोध बढकर अनेक विधा दु ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

इसी भावना के अनुरूप देश में साम्प्रदायिक सद्भाव धार्मिक सहिष्णुता आपसी विश्वास व मैत्री की साझी विरासत को कायम रखने के लिए आर्य समाज के पहल पर हिन्दू मुस्लिम [illegible] ईसाई आदि [illegible] धर्मो के आध्यात्मिक नेता अयोध्या से दिल्ली तक सद्भावना यात्रा करेंगे जिसका नाम होगा 'मिल के चलो'। पूर्व प्रधानमत्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल पूर्व न्यायाधिपति कृष्णा अयर प्रसिद्ध समाजसेवी अन्ना हजारे, सुश्री निर्मला देशपाण्डे गाधीवादी सिद्धराज ढड्ढा आर्यनेता प्रो कैलाशनाथ सिंह श्री सत्यव्रत सामवेदी श्री जगवीर सिह आदि इसमे बढचढ कर भाग लेंगे। धार्मिक जगत के अनकों शकराचार्य महामण्डलेश्वर मौलाना पादरी बिशप जत्थेदार एव साध्वी, इसमें शिरकत कर रहे हैं। अनेक दृष्टि से यह यात्रा ऐतिहासिक होगी।

27 सितम्बर 02 को पवित्र नगरी अयोध्या से शुरू होने वाली यह यात्रा गाधी जयन्ती अर्थात 2 अक्टूबर 02 को दिल्ली पहुचेगी। दिल्ली में हजारों लोग इण्डियागेट से राजघाट (महात्मागाधी की समाधि) तक जायेंगे। इस

यात्रा के दौरान निम्नलिखित पडाव निश्चित किए गये हैं—

प्रस्तावित कार्यक्रम

पहला दिन 27 सितम्बर 2002

साय 3 से 5 बजे तक हनुमान गढी मन्दिर अयोध्या मे विशाल सवधर्म सभा का आयोजन रात्रि विश्राम अयोध्या मे।

दूसरा दिन—28 सितम्बर,2002

अयोध्या से फैजाबाद प्रात 9 30 बजे फैजाबाद से बाराबकी प्रात 11.00 बजे जनसभा व दोपहर का भोजन। बाराबकी से लखनऊ साय 6 00 बजे। लखनऊ मे जनसभा प्रेस कान्फ्रेन्स व रात्रि विश्राम।

तीसरा दिन—29 सितम्बर,2002

प्रात 9 00 बजे लखनऊ से सीतापुर के लिए प्रस्थान। सीतापुर म 11 30 बजे जनसभा व भोजन। सीतापुर से 3 00 बजे साय प्रस्थान व 5 30 बजे शाहजहापुर। शाहजहापुर मे जनसभा प्रेस कान्फ्रेन्स व रात्रि पहुच विश्राम।

चौथा दिन—30 सितम्बर,2002

प्रात 9 00 बजे शाहजहापुर से बरेली के लिए प्रस्थान बरेली मे प्रात 11 बजे जनसभा व भोजन। बरेली से 3 00 बजे साय प्रस्थान व 7 00 बजे साय मुरादाबाद पहुच। मुरादाबाद मे जनसभा प्रेस कान्फ्रेन्स व रात्रि विश्राम।

पाचवा दिन—01 अक्टूबर,2002

प्रात 9 00 बजे मुरादाबाद से गढ मुक्तेश्वर के लिए प्रस्थान गढ मुक्तेश्वर में दोपहर 1 00 बजे जनसभा व भोजन गढ मुक्तेश्वर से 3 00 बजे प्रस्थान व 6 00 बजे मेरठ पहुच। मेरठ मे जनसभा प्रेस कान्फ्रेन्स व रात्रि विश्राम।

छठा दिन—02 अक्टूबर,2002

प्रात 8 00 बजे मेरठ से इण्डिया गेट दिल्ली के लिए प्रस्थान व 10 00 बजे इण्डिया गेट पहुच। इण्डिया गेट पर जनसभा 10 00 बजे इण्डिया गेट से राजघाट तक शान्ति मार्च 11 00 बजे से 1 00 बजे तक। सकल्प 1 00 बजे से 1 30 बजे तक।

सातवा दिन—03 अक्टूबर,2002

यात्रियों का एक शिष्ट मण्डल भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्री ए पी जे अब्दुल कलाम से मिलकर अपने अनुभव [illegible] करेगा और भावी योजना पर विचार विमर्श करेगा।

आप आर्य समाज के एक प्रखर चिन्तक एव मनीषी है। आपसे अनुरोध प्रार्थना है कि उपरोक्त यात्रा मे अपनी भागीदारी करने तथा राष्ट्र में शान्ति एव सद्भाव का वातावरण तैयार करने के लिए अपना सक्रिय सहयोग देवें तथा यात्रा मे अवश्य पधारे। आप अपनी सस्था का बैनर व ओ३म का झण्डा भी अवश्य लेकर आवे। कृपया सूचित करे कि आपके साथ कितने व्यक्ति कब और कहा तक यात्रा मे शामिल होने वाले हैं। आशा एव विश्वास के साथ।

भवदीय, **स्वामी अग्निवेश**

सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक 64-13 जवाहर नगर द्वारा नीटू प्रिन्टिंग प्रेस [illegible] जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि. 652697 का. 622065 e-mail [illegible]
आर्य समाज [illegible] समिति एव [illegible] समिति आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

दर्द दे गया कोई

दिल में एक दर्द दे गया कोई, यादें दे सुख चैन ले गया कोई।
कैसा सौदा अनजाने में हो गया, बिन रिश्ते बंधन दे गया कोई।।
[illegible], [illegible] दे गया कोई।
ये आँसू [illegible], [illegible] दे गया कोई।।
[illegible], [illegible] कोई।

श्रीमती [illegible] प्रजापति 'पूजा'
313 दीपक [illegible]

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज राजापार्क जयपुर-4
राजस्थान

पंजियन संख्या RAJHIN(RNI)/2000/2637
डाक पंजीकरण संख्या RJ 2637

बुक पोस्ट

प्रेषित —

श्री जगदीश वेदालकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार [illegible]

...मानवता एव सम्पूर्ण क्रान्ति क लिये समर्पित पाक्षिक पत्र

॥ओ३म्॥
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य नीति

वर्ष 2 अक 41 21 सितम्बर 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पजियन सख्या RJ-3637/2001 वार्षिक मूल्य 75रुपये

स्वामी आत्मबोध सरस्वती ब्रह्मलीन

सांस के पर्दों में बजता ही रहा साज़े हयात, मौत के क़दमों की आहट तेज़तर होती गई

—सत्यव्रत सामवेदी

जयपुर 20 सितम्बर। राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले में एक मण्डी है जिसका नाम है गगापुर सिटी। इस छोटे से शहर की आर्य समाज बहुत जानदार है। प्रतिदिन 50 से 60 महिलाए प्रातःकाल दैनिक यज्ञ करने आती हैं। आर्य जगत का शायद ही ऐसा कोई विद्वान हो जिसे गगापुर सिटी में अनेक दिनों तक वेद चर्चा करने के लिए बाध्य न किया गया हो। किसी आर्य विद्वान को तीन दिन के लिये आमन्त्रित करते हैं और यदि उसके भाषण ने श्रोताओं के ह्रदय को छू लिया तो उसने अन्धकार में छलाग लगाकर अपने ह्रदय और मस्तिष्क को फ्रेक्चर कर लिया और फिर उसके लिये वहा 15 दिन या 30 दिन का विश्राम करना अनिवार्य हो जाता है। एक बार वेदामृत की मन्दाकिनी प्रवाहित करने वाले वेद मनीषी प शिव कुमार शास्त्री को गगापुर सिटी एक मास रूकना पड़ा।

मैंने अपनी आँखों से देखा कि श्री उत्तम चन्द शरर को 15 दिन तक वेद उपदेश देने के लिए बाध्य होना पड़ा। अत्यन्त करूण नयनो से उन्होंने कहा कि मुझे मुक्ति दिलाओं। मैंने विवशता व्यक्त की। मैंने कहा कि आज कल वेद कथा सुनने वाले नही मिलते और आप सौभाग्य से वेद प्रेमियों की गिरफ्त में आ गये तो बचना चाहते हैं।

इसी गगापुर सिटी मे 8 सितम्बर तक वेद प्रचार सप्ताह था और 7–8 सितम्बर को प्रवचन देने के लिए मुझे आमंत्रित किया था। 8 सितम्बर को पूर्णाहुति के दिन मैंने कहा कि आर्य जगत में आर्य विद्वानों का अकाल पड़ता जा रहा है। स्वामी दीक्षानन्द जी बहुत वृद्ध हो गए हैं। अब कही आने–जाने लायक नही रहे।

स्वामी विद्यानन्द जी भी इतने वृद्ध हो गए हैं कि उन्हे किसी उत्सव में ले जाना खतरे से खाली नहीं है। वे उत्सव स्थल पर पहुचने से पहले कहीं उड़ कर जा सकते हैं परन्तु गजब है कि अब भी वे कहीं भी चलने के लिये तैयार रहते हैं। अब स्वामी आत्मबोध जी सरस्वती को ही लीजिए। उन्होने कहा कि हरिद्वार से जो गाड़ी सीधी जयपुर आती है उसी से आ सकता हू क्योकि गाड़ी बदल कर आना मेरे बस की बात नही।

अत हमे जयपुर में वेद प्रचार सप्ताह श्रावणी पर्व से न करके 18 अगस्त से से करना पड़ा क्योंकि उसी दिन सीधी गाड़ी हरिद्वार से जयपुर आती थी। गाड़ी आई प्लेट फार्म नम्बर 2 का 3 था। अब पुल पर चढ़कर कैसे आएं। लिहाजा उनको स्टेशन से बाहर लाने की व्यवस्था करनी पड़ी। शत्–शत् नमन है इन पूज्य सन्यासियों को। शरीर साथ नही दे रहा फिर भी दयानन्द की आग इन्हें चैन से नहीं बैठने देती। दयानन्द के मिशन के लिये जब कहो तब तैयार हैं। परन्तु इनके जाने के बाद क्या होगा? आर्य समाज का उपदेशक बनने के लिये सारा जीवन साधना करनी होती है तब कही जाकर आर्य समाज का छोटा–मोटा

स्वामी जी भाषण देते हुए

उपदेशक बन पाता है। यह कोई रामायण महाभारत या भागवत की कथा तो है नहीं। एक राजा था जिसका नाम दशरथ था। उनकी तीन रानिया थी और चार पुत्र थे। उनके नाम थे राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न। कोई महाभारत

> *आर्य समाज, आदर्श नगर, जयपुर में 18 अगस्त से 25 अगस्त तक आयोजित वेद प्रचार सप्ताह में स्वामी जी ने घोषणा की थी–*
>
> *1 सत्यार्थ प्रकाश पर सर्वश्रेष्ठ निबन्ध व भाषण पर पाँच हजार रुपये का पारितोषिक।*
>
> *2 आर्य नीति के प्रकाशन के लिए प्रतिवर्ष 1200 रुपये का आर्थिक सहयोग।*
>
> *3 अपने जन्म दिन 30 जनवरी को आर्य वानप्रस्थ आश्रम में वैदिक विद्वान के रूप में श्री सत्यव्रत सामवेदी को सम्मानित करना एव स्वामी धर्मानन्द*
>
> *'।*

एव भागवत का कथा वाचक हो सकता है परन्तु आर्य समाज का उपदेशक बनने के लिये तो जीवन और जगत की समस्त विद्याओं का निष्णात विद्वान होना चाहिए। सृष्टि की उत्पत्ति कब हुई? ईश्वर का स्वरूप क्या है? मोक्ष कैसे मिलता है? मानव जीवन का लक्ष्य क्या है? आदर्श वैदिक परिवार कैसा होता है? जातिप्रथा अस्पृश्यता शिक्षा प्रणाली विश्व शाति पर्यावरण यहा तक कि परिवार नियोजन। सब प्रश्नो का वैदिक समाधान क्या है? लोक–परलोक सबके बारे मे बताओं। तो क्या होगा आर्य समाज का इन विद्वानो के जाने के बाद। मुझे याद नहीं घटा भर मैं क्या बोलता रहा।

भाषण समाप्त होने के बाद सुश्री इन्दु आर्य ने मुझे कहा कि स्वामी आत्मबोध जी नहीं रहे। मेरे पावो के नीचे से जमीन खिसक गई। सुश्री इन्दु आर्य गगापुर सिटी मे योग पर गत सात दिनो से प्रवचन दे रही है। वे भी वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर मे रहती हैं और स्वामी सत्यप्रिय जी की विदुषी शिष्या है। मैंने घबरा कर पूछा कि आपको कैसे मालूम कि स्वामी जी नही रहे? उन्होने एक नवयुवक की ओर इशारा करते हुए कहा कि उन्होने बताया है। गुरूकुल के स्नातक है और वानप्रस्थ आश्रम मे रहते हैं। मैने उस नवयुवक से पूछा कि आपको कैसे मालूम हुआ? कहा कि 2–3 दिन पूर्व मैं ऋषि उद्यान अजमेर मे था। वहीं समाचार आया था। मुझे विश्वास नहीं हुआ। मुझे लगा कि किसी दुष्ट ने झूठी खबर फैलाई है।

अभी 23 अगस्त को प्रात 5 बजे उन्हे राजी–खुशी दिल्ली के लिये कार मे बैठाकर रवाना किया था। जाते–जाते मुझे कहना नही भूले कि वानप्रस्थ आश्रम 29 जनवरी को ही आ जाना। आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर मे आयोजित वेद प्रचार सप्ताह मे स्वामी जी ने बताया था कि वे अपने जन्म दिन 30 जनवरी को प्रतिवर्ष किसी वैदिक विद्वान को सम्मानित करते हैं और स्वामी धर्मानन्द सरस्वती पुरस्कार देते हैं।

स्वामी जी ने घोषणा की कि इस बार यह पुरस्कार सत्यव्रत सामवेदी को देने का निर्णय लिया है। मैं कौनसा विद्वान हू जिसे सम्मानित करने का निर्णय लिया है। वेदों के प्रकाण्ड विद्वान स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती मेरी बहिन के श्वसुर थे। जब से स्वामी जी को मेरा और स्वामी जी का यह सम्बन्ध मालूम हुआ तब से मैं उनका स्नेहपात्र हो गया। स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती से ही स्वामी आत्मबोध जी सरस्वती ने दीक्षा ली थी। स्वामी धर्मानन्द जी के प्रति स्वामी आत्मबोध जी सरस्वती की असीम श्रद्धा थी जैसे स्वामी विरजानन्द जी के प्रति महर्षि दयानन्द की एव रामकृष्णहस के प्रति स्वामी विवेकानन्द जी की ।

वे अक्सर कहा करते थे कि मै आर्य जगत के सभी

विद्वानो के सानिध्य मे रहा हू। मैंने उन्हे बहुत नजदीक से देखा है परन्तु मैने स्वामी धर्मानन्द जी (पूर्व नाम श्री धर्मदेव विद्या मार्तण्ड) जैसा विद्वान निष्कपट चरित्रवान एव निष्काम कर्मयोगी नही देखा। मुझे गर्व है कि मैं एक ऐसे महान विभूति का शिष्य हू।

मैं कहता आँखिन देखी

आर्य जगत में प्रकाण्ड विद्वानो की कमी नहीं है। अपने भाषणों में सैंकडों वेद मत्रो और सस्कृत ग्रन्थो के उद्धरण देते हैं। श्रोताओ को इन उद्धरणो से कुछ मतलब नहीं क्योकि 99 प्रतिशत श्रोता सस्कृत जानते ही नहीं हैं। अत आर्य विद्वानों को वेद मत्रों और श्लोको के अर्थ बताने पड़ते हैं। भाषण का आधा समय इनके अर्थ बताने में ही व्यतीत हो जाता है।

हानि लाभ को समझे अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें अर्थात् जहा तक हो सके वहा तक अन्यायकारियों के दल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारूण दु ख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही चले जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक कभी न होवें।



श्री सत्यव्रत सामवेदी जी स्वामी जी को राजस्थानी साफा पहनाते



स्वामी जी श्री सत्यव्रत सामवेदी जी के साथ

स्वामी आत्मबोध जी आर्य जगत के एक मात्र सन्यासी थे जो पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये वेद मन्त्रो एव श्लोको के उद्धरणो से परहेज करते थे। मैंने बडे–बडे विद्वानो को भाषण से पहले दिन भर पुस्तकों को पढ कर भाषण की तैयारी करते देखा है परन्तु मैंने आज तक स्वामी आत्मबोध जी को कोई पुस्तक पढते नहीं देखा। उनके भाषण को सुनकर मुझे हमेशा सत शिरोमणि कबीर का निम्न पद याद आने लगता है–

तेरा मेरा मनुआ कैसे एक होई रे

तू कहता कागद की देखी मैं कहता आँखन देखी

मै कहता सुरझावन हारी तू राख्यो उरझाय रे

राम चरित मानस कंठस्थ परन्तु दीवाने सत्यार्थ प्रकाश के–

स्वामी जी को राम चरित मानस कठस्थ थी। वाराणसी जिनकी जन्म भूमि हो उनका राम चरित मानस के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक है। कभी–कभी वे राम चरित मानस की चौपाइयों और दोहो की झडी लगा देते थे जिन्हें सुनकर श्रोता भावविभोर हो उठते परन्तु स्वामी जी दोहे और चौपाई आर्य समाज के मन्तव्यो को पुष्ट करने के लिये ही सुनाते थे। वे अक्सर कहा करते थे कि श्रोताओ को खुश करने के लिये मैं दयानन्द के साथ विश्वासघात नही कर सकता। सत्य का मार्ग दिखाने वाली तो संसार मे केवल एक ही पुस्तक है–सत्यार्थ प्रकाश। वे मजाक में यह भी कहते थे कि मैं वेद का नहीं सत्यार्थ प्रकाश का प्रचारक हूँ। सत्यार्थ प्रकाश के बिना वेद समझ ही नहीं आ सकते। जो सत्यार्थ प्रकाश नहीं जानता वह वेद का प्रचार ही नहीं कर सकता। उनकी मान्यता थी कि ससार में यदि क्रान्ति आयेगी तो सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से। वे सत्यार्थ प्रकाश को मानव जाति के कल्याण के लिये विश्व का सर्व श्रेष्ठ ग्रथ मानते थे। उन्हें सत्यार्थ प्रकाश के सैंकडो उद्धरण कठस्थ थे और श्रोताओं को भी उन उद्धरणों को बोलने के लिये प्रेरित करते। सत्यार्थ प्रकाश का निम्नलिखित उद्धरण उन्हें बहुत प्रिय था जिसे वे श्रोताओं को बोलने के लिये कहते थे–

मनुष्य उसी को कहना जो कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दु ख और



दाए से बाए श्री देवेन्द्र त्यागी स्वामी आत्मबोध जी ब्र प्रेम नारायण शास्त्री एव श्री बलदेवराज आर्य

उनकी मान्यता थी कि महर्षि के इसी विचार से ही विश्व में शान्ति हो सकती है और मत मतान्तरो के विवाद समाप्त हो सकते हैं।

स्वामी जी श्रोताओ को साफ कहते थे कि मैं सस्कृतज्ञ नही हू। हिन्दी भी नहीं जानता हू। मैं तो केवल उर्दू और अग्रेजी पढा हू। मुझे अग्रेजी और उर्दू मे भाषण देने में ही सुविधा होती है परन्तु ये सब वे नम्रतावश कहते थे। हिन्दी पर भी उनका जबर्दस्त अधिकार था। पाण्डित्य प्रदर्शन से वे दूर रहते थे। उनकी भाषा मस्तिष्क को नही दिल को छूती थी। कबीर की भाँति भाषा उनकी चेरी थी। जैसे वे हिन्दी के डिक्टेटर हों। मानो कि हिन्दी उनका हुक्म बजाने के लिये हाथ जोडकर खडी हो।

स्वामी जी एक आग थे

इसीलिये अपवित्रता को वे जलाकर भस्म कर देते थे। यदि कोई वक्ता सत्यार्थ प्रकाश के मन्तव्यों के विरूद्ध बोलता दिखाई देता तो वे उन्हें भरी सभा में फटकार देते थे। इससे अनेक लोग उनसे रूष्ट भी हो जाते थे। रूष्ट लोग उन्हें आर्य भिक्षु के स्थान पर आर्यबिच्छु कह कर अपनी भड़ास मिटाते थे।

दानवीर एव याज्ञिक स्वामी जी

स्वामी जी का जीवन पूर्णत यज्ञमय था। उन्हें जो कुछ भी दक्षिणा में मिलता उसे वे आर्य समाज के प्रचार–प्रसार एव जनहित के लिये दान में दे देते थे। अजमेर में भिनाय की कोठी जहा महर्षि का निर्वाण हुआ था आर्य जगत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दर्शनीय स्मारक बन गया है। स्वामी जी उसके अध्यक्ष थे और दक्षिणा से प्राप्त लाखों रुपये उन्होंने आर्य समाज भिनाय की कोठी को दान में दे दिये।

वे निर्भयता की प्रतिमूर्ति थे। कोई लाग–लपेट नहीं। जो सत्य लगा उसे कह दिया। किसी की नाराजगी की वे परवाह नहीं करते थे। आचरण की शुद्धि पर वे सबसे अधिक बल देते थे। सत्यपथ पर चलने के लिये प्रेरित करते हुए वे श्रोताओ को कहते थे–

निर्धन धनवान से डरता है।
निर्बल बलवान से डरता है।
मूर्ख विद्वान से डरता है।
किन्तु चरित्रवान से ये तीनों डरते हैं।

महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त सत्यार्थ प्रकाश के अप्रतिम प्रवक्ता निर्भीकता की प्रतिमूर्ति सत्यपथ के दृढ़ अनुगामी अक्खड़ एवं मस्तमौला वाणी परोपकारी प्रतिभा के धनी पूज्यवर स्वामी आत्मबोध जी को हमारा शत् शत् नमन।

आर्य वीर दल;महर्षि दयानन्द स्मृति भवन रातानाड़ा,जोधपुर

आर्य वीर दल जोधपुर ने विशाल श्रावणी पर्व मनाया

जोधपुर 15 सितम्बर। आर्य वीर दल जोधपुर द्वारा 14 सितम्बर को महर्षि दयानन्द स्मृति भवन रातानाड़ा के प्रागण मे विशाल श्रावणी पर्व मनाया गया जिसमे जोधपुर के अलावा जयपुर पाली शिवगज सुमेरपुर सिरोही आदि स्थानो के आर्य वीर दल के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

कार्यक्रम के अनुसार यज्ञ आर्य समाज विश्वकर्मा नगर द्वारा सम्पन्न करवाया गया। आर्य वीर दल जोधपुर द्वारा यज्ञ में 5000 आहूतियाँ दी गई।

भजनो के कार्यक्रम की प्रस्तुति आर्य समाज पाबूपुरा ने बहुत सुन्दर तरीके से की जिसमे दो नन्हे बच्चो ने सुन्दर तरीके से ईश प्रार्थना प्रस्तुत कर सबको भावविभोर कर दिया। आर्य समाज जोधपुर रातानाड़ा की वरिष्ठ उप प्रधान श्रीमती कमला जी ने भजन प्रस्तुत किया। आर्य वीर दल जोधपुर के सचालक नारायण सिह आर्य ने वीर रस का गीत 'मेरा रग दे बसती चोला' की प्रस्तुति कर वातावरण को वीर रस से ओत प्रोत कर दिया।



श्री रामसिह जी आर्य शहर विधायक श्री जुगल जी काबरा श्री गणपतसिह जी चौहान श्री सत्यव्रत जी सामवेदी श्री रामेश्वर जी दाधीच नगर विकास न्यास के अध्यक्ष श्री राजेन्द्रसिह जी सोलकी और श्री देवेन्द्र जी त्यागी श्रावणी पर्व के समापन के बाद बैठे

आर्य वीर दल राजस्थान के अध्यक्ष र... आर्य ने महर्षि दयानन्द द्वारा दिये सन्देश को मानवता के लिये कल्याणकारी बताया।

समारोह के मुख्य अतिथि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के मत्री माननीय श्री सत्यव्रत सामवेदी ने अपने उद्बोधन मे राम और कृष्ण के चरित्र की सच्ची व्याख्या करते हुए उपस्थित मातृशक्ति का आह्वान किया कि वे अपने बच्चो को चरित्र निर्माण के लिये आर्य वीर दल मे भेजे इसी मे राष्ट्र व मानवता का हित है।

समारोह का प्रमुख आकर्षण आर्य वीर दल जोधपुर के अध्यक्ष श्री गणपतसिह पवार द्वारा विशिष्ट उपलब्धियो एव विशेष सामाजिक कार्यो हेतु श्रीमान नारायण सिह जी आर्य सचालक आर्य वीर दल जोधपुर श्रीमान नारायण सिह जी खीची को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बोक्सिग के टीम मैनेजर श्रीमान दलपतसिह जी आर्य जालोर को एशियन कुश्ती के टीम मैनेजर श्री जगदीश प्रसाद आर्य एव श्री हेमसिह आर्य को पर्यावरण के क्षेत्र मे उल्लेखनीय उपलब्धियो के लिए सम्मान पत्र देकर मुख्य अतिथि सत्यव्रत जी सामवेदी से सम्मानित कराया। समारोहमे पधारे सभी वरिष्ठ नागरिको का परिचय भी करवाया गया।

समारोह के अन्तिम चरण मे नगर विकास न्यास के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र सिह सोलकी जोधपुर शहर विधायक श्री जुगल जी काबरा श्री रामेश्वर जी दाधीच गणपतसिह चौहान व अन्य ...न्य नागरिको द्वारा यज्ञ की पूर्णाहूति देकर किया गया। तत्पश्चात सभी ने प्रीति भोज का आनन्द लिया। आर्य वीर दल जोधपुर की ओर से अध्यक्ष गणपतसिह पवार ने सभी को धन्यवाद ज्ञापित किया।



आर्य वीर दल जोधपुर के अध्यक्ष श्री गणपत सिह पवार उत्कृष्ट उपलब्धियों सामाजिक सेवाओं और पर्यावरण रक्षण के सराहनीय कार्यों के लिये सम्मान करने की घोषणा करते हुए



राजस्थान एमेच्योर बाक्सिग एसोसिएशन के अध्यक्ष श्री नारायणसिह जी खींची को अन्तर्राष्ट्रीय मुक्केबाजी प्रतियोगिता में सेवाए देने के उपलक्ष में सम्मानित करते श्री सत्यव्रत सामवेदी एव श्री रामसिहजी आर्य

आर्य वीर दल जोधपुर के सम्मानित आर्य वीरो का सक्षिप्त परिचय



श्री नारायण सिह खींची— पुत्र श्री जसवन्त सिह जी खींची ने अन्तर्राष्ट्रीय मुक्केबाजी प्रतियोगिताओं में भारत का प्रतिनिधित्व किया। वर्ष 1990 में विश्वकप मुक्केबाजी प्रतियोगिता में तकनीकी अधिकारी एव वर्ष 1993 में 17वीं एशियन जूनियर मुक्केबाजी प्रतियोगिता बैंकाक (थाईलैण्ड) में भारतीय टीम के मैनेजर के रूप में अपनी सेवाए प्रदान करने हेतु उक्त श्रावणी पर्व के अवसर पर जोधपुर में प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया।



श्री हेमसिह आर्य— पुत्र श्री किशन जी परिहार को पर्यावरण एव सामाजिक क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवाए प्रदान करने हेतु श्रावणी पर्व दिनाक 14 सितम्बर 2002 के अवसर पर महर्षि दयानन्द स्मृति भवन जोधपुर मे प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया।



श्री नारायण सिह आर्य— सचालक आर्य वीर दल जोधपुर पुत्र श्री मुन्नीलाल जी को सन 2001–2002 मे विशिष्ठ सामाजिक सेवाओं हेतु श्रावणी पर्व दिनाक 14 सितम्बर 2002 के अवसर पर महर्षि दयानन्द स्मृति भवन जोधपुर मे प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया।



श्री दलपत सिह आर्य— पुत्र श्री उगमसिह जी जालोर को वर्ष 2000 की प्रथम एशियन केडिट कुश्ती प्रतियोगिता ईरान मे भारतीय टीम के मैनेजर के रूप मे भारत का प्रतिनिधित्व करने हेतु श्रावणी पर्व दिनाक 14 सितम्बर 2002 के अवसर पर महर्षि दयानन्द स्मृति भवन जोधपुर मे प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया।



श्री जगदीश प्रसाद आर्य— पुत्र श्री बिहारी लाल जी जोधपुर को पर्यावरण एव मुक्केबाजी मे उत्कृष्ट सेवाए प्रदान करने हेतु श्रावणी पर्व दिनाक 14 सितम्बर 2002 के अवसर पर महर्षि दयानन्द स्मृति भवन जोधपुर मे प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया।

गणपत सिह पवार
अध्यक्ष आर्य वीर दल
महर्षि दयानन्द स्मृति भवन रातानाडा जोधपुर

चिट्ठी आई है

सेवामे पूज्य आर्य जी

सादर नमस्ते।

आप सब कुशल मगल से होंगे। आपकी रणनीति (आर्य नीति) पढी काफी अच्छी लगी।आज प्रचार कम है झगडे काफी है। समाजों का धन कहचरियों मे वकीलों पर जा रहा है। आपकी बाते नीति में पढी काफी अच्छी लगी। इस ढग से प्रचार बढ़ सकता है।

हम लोग पजाब मे सभा में प्रचार करते हैं। दोनों भ्राता एव हमारे पूज्य पिता भी 50 सालो से सगीत के माध्यम से प्रचार कर रहे हैं। हम आपके साथ हैं। कभी सेवा देना।

आपके साथी

प सुभाष राही प सतीश सुमन आर्य सगीतरत्न

आर्य निवास 59 अजमतगढ

पो मन्सूरपुर जनपद मुजफ्फरनगर उ प्र

आदरणीय सत्यव्रत सामवेदी जी

सादर प्रणाम!

आपके द्वारा भेजी गई आर्य नीति पत्रिका को पढकर मुझे इतनी प्रसन्नता हुई। मैं कुछ प्रश्न पूछना चाहता हू–

1 क्या मृत्यु भोज खाना चाहिए या नही?

2 क्या हमें अग्रेजी का बहिष्कार करना चाहिए?

मेरे पिताजी भी आर्य समाजी हैं व दादाजी श्री हरिनारायण जी भी कटटर आर्य समाजी थे और आपके ऐसे विचारों को पढ़कर मेरा रूख भी इधर ही बढता जा रहा है। मुझे आर्य नीति का 8 सितम्बर के अक में लिखा लेख 'राष्ट्र भाषा (हिन्दी) प्रचार ने भी बहुत प्रभावित किया।

कृपया ऐसे लेख भेजकर हमें भी इनके बारे में बताए।

प्रदीप आर्य

कक्षा – 6 बिचून

आदरणीय श्री सम्पादक महोदय

सादर नमस्ते!

आर्य समाज जुरहरा ने योगीराज कृष्ण जी का जन्मदिन बडे ही हर्षोल्लासपूर्वक मनाया। इस दिन मदिर में विशेष रोशनी सजावट की गई। प्रात काल प्रभात फेरी कस्बे मे निकाली गई प्रात वेला में ही विशेष यज्ञ हवन व विद्वानों के प्रवचन मदिर में हुए। मदिर में श्रद्धालुओ की अच्छी उपस्थिति हुई। रात्री को 9 बजे से मंदिर में श्री कृष्ण के जीवन चरित्र पर विशेष प्रोग्राम भजन उपदेश हुए।

बाहर से पधारे हुए उपदेशक श्री भजनलाल जी आर्य भीतरौल हरियाणा के उपदेश व हमारें समाज के प्रधान प मगलदेव आर्य ने मधुर भजनों से श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया। विशेषता श्री भजनलाल आर्य ने तो श्रद्धालुओं में विशेष प्रभावित करने वाले उपदेश दिये। मदिर के दोनों प्रागण श्रद्धालुओं से खचाखच भरे हुए थे। कस्बे के अन्य पौराणिक मदिरों व आस–पास के क्षेत्र के मदिरों की अपेक्षा श्रद्धालु आर्य समाज मंदिर में विद्वानों के प्रवचन सुनने काफी तादाद में पहुचे व कई रोज तक आर्य समाज मदिर में श्री कृष्ण के जीवन चरित्र पर विद्वानों द्वारा जो प्रकाश डाला गया सोचने पर विवश हो गये।

कृपया हमे आप महर्षि दयानन्द जी की जीवनी पर कैसेट फिल्म आदि बनी हुई हो तो अवगत कराने की कृपा करें एव किस पते पर हम उनसे सम्पर्क करें।

कृपा दृष्टि बनाये रखियेगा। आपका आर्य नीति पत्र इधर काफी लोग पढते हैं। काफी प्रसशा करते हैं। आपके पत्र आने को लालायित रहते हैं।

मत्री आर्य समाज जुरहरा

जिला–भरतपुर

आदरणीय सामवेदी जी

सादर नमस्ते!

प्रथम बार आपके दर्शन का सौभाग्य मुझे इस वर्ष आपके उत्तराचल भ्रमण के अवसर पर प्राप्त हुआ था आपसे वार्तालाप का अविस्मरणीय क्षण उस समय आया जब हम जिलाधिकारी महोदय से वार्ता करने के पश्चात सायकाल आपकी बस को खोज रहे थे। बस के सम्बन्ध में पता करने को मैंने आपके साथ पी सी ओ से आदरणीय उप्रेती जी के घर पर फोन किया था। यह मैं इसलिये लिख रहा हू कि शायद आपको मेरी धुधली सी स्मृति हो सके। आपके द्वारा लिखा गया 'उत्तराचल यात्रा वर्णन' मैंने अपने मित्र अक में पढ़ा। सजीव वर्णन कर सुखद अनुभूति हुई। पुन मित्र के सहयोग से आर्य नीति में ही 'स्वाधीनता दिवस' अक पढा। आपने शतप्रतिशत यथार्थ बिन्दुओं को अपने भाषण में उठाया कि स्वाधीनता के लेखों में कहीं भी दयानन्द सरस्वती का नाम नहीं था। वैदिक कन्या विद्यालय की झाकी में आर्य समाज की झाकी नही थी। लाला लाजपत राय स्वामी श्रद्धानन्द सुखदेव राम प्रसाद बिस्मिल मदनलाल ढीगडा बालमुकुन्द भाई परमानन्द को किसी भी पत्रकार ने याद नही किया आदि वास्तव में अत्यधिक विचारणीय प्रश्न है?

आपका यह लेख देश के प्रबुद्ध वर्ग पत्रकारों लेखकों को साथ ही आर्य समाज के अनुयायियों को प्रेरित करेगा कि वह देश के समक्ष वास्तविक स्थिति को रखने के प्रति गम्भीरता दिखायेंगे ताकि आर्य समाज का स्वाधीनता सग्राम में योगदान व उसके अनुयायियों का बलिदान इतिहास में न्यायपूर्ण स्थान प्राप्त कर पाये। इस स्थिति के लिये अन्य लोगों को तो क्या कहें स्वय आर्य समाज के लोगों में भी चेतना कम हुई हैं। कभी–कभी ऐसा लगता है कि आर्य समाज अपने आदर्शों [illegible] जिक नैतिक उत्थान के नारो के साथ कहीं ठहर सा गया है। इसका एक ही कारण है कि वर्तमान मे आर्य समाज की सस्थाओ में ऐसे व्यक्ति कब्जा कर स्वय सस्था बन चुके हैं जिनका महर्षि दयानन्द व उनके विचारों एव आर्य समाज के पदों का उपयोग मात्र सामाजिक प्रतिष्ठा व्यावसायिक लाभ व राजनैतिक स्वार्थों की खोखली पूर्ति के लिये कर रहे हैं। जिसका एक उदाहरण आपने अपने उत्तराचल भ्रमण के समय देखा था। ससार को नैतिकता के उपदेश से आदर्श मार्ग दिखाने वाले शायद स्वय कुछ भूल गये हैं।

आपके विचार व स्वय के दोषों को चिन्हित करने वाली निर्भीक सचेष्ट लेखन शैली को देख कर मेरे जैसे एक सौ वर्ष पूर्व से चले आ रहे आर्य समाजी परिवार के सैकड़ा व्यक्तियों के निराश मन में एक उर्जा का सचार हुआ होगा कि अभी भी आप जैसे महापुरुष आर्य समाज में हैं जो कि आर्य समाज को उसका वास्तविक स्थान प्राप्त करा सकते हैं। आवश्यकता है एक राष्ट्रीय क्रमबद्ध कार्यक्रम की जो नगर स्तर तक फैले। आदर्श विहीन अवसरों का लाभ उठाकर पदारूढ़ हुये कब्जाधारियों से आर्य समाज की सम्पत्तियों को मुक्त कराया जाये ताकि कर्मशील आर्य समाजी कार्य कर पायें। शिविर लगा कर आर्य समाजियों में कर्म व लक्ष्य के प्रति जागृति उत्पन्न करी जाए। आर्य समाजियों को बताया जाना चाहिये कि यह पद प्रतिष्ठा के लिये नहीं बल्कि कर्म के लिये है।

आपने सही बात कही कि अरे भाई यह भाषण हमें क्यों पिलाते हो। मुझे पूर्ण आशा है कि आप जैसे महापुरूषों के नेतृत्व में इस क्षेत्र में क्रान्ति आ सकती है।

विनोद बसल लाला बाजार, अल्मोड़ा

उत्तराचल–263601

आदरणीय भाई सामवेदी जी

नमस्ते!

आर्य नीति मुझे निरन्तर मिल रही है धन्यवाद। अभी इस सप्ताह प्राप्त आर्य नीति से ज्ञात हुआ कि किसी तथाकथित ओमप्रकाश ने आपके विरूद्ध एक प्रपत्र में अनर्गल प्रलाप किया है। मैं ऐसे प्रत्याशी की घोर भर्त्सना करता हू। आपके विरूद्ध ऐसे लाछन पहले भी लगते रहे हैं उनकी चिन्ता किये बिना निरन्तर आर्य समाज की सेवा कर रहे हैं। यह सतोष एव प्रसन्नता की बात है। कुत्तें भौंकते रहेंगे हाथी चलते रहेंगे। आप कर्मठ आर्य समाजी कार्यकर्ता है कुछ करने की भी इच्छा रखते हैं निरन्तर सक्रिय रहते हुए अन्य सबको भी कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। एतदर्थ आप बधाई के पात्र हैं।

मुझे एक पीड़ा अवश्य है कि आप विगत कुछ वर्षों से क्यों विपक्षी नेता की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। उच्च पद के निकट सहज भाव से आते–आते जाने–अनजाने में न जाने किसकी सलाह पर ऐसे कार्य कर बैठते हैं कि आपको पीछे हटना पड़ता है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में आपको सम्मानजनक स्थान मिल जाना चाहिये था परन्तु आप इससे वचित रहे हैं। कृपया आत्म चिन्तन और आत्म मथन करें क्यों आप सभा की अग्रिम पंक्ति से वचित हैं।

1000 आर्यकर्ता आर्य परिवारों को जोड़ने की 20 वर्ष से आपकी चली आ रही घोषणा को आप साकार रूप नही दे पाये हैं। क्या कारण है? यह बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। कठोर लगन की आवश्यकता है। स्वय त्याग करने की आवश्यकता है। मेरा कोई सहयोग स्वेच्छा से, प्रसन्नतापूर्वक आप चाहेंगे तो मैं साथ हू।

भवदीय

सुमन वेदालंकार

पूर्व आचार्य एव अध्यक्ष संस्कृत विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर

ऋषिवर! अर्पित कोटि नमन

माँ के आचल में तुमने आशा की किरण बिखेरी

तेरी सुन कर सिंह गर्जना बाज उठी रण भेरी

नव जागृति के अग्र पुरोधा! तुमसे ज्योतित जन–मन।

ऋषिवर! अर्पित कोटि नमन।।

दयानन्द ऋषिराज तुम्हीं ने मानवता का मंत्र दिया

घोर तिमिर के विषम जाल मे मानव कोटि स्वतंत्र किया

वेद ललकारों से गुजित अभी धरा है तथा गगन।

ऋषिवर! अर्पित कोटि नमन

अपौरुषेय वेदो की पावन तुमने ज्योति जलाई

बाज उठी फिर महिमण्डल पर सत्य धर्म शहनाई

वैदिक धर्म ध्वजा अम्बर में लहरी हर्षित जन–मन।

ऋषिवर! अर्पित कोटि नमन

त्याग तथा बलिदानों का तुमने अभियान चलाया

तिमिराच्छादित वसुन्धरा को नया विहान दिखाया

ज्योतिर्मय उर किया असंख्यक किया दनुजता वृत्ति हनन।

ऋषिवर! अर्पित कोटि नमन।।

राधेश्याम आर्य विद्यावाचस्पति

मुसाफिर खाना सुल्तानपुर उ प्र

परोपकार

पेड़ छाया फलादि द्वारा सब को सुख देता है

आदमी है कि सुख को बाटना नहीं चाहता है।

पेड सुख देने मे कोई भेद भाव नहीं करता है

आदमी है कि सुख को अपने वास्ते ही सीमित रखता है।

पेड़ को पत्थर मारो तब भी फल देता है

आदमी है कि धन के फल आने पर अकड़ जाता है।

पेड की डाली फल आने पर झुकती जाती है

हमे नम्रता की सदैव सीख देती रहती है।

चमन में सुमन सुख की सौरभ फैलाता है

आदमी है कि उसे पौधे से अलग कर देता है

सुख भोग वास्ते उसे मसल डालता है

सुमन मिटने पर भी अमर हो जाता है

इत्तर की खुश्बू में, अपनी याद छोड़ जाता है

पृथ्वी जल वायु, अग्नि आकाश सब को सुख देते हैं

आदमी है कि उन्हें प्रदूषित कर दु ख फैलाते हैं

सूर्य चन्द्र वर्षा सब को सुख पहुचाते हैं

आदमी है कि इन के उपकरणों का दुरुपयोग करते हैं।

गाय बकरी पशु पक्षी आदि सब को सुख पहुंचाते हैं

स्वाद के गुलाम हैं कि इन को भी काट खाते हैं।

किसी आत्मा को कोई कष्ट देकर सताएगा

कर्म फल भोगेगा कोई उसे भी दु:ख देकर तड़पाएगा।

विरक्त सत महात्मा सब को सुख देते हैं

आदमी हैं कि उन की सलाह नहीं मानते हैं।

प्रकृति के सब पदार्थ परोपकार में लगे रहते हैं

वे ही सच्चे अर्थ मे मनुष्य कहलाते हैं

जो अपने सम सब को जान सुख पहुचाते हैं

तभी तो वे सही अर्थ में परोपकारी बन जाते हैं।

– सुमन कुमार आर्य –

584 चेतन निवास

जवाहर कॉलोनी सरदारनगर,

अहमदाबाद–382475

श्री प सत्यव्रत सामवेदी

सादर नमस्ते।

आशा है आप स्वस्थ एव सानन्द हैं। आप एक योग्य लेखक विचारक वक्ता और आर्य सस्थाओं के सचालक हैं। आर्य नीति इसका गवाह है।

मेरी एक अभिलाषा है। आप मूल को पकड़ें। इन तथाकथित आर्य सम्मेलनों से कोई विशेष लाभ नहीं है। व्यक्ति विशेष का कुछ प्रचार हो जाता है और कुछ नहीं।

जब तक 2–2 सार्वदेशिक सभाए,2–3 आर्य प्रतिनिधि सभाए बनी रहेगी तब तक आर्य समाज के वेद प्रचार का नारा धोखा मात्र है।

भगवन्! कुछ कीजिए, कुछ कीजिए। सभाओं के विवाद समाप्त कराकर आर्य संगठन को सुदृढ़ कराइये।

भवदीय

प्रो रत्नसिंह बी–21 गांधी नगर, गाजियाबाद उ प्र

आर्य समाज, हिरण मगरी, उदयपुर

वेद प्रचार सप्ताह सम्पन्न

उदयपुर रक्षा बन्धन से प्रारम्भ इस अभियान का समापन कृष्ण जनमाष्टमी 31 अगस्त को हुआ। इस सम्पूर्ण वेद प्रचार अभियान के मुख्य वक्ता उपदेशक श्री कुवर आनन्द सुमन सिह थे। हाथरस से पधारे आचार्य पूरणमल शास्त्री 'पछी के सुमधुर भजनोपदेश हुए। आर्य समाज सभा भवन के अलावा परिवारों में यज्ञ उपदेश के आयोजन रखे गये जिनमें सर्व श्री अरविन्द त्यागी अनन्त देव शर्मा श्याम सुन्दर मेहरा श्री बलराम चौहान प्रधान जगनालाल गौतम प्रमुख थे।

वेद प्रचार अभियान के उपदेश आनन्द सुमन सिह ने ईश्वर का स्वरूप व उपासना विभिन्न पथ सम्प्रदाय व वैदिक धर्म में परस्पर तुलनात्मक आध्यात्मिक भेद अभेद समाज व्यवस्था महर्षि दयानन्द का जीवन व सत्यार्थ प्रकाश राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन व आर्य समाज आदि विषयो पर विस्तार से प्रकाश डाला। भजनोपदेश में श्री पूरणमल शास्त्री पछी के साथ इन्द्रदेव पीयूष ने भी भजन प्रस्तुत किये।

समापन समारोह के मुख्य वक्ता डॉ अशोक आर्य ने अपने व्याख्यान में कहा ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप निराकार सर्वशक्तिमान न्यायकारी दयालु अजन्मा निर्विकार अनादि अनुपम, सर्वाधार सर्वव्यापक अजर अमर पवित्र और सृष्टिकर्ता है। हमें उसी परमपिता की उपासना करनी चाहिए। हमारे महापुरूष श्री रामचन्द्र जी श्री कृष्णचन्द जी भी उसी निराकार ब्रह्मा की उपासना करते थे।

डॉ अशोक आर्य ने कहा कि हम महापुरूषो को ईश्वर का अवतारी बता उनके जीवन से प्रेरणा नही लेते हैं क्योंकि यह देते हैं ऐसा कार्य हम नही कर सकते। लोकोत्तर काम करने वाले महापुरूषो को हम ईश्वर मान लेते हैं और कई तरह के चमत्कार उनके साथ जोड़ देते हैं। बुद्धिमान इसे अतिश्योक्ति मान विश्वास नहीं करते और उस महापुरूष के प्रति उनकी श्रद्धा कम हो जाती है। ऐसे लोकोत्तर कार्य करने वाले महापुरूष ईश्वर के समान एश्वर्य के कुछ गुण धारण कर लेते हैं पर सम्पूर्ण ईश्वर नहीं हो सकते। ऐसा सर्वशक्तिमान एक ही परमपिता है जो कभी जन्म नहीं लेता कभी नहीं मरता। वह अजर–अमर अविनाशी है सर्वदेशी है। योगीराज श्री कृष्ण के गुणो की चर्चा करते हुए डॉ आर्य ने उनके मानवतावादी निर्लोभिता निर्भीकता कूटनीतिज्ञ मैत्रय भाव ब्रह्मचार्यत्व ईश्वर प्राणिधाम आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला।

समारोह की मुख्य अतिथि नगर परिषद् की पूर्व सभापति श्रीमती किरण माहेश्वरी ने कहा कि सत्य को जाने बगैर श्रद्धा उत्पन्न नही होती। आर्य समाज जैसा मच तर्क सगत बात कहता है। हवा मे यू ही कही बात पर विश्वास हो तो जाता है किन्तु अधिक समय तक चल नही सकता किन्तु तर्क सगत कही बात जीवन पर्यन्त माननीय होती है। आपने भी पूर्व वक्ता की बात को स्वीकारते हुए कहा कि सच मे महापुरूषो को ईश्वर अवतारी बताना हमारी भूल ही है। ईश्वर कही मदिर मस्जिद गुरूद्वारे मे नही है। ईश्वर तो सर्वत्र मौजूद है। हमारे अन्दर ईश्वर है। हमारे अन्दर ईश्वर को जगाने पहचानने की आवश्यकता है।

वक्ता डॉ कुवर आनन्द सुमनसिह ने कहा कि सृष्टि मे धर्म सस्कृति अनन्त समय से प्रवाहमान है। देशकाल परिस्थितियो के अनुसार महापुरूषो ने अपने विवेक के अनुसार इनकी व्याख्याए की है। डॉ सुमन ने श्री कृष्ण जी के लोक प्रचलित स्वरूपो की विस्तार से चर्चा करते हुए कहा कि वास्तव मे श्री कृष्ण जी महाराज का स्वरूप ही लोगों ने बदल दिया। आपने कहा कि किसी के चरित्र को इतना कलकित मत करो कि लोग घृणा करने लग जाये।

श्री पूरणमल शास्त्री 'पछी ने सुमधुर भजन प्रस्तुत किये। कार्यक्रम की अध्यक्ष डॉ अजित गुप्ता ने भी अपने विचार व्यक्त किये। इससे पूर्व देव यज्ञ सम्पन्न हुआ यज्ञ के मुख्य यजमान श्री विनोद सूद श्री एस एस कोठारी श्री अशोक कुमार आर्य श्री श्याम बिहारी मोढ़ थे। यज्ञ के ब्रह्मा प पन्नालाल अरोडा थे कार्यक्रम का सचालन आर्य समाज के मत्री गिरिश जोशी ने किया। अन्त मे प्रधान जमनालाल गौतम ने धन्यवाद दिया।

प्रस्तुति
राम दयाल आर्य समाज
हिरण मगरी उदयपुर

राष्ट्र उत्थान यज्ञ समिति

पाबूपुरा आर्य समाज पचायत विकास समिति जोधपुर

जोधपुर 8 सितम्बर। महर्षि दयानन्द स्मृति रातानाडा जोधपुर मे समस्त आर्य वीर दल जोधपुर की विभिन्न शाखाओ तथा आर्य समाज इकाईयों के पदाधिकारियों प्रतिनिधियो एव कार्यकर्ताओं की बैठक श्री नारायण सिह आर्य प्रधान सचालक एव राष्ट्र उत्थान यज्ञ समिति के मुख्य समन्वयक आर्य वीर दल जोधपुर की अध्यक्षता में आयोजित की गई। आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उप प्रधान श्री रामसिह आर्य सभा में विशिष्ट अतिथि रहे।

अध्यक्षता करते हुए श्री नारायण सिह ने पाबूपुरा मे हुई पिछली सभा के पाबूपुरा मे आयोजित होने वाले 'राष्ट्र उत्थान यज्ञ एव राष्ट्र उत्थान यज्ञ समिति के निर्णय की पुष्टि करते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उप प्रधान श्री रामसिह आर्य की सहमति से समिति के सयोजक पदाधिकारी एव सदस्यो की घोषणा निम्न प्रकार से की–

'राष्ट्र उत्थान यज्ञ समिति जोधपुर' के सयोजक श्री भवर लाल नायक तथा समिति के कोषाध्यक्ष श्री यशपाल मेहता एव सचिव श्री पूनमसिह शेखावत एव साथ ही समिति के अन्य प्रमुख सदस्यो मे श्रीमती कमला आर्य श्रीमती इन्दुबाला गौड सर्वश्री गणपतसिह पवार सेवाराम जागिड दिलीपसिह पवार अजीतसिह गहलोत चादमल आर्य नारायणसिह खींची दयालसिह आर्य श्यामसिह साखला हनुमान प्रसाद गौड जगदीश आर्य कमलेश साखला गोपाल आर्य गजेसिह हेमसिह परिहार जितेन्द्र सिह भवरलाल आर्य लक्ष्मणसिह दलपतसिह–जालोर ओम आचार्य फालना हाजी अजीत खॉ माईनुद्दीन मनचला नारायण गुर्जर तथा सरदार कुर्बान सिह सहित पाबूपुरा आर्य समाज एव पचाचत विकास समिति के सभी कार्यकारिणी सदस्य मनोनीत किये जाते हैं। राष्ट्र उत्थान यज्ञ समिति के सयोजक श्री नायक ने बताया कि समस्त जोधपुर की आर्य समाज इकाईयो तथा आर्य वीर दल शाखाओ द्वारा दिनाक 14 09 2002 को हर वर्ष की भाति श्रावणी पर्व 'राष्ट्र उत्थान' के सकल्प के साथ सम्पूर्ण होगा।

राष्ट्र उत्थान यज्ञ का कार्यक्रम 19 अक्टूबर 2002 को आयोजित होगा जिसमे स्वामी अग्निवेश जी मुख्य अतिथि होंगे।

नारायणसिह आर्य
सचालक आर्य वीरदल जोधपुर एव
मुख्य समन्वयक राष्ट्र उत्थान यज्ञ समिति

दर्द

छा गया हर ओर अन्धेरा,
कोहरा घना हो गया,
अपने–अपने सुख दु ख समेटे,
शहर सारा सो गया।
लिपट गई पेड़ों से परछाइयां,
पछी ना छिपे घोसलों में,
सिहर गई पेडो की पत्तियां,
धुआं–धुआं, मौसम में हर
एक नजारा खो गया।
चलती रही दूधियां चांद की,
बादलो से अठखेलियां,
तेज हवा दीवारों से टकरा–टकरा
पूछती रही पहेलियां।
ओस जैसा कुछ बालों को सहलाकर,
गालो को भिगो गया,
चलता रहा कोई बावला,
खोया गुमसुम चुपचाप।
सूनी अंधेरी सड़क पर
गूंजती रही केवल पदचाप
पेड़ बन के लहराने लगे,
वो दर्द जो कोई कभी बो गया।

डॉ अनुपम तैलग
34 राम नगर सोढाला जयपुर–6

हिन्दी दिवस के अवसर पर वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय आर्यसमाज, आदर्श नगर, जयपुर मे विभिन्न प्रतियोगिताए सम्पन्न

जयपुर 14 सितम्बर। हिन्दी दिवस के अवसर पर वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय में वाद विवाद प्रश्नोत्तरी आशुभाषण निबन्ध कहानी लेखन स्वरचित काव्यपाठ तथा नारा प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें मुख्य वक्ता के रूप म बोलते हुए डॉ वीरेन्द्रसिह ने कहा कि हिन्दी भाषा में न केवल स्वाभिमान का भाव है अपितु समृद्ध होने के कारण यह अपना प्रभाव सिद्ध कर चुकी है। यद्यपि भूमण्डीकरण एव तकनीकी चुनौती के कारण इसे परीक्षा के दौर से गुजरना पड़ रहा है लेकिन समय सिद्ध करेगा कि हिन्दी इसमें भी सक्षम है।

विशिष्ट अतिथि महाविद्यालय के व्यवस्थापक श्री राजकुमार साहनी ने हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार में स्वामी दयानन्द सरस्वती के योगदान का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि पहले मातृ भाषा फिर आंग्लभाषा को दर्जा दिया जाना चाहिए।

अध्यक्षीय भाषण देते हुए डॉ आर सी मिश्रा ने कहा कि दक्षिण एशिया में भी हिन्दी भाषा की प्रतिष्ठा है। हिन्दी भारतीय परिधि से निकलकर विश्व परिवेश में अपना परचम फहरा चुकी है। महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ आशा शर्मा ने अतिथियों का स्वागत किया।

हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ. प्रमिला मिश्रा ने महाविद्यालय में आयोजित विभि न प्रतियोगिताओं की जानकारी दी। कार्यक्रम का सचालन डॉ रीता दाधीच ने किया तथा डॉ रेणु तायल ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

प्रतियोगिताओ मे विजयी छात्राए निम्न प्रकार हैं–

निबन्ध प्रतियोगिता–कु शिखा प्रजापति कु माया रावत कु हेमलता वर्मा कु अजली छाबडा।

कहानी प्रतियोगिता–कु हेमलता वर्मा कु अजलि छाबड़ा कु पूनम स्तुति चौहान।

प्रश्नोत्तरी–कु लता राव। कु ज्योति गोयल कु मेधा भटनागर।

व्याख्यान–कु माया रावत कु नम्रता शर्मा अजलि छाबड़ा।

स्वरचित काव्यपाठ–कु हेमलता वर्मा कु. शिखा प्रजापति कु. प्रियका शर्मा।

वाद–विवाद–कु पूजा शर्मा कु शिप्रा शर्मा कु प्रगति शर्मा।

आशुभाषण–कु. शिखा प्रजापति कु. हेमलता वर्मा कु पूजा शर्मा

स्लोगन(नारा)–कु कचन सैनी कु चित्रा माहेश्वरी।

डॉ प्रमिला मिश्रा
सयोजिका
हिन्दी विभागाध्यक्ष,
वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय

महर्षि दयानन्द : वैदिक धर्म के विशुद्ध रूप का पुनरुत्थान

महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रधान कार्य वैदिक धर्म के विशुद्ध रूप के पुनरुत्थान के सम्बन्ध मे है। उनका विचार था कि सत्य सनातन वैदिक धर्म के अनुसार ईश्वर एक है जो विश्व की सर्वोच्च सत्ता है उसका न तो कोई आकार होता है न कोई रूप अत उसकी मूर्ति नही बनाई जा सकती।

ईश्वर कभी अवतार नही लेता। वह सर्वशक्तिमान है अत किसी भी कार्य के सम्पादन के लिए उस मानव या अन्य जीव का शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं होती। राम और कृष्ण आदि महापुरुष थे पर न वे ईश्वर थे न ही ईश्वर के अवतार।

आत्मा ईश्वर से भिन्न है। तीन अनादि सत्ताए हैं ईश्वर या परमात्मा जीव या आत्मा और प्रकृति। वे त्रैतवाद से समर्थन के थे और अद्वैतवाद को वेदानुकूल व युक्ति सगत नहीं मानते थे।

उनका मन्तव्य था कि मृत्यु के साथ आत्मा का अन्त नहीं होता अन्त शरीर का होता है। पुराने शरीर को त्याग कर आत्मा नया शरीर ग्रहण करती है और इस प्रकार उसका पुनर्जन्म होता है। मृत व्यक्ति के लिए पिण्डदान पित्तरों का श्राद्ध और तर्पण करना वेदोक्त नही है। अभी सदी सदी मे हिन्दू (आर्य) धर्म का जो रूप था महर्षि की दृष्टि मे वह सत्य सनातन वैदिक धर्म के अनुरूप नही था। उनके बहुत से मन्तव्य पूजा विधि तथा अनुष्ठान आदि न केवल वेद विरूद्ध थे बल्कि मनुष्यो के वैयक्तिक तथा सामाजिक हित मे बाधक भी थे।

महर्षि ने आर्य धर्म की सब विकृतियो के विरूद्ध आवाज उठाई और उसके सत्य स्वरूप को प्रतिपादित किया। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य था और महर्षि का सम्पूर्ण कर्त्तव्य व कार्यकलाप इसी कार्य के साथ सम्बन्ध रखता है।

सत्य सनातन वैदिक धर्म अत्यन्त प्राचीन है। समय–समय पर उसमे अनेक प्रकार की विकृतियो का प्रादुर्भाव होती रही है। अनेक सुधारकों ने उन्हें दूर करने का प्रयास भी किया है। महाभारत युद्ध के पश्चात जब यज्ञों मे पशु बलि दी जाने लगी तो राजा वसु चैधोपरिचर के समय मे अनेक ऋषियों ने उसके विरूद्ध आवाज उठाई और याज्ञिक कर्मकाण्ड की तुलना मे भक्तिकार्य के आश्रय को उत्कृष्ट रूप मे प्रतिपादित किया।

ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चातुर्वर्ण का आधार जब गुण–कर्म के स्थान पर जन्म को माना जाने लगा उसके कारण समाज में ऊँच–नीच का भेदभाव विकसित होना प्रारम्भ हुआ तब योगिराज कृष्ण ने 'गण कर्म के अनुसार ही चातुर्वर्ण के निर्धारण' की घोषणा की और यज्ञादि की युक्तिसगत व्यवस्था की।

कृष्ण ने वैदिक धर्म की विकृतियों को दूर कर सच्चे आर्य धर्म की पुन स्थापना का प्रयत्न किया। वे इस प्रयास में सफल भी हुए परन्तु बाद में यज्ञो में बलि दी जाने लगी।

गौतम बुद्ध ने इन विकृतियों को दूर करने का प्रयास किया। फिर से यज्ञादि अनुष्ठान शुरू हुए पर इस समय जो वैदिक धर्म प्रचलित हुआ वह विशुद्ध वैदिक धर्म से भिन्न था। मूर्तिपूजा अवतारवाद देवी–देवताओ पर विश्वास जैसे न जाने कितने ही ऐसे तत्व इसमे समाविष्ट हुए जो वास्तविक वैदिक धर्म नही थे। बाद मे अनेक धर्माचार्यों विद्वानो तथा सन्यासियो ने वैदिक धर्म की शक्ति का सवर्द्धन करने सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने तथा उसके प्रचार का प्रयास किया। उन्ही के प्रयत्नो का परिणाम था कि भारत से ऐसे अनेक सम्प्रदायो का लोप हो गया जो वेदो की प्रामाणिकता को नही मानते। और जो सृष्टि के कर्त्ता पालक सहर्ता के रूप मे ईश्वर की सत्ता को नही स्वीकारते थे। भारत मे शकर रामानुज वल्लभ आदि आचार्यों ने वैदिक धर्म का सवर्द्धन का प्रयास किया पर उन्होंने आर्य धर्म के जिस रूप का निरूपण किया वह सत्य सनातन वैदिक धर्म से अनेक अशों मे प्रतिकूल था। इन आचार्यों के न दार्शनिक मन्तव्य वैदिक धर्म के अनुसार थे और न पूजा विधि। परिणाम यह हुआ कि इस देश के धर्म की विकृति मे वृद्धि ही होती गयी ओर उसका निराकरण नही किया जा सका। मध्य युग मे सत महात्मा भी असफल रहें।

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में नवीन पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित राजा राम मोहन राय सदृश सुधारको ने हिन्दू धर्म की सामाजिक बुराइयो को दूर करने का अवश्य प्रयत्न किया पर इस धर्म के वास्तविक व विशुद्ध रूप को प्रस्तुत करने पर उन्होने ध्यान नहीं दिया। इसी कारण उन द्वारा सचालित आन्दोलन जनता के बहुत छोटे से भाग को प्रभावित कर सके।

वैदिक धर्म के वास्तविक व विशुद्ध रूप को पुन स्थापित करने का प्रयत्न भारत के सुदीर्घ इतिहास में योगिराज कृष्ण के पश्चात केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा ही किया गया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यही महर्षि की सबसे बडी देन है। महर्षि दयानन्द का मन्तव्य है कि विश्व की सर्वोच्च शक्ति केवल एक ईश्वर है जिसका सर्वश्रेष्ठ नाम 'ओ३म्' है। इन्द्र वरूण अग्नि वायु आदि जो बहुत से नाम वेदों में आते हैं जिन्हें विभिन्न देवताओं के नाम से जानते हैं सब एक ही ईश्वर के विभिन्न नाम है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिस ढग से एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया है उन्नीसवीं सदी के हिन्दुओं में प्रचलित धार्मिक मान्यताओं के लिए एक नयी बात थी।

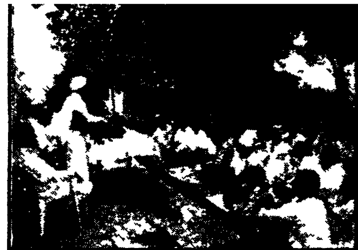
प्रेषक –
प्रमिला मिश्रा विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग वैदिक कन्या
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
राजापार्क जयपुर

आर्य समाज

महर्षि दयानन्द मार्ग, बीकानेर–334005

श्रावणी पर्व श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर्व तथा दस दिवसीय वेद प्रचार का सफल आयोजन

इस बार आर्य समाज महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर द्वारा दस दिवसीय वेद प्रचार का शुभारम्भ श्रावणी पर्व के रूप मे दिनाक 22 08.2002 की प्रात से हुआ तथा पूर्णाहुति श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर्व मनाते हुए हुई। इस दौरान दस दिवसीय वेद प्रचार के अन्तर्गत आर्य परिवारों में चारों वेदों की विशेष मत्रो की आहुतियो से प्रधान श्री जसकरण सोनी उपप्रधान तथा ब्रह्मचारी सोमदेव के पोरोहित्य में हुआ। इसमें उदयशकर व्यास उपप्रधान का विशेष सहयोग रहा। महर्षि कपिल आर्य गुरूकुल श्री कोलायत बीकानेर के आचार्य एव



श्री शिव कुमार जी शास्त्री आचार्य कपिल आर्य गुरूकुल सम्बोधित करते हुए एव अग्रिम पक्ति मे पदाधिकारीगण

मूर्धन्य विद्वान श्री शिवकुमार शास्त्री के विद्वतापूर्ण वैदिक प्रवचन प्रतिदिन हुए। श्री आनन्दपुरी वानप्रस्थी के भी प्रवचन हुए एव दिनाक 25 से 31 अगस्त 2002 तक श्री श्रवण कुमार भजनोपदेशक (सिरसा हरियाणा वालों के) ईश्वर भक्ति एव समाजोत्थान पर भजनो ने उनकी विनोदपूर्ण शैली के कारण श्रोताओ का ध्यान आकर्षित किया। समय समय पर भजनोपदेशक श्री राम गोपाल ठाकुर प्रसाद बलवीर सिह श्री जेठराम श्री कृष्ण लाल प्रचार मत्री फूल चन्द ब्रह्मचारी विक्रमाचार्य आदि के भजनों से श्रोतागण भावविभोर होते रहे। दिनाक 27 08 2002 को केन्द्रीय कारागार बीकानेर मे वेद प्रचार का आयोजन विशेष महत्वपूर्ण रहा। कर्म फल तथा वैदिक व्यवस्था पर श्री शास्त्री के विद्वत्तापूर्ण प्रवचन को बन्दीगृहों में बन्दियों ने ध्यानपूर्वक सना तथा हृदयगम किया और शका समाधान भी हुआ। ध्यातव्य है कि पिछले 3–4 वर्षो से लगातार प्रत्येक मगलवार को कारागार मे यज्ञ प्रचारमत्री श्री कृष्ण लाल तथा उपप्रधान श्री रामेश्वर लाल आर्य के देखरेख मे हो रहा था।

उक्त कार्यक्रम का सफल आयोजन प्रधान श्री शम्भूराम यादव वरिष्ठ अधिवक्ता की विशेष प्रेरणा तथा श्री भवरलाल कोषाध्यक्ष आदि सभी सदस्यो के सक्रिय सहयोग से हो सका जिससे नव चेतना एव उत्साह का प्रादुर्भाव हो सका।

महेश सोनी,
मत्री

श्री घूडमल प्रहलाद कुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट,ब्यानियापाड़ा,हिण्डौन सिटी–322230

डॉ देवव्रत आचार्य सम्मानित

हिण्डौन सिटी। स्थानीय आर्य समाज के ग्यारह दिवसीय यजुर्वेद पारायण यज्ञ का समापन बडे ही उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। इस यज्ञ के अन्तर्गत श्रीमती हेमलता ने वेद पाठ कु भूपेन्द्रसिह ने भजनोपदेश देशराज जी ने उपदेश व दिल्ली के गायक कचन कुमार ने भजनों का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। प्रतिदिन दोनो समय महिला व पुरुषों ने सम्मिलित रूप से यज्ञ मे आहुतिया दी। मुख्य यजमान हितेश कुमार रहे।

समापन पर डॉ दिनेश जैन को उनकी निशुल्क सेवा जो वह श्री घूडमल आर्य धर्मार्थ होम्योपैथिक चिकित्सालय के लिये आर्य समाज मे देते हैं के लिये सम्मानित किया गया। पर्यावरण व यज्ञ विषय पर आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता के विजेता छात्रों को पुरस्कृत किया गया। दिल्ली के प्रकाशक विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द के सचालक अजयकुमार को उनकी साहित्य प्रकाशन सेवा क लिये सम्मानित किया गया।

पिछले वर्षों की भाति आर्य समाज न उन्नीसवे श्री घूडमल प्रहलाद कुमार आर्य साहित्य पुरस्कार से आर्यवीर दल के सचालक डॅा देवव्रत आचार्य को उनके द्वारा लिखित सम्पादित समीक्षित व सकलित ग्रन्थ 'धनुर्वेद' पर नागरिक सम्मान सहित किया गया। लगभग साठ प्रतिनिधियों ने आपको फूलमालाओं से लाद दिया। सम्मान के अन्तर्गत आपको पन्द्रह हजार रुपये अभिनन्दन पत्र, शाल मोतियों की माला भेट की गई। साथ ही एक विशिष्ट स्मृति चिन्ह भेंट किया गया। पुरस्कार राशि पिछले वर्ष तेरह हजार रुपये थी।

प्रभावदेव आर्य

आर्य समाज मंदिर

गिरिहिण्डा (शेखपुरा)–811105

–वार्षिक चुनाव सम्पन्न–

आर्य समाज मंदिर गिरिहिण्डा शेखपुरा का वार्षिक चुनाव नये सन् 2002–2003 के लिए श्री दर्शन कुमार जी की अध्यक्षता में निम्न पदाधिकारियों का चुनाव सर्वसम्मति से सम्पन्न हुए–

प्रधान	–	डॅा शकर लाल आर्य
उपप्रधान	–	श्री सुखदेव आर्य
मत्री	–	श्री सुखदेव प्रसाद जी विद्यार्थी
उपमत्री	–	डॅा ज्ञानमित्र शास्त्री
कोषाध्यक्ष	–	श्री रामचन्द्र आर्य
लेखा निरीक्षक	–	श्री गगा प्रसाद आर्य

डॅा जी एम शास्त्री उपमत्री

आर्य वीर दल पुरानी सब्जी मण्डी के पास, जालोर

श्री नरेश आर्य मारवाड चेतना पत्रकारिता पुरस्कार से सम्मानित

आर्य समाज के वरिष्ठ कार्यकर्ता एव राजस्थान पत्रिका जालोर के संवाददाता नरेश आर्य को खोजपूर्ण एव उत्कृष्ट पत्रकारिता के लिए मारवाड का प्रतिष्ठित मारवाड चेतना पत्रकारिता पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

भीनमाल में आयोजित सम्मान समारोह में जिला कलेक्टर श्री पी सी बलाई ने आर्य को मारवाड़ चेतना पत्रकारिता पुरस्कार प्रदान किया।

श्री आर्य को पुरस्कार स्वरूप मिली ग्यारह सौ रुपये की राशि राजस्थान में पडे भीषण अकाल में पशुओं के चारे के लिए आर्य वीर दल के सचालक दलपतसिह आर्य को जिला कलेक्टर पी सी. बलाई के हाथों सौपीं जिसकी लोगो ने मुक्तकठ से प्रशसा की।

अम्बिका प्रसाद तिवारी
उपमत्री आर्य समाज जालोर

श्री नरपत लाल आर्य प्रशासन द्वारा खेलो के उत्कृष्ट सचालन के लिए सम्मानित

आर्य समाज जालोर के मत्री नरपत लाल आर्य को स्वतन्त्रता दिवस समारोह पर जिला प्रशासन द्वारा खेलों के उत्कृष्ट सचालन के लिए सम्मानित किया गया।

जालोर नगर के शाह पूजाजी गेनाजी स्टेडियम में आयोजित स्वतन्त्रता दिवस समारोह में राज्य के समाज कल्याण मत्री छोगालाल बाकोलिया ने आर्य को प्रशस्ती पत्र देकर सम्मानित किया। विभिन्न सामाजिक सगठनों एव खेल सघों ने आर्य को बधाई दी है।

अम्बिका प्रसाद तिवारी
उपमत्री आर्य समाज जालोर

आर्य वीर दल जालोर द्वारा श्रावणी उपाकर्म कार्यक्रम समारोहपूर्वक सम्पन्न

जालोर। आर्य समाज एव आर्य वीर दल जालोर द्वारा श्रावणी उपाकर्म कार्यक्रम समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ जिसमे सैकड़ों आर्य जन परिवार ने यज्ञ में भाग लेकर ऋषि प्रसाद ग्रहण किया तथा बड़ी सख्या में आर्य वीरों ने यज्ञोपवीत धारण कर राष्ट्र रक्षा का सकल्प लिया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उप प्रधान श्री रामसिह आर्य ने कहा कि सर्वाधिक पुरातन वैदिक धर्म के अनुसरण बिना समाज व राष्ट्र का कल्याण सम्भव नही है इसलिए वर्तमान परिस्थितियो मे वैदिक धर्म की उपादेयता बढ गई है। आर्य ने कहा कि देव दयानन्द ने सच्चे धर्म का रास्ता बताया जिसका आम जन को अनुसरण करना चाहिए। उन्होने यज्ञ द्वारा परमात्मा को याद करने की महत्ता को समझाते हुए कहा कि वैदिक धर्म ईश्वर वाणी है जिसे वेद के माध्यम से पुस्तक के रूप मे सचित किया गया है। वेद हमारा धर्म है इसलिए वैदिक मान्यताओं एव सत्यार्थ प्रकाश के सिद्धान्तो मे ही मानव मात्र का कल्याण है। उन्होने आर्य वीर दल के कार्यकर्ताओ को प्रहरी एव चौकीदार के रूप मे वद एव उपनिषदों के सिद्धान्त के माध्यम से समाज एव राष्ट्रहित मे कार्य करने का आहवान किया। इस अवसर पर आर्य वीर दल के सचालक दलपतसिह आर्य के नेतृत्व में कार्यक्रम अध्यक्ष भूरसिह राजपुरोहित तहसीलदार जालोर प्रसिद्ध भजनोपदेकश केशवदेव शास्त्री राज्य मुक्केबाजी सघ के अध्यक्ष नारायणसिह खीचीं आर्य समाज पावापुरा प्रधान भवरलाल नायक पूर्व नगर पालिका अध्यक्ष मोहन लाल सिद्धावत का माल्यार्पण कर स्वागत किया गया। कार्यक्रम के प्रारम्भ मे हवन के माध्यम से नवयुवको एव प्रबुद्ध नागरिकों ने समाज के कल्याण की कामना कर सकल्प लिया। हवन में रघुनाथ खत्री भवरसिह एव चन्द्रप्रकाश सोनी यजमान के रूप में उपस्थित थे।

इस अवसर पर तहसीलदार भूरसिह राजपुरोहित ने कहा कि सत्सग एव विचारो का लाभ मानव जीवन में लेना चाहिए। अष्टग योग में आसन का महत्व बताते हुए राजपुरोहित ने कहा कि खुशालचद नामक मदबुद्धि बालक जालोर के श्रीमाली परिवार में जन्में आर्य समाज के मूर्धन्य सन्यासी स्वामी नित्यानन्द सरस्वती के बताए गायत्री मत्र के हृदयगम करने पर महात्मा आनन्द स्वामी बन समाज का मार्ग दर्शन किया। उन्होंने नारी उत्थान एव सामाजिक कुरीतियों के लिए आर्य समाज के प्रयास की सराहना करते हुए कहा कि दयानन्द के वेद की अवधारणा से ही मानव मात्र का कल्याण सम्भव है। पुरोहित ने कहा कि सत्सग तन को साफ करने का आध्यात्मिक साबुन है अत कुसस्कारों को मिटाने के लिए नियमित यज्ञ एव उपासना की जानी चाहिये। परोपकार एव पीडित मानव की सेवा के साथ नवयुवको को समाज एव राष्ट्र के उत्थान के लिए कार्य करने का आहवान किया।

इस अवसर पर भजनोपदेशक केशवदेव शास्त्री ने ईश वन्दना ओ३म् नाम गाया कर तून हवन रचाया कर' के माध्यम से ओ३म् की महत्ता समझाते हुए कहा कि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के पहले समुल्लास में परमात्मा के लिए ओ३म शब्द का उल्लेख किया है। शास्त्री ने कहा कि गुण कर्म एव स्वभाव से परमात्मा के अनेक नाम हे परन्तु उपासना के लिए ओ३म नाम सर्वव्यापक है। शास्त्री ने गृहस्थ के लिए यज्ञ को उत्तम मध्यम बताते हुए कहा कि पच यज्ञ से ही मनुष्य का जीवन परमात्मा से जुडता है। मनुष्य को धर्म अर्थ काम एव मोक्ष रूपी पुरुषार्थ करने चाहिए। उन्होने श्रेष्ठ एव उत्तम कर्म के साथ इन्द्रियो को सयमित कर पाप कर्म से दूर रहकर समाज व राष्ट्र के लिए कार्य करने को कहा। शास्त्री जी ने भजन के माध्यम से प्रवचन देते हुए कहा कि जड में गति स्वत नहीं होती है उसम चतन प्राणी गति देने वाला परमपिता परमेश्वर है जो सर्वत्र विद्यमान है। शास्त्री ने कहा कि श्रावणी पर्व स्वाध्याय एव चिन्तन करने का पर्व है अत वेदो द्वारा प्रदत्त चार आश्रम व्यवस्थाओं को अपना कर्म बनाना चाहिये। उन्होने देव दयानन्द उतारे कैसे तेरे उपकार नीद से हमे जगाते रहेगे की मनमोहक भजन प्रस्तुत किया जिसमे व्याख्याता त्रिवेणी सिह ने सगीत दिया। कार्यक्रम में आर्य समाज पावापुरा प्रधान भवरलाल नायक एव राज्य मुक्केबाजी सघ के अध्यक्ष नारायणसिह खींची ने भी सम्बोधित किया।

इस अवसर पर आर्य वीर दल जालोर के सचालक दलपतसिह ने स्वागत भाषण मे आगन्तुको का स्वागत करते हुए समाज का राष्ट्र के लिए तत्परता से कार्य करने का आहवान किया। इस अवसर पर जालोर के पूर्व उपखण्ड अधिकारी भवरसिह सादु द्वारा किए गए विकास कार्य के लिए आर्य वीर दल द्वारा साफा बाधकर अभिनन्दन किया गया।

समारोह मे कोषाधिकारी एम एल आर्य पार्षद ईश्वर मेहता हेमेन्द्र परमार नागरिक बैंक के डायरेक्टर मोहन पाराशर महेन्द्र मुणोत सचिव मानवेन्द्रसिह राजपुरोहित आर्य समाज के प्रधान गलबाराम आर्य सहित बडी सख्या मे प्रबुद्ध नागरिकगण उपस्थित थे। कार्यक्रम का सचालन आर्य समाज के मत्री नरपतलाल आर्य ने किया।

अम्बिका प्रसाद तिवारी
उपमत्री आर्य समाज जालोर

आर्य समाज

शाहपुरा, जि–भीलवाड़ा

–आर्य समाज निर्वाचन एव पदाधिकारियो का चयन–

आर्य समाज शाहपुरा की साधारण सभा की बैठक दिनाक 8 सितम्बर को रात्रि 8 बजे सम्पन्न हुई जिसमें सर्व सम्मति से निम्न पदाधिकारियों का चयन किया गया–

पद		नाम
प्रधान	–	बशीलाल जी सोनी
उपप्रधान	–	श्री सम्पत कुमार जी व्यास
मत्री	–	श्री राम कृष्ण जी छाता
उपमत्री	–	डॉ बुद्धि प्रकाश शर्मा
कोषाध्यक्ष	–	श्री सत्यनारायण जी
प्रचार मत्री	–	श्री कन्हैया लाल जी आर्य
पुस्तकालयाध्यक्ष	–	श्री दीपचन्द जी आर्य
द्रव्य निरीक्षक	–	श्री राजेन्द्र सिह जी डागी
पुरोहित	–	श्री सत्यपाल जी शर्मा
अधीक्षक आर्य वीर दल	–	श्री भवर लाल जी भ्रमर
सदस्य	–	श्री हीरालाल जी आर्य
		श्री रूपसिह जी
		श्रीमती सुख देवी जी
		श्रीमती अन्नपूर्णा जी
		श्री अम्बालाल जी आर्य।

आर्य समाज द्वारा वेद प्रचार कार्यक्रम सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के निर्देशानुसार शाहपुरा में अनेक स्थानों पर 24 08.2002 से निरन्तर 31 08.2002 तक सम्पन्न हुआ।

वेद प्रचार के अन्तिम दिन 31.08.2002 को योगीराज कृष्ण का जन्म दिवस विशेष यज्ञ का आयोजन श्री सत्यपाल जी शर्मा के पुरोहित्व में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम में बच्चों को पारितोषिक वितरण किया गया।

मत्री आर्य समाज
शाहपुरा जि–भीलवाड़ा

स्वामी आत्मबोध सरस्वती को श्रद्धाजंलि

नई दिल्ली। आर्य समाज के विश्व विख्यात स्वामी आत्मबोध सरस्वती (पूर्व महात्मा आर्य भिक्षु) जिन्होंने भारत में ही नहीं विदेशों में भी आर्य समाज एव स्वामी दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों का प्रचार–प्रसार किया का बुधवार दिनाक 04 09.2002 को प्रात 5 बजे हृदयगति रूक जाने से आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर हरिद्वार में स्वर्गवास हो गया।

उनकी शवयात्रा दिनाक 06 09 2002 को प्रात 9 बजे आर्य वानप्रस्थ आश्रम से आरम्भ हुई और प्रात 11 बजे उनकी वैदिक रीति से अन्त्येष्टि सम्पन्न हुई जिसमें आर्य वानप्रस्थ आश्रम के वानप्रस्थी एव सन्यासी तो सम्मिलित हुए ही साथ ही सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टकारा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा डी.ए.वी कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति वैदिक मोहन आश्रम हरिद्वार तथा विभिन्न आर्य समाजों एव आर्य सस्थाओं के अधिकारी सम्मिलित हुए।

उन्होंने आर्य समाज के मन्तव्य के अनुसार 50 वर्ष की आयु में वानप्रस्थ एव 75 वर्ष की आयु में सन्यास आश्रम की दीक्षा ली। उनके नेतृत्व में मुझे आर्य वानप्रस्थ आश्रम का सयोजक बनाया गया। वे प्रतिवर्ष जब से श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टकारा की स्थापना हुई है लगभग 50 वर्षों से महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टकारा में प्रतिवर्ष जाते थे। वे टकारा ट्रस्ट को अपनी ओर से तो दान देते ही थे साथ ही अन्य सस्थाओं एव महानुभावो से भी अच्छी राशि दान स्वरूप दिलवाते थे। उन्होने प्रतीक्षा कर रखी थी कि मैं आजीवन प्रतिवर्ष महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टकारा में मनाये जाने वाले ऋषि बोधोत्सव पर टकारा जाता रहूगा। उनके निधन से आर्य समाज को जो क्षति पहुची है उससे अधिक श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टकारा को भी महान क्षति पहुची है।

मैं टकारा ट्रस्ट की ओर से एव समस्त आर्य सस्थाओ की ओर से सवेदना प्रकट करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करता हू कि दिवगत आत्मा को शाति एव सद्‌गति प्राप्त हो।

रामनाथ सहगल मत्री

श्री नारायणसिह सगवालिया को मातृशोक

श्री नारायणसिह जी मत्री आर्य समाज गरोठ की पूज्या माता श्रीमती भवानीबाई 72 वर्ष दिनाक 6 9 2002 को दिवगत हुई। मुक्तिधाम पर पूर्ण वैदिक रीति से अन्त्येष्टि की गई एव आर्य समाज के सभी पदाधिकारियों एव सदस्यों द्वारा पुष्पाजलि अर्पित की गई। श्रद्धाजलि अर्पित करने वालों की श्रृखला में वैदिक विद्वान श्री [illegible] श्री श्री भवानीशकर मालदार श्री हरिभाई कुमावत प्र प्रा [illegible] खुशालचद आर्य आ वि द अधिष्ठाता श्री रमेशचद मोदी आदि थे।

प्रधान आर्य समाज गरोठ जि मन्दसौर म प्र 458880

पजियन सख्या RAJHIN/2000/2637
डाक पंजीकरण सख्या RJ 2637

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग दें

1 देश–विदेश की आर्य समाजों में घटित घटनाओं से आर्य जगत को अधुनातन जानकारी देना।

2 आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।

3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोडना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओ पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।

4 आर्य समाज द्वारा धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र मे किये जा रहे कार्यों की जानकारी देना।

5. समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओं का आर्य जगत को परिचय देना।

6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एव युवको का सगठन खडा करना।

7 आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाओ के माध्यम से देश मे सशक्त छात्र शक्ति खडी करना।

8 विश्व के आर्य परिवारो का सगठन बनाना।

9 देश के 100 विद्वानो की परिषद बनाना।

10 विश्व की समस्त भाषाओं में वेद सन्देश प्रकाशित कर वैदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।

11 विश्वशाति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरुद्ध मुहिम छेड़ना तथा देश में राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्रान्ति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीर्वाद दें कि परमपिता परमेश्वर हमें इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामर्थ्य दे।

तन मन धन से सहयोग दे पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने का कष्ट करे।

जयपुर जिले के फागी तहसील में अस्पृश्यता के विरूद्ध हरिजनों के आन्दोलन ने दम तोड़ा

जयपुर 21 सितम्बर। जयपुर जिले की फागी तहसील में हरिजनों और अनुसूचित जनजातियो तथा पिछडी जातियों के बीच लम्बे अरसे से चले आ रहे सघर्ष ने उग्र रूप धारण कर लिया और मीणा तथा जाटों द्वारा हरिजनो का सामूहिक नरसहार का वीभत्स हादसा सयोगवश टल गया।

आर्य नीति में आज से नो मास पूर्व हमने इस सघर्ष का पूर्ण विवरण दिया था और पाठकों को यह भी बताया था कि किस प्रकार आर्य समाज सर्वप्रथम हरिजनों को मुसीबत में देखकर उनको सहयोग देने के लिए दौडा। फागी तहसील में चकवाड़ा गाँव में एक छोटा सा तालाब है जहाँ लगातार गत चार वर्षों से बरसात न होने के कारण पानी केवल घुटने तक रह गया है। इस छोटे से तालाब पर भी सब जातियों के अलग–अलग घाट बने हुए हैं। हरिजनो के घाट पर पानी समाप्त हो जाने पर एक हरिजन ने जाटो और मीणों के घाट पर स्नान कर लिया। इस पर सारे इलाके में तूफान मच गया और हजारों मीणो और जाटो ने हथियार भाले लाठियाँ लेकर हरिजनों के घरों को घेर लिया और उन्हें जान से मारने की धमकी दी। इसके अतिरिक्त उनके घाट पर स्नान करने के फलस्वरूप 51 हजार रुपया जुर्माना ठोक दिया। हरिजनों ने पुलिस थाने में शिकायत की परन्तु अपराधियों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हुई। हरिजनों ने बाबूलाल आर्य नामक व्यक्ति के नेतृत्व में अन्याय के विरूद्ध सघर्ष का बिगुल बजाया और घोषणा की कि जिस धर्म में हमारे साथ कुत्तों से भी बुरा सलूक किया जाता है उस धर्म में रह कर हम क्या करेंगे। बाबूलाल आर्य के पिता आर्य समाज के भजनोपदेशक थे और बाबूलाल आर्य स्वय भी आर्य समाज के गीतों से श्रोताओं को मत्र मुग्ध कर देता है। हिन्दुओं के जातिवाद से पीड़ित होकर उसने घोषणा की कि मैं इस क्षेत्र के 50 हजार हरिजनों को मुसलमान बनाऊगा। उस अवसर पर श्री सत्यव्रत सामवेदी आर्य समाज के अनेक पदाधिकारियों के साथ चकवाड़ा गाँव गए और हरिजनों को जातिवाद के विरूद्ध सघर्ष में कधे से कधा मिलाकर सहयोग देने का आश्वासन दिया। इसके बाद चाकसू में हरिजनों की एक सभा भी की गई। चकवाड़ा गाँव के हरिजनों ने आर्य समाज के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा कि यह पहला सगठन है जो अन्याय के विरूद्ध हमें सहयोग देने के लिए आगे आया।

बाबूलाल आर्य ने बताया कि हम लोग विश्व हिन्दू परिषद राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ आदि सस्थाओं के साथ जुडे हुए थे। अयोध्या के मदिर आन्दोलन मे हम इनके साथ अयोध्या गए थे परन्तु आज हमारी कोई भी मदद करने नहीं आया।

इसके बाद इन हरिजनों ने आर्य समाज से कोई सम्पर्क नहीं किया और दलित मानवाधिकार सघ के झडे के नीचे अन्याय के विरूद्ध सघर्ष करते रहे परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला।

अत मजबूर होकर 20 सितम्बर को हरिजनों ने चकवाडा गाँव में हरिजनों पर किये जा रहे अत्याचार के विरूद्ध एक बहुत बडे प्रदर्शन का आयोजन किया और 2000 पुरुष और महिलाए सद्भावना यात्रा के नाम से चकवाडा गाँव की ओर रवाना हुए। रात को इन पुरुषों और महिलाओं ने माधोराजपुरा में विश्राम किया और प्रातः जब हरिजन चकवाड़ा की ओर कूच करने लगे तो पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को रोक दिया क्योंकि इस गाँव से 9 मील दूर फागी तहसील में 10 हजार जाट और मीणें लाठी हथियार लेकर इकटठे हो गए थे और यदि प्रदर्शनकारियों को फागी जाने दिया जाता तो निश्चितरूप से सामूहिक नरसहार की सम्भावना हो जाती। हरिजनों का नेतृत्व कर रहे पूर्व सासद श्री धर्मसिह एव दलित मानवाधिकार सघ के सयोजक श्री पी.एल.मीमरोठ ने प्रदर्शन को स्थगित कर दिया। इसके बावजूद फागी मे जाटों और मीणों ने पुलिस बल पर पथराव कर दिया जिसमें जयपुर के एस पी एव अन्य पुलिसकर्मी घायल हो गए।

हालात बेकाबू होते देखकर पुलिस ने पहले अश्रुगैस के गोले छोड़े उसके बाद भी भीड़ की ओर से जबर्दस्त पथराव जारी रहने के कारण पुलिस को हवाई फायर करना पड़ा।

दलितों के प्रदर्शन में सत्यव्रत सामवेदी भी अपने साथियों सहित शामिल हो गए और यात्रा स्थगित करने के बाद वे सीधे मुख्यमत्री से मिलने गए और उन्हें भयानक स्थिति से अवगत कराया और कहा कि चकवाड़ा गाँव के हरिजनों के 50 परिवार मौत की साया में जी रहे है और उनकी कभी भी सामूहिक हत्या हो सकती है। गाँव वालों ने उनका बहिष्कार किया हुआ है। नाईयों ने बाल काटने से इन्कार कर दिया है दुकानदार सामान नही देते हैं और भय यहा तक व्याप्त है कि वे नित्यकर्म के लिये भी बाहर नहीं जा सकते। सामवेदी जी ने मुख्यमत्री से अविलम्ब उनकी रक्षा करने के लिए आग्रह किया। अपराधी तत्वों के विरूद्ध कार्यवाही न होने के कारण ही यह स्थिति उत्पन्न हुई है। आज हजारो लोग जब हथियार लेकर शहर मे घूम रहे थे तो पुलिस ने कोई कार्यवाही नहीं की और उसी का परिणाम पुलिस को भुगतना पड़ा। टोंक जिला हरिजन बहुल प्रदेश है। इसके बावजूद हरिजनों पर अत्याचार का सिलसिला जारी है। यह खेद आर्य समाज की कमजोरी का परिणाम है। लड़ाई बहुत लम्बी है। जब तक हरिजन स्वय सगठित होकर सशक्त नहीं होंगे तब तक कोई भी दलितों की रक्षा नहीं कर सकता है। सामवेदी जी ने घोषणा की कि दलितों की रक्षा के लिये शीघ्र ही जाटों के नेतृत्व में विशाल रैली का आयोजन किया जायेगा और अस्पृश्यता तथा जातिवाद के विरूद्ध महासमर का पाञ्चजन्य फूका जायेगा।

उड़ीसा में धर्म रक्षा अभियान के लिए श्रीमती पुष्पा सक्सेना ने 500 रुपये दान दिये

आर्य महिला समाज, आदर्श नगर, जयपुर की प्रधाना श्रीमती पुष्पा सक्सेना का जन्म करतारपुर जिला जालधर, पजाब में 1930 में एक आर्य समाजी परिवार में हुआ। श्रीमती सक्सेना का विवाह दिल्ली में कट्टर आर्य समाजी परिवार में हुआ। इनके पति का नागपुर में स्थानान्तरण होने पर वहा की आर्य महिला समाज की सदस्य बन गईं। 1962 में बंगला देश जो शरणार्थी जो मध्यप्रदेश में आए थे उनको हर दृष्टि से सहयोग दिया। इनके सब पुत्र एव पुत्रियाँ कनाडा में है और आर्य समाज के प्रचार–प्रसार के लिये कनाडा से दान भेजते रहते हैं।

इसके अतिरिक्त श्रीमती सुमित्रा बत्रा श्री धर्मपाल मधु श्रीमती सत्यकामा जी श्रीमती सुधा आर्य ने 100–100 रुपये दिये।

भारत निर्माण महाअभियान द्वारा २७ सितम्बर से २ अक्टूबर तक अयोध्या से दिल्ली राजघाट की शान्ति, सौहार्द एवं सद्भावना यात्रा "मिल कर चलो" का आयोजन

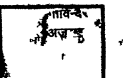
इस ऐतिहासिक यात्रा के मुख्य सचालक पूर्व राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायण होंगे। यात्रा में पूर्व प्रधानमत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल जस्टिस वी.आर.कृष्ण अय्यर, प्रख्यात न्यायविद् फली एस.नरीमन श्री बी.जी. वर्गीस, सुश्री निर्मला देशपाण्डे प्रो कैलाश नाथ सिंह व हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख व ईसाई आदि धर्मों के विभिन्न आध्यात्मिक एव धार्मिक नेता विशेषकर हिन्दू धर्माचार्य, शकराचार्य, महामण्डलेश्वर तथा राष्ट्रीय स्तर के ख्याति प्राप्त वरिष्ठ मानसिक भी सम्मिलित होंगे। धार्मिक सहिष्णुता आपसी विश्वास एव मैत्री की सांझी विरासत को स्थाई बनाने के लिए आप भी यात्रा में सम्मिलित होकर तथा अपना तन–मन–धन से सहयोग देकर भारत निर्माण में भागीदार बनें।

भवदीय
स्वामी अग्निवेश
सयोजक

सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक 13 जवाहर नगर, द्वारा वीनू प्रिन्टिंग प्रेस बाबा हरिश्चन्द्र मार्ग जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि 652697 का. 622055 e-mail Vishwamaryam@satyam.net.in
आर्य समाज विद्या समिति एव शिक्षा समिति आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज राजापार्क जयपुर–4
राजस्थान

पजियन सख्या
RAJHIN/2000/2637
डाक पजीकरण
सख्या RJ 2637



2 श्री धर्मपाल आर्य
उप कुलपति
गुरूकुल कागडी
विश्वविद्यालय हरिद्वार

।।ओ३म्।।
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य नीति

वर्ष 2 अंक 42 08 अक्टूबर 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पंजियन संख्या RJ-2637/2001 वार्षिक मूल्य 75 रुपये

भारत निर्माण महाअभियान

कुछ नहीं तो कम से कम ख्वाबे सहर देखा तो है
जिस तरफ देखा न था अब तक उधर देखा तो है

– सत्यव्रत सामवेदी

जयपुर 05 अक्टूबर। अयोध्या से राजघाट तक मिल के चलो यात्रा में शामिल होने के लिए जयपुर से हम पाँच यात्री– सत्यव्रत सामवेदी रामसिह आर्य मध्यप्रदेश के लक्ष्मणदास आर्य भैंवर लाल और देवेन्द्र त्यागी के साथ 25 सितम्बर को प्रात 8 बजे रवाना होकर स्वामी अग्निवेश जी के कार्यालय पर 1 30 पहुँच गए। वहा स्वामी जी ने बताया कि अयोध्या में प्रशासन ने हमारी यात्रा एव सार्वजनिक सभा को प्रतिबन्धित कर दिया है और उनके साथी सन्दीप पाण्डे को उनके 70–80 कार्यकर्ताओं के साथ गिरफ्तार कर लिया है। मेरे खिलाफ भी गिरफ्तारी वारन्ट है और यदि हम अयोध्या जाते हैं तो हमारी गिरफ्तारी निश्चित है। अत अब हमने लखनऊ से 27 सितम्बर से यात्रा प्रारम्भ करने का निर्णय लिया है। अत आप सब अब लखनऊ चले जाए जहा गाधी भवन से हमारी यात्रा प्रारम्भ होगी। इस यात्रा के लिए हरियाणा के दानी एव निश्छल व सरल व्यक्तित्व वाले आर्य नेता चौधरी मित्रसेन ने एक वातानुकूलित रथ दिया



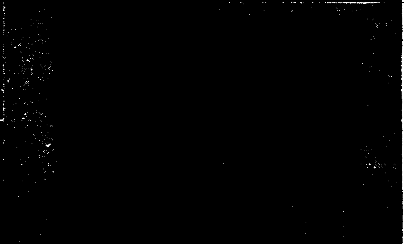
2 अक्टूबर को शांति मार्च से पहले पूर्व प्रधानमंत्री श्री वी पी सिह सम्बोधित करते हुए

सिह का फोन आया और मुझे बुलाकर बात करने को कहा। फोन पर उन्होंने कहा कि मुझे स्वामी अग्निवेश जी से फोन पर

हू परन्तु ड्राइवर उठ ही नही रहे इसीलिए अभी तक नहीं आ सके। ड्राइवर के जगने पर हम 5 लोग प्रो कैलाश नाथ सिह जी से मिलने गए। उन्होंने चाय पिलाकर हमार आतिथ्य सत्कार किया। यात्री दल के लखनऊ रवाना होने से पूर्व दिल्ली में प्रेस कान्फ्रेंस हुई और जिसे भारत निर्माण महाअभियान से सम्बद्ध नेताओं ने सम्बोधित किया। राम के आदर्शों और गाधी के जीवन मूल्यो की धारा चलाकर देश मे बढ रही साप्रदायिक और आतकवादी हिसा को ठडा करने की एक पहल पर उत्तर प्रदेश सरकार और फैजाबाद जिला प्रशासन ने पाबदी लगा दी। जबकि इस मानवीय पहल को राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम पूर्व राष्ट्रपति के आर नारायणन पूर्व प्रधानमत्री विश्वनाथ प्रतापसिह चन्द्रशेखर और इन्द्र कुमार गुजराल सहित देश की कई जानी मानी हस्तियो का आशीर्वाद और सहयोग मिल रहा है। राष्ट्रपति ने इसके लिए अपनी शुभकामनाए भी भेजी हैं।

आर्य समाज की पहल पर स्वामी अग्निवेश के नेतृत्व में
मिल के चलो (संगच्छध्वं) यात्रा

हुआ था जिसमें दो कुर्सिया थी और सोने के लिए एक पलग था। उसी रथ में शौचालय और स्नानघर की भी व्यवस्था थी परन्तु अभी तक अन्य गाड़ियो की व्यवस्था नहीं हो पाई थी। हमारे जाने के बाद ही गाड़ी की व्यवस्था करने का प्रयास किया गया। रात्रि को 7 30 बजे 24 लोग चार सूमो गाड़ियों एव वातानुकूलित रथ पर रवाना हुए। राजस्थान से हम चार लोग ही थे शेष 20 व्यक्ति श्री जगवीर सिह जी द्वारा सचालित आर्य युवक परिषद से सम्बद्ध थे। इन 20 व्यक्तियों में भी चार व्यक्ति बहरोड़(अलवर) के थे। दस यात्रियों को रेलगाड़ी से आना था। जिनमें दो ईसाई बहने थी और आठ ईसाई बन्धु थे। हम लोग सारी रात यात्रा करते हुए 26 सितम्बर को 11 बजे लखनऊ पहुचे और गाधी भवन में विश्राम किया। स्नान इत्यादि से निवृत्त होने के बाद श्री जगवीरसिंह [illegible] में किसी होटल में भोजन कराने ले गए। लखनऊ पहुचने पर हमारी इच्छा थी कि हम सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एव आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान प्रो कैलाशनाथ सिंह जी से मिलते चलें। इसी समय गांधी भवन में प्रो. कैलाशनाथ



आर्य इन्टर कॉलेज सीतापुर के पदाधिकारियों को सम्बोधित करते हुए श्री सत्यव्रत सामवेदी

पता चला है कि आप लोग लखनऊ आ गए हैं परन्तु आपने कोई फोन नहीं किया। यह आश्चर्य की बात है। मैंने कहा कि मै तो बहुत देर से आपके कार्यालय में आने के लिए तैयार बैठा

गौरतलब है कि राजनीति समाजसेवा फिल्म और मीडिया से जुडे जाने माने लोगों ने साम्प्रदायिकता और आतकवाद के खिलाफ [illegible] भारत महाभियान के अन्तर्गत सद्भावना यात्रा मिल कर चलो का आयोजन अयोध्या से राजघाट तक किया है जिसमे सभी धर्मों के धर्माचार्य और कई जानी मानी हस्तिया शामिल होंगी। यह यात्रा 27 सितम्बर को अयोध्या से शुरू होगी जो दो अक्टूबर के दिन दिल्ली में राजघाट पर देश और समाज की एकता सद्भाव और भाईचारे के सकल्प के साथ एक राष्ट्रीय मुहिम में बदल जाएगी। यह जानकारी आज पूर्व प्रधानमत्री इन्द्र कुमार गुजराल स्वामी अग्निवेश फादर वाल्सन थिम्पू, गाधीवादी निर्मला देशपाण्डे मौलाना शफी मुनीस और बिशप करम मसीह ने बुधवार को एक सयुक्त सवाददाता सम्मेलन में दी। पूर्व प्रधानमत्री इन्द्र कुमार गुजराल सहित सभी ने मगलवार को गाधीनगर के स्वामीनारायण अक्षरधाम मंदिर पर हुए आतकवादी हमले की कड़ी निंदा करते

हुए इस हादसे में मारे गए लोगों को श्रद्धाजलि दी। इसके बाद श्री गुजराल ने कहा कि इस घटना के बाद अब देश में साप्रदायिक सद्भाव और सद्भावना का महात्मा गाधी का सदेश ले जाने की जरूरत और बढ़ गई है। आर्य समाजी और मानवाधिकारवादी स्वामी अग्निवेश ने बताया कि देश मे अयोध्या के मदिर आदोलन के बाद से ही माहौल बिगडने की शुरूआत हुई है इसलिए अयोध्या के ही अनेक सतो की इच्छा है कि देश मे अब अयोध्या से ही शाति और सद्भाव का सदेश भी जाना चाहिए। इसलिये भगवान राम की जन्म स्थली अयोध्या से यात्रा शुरू करके देश मे रामराज्य की परिकल्पना करने वाले महात्मा गाधी की समाधि राजघाट पर इस यात्रा को सद्भाव के सकल्प का रूप दिया जाएगा। स्वामी अग्निवेश ने कहा कि लेकिन फैजाबाद के जिला प्रशासन ने इस यात्रा की अनुमति देने से इकार करते हुए अयोध्या मे धारा 144 लगा दी है। इसके बाद मुख्यमत्री मायावती को भी टेलीग्राम से सूचित किया गया लेकिन उनका कोई जवाब नही आया। प्रधानमत्री और उपप्रधानमत्री को भी सूचित किया गया लेकिन वहा से भी कोई जवाब नही मिला। लेकिन 27 सितम्बर को यात्रा अयोध्या से शुरू होकर बाराबकी लखनऊ सीतापुर शाहजहापुर बरेली रामपुर मुरादाबाद गढमुक्तेश्वर हापुड और गाजियाबाद होते हुए 2 अक्टूबर को दिल्ली पहुचेगी। वहा राजघाट पर यात्रा मे शामिल लोग शाति सदभाव और भाई चारे की शपथ लेगे। इस यात्रा का आयोजन करने वाला सस्था भारत निर्माण महाभियान के सरक्षक पूर्व राष्ट्रपति के आर नारायणन है और पूर्व प्रधानमत्री वी पी सिह इन्द्रकुमार गुजराल कानूनविद फाली नारीमन न्यायमूर्ति वी आर कृष्ण अययर एडमिरल एल रामदास वरिष्ठ पत्रकार वीजी वर्गीस तरूण तेजपाल अभिनेत्री नफीसा अली नदिता दास मैगासासे पुरस्कार विजेता सदीप पाडे लेकिखा महाश्वेता देवी गाधीवादी निर्मला देशपाण्डे समाजसेवी अणा हजारे मोहिनी गिरि मौलाना वहीदुद्दीन जमीअते उल्मा हिन्द के प्रमुख मौलाना असद मदनी मौलाना महमूद मदनी जमाएते इस्लामी हिन्द के उपाध्यक्ष मौलाना शफी मुनीस फादर डोमिनिक इमैन्युअल फोदर वाल्सन थिम्पू मौलाना रफीक कासमी भाई दयासिह निरजन तोलिया शिवकुमार मिश्र इस यात्रा मे शामिल होगे।

26 सितम्बर को प्रात स्वामी अग्निवेश जी और 10 ईसाई बहने व बन्धु भी पहुच गए। मध्याह्नोत्तर 3 बजे गाधी भवन मे प्रेस काफ्रेन्स हुई और 5 बजे गाधी भवन के हाल मे सभा सम्पन्न हुई। इस सभा को अयोध्या से आए फलाहारी बाबा स्वामी माधवानद महन्त रामदास महन्त ज्ञानदास महन्त धरमदास आदि अनेक सतो के अतिरिक्त दिल्ली से आए फादर वाल्सन थिम्पू एव प्रसिद्ध गाधीवादी निर्मला देशपाण्डे सदीप पाडे हबीबुर्रहमान ने सम्बोधित किया।

सभा को सम्बोधित करते हुए स्वामी अग्निवेश ने कहा कि आज भारत एक विभाजित राष्ट्र है। इस की एकता और अखडता पर अभूतपूर्व दबाब पड रहा है। एकता हमारी ताकत है और विभाजन हमे पतन की ओर ले जा सकता है।

भारत विभिन्न धर्मों आस्थाओ और मजहबो का गुलदस्ता है। हम बहुधर्मी देश है और बहुधर्मी देश के बिना भारत की कल्पना नहीं की जा सकती। भारत बहुधर्मों के मानने वालों की भूमि है। राजनीति की विसगति की वजह से भारत एक राष्ट्र की परिकल्पना से वचित हो रहा है। हमारे साहित्य परम्परा और चिन्तन में पूजाघर है। हम पूजा करते हैं। हम अपने देशवासियों और भगवान को अपने कर्मों से आघात पहुचा रहे हैं।

हमारे देश की सबसे बडी व्याधि साप्रदायिकता है। धर्मोन्माद के वहशीपन ने राजसत्ता हथिया ली है और जनता के एक हिस्से में अपना प्रभाव तथा इज्जत में भी उसका इजाफा किया है। साप्रदायिकता अपने राजनीतिक हितों के लिए धर्म का दुरूपयोग करती है। धर्म के नाम पर वह जनता को बाटती है तथापि धर्म सच्चे धर्म का मकसद जनता की एकता की बुनियाद को आध्यात्मिक ढग से पुख्ता बनाना होता है।

साप्रदायिकता धर्म का आवरण ओढ़कर चलती है। धर्म का दुरूपयोग तमाम कदाचार की जननी है। असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि साप्रदायिकता के दावेदार भ्रष्टाचार के स्तरी बने हुए हैं। साप्रदायिकता आज के हमारे समाज में अपराध हिंसा और असन्तोष की प्रेरक शक्ति है। सच्चे धर्म का अधिदेश शाति और सद्भाव की सीख देता है। साप्रदायिकता का उभार धर्म निरपेक्ष लोकतत्र और निष्पक्ष प्रशासनिक सस्कृति पर प्रहार है। इससे सत्ता साप्रदायिक पक्षपात की शिकार होती है। पक्षपात पूर्ण प्रशासन आम जनता के लिए दु स्वप्न है। इससे हमारे राष्ट्र की एकता का ढाचा टूट सकता है। समय की पुकार है कि सभी धर्म सगठित होकर एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करें जिसका आधार प्रेम करूणा शाति सत्य और न्याय हो सकता है। हमें विघटनकारी शक्तियों को पराजित करना होगा। ये शक्तिया धार्मिक वेशभूषा में स्थापित स्वार्थ का ही प्रतिनिधित्व करती है। हमारे राष्ट्र की आस्था का आरम्भ बिन्दु सत्यमेव जयते अर्थात सत्य ही विजयी होता है। भगवान राम धर्म का साक्षात रूप है। वह आक्रमण और अधर्म का नाश करते हैं। भारत अहिंसा की धरती है नफरत और रक्तपात से भारत परहेज करता है।

मिल के चलो केवल कार्यक्रम नहीं है बल्कि जन आदोलन है। एकता और भाईचारे की पुकार है। साप्रदायिकता के घाव से घायल भारत के दर्द से इसका जन्म हुआ है। महात्मा के भारत की महानता को हर कीमत पर सुरक्षित रखना है। सर्वधर्म समभाव के गाधी के सपने साकार करने के लिए हम सभी को मिलजुल कर प्रयास करना होगा।

27 सितम्बर को प्रात 9 30 बजे हमारा यात्रीदल शाहजहापुर के लिए रवाना हुआ और हमारा पहला पडाव सीतापुर में था सीतापुर जनपद में प्रवेश होते ही पूर्व केन्द्रीय गृह राज्यमत्री श्री राही ने हमारा स्वागत किया और एक सभा का भी आयोजन किया। वे हमारे साथ सीतापुर तक चले। आर्य इन्टर कॉलेज सीतापुर में हमारे भोजन की व्यवस्था थी। वहीं से हम छात्राओ की रैली के साथ शहर के विभिन्न भागो में होते हुए जिला परिषद के हाल में पहुचे। शहर के 60–70 प्रतिष्ठित व्यक्ति और आर्य इन्टर कॉलेज का स्टॉफ भी इस सभा में था।

सीतापुर से आर्य समाज के सदस्यो एव अन्य अनेक गणमान्य व्यक्तियो ने हमें भावभीनि विदाई दी और शाम को 7 बजे हम शाहजहापुर से 10–12 मील पहले मुख्य मार्ग पर स्थित विनोबा सेवा आश्रम पहुचे जिसका सचालन एक तपस्वी गाधीवादी श्री रमेश भाई करते हैं। इसकी स्थापना अनेक वर्ष पूर्व निर्मला देश पाण्डे ने की थी। हमारी आवास और भोजन की व्यवस्था इसी आश्रम में थी। वहा हमारा भव्य स्वागत हुआ। वहा से श्री रमेश भाई हम सबको आर्य समाज शाहजहापुर ले गए। सबसे पहले वे हमे उस विशाल पार्क में ले गए जहा पर क्रान्ति शिरोमणि प रामप्रसाद बिस्मिल उनके अजीज अशफाक उल्ला खा एव आर्य शहीद ठाकुर रोशनसिह की मूर्तिया थी। इस पार्क में हजारों लोग प्रतिदिन आकर इन शहीदों को नमन करते हैं। वहा से हमें आर्य समाज शाहजहापुर ले जाया गया। जहा पर 400–500 प्रबुद्ध व्यक्ति यात्रीदल के नेताओं का भाषण सुनने के लिए आए हुए थे। यह सभा रात्रि के 11 बजे तक चलती रही। स्वामी अग्निवेश जी का लगभग एक घटा तक भाषण चला जिसमें उन्होंने राष्ट्रवासियों को प रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला के आदर्शों पर चलने की प्रेरणा दी और कहा कि ये दोनों महान शहीद साप्रदायिक एकता के लिए अक्षय प्रेरणा के स्रोत हैं। इस सभा को सदीप पाडे हबीबुर्रहमान फादर डोमिनिक इमेन्युअल ने भी सम्बोधित किया। सदीप पाडे इस यात्रा के नायक बने हुए थे। मैगसेसे पुरस्कार की राशि वापिस करने के कारण वे जनता के सम्मान के पात्र हो गए। यह स्वावाभिक ही है कि जो व्यक्ति 50 हजार डालर या 25 लाख रुपयों को ठोकर मारे उसके प्रति जनता का आदर भाव हो। सदीप पाण्डे ने परमाणु बम के विरोध में पोखरण से जब यात्रा प्रारम्भ की थी तब मैंने इन्हें तन–मन–धन से सहयोग दिया था। मैं अपने अनेक साथियों के साथ पोखरण पहुचा। फिर जयपुर से दौसा तक इसकी यात्रा में मैं साथियों के साथ मौजूद रहा। यात्रा के समापन के अवसर पर वाराणसी भी पहुचा।

शाहजहापुर में रात्रि को गुरूद्वारा वालों ने हमें भोजन के लिए आमंत्रित किया और हमारा भव्य स्वागत किया। भोजन के बाद हम लोग पुन विनोबा सेवा आश्रम में वापिस रात्रि विश्राम के लिये चले गए। प्रातःकाल आश्रम के समग्र रूप को देखा और आश्रम द्वारा आयोजित प्रार्थना सभा में आश्रम के संचालक श्री रमेश भाई ने अपना परिचय देते हुए बताया कि वे अब तक 25 हजार किमी की पदयात्रा कर चुके हैं। आश्रम की गतिविधियों को देखकर हमें आश्चर्य और ईर्ष्या दोनों हुई। यह आश्रम अनेक क्षेत्रों में कार्य करता है। गावों में महात्मा गाधी के अनुरूप प्रकति की गोद में बच्चों को सुशिक्षा देना गावों में बीमारों का ईलाज करना प्रसुति व्यवस्था निराश्रित महिलाओ को आश्रय व रोजगार देना आचार मसाले टाट–पट्टी आदि अनेक वस्तुओं का निर्माण और इससे प्राप्त धनराशि महिलाओ को देना। गौ पालन आदि न जाने कितनी योजनाए थी। हमे यह सब देखकर ईर्ष्या हुई कि आर्य समाज इस प्रकार के आश्रम क्यों नही स्थापित करता जिससे जनता का उपकार हो। आर्य समाज में आज शब्दाडम्बर लफ्फाजी और लड़ाई झगड़े के अलावा क्या है? तोते की तरह सध्या हवन के मत्रों का पाठ करना जिसका हम अर्थ भी नहीं जानते हैं और जिसका हमारे मन हृदय और मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। साप्ताहिक सत्सग के बाद अपने घर चले जाना और 6 दिन तक सोये रहना और रविवार को 15 मिनट या आधे घटे के लिए आर्य समाज आ जाना।

28 सितम्बर को आश्रम से रवाना होकर हम बरेली पहुचे। रास्ते मे अनेक आर्य समाजों ने हमारा स्वागत किया। हमे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आर्य समाज की आग कहा–कहा तक फैली हुई है और आर्य समाज के तथाकथित नेता इस आग को बुझाने मे लगे है। बरेली पहुचने पर एक गुरूद्वारे मे हमें सम्मानित किया गया। सैंकडों सिक्ख भाई–बहन हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे और हमारे स्वागत के बाद हमें प्रेमपूर्वक भोजन कराया। यह सब यात्री दल मे शामिल भाई दयासिह की सद्भावना का फल था। भाई दयासिह का कहना है कि आर्य समाज और सिक्ख यदि मिल कर काम करें तो देश मे क्रान्ति आ सकती है। उन्हीं के प्रभाव से सर्वत्र गुरूद्वारो मे आयोजन होता था जहा बहुत ध्यानपूर्वक लोग हमारी बातों को सुनते और उसके बाद प्रेमपूर्वक भोजन परोसते। शाम को हम बरेली की बिहारीपुर स्थित ऐतिहासिक आर्य समाज में गए जहा सैंकडो आर्य नर–नारियो ने हमारा स्वागत किया। आर्य समाज से जुलूस के रूप में हम एक चर्च में गए परन्तु चर्च वालों ने हमारे जाने पर अपने द्वार बद कर लिए। चर्च के पास ही एक पार्क है। हम चर्च से उस पार्क मे चले गए। पार्क मे एक सभा हुई जिसका सचालन बरेली के प्रसिद्ध बुद्धिजीवी श्री पालीवाल जी कर रहे थे। बरेली के अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओ ने अपने विचार व्यक्त करते हुए हमे सहयोग देने का आश्वासन दिया। वहीं से थोड़ी दूरी पर स्थित गुरूद्वारे में यात्री दल को सम्मानित करने के लिए सैंकडों सिक्ख भाई–बहन उपस्थित थे और वहीं पर ही हमारे भोजन की व्यवस्था थी। गुरूद्वारे से हम आर्य समाज भवन में विश्राम करने के लिए वापिस आ गए। प्रातःकाल आर्य समाज बरेली ने हमारे नाश्ते की व्यवस्था की और साथ में रास्ते के लिए भोजन भी दिया। इस आर्य समाज में कल ही आर्य महिला समाज द्वारा आयोजित वेद प्रचार सप्ताह समाप्त हुआ था। हमें बताया गया कि इस वेद प्रचार सप्ताह में लगभग 500 महिलाए प्रतिदिन आया करती थीं। इस आर्य समाज के युवा मत्री श्री श्वेतकेतु शर्मा आर्य जगत की यशस्विनी विदुषी श्रीमती सावित्री देवी शर्मा के सुपुत्र हैं। श्री श्वेतकेतु ने हमें बताया कि वेद मत्रों की दार्शनिक आधार पर वैज्ञानिक व्याख्या के लिए वे प्रकाण्ड विद्वानो को आमत्रित करते हैं। उन्होंने बताया कि जब से उन्होने साप्ताहिक सत्सगों में विद्वानो को विषय देकर आमत्रित करना शुरू किया है तब से साप्ताहिक सत्सग में उपस्थिति में असाधारण वृद्धि हुई है।

वहा से हम लोग मलक–रामपुर मे आर्य इन्टर कॉलेज में गए। महीने का अन्तिम दिन होने के कारण कॉलेज का अवकाश हो गया था। उसके प्रधान श्री जयसुखराम आर्य ने कॉलेज प्रागण में आकर हमारा स्वागत किया। दोपहर में विश्राम के लिए दरिया एव गद्दे मगवाए। भोजन के साथ केलों की व्यवस्था की। इस कस्बे में आर्य समाज का कोई प्रभाव नहीं था। उनके साथ दो साथी आए थे। वे भी थोडी देर में प्रधानजी को अकेला छोड़कर चले गए। अब केवल प्रधानजी और प्रधानाचार्य यात्री दल के लिए दरिया बिछा रहे थे। आर्य कॉलेज की स्थापना उनके भाई ने की थी। प्रधानजी का कहना था कि जिस उद्देश्य के लिए इन संस्थाओं की स्थापना की [illegible] उससे हम बहुत दूर चले गए हैं। अब इन सस्थाओं से आर्य समाज का कोई भला होने वाला नहीं है और इन सस्थाओं के माध्यम से आर्य समाज का प्रचार करना असम्भव है। इनका अस्तित्व भी अन्य सरकारी स्कूलों की भांति हो गया है। इसी इन्टर कॉलेज के प्रागण में यात्री दल की एक विचार गोष्ठी हुई जिसमें यात्री दल में [illegible] प्रत्येक यात्री ने अपना–अपना परिचय दिया। इस विचार [illegible] हमारे साथी भाई दयासिंह बिगड़ गए और कहने लगे कि हम [illegible] चल रहे कलकत्ता के हबीबुर्रहमान ने बरेली में पत्रकारों [illegible] साक्षात्कार में मुसलमानों के आरक्षण की वकालत की जो अ[illegible] सारे अखबारों में छप गई। सरदार जी का कहना था कि हबीबु[illegible] ने मुसलमानों की आरक्षण की बात करके हमारे महाभियान पर प्रश्न

चिन्ह लगा दिया है। मेरा इस रैली से कोई सबध नही है। मैं इस रैली से अभी अलग होने के लिए तैयार हू। भाई दयासिह बहुत उम्र हो गए और बड़ी मुश्किल से उन्हें मनाया गया।

वहा से शाम को हम मुरादाबाद पहुचे और मुरादाबाद के हिन्दू कॉलेज में हमारा भव्य स्वागत हुआ और एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी में अत्यन्त कृपापूर्वक मुझे भी विचार व्यक्त करने के लिए कहा गया। मैंने पाच मिनट मे ही उस महाभियान पर प्रकाश डालते हुए कहा कि मत–मतान्तरों के रहते सबको एक सूत्र में बाधना बहुत कठिन कार्य है। लोग पूछते हैं कि क्या इस यात्रा से साम्प्रदायिकता समाप्त हो जायेगी? आपस के मन–मुटाव समाप्त हो जायेंगे? क्या आतकवाद समाप्त हो जाएगा? मैंने इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि–

जेहने इन्सानी ने अल औहाम के जूल्मात मे
जिन्दगी की सख्त तूफानी अधेरी रात मे।
कुछ नही तो कम से कम ख्वाबे सहर देखा तो है
जिस तरफ देखा न था अब तक उधर देखा तो है।

मुरादाबाद में सभा को सम्बोधित करते हुए स्वामी अग्निवेश ने कहा कि धार्मिक सस्थाओ ने सामाजिक सरोकारो से मुह मोड लिया इसीलिए समस्याए पैदा हो रही है। धर्म की सही सोच का इस्तेमाल नहीं हो पा रहा और वह समाज मे सघर्ष का कारण बन रहा है। भोजन के अभाव मे 5000 बच्चे रोज मर रहे हैं उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं है। स्वामी अग्निवेश ने कहा कि धर्म की सही व्याख्या न होने से कट्टरवाद पनप जाता है। इन तथाकथित नेताओं ने धर्म का सकारात्मक पहलू त्याग कर नकारात्मक पक्ष को पकड लिया है। उन्होंने कहा कि सभी धर्मों के 90 फीसदी बाते समान है। इन पर मिल कर काम होना चाहिए लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। जात–पात जन्म से नहीं होनी चाहिए। यह सभी धर्म मानते है। इस पर मिलकर काम किया जा सकता है।

प्रात काल मुरादाबाद स्थित आर्य समाजों के पदाधिकारियों से मिलने गए। आर्य समाज के भवन इन्टर आर्य कॉलेज चल रहा है। प्रधानाचार्या ने प्रधान जी के घर का पता दिया और एक आदमी को हमारे साथ भेजा। वहा जाने पर हमें बताया कि वे आर्य समाज गये हैं हम फिर आर्य समाज गये परन्तु वे वहा नही मिले। सेवक ने कहा कि हो सकता है कि वे पास मे ही किसी धर्मशाला मे आयोजित वेद प्रचार मण्डल द्वारा आयोजित वेद प्रचार सप्ताह के उत्सव मे गए हों। हम उस सेवक के साथ उस धर्मशाला में गए प्रधान जी वहीं बैठे हुए थे। मच पर आर्य नरेश जी विराजमान थे। उस समय दक्षिणा देने का कार्यक्रम चल रहा था। आर्य नरेश जी कर रहे थे कि मैं तो कोई दक्षिणा लेता नही। केवल हिमाचल मे अपने आश्रम के लिए दान की अपील करता हू। उन्होने यह नही बताया कि आश्रम के लिए दान की अपील को महादक्षिणा कहते है। वेद प्रचार मण्डल के आयोजको को जब हमने अपना परिचय दिया तो वे बहुत प्रसन्न हुए। इस सभा का सयोजन श्री यशपाल आर्य बन्धु कर रहे थे। उन्होने अत्यन्त प्रेम पूर्वक हमे मच पर आमन्त्रित किया और मच पर बुलाकर मेरा श्रीरामसिह आर्य एव श्री लक्ष्मणदास आर्य का माल्यार्पण करके स्वागत किया लगभग 500–600 आर्य नर नारी उस सभा मे थे। मुझे भी 15 मिनट के लिए सभा को सम्बोधित करने का आग्रह किया गया। मैंने सगच्छध्व के सगठन सूक्त के सगच्छध्व मत्र की व्याख्या करते हुए कहा कि द्वेष और ईर्ष्या भाव छोड कर यदि आर्य समाजी प्रेम के सूत्र मे बध जाए तो विश्व मे क्रान्ति हो सकती है। वेद का सदेश है

सहृदय सामनस्य अविद्वेष कृणोमि व।
अन्योन्यभिहर्यत वत्स जातमिवघ्न्या।।

इसी एक मत्र की नाव पर चढकर सारा ससार इस भव सागर को पार कर सकता है। हम आर्य समाजी भी एक–दूसरे से मिलकर प्रसन्न नहीं होते। हममें भी पारिवारिक भावना नहीं है तो 'परिवार कहे वसुधा भर को' केवल शब्दाडम्बर एव लफ्फाजी है। इसीलिए हमने सगच्छध्व यात्रा का आयोजन किया है। श्रोताओं ने तुमुल करध्वनि से मेरे प्रवचन का स्वागत करते हुए भावभीनी विदाई दी और पुन आने का निमत्रण दिया। इसके बाद यात्री दल हापुड़ के लिए रवाना हुआ। हमारा पहला पड़ाव माता गुजरी गुरमत कालिज प्रस्तावित इन्टर कॉलेज शाहबाजपुर कला जे पी नगर में हुआ। वहा पर काफी महिलाएं और सिक्ख बन्धु हमारे स्वागत के लिए दोपहर को 12 बजे एकत्रित हुए। वहा से हमारा यात्री दल श्रीमद् दयानन्द कन्या गुरूकुल महाविद्यालय चोटीपुरा पहुचा। हरियाली से भरपूर खेतों के बीच में छात्राओं के लिए एक भव्य गुरूकुल देखकर हमे बहुत आश्चर्य हुआ। सुन्दर भवन भव्य परिवेश। यह सब देखकर अत्यन्त आनन्द की अनुभूति हुई। मैं स्वय गुरूकुल में पढ़ा हू और मैंने अनेक गुरूकुल देखे हैं। उन गुरूकुलो को देखकर मेरे मन में गुरूकुल के प्रति घृणाभाव उत्पन्न हो गया। मैं हमेशा यह आश्चर्य करता रहता था कि आर्य समाज के दीवाने अपने बच्चो की जिन्दगी बर्बाद करने के लिए उन्हें गुरूकुलों में क्यो भेजते हैं? परन्तु इस गुरूकुल को देखकर मेरी सारी धारणा बदल गई। वहा ऐसा प्रतीत होता था कि कोई शाति की वर्षा हो रही हो। छात्राओ को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि वे पवित्रता की प्रतिमूर्तिया हो। उनकी प्रत्येक गतिविधि मे पवित्रता और सौन्दर्य था। वही हमारी भोजन व्यवस्था की। छात्राओं द्वारा प्रेमपूर्वक सफाई से भोजन परोसना कितना सुखद था। वे शालीनता की जीती जागती प्राणवान मूर्तियां थी। यह सब डा सुमेधा एव डा सुकामा का चमत्कार था। प्रत्येक गुरूकुल मे एक आचार्य होता है परन्तु यहा पर दो आचार्या हैं। हमें बताया गया कि डा सुमेधा के पिताजी के पास एक एकड भूमि थी जिसे उन्होने गुरूकुल के लिए दान कर दी। डा सुमेधा ने पीएचडी करने के बाद आजीवन अविवाहित रहकर गुरूकुल का सचालन करने का व्रत लिया। इस गुरूकुल मे 25 अध्यापिकाए है अनेक छात्राओ ने हमे बताया कि वे दिल्ली से आई है

डा सुमेधा ने बताया कि यहा पर छात्राओ के नाम के आगे जाति सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता है। कोई छात्रा यह नहीं जानती कि कौन छात्रा किस जाति की है। उस जाट बहुल क्षेत्र मे छात्राओं को जातिवाद के विषधर को कुचलने के लिए अनुप्राणित करना एक साहस का कार्य है। छात्राओ ने ऋग्वेद के मत्रो का जटा पाठ सुनाया। डा सुमेधा ने यात्री दल का स्वागत करते हुए कहा कि मैं इस यात्री दल का अभिनन्दन करती हू परन्तु जब तक देश में एक भाषा एक पूजा स्थल और एक धर्म पद्धति नहीं होगी तब तक देश में शान्ति कैसे हो सकती है और सब मिलकर कैसे चल सकते है? मैंने बहुत सक्षेप मे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि हमारी इस यात्रा की सबसे बडी उपलब्धि ऐसे गुरूकुल के दर्शन हैं। हम भी छात्राओ के विद्यालय और महाविद्यालय चलाते हैं और शिक्षा जगत मे हमारी सस्थाओं का नाम है। विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर की परीक्षाओं में 10 में से योग्यता सूची में अधिकाश छात्राओं का स्थान हमारे महाविद्यालय की छात्राओं का ही होता है परन्तु आर्य समाज की दृष्टि से हम इन सस्थाओं का सचालन करने में असमर्थ हैं। मैं विकल्प की तलाश में था और यह विकल्प हमें इसी गुरूकुल में दिखाई दिया। इस गुरूकुल से हम हापुड के लिए रवाना हुए। हापुड मे मुसलमानों ने हमारा भव्य स्वागत किया। सबसे पहले समाजवादी पार्टी के मुस्लिम अध्यक्ष ने यात्री दल का स्वागत किया। उसके बाद थोडी दूरी पर स्थित सभा स्थल मे ले गए। इस सभा में हिन्दू नमक के बराबर थे सर्वत्र मुसलमान ही मुसलमान थे। यात्री दल मे शामिल हबीबुर्रहमान ने गुजरात मे मुसलमानों पर हुए अत्याचार का वर्णन किया और कहा कि मुस्लिम औरतों के पेट चीर कर गर्भ में से भ्रूण निकालकर आग मे फेक दिया गया। दो दो साल के बच्चों को आग मे झोंका गया मुह में पेट्रोल डालकर आग लगा दी गई और सारा शरीर धू धू करके जलने लगा परन्तु उसने काश्मीर के आतकवाद और अक्षरधाम मे आतकवादियों द्वारा किये गए जघन्य अत्याचार काण्ड का जिक्र तक भी नहीं किया।

अत इस प्रकार के भाषणा का प्रभाव सर्वधर्म सम्भाव के विपरीत था। जब स्वामी अग्निवेश जी हिन्दुओ के आतकवाद के विरूद्ध जमकर बोलते हैं तो मुसलमानो को भी मुस्लिम आतकवादियों की तीव्र भर्त्सना करनी चाहिए। स्वामी अग्निवेश जी भी अटल एव एल के आडवाणी और नरेन्द्र मोदी पर बरसते रहे। स्वामी अग्निवेश जी ने कहा कि मैंने वाजपेयी से कहा कि गोधरा काण्ड पर एक श्वेत पत्र जारी किया जाए और सारी स्थिति स्पष्ट की जाए। यहा पर स्वामी जी का भाषण असन्तुलित हो गया और ऐसा लगने लगा कि वे मुसलमानो को खुश करने के लिए भाषण दे रहे हों। जब स्वामी अग्निवेश ने यह कहा कि मैं निश्चित रूप से तो यह नहीं कह सकता कि गोधरा काड नरेन्द्रमोदी द्वारा प्रायोजित था परन्तु सदेह है कि गोधरा काड के पीछे नरेन्द्र मोदी का हाथ हो। इस पर मुसलमानों ने जमकर तालिया बजाई। मच पर बैठे एक हिन्दू नेता ने जिसने गाधी टोपी पहन रखी थी मच से नीचे आने पर कहा कि भारतवर्ष में मुसलमानो की जितनी सख्या है उससे अधिक जितने भी हिन्दू है उनकी हत्या कर दी जाए तो सब मिल करके शायद चल सके।

हापुड से हम गाजियाबाद गये जहा आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा सचालित गुरूकुल में रात्रि विश्राम किया और प्रातकाल दिल्ली के लिए रवाना हो गए। दिल्ली में इण्डिया गेट के पास ही स्पोर्टस क्लब मे हमें एकत्रित होना था। वहा पर अनेक अग्रेजी स्कूलो के छात्र–छात्राए आए और अनेक नेता भी राजघाट तक रैली में शामिल होने के लिए आए। राजघाट के लिए रैली प्रारम्भ होने से पूर्व पूर्व प्रधानमत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिह ने सभा सम्बोधित करते हुए कहा कि मिलजुल कर न चलने से एक परिवार भी नहीं चल सकता तो राष्ट्र कैसे चलेगा? आज 2 अक्टूबर राष्ट्रपिता गाधी के जन्म दिन पर समस्त धर्मों के अनुयायी व्रत लें कि हम सर्वधर्म सम्भाव से देश मे रहेंगे और एक दूसरे का आदर करेंगे। यही महात्मा गाधी के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि होगी स्पोर्टस क्लब से हजारों छात्र छात्राए एव नागरिक राजघाट की ओर रवाना हुए जहा पर निर्मला देश पाडे ने यात्रियो को सर्वधर्म सम्भाव करूणा दया और प्रेम की शपथ दिलाई।

अब हमे यह समीक्षा करनी है कि क्या इस प्रकार के अभियान से साम्प्रदायिकता समाप्त होगी? क्या समस्त धर्मों के अनुयायी मिलजुल कर चल सकते हैं? लखनऊ और बरेली मे मुसलमान और इसाइ हमारे सम्मेलनो मे क्यो नहीं आए? हापुड मे हिन्दू क्यों नहीं आए? मेरी दृष्टि में सब धर्मों के अनुयायियो को सगठित करने में स्वामी दयानन्द और स्वामी दयानन्द असफल हुए उसी प्रकार स्वामी अग्निवेश जी का भी यह प्रयास असफल रहा। स्वामी अग्निवेश जी का विचार था कि यदि हम वेद पर अधिक आग्रह नहीं करे तो सब धर्मानुयायी हमारे साथ चल सकते हैं परन्तु यह परीक्षण असफल रहा। वेद और आर्य समाज को अलग करने पर भी दूसरे धर्मानुयायी हमारे साथ नही जुडे। हमारी मान्यता तो यह है कि वैदिक धर्म का प्रागण ही ऐसा प्रागण है जहा पर सब धर्मावलम्बी एकत्रित हो सकते हैं। यदि हमने शुद्ध रूप से आर्य समाज के झण्डे के नीचे यह अभियान चलाया होता तो हमें अधिक सफलता मिलती। यद्यपि लखनऊ से दिल्ली तक हमारे यात्री दल का आर्य समाजों ने स्वागत किया परन्तु वह औपचारिकता मात्र थी। यात्री दल के रवाना होने पर जब मैं समर्पित कार्यकर्ताओ के पते लिखने लगता तब कई पदाधिकारी हमारी पद्धति से मत–भेद प्रकट करते। अधिकाश पदाधिकारी और कार्यकर्ता राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ से जुडे हुए हैं। आर्य समाज के अतिरिक्त यदि अन्य सगठनों में मिलजुल कर चलने की भावना होती तो उनमे अब तक मेल मिलाप हो गया होता। केवल आर्य समाज ही तो मनुर्भव का सदेश देता है और अज्ञान तथा अधविश्वास से मुक्त कराने के लिये प्रयास करता है। दूसरे मत अधविश्वास को छोड़ने के लिए तैयार ही नहीं है। सब मत मतान्तर वालो को कहा था कि वे बैनर और झण्डे लेकर आए पर कोई भी अपना झण्डा और बैनर नहीं लाया। हमारी यात्रा शोक यात्रा नही लगे इसीलिए हमने ओ३म के झण्डे लगा लिये ताकि यात्री दल की कोई पहचान बन सके पर हमारे साथियो को यह भी रास नहीं आया और उन्होने हम पर यह आरोप लगा ही दिया कि आर्य समाज ने इस अभियान का हाईजेक कर लिया है।

यदि शुद्ध रूप से हमने आर्य समाज के झण्डे के नीचे भय भूख भ्रष्टाचार बेरोजगारी जातिवाद अस्पृश्यता गरीबी साम्प्रदायिक सद्भाव एव राष्ट्र की अन्य ज्वलन्त समस्याओं के समाधान के लिये राष्ट्रीय जागरण अभियान चलाया होता तो समस्त आर्य समाजो द्वारा हमारा असीम स्वागत होता और प्रत्येक धर्म का अनुयायी भी हमारे विचारो का समर्थक होता। मेरी दृष्टि में हमे सर्वप्रथम आर्य सगठन को मजबूत बनाने के लिए सारे देश की यात्रा करनी चाहिए। आर्य समाज आज भी एक बहुत बडी शक्ति है। आर्य समाज की चिनगारिया सर्वत्र फैली हुई है। यदि इन चिनगारियों को एकत्रित किया जाए तो एक ज्वालामुखी धधकाया जा सकता है। हम दयानन्द, श्रद्धानन्द रामप्रसाद बिस्मिल भगतसिह लाला लाजपतराय एव हजारों क्रातिकारियो के सपनों के भारत की तस्वीर जनता के सामने रखे और उसके लिये सघर्ष हेतु जनता को प्रेरित करें तो देश में क्राति हो सकती है। आखिर इस अभियान में सैंकडों हस्तियों ने सहयोग देने का आश्वासन दिया था परन्तु कितने लोगो ने सहयोग दिया। हमारी मान्यता है कि दयानन्द के रास्ते पर चल कर हम मानव कल्याण कर सकते हैं। उससे हट कर हर एक रास्ता विनाश का ही रास्ता है।

चिट्ठी आई है

श्रद्धेय सामवेदी जी

सादर नमस्ते'

जैसा कि मुझे आर्य नीति के पढने के पश्चात ज्ञात हुआ कि पूज्य स्वामी आत्मबोध जी सरस्वती हमारे बीच नहीं रहे। स्वामी जी के दर्शनों का हमें भी आर्य समाज चाकसू के वार्षिकोत्सव जो करीब 10 वर्ष पूर्व आयोजित हुआ था मे सुवसर प्राप्त हुआ था।

ऐसे महापुरूष जो कि अपना सर्वस्व परोपकार में ही लगाते हैं धन्य हैं। ऐसे महापुरूष को जिन्होंने महर्षि के मिशन को एक कदम आगे की आरे बढाया। मे शत–शत नमन करता हू।

चाकसू आर्य समाज मे शोक सभा आयोजित कर स्वर्गीय स्वामी जी के श्रद्धा सुमन अर्पित कर श्रद्धाजलि के रूप मे नमन करती है।

चकवाडा हेतु चाकसू से सद्भावना रैली मे दिनाक 21 09 2002 को हम भी 15 लोग जीप द्वारा पहचे थे परन्तु भोजराजपुरा से आगे जाकर पता चला मे स्थिति खराब होने की वजह से वापिस लोट गए थे। तत्पश्चात सायकाल 5 बजे सागानेर होते हुए देर रात चकवाडा पहुचे थे। अब आगे वेद प्रचार का कार्य गाव गाव पहुचे ताकि ग्रामीण परिवेश में से इस प्रकार भ्रान्तिया मिटायी जा सके एव समाज मे शान्ति सद्भावना प्यार कायम हो।

आपका
स्वामी हीरानन्द आर्य
आर्य भवन पो चाकसू
जि–जयपुर–303901

परमादरणीय श्री सामवेदी जी

सादर अभिनन्दन।

आपके कर कमलों द्वारा सम्पादित आर्य नीति नामक पत्रिका हमे निरन्तर प्राप्त हो रही है यह निश्चित रूप से आपकी महानता है जिसका मै हार्दिक आभारी हूँ। आर्य नीति मे प्रकाशित गद्य तथा पद्य रूप मे लेख ज्ञानवर्धक लोकप्रिय तथा उत्कृष्ट होते है। यह अद्वितीय ऐसी पत्रिका है जो आर्य समाज विश्वशान्ति राष्ट्रोत्थान तथा सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए जानी जाती है। वास्तव में यह पत्रिका सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए दूसरा सूर्य सिद्ध होती है जो आर्य समाज के संस्थापक तथा युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के बताए गए सिद्धान्तो पर चलकर समाज में फैली कुरीतियो के अधकार में एक ज्योति बनकर प्रकाशवान कर रही है।

कृपया पत्र के माध्यम से हमें सूचित कर कृतार्थ करे कि आर्य समाज विकास के मार्ग पर अग्रसर क्यो नही है? सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा या आर्य प्रतिनिधि सभा सहित समस्त सभाए इसके उत्थान के लिए प्रयासरत न होकर अनैतिक रूप से राजनैतिक स्तर देने केलिए उत्सुक है। सम्पूर्ण देश की अधिकाश सभाओं में विघटन की स्थिति बनी हुयी है। शायद ये अनार्य लोग है जो आर्य समाज के वृक्ष पर बैठकर उसकी जड़ों को खोखला बनाने का दुस्प्रयास कर रहे है परन्तु वे अपने उद्देश्य मे कदापि सफल नही हो सकते क्योकि यह वृक्ष ऐसे व्यक्ति के कर कमलों द्वारा लगाया गया है जिसने अपनी पूर्णत बुद्धिमत्ता का प्रयोग करते हुए किसी अण्डे के वृक्ष की भाति नहीं बल्कि किसी वटवृक्ष की भाति काफी गहराई में रोपित किया है। हमें उन अनार्यो को सचेत करना है जो महर्षि जी के सिद्धान्तो पर न चलकर अपने निजी स्वार्थ के लिए कार्यरत है।

हम सभी आर्यो तथा समाज सेवियो का परमधर्म है कि जो वृक्ष महर्षि जी ने रोपित किया है उसको खाद–पानी देकर उसका पोषण कर विशालकाय बनावे ताकि उसकी छाया का आनन्द हमारा राष्ट्रही नहीं सम्पूर्ण विश्व गृहण कर सके। मैं जानता हूँ कि सभाओं द्वारा वेद प्रचार सप्ताह तथा वार्षिकोत्सव मनाए जा रहे हैं परन्तु फिर भी हम उस स्थिति में नही पहुँचपा रहे है जो स्थिति स्वामी जी ने अकेले स्थापित की थी। हमारी स्थिति इतनी निर्बल क्यो है? इसको प्रबल बनाने के लिए हम सगठित क्यों नहीं होते? इस विषय को लेकर उच्चाधिकारी जागरूक क्यों नही है? क्या ऐसी स्थिति में हम वेदों का प्रचार–प्रसार कर समाज में फैला पाखण्ड तथा अधविश्वास को समूल नाश करने मे सक्षम हो सकेगे? हम काश दूसरे पर कीचड उछालने से पहले अपने गिरेबान मे झाकते। यदि हम ऐसा नही कर सकते तो हम अपने जीवन को सार्थक बनाने मे अवरोध उत्पन्न कर रहे है हम कभी अपने लक्ष्य को नही पा सकते।

अत इन ज्वलत समस्याओ को दृष्टिगत रखते हुए किसी भी माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र को आर्य बनाने का सत्प्रयास करे तभी समाज में व्याप्त कुरीतियो अधविश्वासो तथा पाखण्ड पर विजय पाने मे सफल हो सकते है।

ईश्वर आपको सम्पादन कार्य को जारी रखने की क्षमता प्रदान कर यशस्वी बनाये हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ है। आपके पत्र की उत्सुकतापर्वक प्रतीक्षा रहेगी। आभारी रहूँगा।

आशा है आप स्वस्थ व सानन्द होंगे।

आपका शुभेच्छु,
आनन्द प्रकाश जोशी(विमल) अध्यक्ष
अखिल विश्व शानित समिति उत्तर प्रदेश
आवास–गजमुरादाबाद(उन्नाव उ०प्र०–241502

समादरणीय सामवेदी जी

सादर नमस्ते'

आप कई दिनो से आर्य नीति मेरे पास भेज रहे हैं। मेरी सीमित अनिश्चित आय है। आर्य समाज के चार पत्र दयानन्द सदेश पवमान वैदिक पथ और चौथा आपका। इसके अतिरिक्त भी बीच–बीच मे चदा दान चलता है। आपकी भी सेवा करनी है। कभी–कभी ऐसा लगता है आर्य समाज की ओर सेये सब प्रकाशन भी एक भेडिया समान जैसी है। इन पत्रों को आर्य समाज के सम्पर्क मे रहने वाल या आर्य समाजी ही पढते और अपनाते है जो देश मे फैल रहे गुरूडम और अध विश्वास सैलाब मे ये ऊँट के मुह मे जीरा जैसी है।

[illegible] लोग बहुत ही [illegible] [illegible] कि य असीमित फैलाव गुरूडम और आर्य समाज में घुसे ब्राहमणवादी आचार्य श्रीराम जैसे एक दिन आर्य समाज को बौद्ध धर्म की भाति केवल इतिहास का विषय बनाकर ही छोडेगे।

जैसे पौराणिक गुरूडम वाले टी बी पर उसका शुल्क [illegible] अपना प [illegible] उसी [illegible] आय लोग टी बी पर वैदिक सिद्धान्तो का प्रचार–प्रसार क्या नही कर सकते। खण्डन मण्डन नही सही जन साधारण तब वैदिक सिद्धान्त अध्यात्म रूप मे कर्मकाण्ड रूप मे सस्कारो [illegible] रूप मे [illegible] देवी देवताओ [illegible] सकते ही है। स्थानीय होन के नाते मैं कई बार आपकी आलोचना सुनाता हू उसका सही अर्थ यही लगाता हू सामवेदी जी कुछ करते हैं कर सकते हैं। निकम्मे की आलोचना कोई क्यो करेगा।

पचपुत्र 4 मारूति नगर दादी का फाटक
पो नागल जे बी जयपुर–12

आदरणीय श्री सम्पादक महोदय

सादर नमस्ते।

आर्य समाज जुरहरा ने योगीराज श्री कृष्ण का जन्मदिन बडे ही हर्षोल्लास पूर्वक मनाया। इस दिन मदिर में विशेष रोशनी सजावट की गई। प्रात वेला में ही विशेष यज्ञ हवन व विद्वानो के प्रवचन मदिर मे हुए। मदिर मे श्रद्धालुओ की अच्छी उपस्थिति हुई। रात्रि को 9 बजे से मदिर में श्री कृष्ण के जीवन चरित्र पर विशेष प्रोग्राम भजन उपदेश हुए।

बाहर से पधार हुए उपदेशक भजनलाल जी उपदेश व हमारी समाज के प्रधान प मगलदेव आर्य ने मधुर भजनों से श्रोताओं को मत्र मुग्ध कर दिया। विशेषतः श्री भजनलाल आर्य ने तो श्रद्धालुओं को विशेष प्रभावित करने वाले उपदेश दिये। मदिर के दोनों प्रागण श्रद्धालुओं से खचाखच भरे हुए थे। कस्बे के अन्य पौराणिक मदिरों व आसपास के क्षेत्र के मदिरो की अपेक्षा श्रद्धालु आर्य समाज में विद्वानों के प्रवचन सुनने काफी तादाद में पहुचे।

कृपया आप हमें दयानन्द की जीवनी पर कैसेट फिल्म आदि हो तो उपलब्ध कराये।

मत्री आर्य समाज
जुरहरा, भरतपुर

भगवान जो चाहेगा दुनिया में वही होगा

मानव तू अगर चाहे दुनिया को झुका देना।
उस ईश्वर के दर पर सर अपना झुका देना।।
राजी हो प्रभु जिसमे वह काम सही होगा।
भगवान जो चाहेगा दुनिया मे वही होगा।।
उसे अपना बनाकर के उलझन को मिटा देना।
उस ईश्वर के दर पर सर अपना झुका देना।।
रक्षक है अनाथो का दु खियो का सहारा है।
भव पार किया उसने जिसने भी पुकारा है।।
उसे अपना बनाकर के उलझन को मिटा देना।
उस ईश्वर के दर पर सर अपना झुका देना।।
धरती और सागर के रत्नो को जो पाना हो।
आकाश मे उडना हो या पाताल मे जाना हो।।
अपनी डोर तू ईश्वर को पहले ही थमा देना।
उस ईश्वर के दर पर सर अपना झुका देना।।
मिलेगी सदा तुझको खुशियां और आशाएं।
चूमेगी चरण तेरे सब ओर सफलताएं।।
जीवन को पथिक उसकी राहो पर लगा देना।
उस ईश्वर के दर पर सर अपना झुका देना।।

प सत्यपाल पथिक आर्य समाज मदिर
गाधी नगर दिल्ली 31

दीवाली है कि दिवाला

अमीरो की है दीवाली गरीबो का तो निकला दिवाला
अमीर खाते छप्पन भोग गरीबो को तो मिलता निवाला
अमीर बारूद जला के पीए विसकी का प्याला।
अमीरो की है

कभी थी घरो मे दीयो से जग–मगाती दीवाली
अभी है बमो से घरो को जलाती दीवाली
पटाखों–आतिशबाजी के प्रदूषण से दम घुट गया
ऐसी दीवाली के धमाको से मैं कही दूर चला गया।
अमीरो की है

चल जगल में जहा वायु और शोर का प्रदूषण न हो
चल सत के पास खुले आकाश तले जहा ये जहर न हो
नव वर्ष पर मात्र दीपमाला से प्रेम बटता हो जहा
राम राज्य जैसी अहिसक शाति हो चल चले वहा।
अमीरो की है

सडते कचरे कारखानों वाहनो का प्रदूषण फैला
धूम्रपान नालियो गदेपानी की दुर्गन्ध को झेला
दीवाली के धमाकों से निकला मानव की अक्ल का दीवाला
बमों की आग मे जल मर रहा था कोई भोला भाला।
अमीरों की है

देश के गद्दार

वे कौन हैं जो छुपके आतकवादियो का साथ देते हैं?
व हैं गद्दार जो मार जाने के डर से खुद का बच दत हैं
बेगुनाहो को मरवा के वे फल पाते हैं तनाव से मरने का।
वे कौन हैं?

मारे गये कर्ता के सिवाय दु खी घर को कौन सम्हालेगा?
उन के बिलखते नन्हें बच्चों को कौन पुचकारेगा?
वह एक ही था सहारा कुटुम्ब के उज्वल भविष्यका।
वे कौन है?

जो दहशत फैला के मुल्क का बटवारा करना चाहते हैं
उन देश द्रोहियों को बूझो जो खून करवाते हैं
भारत माँ की गोद उजाड़ते हैं उन को मृत्यु दण्ड देने का।
वे कौन हैं?

अगर देश को आतकवाद के जुल्म से बचाना है
तो गद्दारों को मौत की सजा देना, कई घरों दया करना है
हजारों शहीद हुए, कहा तक अपमान सहन करने का।
वे कौन हैं?

कई वर्षों से पड़ोसी का लादा गया युद्ध सहन किया है,
धर्मात्माओं ने भी युद्ध में विजय का संकल्प लिया है
देश की आन पर मर मिटे जहर है ऐसे सिखावन का।
वे कौन हैं?

– सुमन कुमार आर्य –
504 केतन निवास जवाहर कॉलोनी
[illegible]

जयपुर जिले के फागी कस्बे में 1000 हरिजन नर–नारियों के सामूहिक संहार का हादसा टल गया

जातिवाद के विषधर का भयंकर स्फीत फूत्कार

जयपुर । आर्य नीति में 9 मास पूर्व हमने यह समाचार प्रकाशित किया था कि फागी कस्बे के अन्तर्गत चकवाडा गाव में एक हरिजन द्वारा तालाब में सवर्णो के घाट पर स्नान करने पर सवर्णो ने हरिजनो के मकानो को घेर लिया और उनको जान से मारने की धमकी दी। हरिजनों का घरो से बाहर निकलना असमव हो गया। पुलिस में प्राथमिकी दर्ज कराई गयी परन्तु अपराधियो के विरूद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं हुयी। पिछडी जातिया क ः याचारो से पीि । ोपर हरिजनो क लि न्याय सघर्ष मे दलितो की आवाज बने हुये श्री बाबूलाल आर्य ने घोषणा की कि अब हिन्दू धर्म में रहना हमारे लिए असमव है। इस गले सडे धर्म मे रहकर हमारा उद्धार नहीं हो सकता। मेरे पिताजी आर्य समाज के प्रचारक थे और मैं भी आर्य समाज के उत्सवों में जाकर आर्य समाज के गीत गाता हूँ परन्तु आर्य समाज के अनुयायी होने क गावजद भी हमें छआछ्त अस्पृश्यता तिरस्का धृणा से मुक्ति नहीं मिली। हमें यह विश्वास हा गया है कि आय समाज भी हमें रक्षा एव सम्मान दिलाने में असमर्थ रहा है। अत अब हमारे सामने इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है कि हम धर्म परिवर्तन करके मुस्लिम धर्म को स्वीकार कर लें। यह घोषण पढकर के श्री सत्यव्रत सामवेदी जी चकवाडा गाव गये और चकवाडा के हरिजनों एव श्री बाबूलाल आर्य को आश्वासन दिया कि आर्य समाज हमेशा तुम्हारे साथ रहेगा। छूआछूत के इन जहरीले कीडो से घबराकर तुम्हें अपना धर्म छोडने की क्या आवश्यकता है?

आज जाट और मीणे तुम पर अत्याचार कर रहे है। आजादी से पहले सवर्ण लोग भी इन पर इसी प्रकार अत्याचार करते थे। इनको अपने नाम के आगे सिंह नही लगाने देते थे और दूल्हा घोडी पर बैठकर सवर्णो के गाव से नही जा सकता था। आर्य समाज ने ही जाटों को अस्पृश्यता से मुक्ति दिलाई और आर्य समाज के बल पर पहली बार जाटो ने सीकर तक एक विशाल जुलूस निकाला और काग्रेस के जुझारू नेता सरदार हरलाल सिंह के पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह को हाथी पर बैठाया। आर्य समाज ने जाटो एव पिछडी जातियो को अस्पृश्यता से मुक्ति दिलाई और तुमको भी दिलायेगी। इसलिये तुम्हे धर्म परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है। हरिजनों ने सामवेदी जी के परामर्श पर धर्म परिवर्तन का मानस बदल दिया। सामवेदी जी ने इसके बाद चाकसू में हरिजनों का सम्मेलन बुलाया और चाकसू के वयोवृद्ध आर्य नेता स्वामी हीरानद जी ने इसके लिए प्रयास भी किया। परन्तु हरिजन लोग सगठित नहीं हुये और ना ही इसके बाद कभी हरिजनों ने सामवेदी जी से सम्पर्क किया। 15–16 अगस्त से दलित मानवाधिकार केन्द्र के पी एल मिमरोट का सत्यव्रत जी के पास फोन आता रहा। उन्होने सत्यव्रत जी से कहा कि चाकसू से चकवाडा तक सद्भवना यात्रा निकालने के सम्बन्ध म आपसे मिलना है। मे दिल्ली मे अग्निवेश जी से मिला था स्वामी अग्निवेश जी ने मुझ से आपसे सम्पर्क के लिए कहा था। परन्तु सत्यव्रत जी उन्हे रोज समय देते परन्तु वे कभी भी मिलने नहीं आए। 21 सितम्बर को समाचार पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि चकवाडा मे दलितों पर हुये अत्याचार के विरोध में कुछ सामाजिक सगठनों ने 20 सितम्बर को सद्भावना रैली निकाली और 21 सितम्बर को चकवाडा में सभा करने की घोषण की। यह रैली 12 बजे चाकसू से रवाना हुई और सायकाल माधोराजपुरा पहुँच गयी। तथाकथित सवर्णो ने सद्भावना रैली के विरोध में चकवाडा तालाब के पास समधुनी शुरू कर दी और दोनों पक्षों में टकराव सघर्ष की आग सुलगाने लगी। 22 सितम्बर को समग्र सेवा सघ के महामत्री श्री सवाई सिंह का सत्यव्रत जी के पास फोन आया और आग्रह किया कि फागी में प्रातः 10 बजे आयोजित सभा को सम्बोधित करने चलें। वे अपनी कार पर श्री सवाई सिंह के साथ फागी की तरफ रवाना हो गये। फागी में रैली नहीं पहुँची थी और पुलिस फोर्स के चारो तरफ 20–30 हजार लोग लाठिया लिए हुये घूम रहे थे। पूछने पर उन लोगों ने कहा– 'जाटा–चमारा की लड़ाई है' हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पुलिस ने लाठियो सहित 20–30 हजार जाटो और मीणो को एकत्रित क्यों होने दिया? अभी तक 144 धारा क्यो नही लगाई । यदि इस भीड ने पुलिस पर हमला कर दिया तो पुलिस अपनी रक्षा कैसे कर पायेगी। फागी जाने पर हमे पता चला कि सद्भावना रैली रात को यहाँ से 12 कि मी दूरी पर माधोराजपुरा मे रूकी थी।हिसक भीड को देखते हुये पुलिस ने सद्भावना रैली को मा ।राज ुरा मे ही रोक दिया। ह ने प ा जाव र दखा कि सद्भावना रैली का नेतृत्व सिकोइ डिकोन ना ।क सस्था (NGO) के सचालक श्री शरद जोशी एव दलित मानवाधिकार केन्द्र के सचालक श्री पी एल मीमरोट एव श्री सरोज खान एव पूर्व सासद श्री थानसिह जाटव कर रहे थे। सिकोई डिकोन वाले विडिओ से फिल्म बना रहे थे और पुलिस वाल कह रहे थे य ाब एन जी े वाले का ा है। ये ाग इस प्रकार की रालया निकाल कर विडिया फिल्म बनात हे आर एक लाख रूपया खर्च करके विदेशो से एक करोड रूपया लेते है। पी एल मिमरोट ने जब सत्यव्रत जी को भाषण देने के लिये कहा तब तक जाटो ने फागी से आकर सभा मे गडबड चालू कर दी और पुलिस ने उन्हें रोका भी नहीं। अत सभा विसर्जित कर दी। स्थिति की गभीरता को देखते हुये सत्यव्रत जी ने सद्भावना रैली के आयोजको को यह सुझाव दिया कि तत्काल मुख्यमत्री के पास चला जाये अन्यथा चकवाडा मे और फागी के गावों में हरिजनों के प्राण सकट में पड जायेंगे और एन जी0ओ के जान माल को भी खतरा पैदा हो जायेगा। सब तत्काल मुख्यमत्री के निवास स्थल पर पहुँचे और मुख्यमत्री श्री अशोक गहलोत को सारी स्थिति से अवगत कराया गया। मुख्यमत्री रैली निकालने पर अप्रसन्न हुय और कहा कि ऐसा बखेडा करने की क्या जरूरत थी। आप मेरे से मिल लेते और आपकी समस्या का समाधान हो जाता। इस पर दलित मानवाधिकार केन्द्र के श्री पी एल मिमरोट और पूर्व सासद श्री थानसिह जाटव ने कहा कि आज से नो मास पूर्व जिन लोगो ने उपद्रव किया था उनके खिलाफ आज तक भी कोई कार्यवाही नहीं हुयी। उसी का परिणाम है कि आज 30 हजार जाट और मीणे सद्भावना रैली में शामिल लोगों का सहार करने के लिए एकत्रित हो गए। हरिजन प्रातःकाल नित्य कर्म करने के लिए भी अपने घरों से नहीं निकलते। हरिजनों पर तालाब म नहान पर जाटो और मीणो न 51000 रूपयो का जुर्माना कर दिया और उसके ना चुकाने पर सामाजिक बहिष्कार कर दिया। अब नाई हमारे बाल नहीं काटता चाय वाला हमें चाय नहीं देता दुकानदार हमे सामान नहीं देते। इतने में अन्दर खबर आयी कि फागी में उग्र भीड़ ने पुलिस पर हमला बोल दिया और अनियंत्रित भीड़ पर काबू पाने के लिए पुलिस को गोली चलानी पड़ी। अनेक लोग घायल हो गये है। जयपुर के डीआई जी भी पथराव में घायल हो गये। उसी समय सचिवालय से मुख्यमत्री को सूचना मिली और वे तत्काल सचिवालय की ओर रवाना हो गये। मुख्यमत्री निवास से बाहर आने पर हमारे साथियों ने जानकारी दी कि ग्रामीणो ने पुलिस को घेर कर जमकर पथराव किया तथा करीब 1कि मी तक पुलिस को दौड़ाया। हिंसक भीड़ के तेवर देखकर जवानों को ही नहीं बल्कि जिला कलक्टर सहित अनेक अफसरों तक को इधर–उधर छिपकर अपना बचाव करना पडा। सद्भावना रैली को पचायत समिति तक पहुँचने के लिए रास्ता देने के लिये पुलिस ने भीड को वहा से हटाना शुरू कर दिया तो वे भडक गये और चारों तरफ से पुलिस पर पथराव किया। उग्र भीड के सामने पुलिस प्रशासन का अमला आज बेबस नजर आया। हाथो में लटठ और पत्थर लिए ग्रामीण पुलिस पर भारी रहे। पुलिस कर्मी अपने अधिकारियों से फायरिंग और अश्रु गैस छोडने के आदेश पाने के लिए झल्लाते रहे। यही नहीं स्पेशल टास्क फोर्स के वाहन और एक जिप्सी को भीड ने पुलिस के सामन ही पूरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया और थानाधिकारी को जमकर पीटा। जवान खुद को बचाने के लिये मकानो में शरण लेते रहे चारो और खुले मैदानों से भी भीड बार बार पुलिस को घेरती रही। पुलिस के एक बार पीछे भागने क बाद डी आई जी श्री अजीतसिह ने मोर्चा सम्हाला और जवानो को आगे बडकर मुकाबला करने का आदेश दिया। इस पर कुछ सम्य क तो अपना न ग्रामीणों का खदेड दिया लकिन बाद मे चारों और से घिर जाने क बाद फिर वे बेबस हा गये। ग्रामीणा ने कई बार जवान को खदेड और करीब एक घण्टे क बाद ५ ु गैस के गोले छोडे गै लाठिया ली ले जनता टस स मस नहा हुयी। अश्रुगस का काइ असर नहा पडा। इधर बडे अधिकारी कन्ट्रोल रूम से फोर्स भेजने की सूचना देते रहे लेकिन तीन घण्टे तक वहा अतिरिक्त दल नही पहुचा और बाद मे पुलिस को गोलिया चलानी पडी। इससे 7 लोग लहु लुहान होकर गिर पडे। इनके पैरो और कमर पर गोलिया लगी। इसके बाद भी लोग पुलिस के सामने डटे रहे। करीब तीन बजे पुलिस ने लाउडिस्पीकरो से धारा 144 लागू होने की सख्त कार्यवाही करने की चेतावनी दी। तब कहीं भीड जाकर कम हुयी।दूसरे दिन राष्ट्रीय अनुसूचित जाति जनजाति आयोग क सदस्य श्री नारायणसिह केसरी एव श्री विजयसिह चौधरी चकवाडा के हालात का जायजा लेने सायकाल 4 बजे चकवाडा पहुचे। जब इन सदस्यों ने प्रशासन से इस हादसे के सबध में कुछ प्रश्न किये तो वे इधर–उधर की बाते बनाने लगे। इन सदस्यों ने क्रुद्ध होकर अधिकारियों से कहा कि–यस/नो में जवाब दीजिये। आपसे जितना पूछे उतना ही बताईये। इस पर अधिकारियों ने कहा 'यस सर' । आयोग के सदस्यों ने पूछा– 'शिकायत मिलने पर आपने क्या कार्यवाही की। अधिकारियों ने जवाब दिया हमन दोनों पक्षों के बीच समझौता कराके एफआर दे दी। आयोग को बाबूलाल बैरवा एव हरिशकर बैरवा न बताया कि सद्भावना रैली के बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं है। इस बारे में उनसे सम्पर्क नहीं किया गया था। उन्हें रैली चकवाडा आने की जानकारी जिला प्रशासन के अधिकारियों ने दी। इससे स्पष्ट है कि एन जी ओ नहीं चाहते थें कि सद्भावना रैली में आर्य समाज को शामिल किया जाये। इसलिये श्री मीमरोट अनेक बार मिलने का समय निश्चित कर के भी सत्यव्रत जी से मिलने नहीं आये। यदि शुरू से ही आर्य समाज के नेतृत्व में सद्भावना यात्रा निकलने की घोषण की गई होती तो शायद सद्भावना रैली को रोकने के लिए 20 हजार लोगों की उग्र भीड़ जमा नहीं हुयी होती। इस हादसे के बाद हरिजनो के नेताओ ने घोषणा की कि लाखों हरिजन हिन्दू धर्म छोड़कर मुसलमान ईसाई बनगे। विश्व हिन्दू परिषद के महामत्री डा0 प्रवीण तोगडिया ने आरोप लगाया कि ईसाइयो ने फागी को अपना कार्य क्षेत्र बनाया है। वहा कार्यरत सिकोई डिकोन को चलाने के लिये विदेशों से बडी मात्रा में धन मिलता है। किसी सस्था के सहयोग से कुछ सगठनों ने वहा आन्दोलन खडाकर माहौल बिगाडनें का काम किया है। इन तथाकथित सगठनों ने धर्मान्तरण कराने क षडयत्र के तहत वहां दलित वर्ग मे अलगाव का भाव पैदा करने का प्रयास किया।

जयपुर जिल क फागी कस्ब म शनिवार का पुलिस पर पथराव करती उग्र भीड

हिन्दू समाज –छुआछूत एव जातिवाद के कोढ से ग्रस्त

तोगडिया कुछ भी कहें परन्तु छुआछूत मिटाने के लिए विश्व हिन्दू परिषद की भूमका प्रभावी नही है। आज से 9 मास पूव जब हरिजनों पर जाटों मीणों ने (जो 50 साल पहले सवर्णो के अत्याचार के शिकार थे) जब हरिजनों पर अत्याचार किया और उनका समाज से बहिष्कार कर दिया तब विश्व हिन्दू परिषद कहा सोया हुआ था। तब उनके आसू पूछने के लिए आर्य समाज के अतिरिक्त कौन गया था? देश से छुआछूत और जातिवाद केवल आर्य समाज ही समाप्त कर सकता है। परन्तु आर्य समाज सोया हुआ है उसे लडाई–झगडों से ही फुर्सत नहीं। राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं के निराकरण के लिए न तो उसके पास कोई योजना है और न सगठन। आर्य समाज के सगठन को सशक्त करने के लिए आज आर्य जगत में कोई भी सन्यासी या नेता तैयार नहीं है। सबके अपने अपने आश्रम है। इन आश्रमों में झूमते हुए छायादार वृक्षों के नीचे सब चादर तान कर सो रहे हैं।

हम बर्बर युग में रह रहे हैं
छात्रों द्वारा आचार्यों की पिटाई

–घनश्याम धर त्रिपाठी

जयपुर 06 अक्टूबर। यह दिशाहीन शिक्षा प्रणाली देश को कहा ले जायेगी? पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के अंधानुकरण ने देश को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है। लार्ड मैकाले की राष्ट्र द्रोही शिक्षा प्रणाली के विरूद्ध आर्य समाज ने एक विकल्प दिया था। इग्लैण्ड के पूर्व प्रधानमत्री मैक्डोनाल्ड ने कहा था कि मैकाले की शिक्षा पद्धति की आलोचना तो सभी करते हैं परन्तु विकल्प तो केवल आर्य समाज ने ही दिया है। यह उद्गार उन्होंने तब व्यक्त किए थे जब वे गुरूकुल कागड़ी में स्वामी श्रद्धानन्द के दर्शन करने एव गुरूकुल की शिक्षा प्रणाली देखने आए थे। शिक्षा का प्रथम उद्देश्य छात्रो को सस्कारवान और चरित्रवान बनाना है। दीक्षान्त समारोह मे भी स्नातको को यही सदेश दिया जाता था– मातृ देवो भव पितृ देवो भव आचार्य देवो भव परन्तु हमने महर्षि दयानन्द के उपदेशों की अवहेलना की और मजाक उड़ाई। हमने स्वभाषा स्वसाहित्य स्वसस्कृति स्वधर्म की उपेक्षा की और पाश्चात्य सस्कृति में दीक्षित होकर हमने घोषणा की कि मातृ देवा वध पितृ देवो वध आचार्य देवा वध। आज सारा भारत वर्ष इसी आसुरी सस्कृति की लपेट में है।

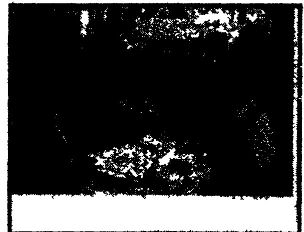
राजस्थान विश्वविद्यालय मे घटित निम्नलिखित वीभत्स घटना से हमारे कथन की पुष्टि होती है।

जाट राजा पर टिप्पणी के विरूद्ध तोड़फोड शिक्षको और छात्र–छात्राओ को जमकर पीटा

राजस्थान विश्वविद्यालय में चलने वाली प्रशासनिक सेवा पूर्व प्रशिक्षण कक्षा मे शनिवार को एक शिक्षक द्वारा जाट राजा सूरजमल के बारे मे की गई कथित टिप्पणी से कुछ हॉस्टलों के गुस्साए एक समुदाय विशेष के छात्र आज हिसा पर उतारू हो गए। हथियारो से लैस करीब डेढ सौ से ज्यादा छात्रों ने विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग पर धावा बोलकर शिक्षकों और छात्र–छात्राओं के साथ करीब आधे घण्टे तक जमकर मारपीट और तोडफोड की। मारपीट में राजनीति विज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष और सेंटर के निदेशक प्रो बी एम शर्मा गभीर रूप से घायल हो गए। उन्हे सवाई मानसिह अस्पताल मे भर्ती कराया गया है। इस घटना से विश्वविद्यालय प्रशासन भी सकते मे आ गया और छह घण्टे बन्द भी पुलिस मे प्राथमिकी दर्ज नही कराई गई। मध्य रात प्रो शर्मा की ओर से प्राथमिकी दर्ज कराई गई। घटना के विरोध मे राजस्थान विश्वविद्यालय के शिक्षकों ने मगलवार को शिक्षण कार्य का बहिष्कार करने की घोषणा की है।इस बीच पुलिस ने देर रात करीब आधा दर्जन छात्रो को हिरासत मे लिया है प्रत्यक्षदर्शियो के अनुसार शाम करीब पाच बजे प्रशासनिक सेवा पूव प्रशिक्षण केन्द्र मे कक्षाए चल रही थी। यहा पढाने वाले प्रोफेसर एच सी माथुर का शनिवार को निधन हो गया था इसके कारण निदेशक प्रो बी एम शर्मा ने आज एक कक्षा में तो दो मिनट का मौन रखवाकर छुटटी कर दी थी। दूसरी कक्षा में जब शर्मा और छात्र–छात्राए मौन रखकर प्रो माथुर को श्रद्धाजलि दे रहे थे तभी करीब डेढ सौ से अधिक छात्रों ने कक्षा में घुसकर प्रो. शर्मा ओर छात्र–छात्राओं के साथ मारपीट शुरू कर दी। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार छात्रो के हाथो में हाकी स्टिक्स सरिये साईकिल की चैनें और डडे थे। दस–बीस छात्र शर्मा पर टूट पडे जबकि अन्य ने कक्षा में मौजूद छात्र–छात्राओं से मारपीट शुरू कर दी। आखें बद कर खडे छात्र छात्राए इससे घबरा गए और पूरे विभाग में भगदड मच गई। कई छात्र–छात्राओं ने तो खिडकियो से कूदकर अपने को बचाया। कई छात्र–छात्राओं को चोट आई है। छात्रों ने कक्षा का फर्नीचर और ब्लैकबोर्ड तोड दिया। छात्रों ने फर्नीचर तोड़ कर उनके डण्डे भी हाथ में ले लिए। पिटाई से बेहाश होकर जब शर्मा गिर पडे तो उग्र छात्रों ने सेन्टर के आफिस मे जाकर तोड–फोड शुरू कर दी ओर वहा बैठे प्रो पी डी शर्मा और जे सी जौहरी को पीटा। छात्रों ने ऑफिस की टेबिल शीशे कुर्सिया और अन्य सामान पूरी तरह करीब आध घण्टे तक चले इस ताण्डव के दौरान ही छात्रो ने अ ना गुस्सा विभाग के बाहर खडी शिक्षकों की तीन–चार कारों और छात्र–छात्राओं के स्कूटर, मोटरसाइकल पर भी उतारा। कारो के शीशे तोड़ दिये और स्कूटर, मोटरसाईकलो को गिराकर तोडफोड की। बाद में जब किसी ने पुलिस के आने की झूठी सूचना छात्रो को दी तो वे तितर बितर होकर वहा से फरार हो गये। विश्व विद्यालय में आग की तरह फैली इस घटना की सूचना से विभाग मे भीड जमा हो गयी। तीनो घायल शिक्षको को सवाई मानसिह अस्पताल में भर्ती करवाया गया। जिनमें से प्रो पी डी शर्मा और जौहरी को प्रारम्भिक चिकित्सा के बाद छुट्टी दे दी गई जबकि प्रो बी एम शर्मा को सर्जिकल गहन चिकित्सा ईकाई मे भर्ती किया गया है। बी एम शर्मा को सिर, पीठ पेट और कमर में गम्भीर चोट है तथा हाथ में फ्रेक्चर है। प्रो पी डी शर्मा और जौहरी को हाथ–पैर पीठ और सिर में चोटें आई है। प्रो बी एम शर्मा और अन्य शिक्षकों को ने बताया कि शनिवार को कक्षा में प्रो एन पहाडिया ने जाट राजा सूरजमल शासन काल के आर्थिक व्यवस्था को लेकर कोई टिप्पणी की थी जिसका लकर एक छात्र महावीर सिह उनसे उलझ पडा था। छात्र ने इसकी शिकायत सेन्टर निदेशक बी एम शर्मा को की थी। बाद मे शर्मा के कहने पर पहाडिया ने कक्षा में सामुहिक माफी भी माग ली थी लेकिन छात्र राजी नहीं हुआ ओर उसने शिक्षक पर आपत्ति करते हुये सेन्टर में नहीं पढने की बात कहीं। इस पर शर्मा ने उसे अपना ड्राफट वापस लेने की सलाह दी। प्रो शर्मा ने रिपोर्ट मे बताया है कि शनिवार को ही छात्र महावीर सिह ने उन्हे और एन सी पहाडिया को जान से मारने की धमकी भी दी थी। महावीर सिह के नेतृत्व मे हॉस्टलों के छात्रों ने भगतसिह पार्क में एक मिटिंग कर पहाडिया को सबक सिखाने का फैसला किया था। इसकी भनक लगने के कारण प्रो पहाडिया आज सेन्टर नही आये थे। छात्रो ने प्रो शर्मा के करीब दो तोले की सोने की चैन और जेब मे रखे करीब छ हजार रूपये भी छीन लिये। इस बीच रात 10 बजे विश्वविद्यालय की और से इस घटना की प्राथमिकी दर्ज नहीं कराई गई थी। विश्वविद्यालय में इतनी बडी घटना होने के बाद यह चीफ प्रोक्टर की जिम्मेदारी बनती है कि वह मामला दर्ज कराए। देर रात तक इस बारे में टिप्पणी के लिये चीफ प्रोक्टर भागीरथ सिह बिजारणिया उपलब्ध नहीं हो सके। उधर राजस्थान विश्वविद्यालय शिक्षक सघ न मगलवार को इस घटना के विरोध में शिक्षण कार्यो का बहिष्कार करने की घोषणा की है। सघ के अध्यक्ष प्रो मधुकर श्याम चतुर्वेदी और सचिव डॉ बी डी रावत ने हमलावरों को गिरफतार करने की माग की है और गिरफतारी नहीं होने पर कडे कदम उठाने की चेतावनी दी है। अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक (पूर्व) रोहित महाजन ने बताया कि शर्मा ने शनिवार को कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई। आज पुलिस को इस वाकिए की सूचना मिलते ही अभियुक्तों की तलाशी शुरू कर दी है तथा कुछ छात्रावासों की तलाशी ली गई है। पुलिस ने करीब आधा दर्जन छात्रों को हिरासत में लिया है। घटना के लिए जिम्मेदार किसी भी आदमी को बख्शा नहीं जायेगा।

राष्ट्रीय सेवा योजना
वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय आर्य समाज आदर्श नगर, जयपुर
राष्ट्रीय सेवा योजना द्वारा आयोजित चिकित्सा शिविर सम्पन्न व्याख्याताओं एव छात्राओं द्वारा स्वेच्छिक रक्तदान

जयपुर 01 अक्टूबर। स्वेच्छिक रक्तदान स्वच्छ रक्त होता है। यह जानकारी स्वास्थ्य कल्याण ब्लड बैंक के वरिष्ठ परामर्शदाता डॉ के के मिश्रा ने वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय में राष्ट्रीय सेवा योजना द्वारा एक दिवसीय स्वेच्छिक रक्तदान और स्वास्थ्य परीक्षण शिविर के आयोजन के अवसर पर दी। इस अवसर पर महाविद्यालय के व्यवस्थापक श्री राजकुमार साहनी व प्राचार्या डॅा आशा शर्मा ने राष्ट्रीय सेवा योजना के बारे में विस्तार से जानकारी दी।



कार्यक्रम की अध्यक्ष श्रीमती मृदुला सामवेदी एव विशिष्ट अतिथि श्री आर.के.साहनी अपना स्वास्थ्य परीक्षण करवाते हुए

कार्यक्रम की अध्यक्ष राजस्थान समग्र सेवा सघ की उपाध्यक्ष श्रीमती मृदुला सामवेदी ने दान की महिमा एक रोचक कहानी के माध्यम से बताते हुए दान करने वालों को ईश्वर के समीप बताया। उन्होंने छात्राओं को स्वेच्छा से रक्तदान में योगदान देकर जीवन सार्थक बनाने का आह्वान किया। कार्यक्रम प्रभारी डॅा नीना पचार्या एव डॉ रीता दाधीच ने बताया कि शिविर में 250 छात्राओं ने भाग लिया एव उनका स्वास्थ्य परीक्षण डॅा प्रेम काला ने किया। डॅा मिश्रा ने छात्राओं द्वारा उत्साह पूर्वक रक्त दान करने पर प्रफुल्लित होते हुए बताया कि अब तक किसी भी कन्या महाविद्यालय से इतनी अधिक मात्रा में रक्तदान नहीं हुआ। राष्ट्रीय सेवा योजना की 8 छात्राए क्रमशः कु. नीलू सक्सैना कु मोनिका मिश्रा, कु. कृतिका कु. चित्रा माहेश्वरी कु. करूणा शर्मा कु. रूचिका मिश्रा कु. कचन गगर कु भावना अजवानी ने एव महाविद्यालय की व्याख्याता डॉ प्रतिभा गौड डॅा इन्द्रामगल तथा डॅा. रजनी पाण्डे ने 11 यूनिट रक्तदान किया। कार्यक्रम में श्रीमती वेद साहनी महाविद्यालय के उपाध्यक्ष श्री जयमुनि गाधी व श्रीमती गाधी ने भी भाग लिया।



शिविर मे स्वेच्छिक रक्तदान करते हुए छात्रा एव महाविद्यालय के व्यवस्थापक प्रो राजकुमार साहनी श्रीमती साहनी डॅा प्राचार्या आशा शर्मा कार्यक्रम प्रभारी डॅा रीता दाधीच डॅा नीना पचार्या छात्रसघ अध्यक्ष कु ममता शेखावत व सदस्य

डॅा आशा शर्मा प्राचार्या,
वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय आदर्श नगर जयपुर।

बेटी का उपनयन संस्कार

वैदिक काल में पुत्रियों का भी उपनयन संस्कार होता था

हिन्दुओं की सवर्ण जातियों में और विशेषकर ब्राह्मणों में पुत्रों का उपनयन सस्कार अनिवार्य है। भारतवर्ष के ब्राह्मण परिवार अपने पुत्रों के उपनयन सस्कार को बहुत धूमधाम से आयोजित करते हैं और अपने सामर्थ्य के अनुसार परिजनों एव मित्रों को बुलाकर सहभोज की भी व्यवस्था करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह अधिकार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य समस्त वर्णों को दिया है और उपनयन सस्कार के ब्राह्मणो के एकाधिकार को समाप्त किया। जन्म से सब शूद्र होते हैं और उपनयन सस्कार के बाद ही कोई व्यक्ति द्विज बन सकता है।

भारतवर्ष मे वैदिक धर्म के लुप्त होने के बाद कन्याओ का उपनयन सस्कार बद हो गया और पत्नी का यज्ञोपवीत भी पति ने पहनना शुरू कर दिया। इसीलिए विवाहित व्यक्ति के यज्ञोपवीत में 3 सूत्र के स्थान पर 6 सूत्र होते हैं। अवैदिक काल में स्त्रियो को शूद्र के समान माने जाने लगा और पाखण्डी पंडितों ने यह घोषणा कर दी कि

स्त्री शुद्रौनाधीयताम

अर्थात स्त्री और शूद्र को नही पढाना चाहिए। जब स्त्री को भी शूद्र घोषित कर दिया गया तब से उनका उपनयन सस्कार भी बद हो गया।

भारतवर्ष के इतिहास में महर्षि दयानन्द प्रथम ऋषि हैं जिन्होंने इस प्रथा के विरूद्ध प्रचण्ड घोष किया और घोषणा की कि पुत्रों की भाति पुत्रियों का भी उपनयन सस्कार होना चाहिए परन्तु हजारों साल की गुलामी के सस्कार के कारण अब गुलाम लोग गुलामी को ही वरदान मानते हैं और इससे मुक्त होने की कोई चेष्टा नही करते। अपवाद स्वरूप आर्य समाज के मुटठी भर अनुयायी ही अपनी पुत्रियों का उपनयन सस्कार कराते हैं। आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित जितने भी कन्या गुरूकुल है वहा तो छात्राओ का उपनयन सस्कार होता है परन्तु उसके बाहर आर्य परिवारों में भी पुत्रियों के उपनयन सस्कार की प्रथा नही है।

आर्य समाज के कटटर अनुयायी श्री राजेश भटनागर ने जब अपनी पुत्री दिव्या के उपनयन सस्कार का विशाल आयोजन किया तो आर्य परिवारों की महिलाए पूछने लगी कि क्या बेटियों का भी उपनयन सस्कार होता है?

श्री राजेश भटनागर ने अपनी बेटी के उपनयन सस्कार को धूम धाम से आयोजित किया और सस्कार कराने के लिए आर्य जगत के मूर्धन्य सन्यासी स्वामी दीक्षानन्द जी को आमन्त्रित किया जो अब तक 15000 पुत्रियों का उपनयन सस्कार करा चुके हैं।

स्वामी दीक्षानन्द जी ने उपनयन सस्कार का महत्व बताते हुए कहा–

कन्याओं को ब्रह्मसूत्र का अधिकार

यज्ञोपवीत की एक सज्ञा ब्रह्मसूत्र भी है। यह सज्ञा ही इस बात की परिचायिका है कि इसके धारणकर्ता को ब्रह्म का वेद का वेदाध्ययन का परमात्म चिन्तन का अधिकार है। अब विचारणीय है कि कन्याओं को ब्रह्माधिकार है कि नहीं जिससे उन्हें ब्रह्म सूत्र का अधिकार प्राप्त हो? इस पर हमारा यही निवेदन है कि यदि स्त्रियों को पुरुषों की भाति ही ब्रह्मचर्य का ब्रह्म की चर्चा का अधिकार है तो ब्रह्म सूत्र का अधिकार तो स्वत सिद्ध है। उन्हें इस अधिकार से कौन वचित कर सकता है? भगवती श्रुति ने कन्याओं के लिए ब्रह्मचर्य पालन उतना ही अनिवार्य किया है जितना कि कुमारों के लिए। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में कन्याओं के लिए स्पष्ट आदेश है कि ब्रह्मचर्य का पालन करके ही कन्या युवापति का लाभ कर सकती है–ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम्। वेद का यह आदेश ही कन्याओं को ब्रह्म सूत्र का अधिकारी बनाता है।

यज्ञोपवीत सार्वभौम चिन्ह है–

सब कुछ चिन्ह प्राकृतिक हैं कुछ राष्ट्रीय हैं कुछ धार्मिक और कुछ सास्कृतिक हैं। आर्य सस्कृति सार्वभौम सस्कृति है यज्ञोपवीत भी उस सार्वभौम सस्कृति का एक सार्वभौम या सार्वजनिक चिन्ह है। आर्य सस्कृति में से यदि इन शिखा सूत्रादि सांस्कृतिक चिन्हों को निकाल दिया जाय तो यह निष्प्राण हो जाए। किसी भी जाति की सस्कृति के अनुरूप ही उसके सस्कार होते हैं और संस्कारों के अनुरूप ही उसके चिन्ह।

सस्कृति के अनुरूप सस्कार–

आर्यों के षोडश सस्कार उनकी सस्कृति के अनुरूप हैं। उन षोडश सस्कारों में उपनयन सस्कार का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उपनयन सस्कार का सूत्रपात जिस सूत्र से होता है उसे यज्ञोपवीत विद्या सूत्र यज्ञ सूत्र अथवा ब्रह्म सूत्र कहते है। इस यज्ञोपवीत को सार्वभौम चिन्ह कहना अधिक उपयुक्त है। आचार्य ब्रह्मचारी का उपनयन करता हुआ इस यज्ञोपवीत के त्रिसूत्र द्वारा ब्रह्मचारी के ह्रदय चित्त और मन उपनयन करता है। अत यह सार्वभौमिक विद्या सूत्र है यह चिन्ह शैक्षणिक चिन्ह है।

यज्ञोपवीत की उपेक्षा अपराध है!–

यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रीय ध्वज की उपेक्षा करे,उसका अपमान करे, यथास्थान लहराते हुए ध्वज को उतार दें तो राष्ट्रीय अपराध का भागी होता है। उसे कठोर दण्ड दिया जाता है। तद्वत यज्ञोपवीत चिन्ह की उपेक्षा वा अपमान करने वाला व्यक्ति भी सार्वभौम अपराध का भागी है और वह उससे भी अधिक कठोर दण्ड का पात्र है इन चिन्हों को उतारना वा छीनना अवाछनीय और निन्दनीय है। इसकी जितनी भर्त्सना की जाए उतनी ही कम है इस सास्कृतिक चिन्ह को छीनने,उतारने तोडनेवाला व्यक्ति अपराधी है एव कठोर दण्ड का भागी है।

उपनयन शब्द का अर्थ–

उपनयन शब्द का अर्थ तो केवल पास ले जाना है। अब प्रश्न यह है कि किसको किसके पास ले जाना? इसका सीधा सा उत्तर यही है कि जिसका उपनयन हो उसको जो उपनयन कर रहा है उसके पास ले जाना अर्थात कुमार को आचार्य अथवा गुरू के पास ले जाना उपनयन है। वह पद्धति अथवा प्रक्रिया जिससे कुमार को आचार्य के पास ले जाया जाता है उपनयन सस्कार है।

उपनयन की सम्भावना–

इस प्रकार उपनयन सस्कार की परिभाषा से दो बाते तो स्पष्ट है। एक यह कि ब्रह्मचारी आचार्य के पास जाना चाहता हो और दूसरा यह कि आचार्य ब्रह्मचारी को अपने लेना चाहता हो। अन्तेवासी और आचार्य का परस्पर उपनयन की भावना पर ही उपनयन सस्कार की सभावना है।

आचार्य द्वारा शिष्य का उपनयन

उपनयन सस्कार द्वारा आचार्य शिष्य को इतना समीप कर लेता है जितना कोई माता अपने पुत्र को अथवा गर्भवती गर्भ को। जैसे माता और गर्भ में कोई दूरी नहीं रहती तद्वत आचार्य और ब्रह्मचारी में भी परस्पर कोई दूरी नहीं रहती। उदरस्थ गर्भ और माता में जितनी समीपता होती है उतनी ही आचार्य व शिष्य मे समीपता होनी चाहिए। जैसे माता और गर्भ की समीपता में दोनो के श्वास दोनों के विश्वास दोनो के मन दोनों के वचन दोनो के आचरण एक हो जाते हैं तद्वत् आचार्य और उसके गर्भगत ब्रह्मचारी के श्वास विश्वास मन वचन और आचरण एक होने चाहिये। तब कहीं जाकर आचार्य द्वारा शिष्य का उपनयन हुआ समझा जाएगा।

नयन शब्द का अर्थ–

नयन शब्द 'णीञ् प्रापणे' धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ प्राप्त करना है।वास्तव मे आखों को नयन कहने का अभिप्राय भी यही है कि वह दूरस्थ पदार्थों को प्राप्त करा देती हैं। आखों के द्वारा दृश्य का प्राप्त करने पर ही पाव उस ओर चलते हैं। आखें उन्हें उस ओर ले चलती है। बस ले चलने के कारण आख को नयन कहते हैं। यह सब प्रक्रिया इस प्रकार सम्पन्न होती है। कोई भी व्यक्ति पदार्थ को तभी देख पाता है जब पदार्थ की रूप तरगे चक्षुस्तल पर और चक्षुस्तल से उठी दर्शन तरगे पदार्थ तक जा टकराती हैं। तब चक्षुस्तल पर हुए अकन को पढ़कर व्यक्ति कहता है कि सामने अमुक पदार्थ है। यह सब उपनयन के कारण ही हुआ करता है। उपनयन के लिए दोनों ओर से उठी तरगों का परस्पर मिलना आवश्यह है। दोनो ओर से उठी तरगें ही परस्पर इन्द्रिय और अर्थ को बाधने वाली होती है। विषय शब्द का अर्थ ही बन्धन है। विशेषेण सिनन्ति बध्नन्ति इति विषया जो इन्द्रियों को विशेषतया कसकर बाध ले वही विषय है। शब्द, स्पर्श रूप रस गध आदि विषय इन्द्रियो को जब बाध लेते हैं तब कहीं पदार्थ का उपनयन समीप लाना हुआ करता है। उसी प्रकार आचार्य और शिष्य के उपनयन मे दोनों के ह्रदयों से उठी तरगों का दोनों के मन से उठी सकल्प धाराओं का जो एक होना आवश्यक होता है। बस उभयपक्ष से उठी धाराओं का जो एक को दूसरे से बाधनेवाली हैं प्रत्यक्ष करना ही उपनयन की त्रि सूत्री का अध्ययन है जिसके बिना आचार्य शिष्य का सामीप्य असम्भव है

उपनयन किसका?

यदि कोई व्यक्ति का चक्षुस्थल सर्वथा खराब हो तो उस अवस्था में पदार्थ का अकन न होने से उसका पढा जाना सर्वथा असम्भव होगा। कदाचित चक्षुस्तल पर कोई धुन्ध आ गई हो तो आखो पर मनुष्यकत चक्षु चढा लेने से सामने वाले पदार्थ का अकन स्पष्ट होने लगेगा और व्यक्ति उसे पढ लेगा। इस कृत्रिम लैस को भी उपनयन उपनेत्र नयनक अयनक कहते हैं। इस उपनयन की चश्मे की उन्हे ही आवश्यकता होनी है जिन्हे धुधला दिखाई देता है। सर्वथा अन्धे अथवा स्पष्ट देख सकने वाले दानो का उपनयन के चश्मे की आवश्यकता नहा रहती। शिशु और सन्यासी दोनो को ही उपनयन की आवश्यकता नही।

कुमार के लिए दूसरी आखें

मनुष्य जीवन में कौमार अवस्था ही ऐसी अवस्था है जिसमें धुधला दिखता है कुछ का कुछ दिखता है। ऐसी भयावह अवस्था में उपनयन की आवश्यकता होती है। कहीं कुमार भटक न जाए, पथभ्रष्ट न हो जाए ठोकर न खा जाए। उसकी आखों पर क्या भरोसा? तभी तो कुमार पुकार पुकारकर कहता है हे आचार्य! मुझे अपनी आखे दो चश्मा दो उपनयन दो अब मैं अपनी आख से न देखकर आपकी आख से देखूगा। मेरी आखों पर आचार्य की आखे चढी होगी तब मुझे कोई भय नहीं होगा लाओ आचार्य! चश्मा दो। 'उप मा नयस्व' मेरे नयन के उपनयन बन जाओ। वह ब्रह्मचर्य सूक्त के शब्दों मे पुकार उठता है

चक्षु श्रोत्र यशो अस्मासु धेह्यन्न रेतो लोहितमुदरम्।।

तब आचार्य ने भी ब्रह्मचारी की करूणा पुकार को सुनकर उसका उपनयन किया और ब्रह्मचारी की आखों पर अपनी आखे चढा दी।

उपनयन की सार्थकता–

व्यक्ति का किसी अन्य व्यक्ति की आखो मे से झाक कर देखना तभी सम्भव है जब देखनेवाला दिखानेवाले का गर्भ बन जाए। गर्भावस्था में ही ऐसी सभावना है कि जब गर्भस्थ जीव अपनी आख से न देखकर मा की आख से देखता है। अपने मन से मनन न कर मा के मन से मनन करता है अपने नथुनों से श्वास न लेकर मा के नथुनों से श्वास लेता है। इसी प्रक्रिया का नाम है यथार्थ उपनयन। इतना गहरा उपनयन करने के निमित्त ही तो आचार्य ब्रह्मचारी को अपने उदर में ले लेता है। आचार्य शिष्य को अपने वरूण पाश मे बाध लेता है।

दो जन्म–

व्यक्ति का प्रथम जन्म मातृ उदर से होता है तो द्वितीय जन्म सावित्री मा के उदर से। सामान्य लोगों को यह भी ज्ञान नहीं कि मनुष्य का प्रथम जन्म के अतिरिक्त द्वितीय जन्म भी होता है। जिस दिन द्वितीय जन्मके रहस्य को समझ लिया जाएगा उसी दिन यज्ञोपवीत उसके त्रि–सूत्र फिर प्रत्येक सूत्र के तिहरे होने, ब्रह्मग्रन्थि लगान आदि का मम समझ म आ सकेगा।

द्विज शब्द का व्यवहार–

व्यक्ति का द्वितीय जन्म भी होता है इसे प्रमाणित करने के लिए हमें कहीं दूर जाने की आवश्यकता नही। द्वि–ज शब्द का प्रयोग

तभी व्यक्ति द्वि–ज कहलाता है। कितना बडा आश्चर्य है कि सामान्य द्विज शब्द का व्यवहार तो करते हैं परन्तु उन्हें इसी शरीर द्वारा द्वितीय जन्म का किंचित भी बोध नहीं होता। 'द्वाभ्या जायत इति द्विज जो दो योनियों से जन्मा हो वह द्विज है। मातृ योनि से तो सभी जन्मे हैं परन्तु दूसरी योनि कौन सी है जिससे जन्म पाकर व्यक्ति द्विज अर्थात ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बन जाता है? आचार्य योनि से प्राप्त जन्म ही उत्कृष्ट है प्रमुख है। इसके बिना मातृयोनि से प्राप्त जन्म साधारण जन्म है। साधारण जन्म से सभी शूद्र हैं। जो व्यक्ति विद्यामाता से जन्म धारण नहीं करता अर्थात पढाने से भी नहीं पढ सकता वह शूद्र है। एकज है द्विज नहीं।

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग दें

1 देश–विदेश की आर्य समाजो मे घटित घटनाओ से आर्य जगत को अधुनातन जानकारी देना।

2 आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।

3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोडना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।

4 आर्य समाज द्वारा धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र मे किये जा रहे कार्यों की जानकारी देना।

5 समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओं का आर्य जगत को परिचय देना।

6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एव युवको का सगठन खडा करना।

7 आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाओ के माध्यम से देश मे सशक्त छात्र शक्ति खडी करना।

8 विश्व के आर्य परिवारो का सगठन बनाना।

9 देश के 100 विद्वानो की परिषद बनाना।

10 विश्व की [illegible] भाषाओं मे वेद सन्देश प्रकाशित कर वैदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।

11 विश्वशाति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरूद्ध मुहिम छेडना तथा देश में राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्रान्ति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीर्वाद दें कि परमपिता परमेश्वर हमे इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामर्थ्य दे।

तन मन धन से सहयोग दें पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने का कष्ट करें।

मुख्यमंत्री जी! आपकी कुर्सी के नीचे आग

ज़रा देख चांद की पत्तियों ने बिखर–बिखर के तमाम शब तेरा नाम लिक्खा है रेत पर, कोई लहर आके मिटा न दे

माननीय मुख्यमत्री जी

आपको मुख्यमत्री के पद पर आसीन देखकर हमारी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। गत चुनावों से पूर्व सारे राजस्थान में गैर सरकारी शिक्षण सस्थाओं को मैंने आह्वान किया था कि श्री भैरोसिंह शेखावत के शासन का उखाड़ फैंको। काग्रेस की सरकार बनने पर आपको कोई दिक्कत नहीं आएगी। श्री भैरोसिह शेखावत के शासनकाल में शिक्षा के मदिर धू–धू करके जलने लगे। जिस प्रकार रोम के जलने पर नीरो बासुरी बजा रहा था उसी तरह शिक्षा के मदिर जलने पर श्री भैरोसिह शेखावत भी बासुरी बजा रहे थे सरस्वती के मदिर बलात्कार के केन्द्र हो गए थे। हमने श्री भैरोसिह शेखावत को चेतावनी दी थी कि आप छात्र शक्ति के साथ खिलवाड़ नही करें वरना यह छात्र शक्ति आपको सिहासन से उठाकर सडकों पर पटक देगी परन्तु गत भाजपा सरकार ने हमारी चेतावनी को एक मजाक समझा और परिणाम–स्वरूप गत चुनाव में छात्र शक्ति ने भाजपा से सत्ता का मुकुट छीन करके उसे सडकों पर खडा कर दिया।

इसके बाद आप मुख्यमत्री बने। आपने सवेदनशील और पारदर्शी सरकार देने का वादा किया और ईमानदारी से किया। मुख्यमत्री बनने पर किसी का भी अत्यधिक व्यस्त हो जाना स्वाभाविक है। हमेशा से मुख्यमत्री के चारों ओर निहित स्वार्थी तत्व एक अभेद्य घटाटोप खड़ा कर देते हैं और मुख्यमत्री की आख को नीचे नहीं होने देते। इससे मुख्यमत्री को यह पता नहीं चलता कि उसकी कुर्सी के नीचे कौन आग लगा रहा है?

आपके साथ यही हो रहा है। राजस्थान की नौकरशाही मे साप्रदायिक ताकतों के गुर्गे बैठे हैं जो उनके इशारे पर काग्रेस को आग लगाने का षड़यन्त्र कर रहे हैं ताकि आगामी चुनाव में साप्रदायिक ताकतों के सिर को सत्ता के मुकुट से विभूषित किया जा सके। सारे सरकारी दफ्तर नौकरशाही के व्यावसायिक केन्द्र हो रहे हैं। कही भी रिश्वत दिये बिना काम नहीं चलता। यह वर्ष आपके शासन का अन्तिम वर्ष है। आपका शुभ चिन्तक होने के कारण मेरा यह फर्ज है कि मैं उन षड़यन्त्रकारियों का भडाफोड करू जो आपकी सरकार को सत्ता विहीन करने के लिए कटिबद्ध है।

हमें न तो कोई पद चाहिए और न टिकट चाहिए। हम तो यह चाहते हैं कि राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के अरमानों के स्मृति चिह्न बचे रहें और इस हेतु आप जनहित में कार्य करने के लिए हमेशा तत्पर रहें।

मैंने आपको शिक्षा के क्षेत्र में होने वाली धाधली से अवगत कराया था और एक ज्ञापन देकर अनुरोध किया था कि शिक्षा विभाग की जन विरोधी और छत्र विरोधी नीतियों को समाप्त कर नई पीढ़ी की प्रगति के लिए पथ प्रशस्त करें।

मैं पुनः वही ज्ञापन प्रस्तुत कर आपसे आग्रह करता हू कि आप शिक्षा विभाग के दोषी अधिकारियों के विरूद्ध तत्काल कोई कार्यवाही करें ताकि यह असतोष की आग काग्रेस सरकार के लिए मरणान्तक सिद्ध न हो। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि गत 6 मास से अनुदानित सस्थाओं को अनुदान नहीं मिला और अनुदान न देने का कोई न कोई बहाना बना दिया जाता है। राजस्थान के इतिहास में आज तक कभी भी 6 मास तक अनुदानित सस्थाओं का अनुदान नही रोका गया। राष्ट्र के उत्थान का एक मात्र उपाय उस देश की शिक्षा प्रणाली है। 'एकै साधे सब सधे' की कहावत के अनुसार यदि आपने शिक्षा को साध लिया तो सब सध जायेगा परन्तु विडम्बना यह है कि शिक्षा विभाग सिर से लेकर पाव तक भ्रष्टाचार और अकर्मण्यता में डूबा हुआ है। मैं आपका ध्यान उच्च शिक्षा विभाग के उन कार्यों की ओर आकृष्ट करना चाहता हू जिनसे काग्रेस सरकार की छवि राजस्थान में धूमिल हो रही है और अपने षड़यत्रों द्वारा पारदर्शी सवेदनशील सरकार के सकल्प को हास्यास्पद बना रही है।

1 वर्तमान शिक्षा प्रणाली दिशाहीन है और यह प्रणाली नवयुवकों को बेरोजगार और अर्थहीन बना रही है। राजस्थान सरकार ने इसी कमी को दूर करने के लिए स्नातक स्तर तक रोजगारमूलक विषयो का प्रावधान किया ताकि विद्यार्थीवर्ग बेचलर ऑफ बिजनेस कम्प्यूटर एप्लीकेशन बेचलर ऑफ बिजनेस एमिस्ट्रेशन गारमेन्ट प्रोडक्शन एण्ड एक्सपोर्ट मैनेजमेन्ट बॉयो टैक्नोलाजी संगीत एव कार्यालय प्रबन्धन एव सचिवीय पद्धति विषयों में प्रशिक्षण प्राप्त कर रोजगार प्राप्त कर सकें। अनेक सस्थाओं ने इन विषयों के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र हेतु दिसम्बर 2001 में आवेदन पत्र दिया था परन्तु आश्चर्य की बात है कि 6 महीने तक निरन्तर प्रयास करने के बावजूद भी अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी नहीं किया गया जबकि सस्थाओं ने प्रत्येक विषय के लिए विश्वविद्यालय में सम्बद्धता के लिए 50 हजार रु जमा कराये थे।

2 राजस्थान गैर सरकारी शैक्षिक अधिनियम के अनुसार जून तक अनापत्ति प्रमाण पत्र एव सम्बद्धता का कार्य पूरा हो जाना चाहिये था और गत वर्ष गठित उच्च शिक्षा समिति ने तो यह निर्णय लिया था कि अनापत्ति प्रमाण पत्र और सम्बद्धता का कार्य मार्च तक पूरा हो जाना चाहिये। उच्च शिक्षा विभाग की यह लापरवाही क्या जनद्रोह और देश द्रोह नहीं है कि ये महाविद्यालय सरकार से एक पैसा लिये बिना करोड़ों रुपये व्यय करके रोजगारमूलक शिक्षा देने के लिए तैयार थे तब भी उच्च शिक्षा विभाग ने अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी नहीं किया।

3 इसी प्रकार बी बी ए एव बी सी ए पाठयक्रम की घोषणा की गई और यह प्रावधान रखा गया कि इन विषयो में सम्बद्धता के लिए महाविद्यालय 25 लाख रुपये की स्थाई निधि की व्यवस्था करें। एक लाख रुपये सम्बद्धता शुल्क जमा करायें। पाच लाख रुपये एन्डोमेन्ट की धनराशि हो और लाखों रुपयों के भवन और उपकरण हो। अनेक महाविद्यालयो ने इन पाठयक्रमों में प्रशिक्षण देने हेतु करोड़ों रुपया व्यय किया परन्तु 6 महीने तक दिन–रात प्रयास करने के बावजूद जुलाई 2002 में सत्र प्रारम्भ होने के बाद अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी किया गया और इन सस्थाओ को राजस्थान विश्वविद्यालय ने आज तक सम्बद्धता प्रदान नही की। इन पाठयक्रमों में प्रवेश देने के लिए जो पत्र जारी किया गया उसमें विद्यार्थियो को चेतावनी दी गई कि इन सस्थाओ को अभी सम्बद्धता नहीं मिली है अतः विद्यार्थी अपने विवेक पर प्रवेश के सम्बन्ध में निर्णय लें।

क्या इस पत्र द्वारा विद्यार्थियों को यह स्पष्ट चेतावनी नहीं दी गई है कि आप इन महाविद्यालयों में प्रवेश नही लें? पाठ्यक्रमों के लिए करोड़ो रुपया लगाने वाले महाविद्यालयों के साथ क्या यह विश्वासघात नहीं है?

4 इन विषयों में लगभग 3600 स्थान थे परन्तु इन पाठ्यक्रमों मे प्रवेश के लिए आयोजित परीक्षा में केवल 750 विद्यार्थियों को उत्तीर्ण किया गया। किसी भी विषय में परीक्षा का प्रावधान तब रखा जाता है जब विद्यार्थी अधिक हों और महाविद्यालय में स्थान सीमित हों। 33 प्रतिशत से 45 प्रतिशत तक 15000 विद्यार्थियों को परीक्षा देने से वचित कर दिया गया। इन पाठ्यक्रमों में परीक्षा के लिए न्यूनतम प्राप्तांक योग्यता 50 प्रतिशत रखी गई जबकि पी एम टी और पी ई टी जैसे विषयों में 33 प्रतिशत है।

5 गत वर्ष अनेक सस्थाओं को बी सी ए के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र तब दिया गया जबकि विद्यार्थी सस्थाओं में प्रवेश ले चुके थे और चालू वर्ष में भी सस्था को पुन अनापत्ति प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए भाग दौड़ करनी पड़ी। जब गत वर्ष अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी हो गया था तो इस वर्ष अनापत्ति प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए पुनः आवेदन पत्र पर विचार करने का क्या औचित्य था? इस प्रकार के प्रावधानों से भ्रष्टाचार को ही बढ़ावा मिलता है और जनहित मे कार्य करने वाली सस्थाए निरूत्साहित हो जाती हैं।

6 राजस्थान सरकार घोर आर्थिक सकट से गुजर रही हैं।ऐसी अवस्था मे सामाजिक सस्थाओ द्वारा रोजगारमूलक शिक्षा के प्रचार–प्रसार में अरबो रुपयों का योगदान देना एक ऐसा कार्य था जिसके लिए सरकार को इन सस्थाओ का आभारी होना चाहिये था परन्तु शिक्षा विभाग ने इन सस्थाओ को सहयोग देने के स्थान पर कदम–कदम पर अवरोध उत्पन्न किया।

अतः आपसे अनुरोध है कि आप इस प्रकरण की जाँच करवाये और दोषी अधिकारियों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करें।

शिक्षा विभाग को निर्देश दिया जाए कि वह अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए पुनः प्रक्रिया प्रारम्भ नही करें बी सी ए. व बी बी.ए में प्रवेश परीक्षा का प्रावधान समाप्त कर बी ए बी.एस सी व बी कॉम की तरह सीधे प्रवेश देने की अनुमति प्रदान की जाए और इस वर्ष जारी किया गया अनापत्ति प्रमाण पत्र स्थाई अनापत्ति प्रमाण पत्र माना जाये और शिक्षा विभाग को यह भी निर्देश दिया जाए कि वह अनापत्ति प्रमाण पत्र मार्च तक जारी कर दें और निरीक्षण का कार्य विश्वविद्यालय पर छोड़ा जाए।

हमें पूर्ण विश्वास है कि आप हमारे अनुरोध पर जनहित में अविलम्ब कार्यवाही करने का कष्ट करेंगे।

भवदीय

(सत्यव्रत सामवेदी)

अध्यक्ष,

राजस्थान गैर सरकारी शिक्षण सस्था सघ,राजस्थान

सत्यव्रत सामवेदी,सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक 58–13 जवाहर नगर,द्वारा [illegible] प्रिन्टिंग प्रेस,[illegible] मार्ग,जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि 652687 का 622056 e-mail [illegible]
आर्य समाज शिक्षा समिति एव शिक्षा समिति आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज राजापार्क जयपुर
राजस्थान

पंजियन संख्या
RAJ[illegible]
डाक पंजीकरण संख्या RJ 2637

70 श्री जगदीश वेदालकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरूकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार उत्तराचल यू पी

[illegible] प्रचार, [illegible], विश्व शान्ति, राष्ट्रोत्थान मानवता एवं सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र



21 अक्टूबर 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पजियन सख्या RJ 2637/2001 वार्षिक मूल्य 75रुपये

जोधपुर सभाग की आर्य समाजों द्वारा राष्ट्र उत्थान यज्ञ

आर्य वीर दल के बड़वानल की उत्तुंग तरंगों ने कृण्वन्तो विश्वमार्यम् के जयघोष से गगन को गुंजित किया

जयपुर 20 अक्टूबर। जोधपुर सभाग की आर्य समाजो द्वारा जोधपुर में 19 अक्टूबर को एक विराट राष्ट्र उत्थान यज्ञ का आयोजन किया था। जोधपुर के आर्य वीरो ने आर्य समाज के गौरवमय पुत्र एव आर्य वीरों के ह्रदय सम्राट श्री मदनसिह की स्मृति में 8 अक्टूबर से 25 अक्टूबर तक आर्य समाज के प्रचार–प्रसार के लिये कार्यक्रम आयोजित करने का सकल्प लिया था। आर्य वीरो की अपने गुरू के प्रति कितनी असीम श्रद्धा है? श्री मदनसिह अपना पार्थिव शरीर त्याग कर 8 वर्ष पूर्व आर्य वीरो को छोडकर परमापेता प्रभु की गोद मे बैठने के लिये चले गए। जोधपुर सभाग के आर्य वीर आज तक भी अपने गुरू के बिछोह को सहन नही कर पा रहे। वर्ष पर वर्ष बीतते जा रहे हैं परन्तु आर्य वीरों के ह्रदय में उनके गुरू पहले की तरह विराजमान हैं। ह्रदय में स्थित गुरू आज भी इन आर्य वीरों को प्रेरणा दे रहे हैं कि आर्य वीरों! उठो! जागो! महर्षि दयानन्द के चरणों में बैठ कर अमरता का ज्ञान प्राप्त करो और इस दुर्गम पथ पर तब तक चलते रहो जब तक विश्व में वैदिक साम्राज्य की स्थापना नही हो जाती।

19 अक्टूबर को आयोजित विराट राष्ट्र उत्थान यज्ञ में प्रमुख वक्ता के रूप में स्वामी अग्निवेश जी को आमन्त्रित किया गया था। उनके अतिरिक्त श्री सत्यव्रत सामवेदी प्रो कैलाशनाथ सिह एव श्री जगवीर सिह एडवोकेट को भी आमन्त्रित किया गया था परन्तु प्रो कैलाश नाथ सिह एव श्री जगवीरसिह इस सम्मेलन मे नही आ सके।

19 अक्टूबर को प्रात काल मण्डौर एक्सप्रेस जब जोधपुर प्लेटफार्म पर पहुची तो जोधपुर का स्टेशन 'जो बोले सो अभय वैदिक धर्म की जय' 'जगत गुरू महर्षि दयानन्द की जय' के नारो से गुजने लगा। पूरा प्लेटफार्म 'ओ३म' के झण्डो से सुशोभित हो रहा था। हजारो यात्रियों की नजर नारे लगाते हुए आर्य वीरों की तरफ उठी हुई थी। रेलगाडी से जब स्वामी अग्निवेश एव श्री सत्यव्रत सामवेदी उतरे तो आर्य वीरो ने उन्हें घेर लिया और गगनभेदी नारे लगाते हुए स्टेशन के बाहर ले गए। ये आर्य वीर आर्य नेताओं को गाड़ियों पर बैठाकर आर्य समाज पाबूपुरा की ओर ले गए। इन गाड़ियों के आगे और पीछे सैंकड़ों आर्य वीर अपने हाथो में ओ३म के झण्डें लिये हुए मोटर साईकिलों पर नारे लगाते हुए चल रहे थे।

पाबूपुरा ग्राम जोधपुर से लगभग 12 कि मी की दूरी पर है। यह नाईकों की बस्ती है। इस बस्ती में रहने वाले समस्त नाईक आर्य समाजी हैं। एक आर्य वीर के घर में आर्य नेताओं के आवास की व्यवस्था थी। आर्य वीर दल राजस्थान के अधिष्ठाता श्री रामसिंह आर्य 10 30 बजे स्वामी अग्निवेश जी को अपने घर ले गए जहा पर जोधपुर के अनेक मुस्लिम नेता स्वामी अग्निवेश जी की प्रतीक्षा कर रहे थे। इन मुस्लिम नेताओ ने स्वामी अग्निवेश जी का अभूतपूर्व स्वागत किया और भारत मे अमन चैन के लिये और साम्प्रदायिकता समाप्त करने के लिये तन–मन–धन से सहयोग देने का आश्वासन दिया। देश मे साम्प्रदायिकता के उन्मूलन एव शाति स्थापना के लिये



स्वामी अग्निवेश जी द्वारा किये जा रहे प्रयत्नो की उन्होने मुक्त कठ से प्रशसा की।

सायकाल 4 बजे से राष्ट्रोत्थान यज्ञ प्रारम्भ हुआ। श्री हनुमान प्रसाद गौड यज्ञ के ब्रह्मा थे। आर्य समाज पाबूपुरा का विशाल प्रागण आर्य वीरों और आर्य परिवारों से भरा हुआ था। ऐसा लग रहा था जैसे जोधपुर का जन सैलाब उमड कर पाबूपुरा आ गया हो। जोधपुरी परिधान में हजारो महिलाओ ने देव लोक का दृश्य उपस्थित किया हुआ था। ये महिलाए भी अपने पति एव परिवार सहित यज्ञ में भाग लेने आई थीं। आखिर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ही तो हजारों वर्ष के बाद इन महिलाओं को यज्ञ का अधिकार दिया था तो ये हर्षित प्रमुदित और प्रफुल्लित होकर यज्ञ में भाग लेने क्यों नहीं आतीं।

जोधपुर सभाग के हजारों आर्य वीर श्वेत वस्त्रो में उल्लास और उमग के साथ राष्ट्रोत्थान यज्ञ की व्यवस्था मे लगे हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे हम किसी आर्य लोक मे पहुच गए हो। इस आर्य समाज के विशाल प्रागण में सैंकडो यज्ञ कुण्ड की चारो तरफ सैंकडो दम्पति यज्ञ करने के लिये बैठ गए और सारा आकाश वेद मन्त्रो से और स्वाहा के स्वर से गूजने लगा।

यज्ञ के बाद यज्ञ की महिमा पर श्री सत्यव्रत सामवेदी ने प्रवचन दिया। सामवेदी जी ने कहा कि आज सारे भारत वर्ष मे राष्ट्रोत्थान यज्ञ की आवश्यकता है। आजादी के बाद हमने सोचा था कि घर–घर मे घी के दीये जलेगे। घी–दूध की नदिया बहेगी। कोई भूख से नही मरेगा। सर्वत्र सुख और समृद्धि होगी परन्तु आजादी के बाद इन 55 वर्षों में हमारे देश की क्या दुर्दशा हो गई है? दूध घी की नदिया तो बहुत दूर की बात हैं आज हम पानी की एक–एक बूद के लिये तरस रहे हैं। मौत हमारे सिर पर मण्डरा रही है। इस सदी का सबसे भयकर अकाल मौत बन कर प्राणी जगत को निगलने के लिये तैयार है। भुखमरी बेरोजगारी गरीबी कुपोषण भय दायिकता जातिवाद अस्पृश्यता चरित्रहीनता हिसा से त्रस्त होकर सारा देश त्राहि–त्राहि कर रहा है। भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है। मुटठीभर लोगो ने राष्ट्र की सम्पत्ति पर कब्जा किया हुआ है। राष्ट्र की 80 प्रतिशत सम्पत्ति 20 प्रतिशत लोगो के पास है और 20 प्रतिशत सम्पत्ति पर 80 प्रतिशत गरीब जनता अपना निर्वाह कर रही है। अभी हमने विजयादशमी पर रावण और मेघनाद के कागज के पुतलो को जलाया। करोडो रुपया इस गरीब मुल्क ने पटाखो पर खर्च किया। विजयादशमी इसी लिये तो मनाते है कि इस दिन अवैदिक सम्राट का पराभव हुआ और वैदिक राज्य या राम राज्य की स्थापना हुई। गोस्वामी तुलसीदास ने राम राज्य का वर्णन

बरनाश्रम निज–निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा राम राज नहि काहुहि व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति चलहि स्वधर्म निरत श्रुतिनीति।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा सब सुन्दर सब बिरज सरीरा।।

परन्तु आज राम के नाम पर क्या हो रहा है? रावण दहन से हम क्या प्रेरणा ले रहे हैं? रावण दहन करने वाले लोगो ने क्या कभी सोचा कि हम आज तक भी राम की आराधना क्यो कर रहे हैं? राम इसीलिये तो आज तक करोड़ो नर–नारियों का अराध्य हैं क्योंकि वह वेदानुयायी था और वैदिक राज्य की स्थापना के लिये उसने रावण का सहार किया था। क्या रामभक्त वेद मार्ग पर चलने के लिये तैयार हैं? इन रामभक्तों ने वेद मार्ग पर चलना तो दूर आज तक वेदों के भी दर्शन नहीं किये हैं। रावण दहन की सार्थकता तभी हैं जब रामभक्त

वेदभक्त बने और वेद की शिक्षाओं के अनुसार उनकी जीवनचर्या हो। आज रावण से भी हजारों गुना भयानक असुर सारे भारत में फैले हुए हैं। इन असुरो ने रावण को बहुत पीछे छोड दिया है। राम ने जीवन मूल्यों के लिये सत्ता को ठोकर मार दी इसीलिये वे जन–जन के ह्रदय सम्राट बने और आज राम के नाम पर सत्ताकामी भूखे भेडिये सत्ता के लिये मूल्यों को ठोकर मार रहे हैं। अभी दिल्ली में भरी दुपहरी में हजारों नर–नारियों के बीच में से एक नवयुवक 20 वर्ष की एक युवती को घसीटता हुआ सडक के किनारे किसी विशाल भवन में ले गया। उस भवन के बाहर सशस्त्र प्रहरी मूक दर्शक बनकर मातृशक्ति की आबरु को लुटते हुए देखते रहे और उस पिशाच ने उस 20 वर्षीया युवती के साथ सामूहिक बलात्कार किया। बाद मे पता चला कि वह पिशाच दिल्ली विश्वविद्यालय का विद्यार्थी परिषद से अध्यक्ष रह चुका है जो महिलाओ की आबरु की रक्षा के नाम पर अध्यक्ष बना था। राम के नाम पर सत्ता हथियाने वाले लोगों का यह चरित्र है। रावण ने तो केवल सीता का अपहरण किया था। रावण से कहा गया कि तुम तो मायावी हो राम का रूप बनाकर सीता को अपने वश मे क्यो नही कर लेते? इस प्रश्न का उत्तर जो रावण ने दिया वह वैदिक सस्कृति की महिमा को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त है–

राम को रूप धर्यो दसकन्धर
भेट करी सिव के ढिग जाई।
राम की प्रेम पगी तब ही वह
अक मे आय पर्यो उर लाई।।
येहु चरित्र अनेक रचे
पर पाय सक्यो नहि कछु सफलाई।
राम को रूप बनावत ही
मातु सी लागत नारी पराई।।

आज लाखों सीताए 22 वीं शताब्दी के रावणों की शिकार हो रही हैं। लाखों सीताए वेश्यालयों में अपनी आबरू बेच रही है। आज राम भक्त इन सीताओं को बचाने के लिये क्या रहे हैं? रावण का सहार करने के लिये ऋषि मुनियों ने 25 वर्ष तक आर्य वीर दल स्थापना की। विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को असुरों से युद्ध करने के लिये शस्त्र विद्या सिखाई। दूसरी तरफ दक्षिण में सुग्रीव और हनुमान के नेतृत्व में वानरों की विशाल सेना खडी की गई। ये वानर नहीं थे अपितु वज्र शक्ति वाले आर्य वीर थे जो जगलों में रहते थे कद मूल खा कर अपनी भूख मिटाते थे। प्रकृति की गोद में केवल लगोट पहनकर सोते थे और खलते थे। ये ब्रह्मचारी वेदों के प्रकाण्ड विद्वान थे उनके सामने एक ही लक्ष्य था रावण वध। उनसे पूछा जाता कि तुम्हारा नाम क्या है तो वें कहते–

'रावण वधोद्यत दशग्रीव वधोद्यत ।

आर्य वीरों! आपके सामने आज राम और हनुमान से भी अधिक बडी चुनौती है। क्या आप साम्प्रदायिकता भूख भ्रष्टाचार हिंसा गरीबी चरित्रहीनता के विरूद्ध हनुमान और वानर सेना जैसी वीर सेना खडी करोगे और भारत को इन रावणों से मुक्ति दिलाओगे। दयानन्द के आर्य वीरो के लिये यह कोई कठिन कार्य नहीं है। तुम दयानन्द का नाम लेकर खडे हो जाओं तुम्हारी सारी मुश्किलें आसान हो जायेगी।

सामवेदी जी ने कहा कि 1857 की क्राति क बाद देश की आजादी के लिये जब महर्षि दयानन्द युवकों को आह्वान कर रहे थे तब उन्हे पागल समझा जाता था। जब 1857 मे लाखो सशस्त्र सैनिक देश को आजाद नहीं करा पाये तो अकेला दयानन्द देश को कैसे आजाद करा पायेगा? सब युवक दयान्द की मजाक उडाते थे परतु दयान्द के अग्निमय भाषणों को सुनकर सरदार अर्जुनसिह उनके शिष्य बन गये और उन्होंने पुत्र किशनसिह से कहा कि यज्ञ करके ईश्वर से ऐसे पुत्र की कामना करो जो देश के लिये अपने जीवन की आहुति दे दे। लोग अर्जुनसिह को पागल समझते थे। ऐसे ही तो पागल दुनिया मे क्राति लाते हैं। इसी पागल के आग्रह पर उसके बेटे किशनसिह और पुत्रवधु विद्यावती ने यज्ञ करके देश के लिये अपने जीवन की आहुति देने वाले पुत्र की कामना की ी तब भगतसिंह का जन्म हुआ था 23 वर्ष 5 महीने 26 दिन की अवस्था में हसता–हसता फासी के फदे की तरफ गाता हुआ जा रहा है–

मर कर भी न निकलेगी
दिल से वतन की उल्फत
मेरी मिट्टी से भी
खुशबू–ए–वतन आयेगी।

आर्य वीरों! आज तुम्हारे साथ तो हजारो नवयुवक हैं। फिर निराश होने की क्या आवश्यकता है? यदि तुम सकल्प लेकर खडे हो जाओ तो 24 घटे में देश की तक्दीर बदल सकते हो।

इसके बाद स्वामी अग्निवेश ने जब अपना भाषण प्रारम्भ किया तो हजारों आर्य वीरों के उल्लास और उमग का अजीब नजारा था। हजारो नवयुवक खडे हो गए और वैदिक धर्म की जय युग पुरुष महर्षि दयानन्द की जय क्राति शिरोमणी प रामप्रसाद बिस्मिल की जय देश के शहीदो की जय आर्य समाज जिन्दाबाद ओ३म का झण्डा ऊँचा रहे के न्नारो से धरती और आकाश गुजाने लगे। बडी मुश्किल से उन्हे नारे लगाने से रोका गया और तब स्वामी अग्निवेश का भाषण प्रारम्भ हो सका।

स्वामी अग्निवश ने आर्य वीरों को प्रेरित करते हुए कहा कि सारा देश हसरत भरी निगाहों से तुम्हारी तरफ देख रहा है। मैं तो समझता था कि आर्य समाज मर गया है। देश मे जिस किसी भी आर्य समाज मे जाता हू तो अधिक से अधिक केवल 200–300 श्रोता दिखाई देते हैं। आज किसी आर्य समाज के प्रागण में हजारों की सख्या में श्रोताओ की उपस्थिति को अनेक वर्षों के बाद देखा है। आपका उल्लास और उमग देखकर हमारी धमनियों में भी आशा और शौर्य का सचार होता है। मैं आपसे वादा करता हू कि आप जब मुझे बुलायेंगे और जहा भी बुलायेंगे वहा मैं अवश्य पहुचूगा।

हमारा लक्ष्य है ससार को आर्य बनाना। वेद का सदेश है 'मनुर्भव तुम न हिन्दू बनो न मुसलमान बनो न बौद्ध बनो न जैनी बनो तुम इन्सान बनो। यही वेद का सदेश है यही आर्य समाज का सदेश है यही दयानन्द का सदेश है।

साम्प्रदायिक ताकतो का उन्मूलन करो।

स्वामी जी ने कहा कि आज देश के सामने सबसे बड़ा खतरा साम्प्रदायिकता है। यह दुख की बात है कि आर्य समाज के अनुयायी भी इन साम्प्रदायिक ताकतों की सेना में खड़े हो गए हैं। आर्य समाज की कमजोरी के कारण ही साम्प्रदायिकता के पिशाच ने अपना सिर उठाया हुआ है और हमारी धरती खून से लथ–पथ हो रही है। राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ एव उससे जुड हुए सगठन देश के लिये सबसे बडा खतरा है। ये मौत के सौदागर हिन्दूवाद की सीढ़ियों पर चढ कर सत्ता हथियाना चाहते हैं और जनता को मूर्ख बनाकर उनको लूटना चाहते हैं। ये फासिस्टवादी और नाजीवादी है। इनके नेताओं के आदर्श हिटलर और मुसोलिनी है। लोकतत्र में इनका विश्वास नही है। तानाशाही में इनकी दृढ आस्था है। गुजरात में नरेन्द्रमोदी ने जो कुछ किया वह वैदिक सस्कृति पर कलक है। क्या हमारी विश्ववारा सस्कृति दो–दो साल के मासूम बच्चों की हत्या की अनुमति देती है? क्या वैदिक सस्कृति दिन दहाडे भीड़ के बीच में युवतियो के साथ बलात्कार का उपदेश देती है? क्या वैदिक सस्कृति यह प्रेरणा देती है कि गर्भवती महिला के पेट को चीर कर गर्भस्थ शिशु को आग में झोंक दिया जाए? लोक लज्जा से ही सही इनके सर्वोच्च नेता अटल बिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण अडवानी ये तो कहते है कि नरेन्द्रमोदी की घृणित हरकतों से हम बाहर जाकर अपना मु कैसे दिखायेगे? परन्तु तथाकथित आर्य समाजियो मे तो यह लज्जा भी नही रही? वे तर्क देते है कि मुसलमान भी ऐसे ही करते हैं तो हम भी वैसा ही क्यों न करें? दुष्टों के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिये। यह तर्क असुरों का है। ऐसे घृणित काम असुर ही कर सकता है।

हम तो दया के आगार दयानन्द के सैनिक हैं। हमें तो वेद प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव सिखाता है। हम प्रतिदिन यज्ञ करके बलिवैश्व देव यज्ञ करते हैं और कुत्ते–बिल्ली को परिवार का सदस्य मानते हुए उसे खिलाकर ही भोजन करते हैं। नरेन्द्र मोदी का आचरण अवैदिक आचरण है। राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ की स्थापना 1925 में हुई थी। क्या जरूरत थी इस सघ की स्थापना की जब देश में क्राति लाने के लिए आर्य समाज जैसा सगठन था? आज आर्य समाज की जो वर्तमान शोचनीय स्थिति है उसका बहुत बड़ा कारण राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ है। क्या इस सघ के रहते देश में कभी शांति हो सकती है? क्या हम वेद के 'सगच्छध्व सवदध्व सवोमनासि जानताम' के मत्र को मूर्त रूप दे सकते हैं? देश के उत्थान के लिये हमें मिल जुलकर चलना होगा। हमें नफरत की दीवारों को गिराना होगा। हमें सबके दिलों को प्रेम से जीतना होगा। इन साम्प्रदायिक ताकतो का पर्दाफाश हो गया है। 7 राज्यों के चुनाव में इनकी करारी हार हुई है। काश्मीर में इन्हें केवल एक ही सीट मिली। हिन्दुत्व का नारा लगाकर ये लोग काश्मीर में बुरी तरह से पराजित क्यों हुए? ये लोग मूर्ति पूजक हैं। महर्षि दयानन्द ने हिन्दू समाज में व्याप्त जिन बुराईयों को समाप्त करने के लिये अपने प्राणों की आहुति दे दी उन बुराईयों की जड़े जमाने में ये लोग लगे हुए हैं। इन्ही के कारण जातिवाद अस्पृश्यता का ताण्डव नृत्य हमारे देश में हो रहा है। आर्य समाज मे भी ये ताकतें घुस चुकी है और आर्य समाज को इनसे मुक्त कराना हमारा पावन कर्त्तव्य है। सत्ता के अतिरिक्त इनका कुछ भी आदर्श नही है।

साम्प्रदायिकता के विरूद्ध गुजरात मे अभियान की तैयारी

स्वामी जी ने घोषणा की कि दिसम्बर मे गुजरात मे साम्प्रदायिकता के विरूद्ध अभियान चलाया जायेगा। दयानन्द और गांधी की भूमि को साम्प्रदायिकता से मुक्त करना हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है। आर्य समाज के तपस्वी सन्यासी स्वामी धर्मबन्धु जी ने इस अभियान हेतु 100 गाड़ियां देने एव आवास तथा भोजन की व्यवस्था करने की घोषणा की है।

स्वामी जी ने कहा कि राष्ट्र रक्षा के लिये हमने सप्तक्रांति अभियान चलाया है– पाखण्ड मुक्ति, अशिक्षा, भ्रष्टाचार, गरीबी, साम्प्रदायिकता नशा अस्पृश्यता एव जातिवाद से मुक्ति।

जिला कोरापुट में 188 परिवारों के 750 से अधिक ईसाई वैदिक धर्म में दीक्षित

उड़ीसा के कोरापुट जिले के पतागी ब्लाक के घसवानायक ग्राम में सार्वदेशिक सभा के निर्देश में उत्कल आ प्र स के तत्वावधान में स्वामी धर्मानन्द जी की प्रेरणा एव देखरेख में चल रहे धर्मरक्षा महाभियान के अन्तर्गत वैदिक धर्म की दीक्षा एव पुनर्मिलन का एक विशाल कायक्रम मार्च को उत्कल आ प्र स के प्रधान स्वामी व्रतानन्द जी अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इसमें 750 अधिक ईसाई वैदिक धर्म में दीक्षित हुए। कार्यक्रम का सचालन सभा के उपप्रधान प बिशिकेसन जी शास्त्री एव आदित्य गुरूकुल आश्रम कुन्दुली के आचार्य विनय कुमार जी ने किया। यह आयोजन सभा के प्रचारक श्री करूणाकर जी के अथक परिश्रम से सम्पन्न हुआ।

सम्बलपुर जिले के सुबनपुर ग्राम मे 25 ईसाई परिवार वैदिक धर्म में दीक्षित

धर्म रक्षा महाभियान की इसी श्रृखला मे सुबनपुर ग्राम में भी आचार्य सत्यप्रिय जी गुरूकुल आमसेना की अध्यक्षता में पुनर्मिलन एव वैदिक धर्म दीक्षा का कार्यक्रम 24 मार्च को सम्पन्न हुआ। यज्ञ एव कार्यक्र का सचालन श्री दीव्येश्वर जी व्याकरणाचार्य गुरूकुल आम सेना ने किया।

इस कार्य कार्यक्रम में 25 ईसाई परिवारों ने वैदिक धर्म ग्रहण किया। इस कार्यक्रम को देखने के लिए एक हजार से अधिक नर–नारी उपस्थित थे। इन दीक्षा लेने वालों को आशीर्वाद देने के लिए श्री ब्र. गंगानाथ जी ब्र वेदमित्र जी श्री तेजकरन जी ओझा आदि का आशीर्वाद एव उपदेश हुआ। अस कार्यक्रमका आयोजन स्थानीय अध्यापक श्री सरोज कुमार आर्य का है। अन्त में ऋषि लगर के साथ यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

सुदर्शनदेवार्य उपमत्री
उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा गुरूकुल आमसेना
खरियार रोड नवा पारा उड़ीसा

कर्मयोगी स्व.मदनसिंह आर्य की १७वीं पुण्यतिथि

कर्मयोगी स्व मदनसिह आर्य
17वीं पुण्य तिथि–8 अक्टूबर 2002

युवा ह्रदय सम्राट कर्मयोगी मदनसिह आर्य की 17वी पुण्यतिथि आर्य वीर दल जोधपुर एव जोधपुर की विभिन्न आर्य समाजो ने 8 अक्टूबर 2002 का समारोह पूर्वक मनाई। यज्ञ और तत्पश्चात भजनोपदेश और स्व मदनसिह जी आर्य को श्रद्धाजलि का कार्यक्रम आर्य वीर दल जोधपुर और आर्य समाज पाबूपुरा के स युक्त तत्वावधान मे रखा गया जिसका आगाज आर्य समाज पाबूपुरा की भजन मण्डली ने 'जिस दिन वेद के मन्त्रों से धरती को सजाया जायेगा' कोरस से किया। इस अवसर पर स्व मदनसिह जी आर्य के सुपुत्र श्री गजेन्द्रसिह आर्य विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित थे। स्व मदनसिह आर्य के बाल सखा श्री दौलतसिह जी ने मदनसिह जी आर्य के नियमित व्यायाम के सस्मरण सुनाते हुए बताया कि दल्हे के रूप मे ससुराल पहुचने पर बारात के डेरे मे जनवासे में भी उन्होंने व्यायाम किया तथा वे अपने नियम के पक्के थे। स्व मदनसिह जी के सैनिक साथी श्री हरिशचन्द्र जी मेहरा ने भारत पाक युद्ध के सस्मरण सुनाकर अपनी श्रद्धाजलि दी। वहीं राजस्थान एमेच्योर बॉक्सिग एसोसियेशन के अध्यक्ष श्री नारायणसिह जी खीची ने उन्हे राजस्थान के बॉक्सिग के प्रणेता के रूप मे प्रस्तुत करते हुए 1952 से बाक्सिग के खेल की राजस्थान को देन स्व मदनसिह आर्य के द्वारा देना बताकर विस्तृत जानकाकरयो सहित राजसीन एमेच्योर बॉक्सिग एसोसियेशन एव राजस्थान जिमनास्टिक एसोसियेशन की स्थापना मे उनके सहयोग के सस्मरण सुनाकर उनको श्रद्धाजलि दी और कहा कि उनकी प्रेरणा से इस खेल को दिनो दिन उच्च स्तर पर पहुचाने में व प्रयासरत थे।

तत्पश्चात आर्य वीर दल जोधपुर के सचालक भाई नारायणसिह आर्य ने अपना चिर परिचित क्रान्तिकारी उद्बोधन पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल की गजल 'देश की खातिर मेरी दुनियामे यह ताबीर हो उन्होने बताया कि 1962 के भारत चीन 1965 तथा 1971 के भारत पाक युद्ध के उनके फौज के रोमाचित करने वाले साहसिक सस्मरण सुनाए। 1971 में स्व मदनसिह आर्य लौंगेवाला की ऐतिहासिक लडाई के एक साहसी योद्धा थे जिसमें पाकिस्तान की फौज टैंकों को छोडकर कर भाग गई थी। नारायणसिह आर्य ने वे क्रान्तिकारी सस्मरण जो स्व मदनसिह जी आर्य आर्य वीरों को सुनाया करते थे उनमे से एक बदा वैरागी के बलिदान की गाथा सुनाकर रोंगटे खडे कर दिये।

राजस्थान भूतपूर्व सैनिक काग्रेस के अध्यक्ष व समारोह के मुख्य अतिथि के महेन्द्र जी माथुर ने कहा कि मुझे गर्व है कि स्व मदनसिह जी आर्य मेरी आर्मड कोर के रिसालदार मेजर थे। ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व को श्रद्धाजलि अर्पित करने मे अपने आप को मैं गौरान्वित महसूस करता हू। राजस्थान आर्य वीर दल के अध्यक्ष रामसिह आर्य ने आज के समय मे बिगडते वातावरण मे स्व मदनसिह आर्य के स्थापित आदर्शो की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए इस परिपेक्ष में आर्य समाज और महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो को ही सही बताया। अन्त मे आर्य समाज पाबूपुरा के प्रधान भवरलाल आर्य ने आयोजन मे सहयोग के लिये सभी का

आ वी द राज के अध्यक्ष रामसिह आर्य वर्तमान परिपेक्ष मे स्व मदनसिह की विचारधारा और आर्य समाज पर अपने विचार रखते हुए

यज्ञ मे बैठे यजमान आ वी द जोधपुर के सचालक नारायणसिह आर्य व अध्यक्ष गणपतसिह पवार आर्य समाज पाबूपुरा के नेमीचद जी व आर्य महामदिर के पुरूषोत्तम जी

गणपतसिह पवार अध्यक्ष आर्य वीर दल जोधपुर

आर्यसमाज गंगापुरसिटी द्वारा वृहत ग्रामीण प्रचार योजना

आर्य समाज गगापुरसिटी द्वारा दिनाक 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर तक ग्रामीण प्रचार का भव्य आयोजन किया गया। सवाई माधोपुर व करौली आर्य उपप्रतिनिधि सभा के प्रधान मदनमोहन आर्य के नेतृत्व में पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य जगत के प्रसिद्ध भजनोपदेशक कु भूपेन्द्र सिह आर्य व ढोलक वादक ओमप्रकाश आर्य ने ग्राम ऊमरी हदीवपुर स्यारोली शेखपुर बजीरपुर खूटला बामनवास पिपलाई मडावरी लालसोट में वैदिक धर्म का प्रचार किया। हजारो की सख्या मे ग्रामीण भाईयो ने आर्य समाज के विचार सुनाते तथा सैकडो सत्यार्थ प्रकाश खरीदे। इस प्रकार से यह भ्रम टूट गया कि आर्य समाज का प्रचार नही हो सकता। ये सभी गाव वे कस्बे ऐसे थे जहा कभी आर्य समाज का प्रचार नहीं हुआ। आर्यसमाज गगापुरसिटी के प्रधान श्री भगवानसहाय खण्डेलवाल व आर्यवीर दल के कार्यकर्ता गोविन्दआर्य शिम्भुआर्य व अनेको आर्यवीरो ने गावो मे जाकर सम्पर्क किया।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी जब ओ३म का झण्डा लेकर गाव व बसों में चलते थे तो ऐसा लगता था जैसे कभी महर्षि दयानन्द पाखण्ड खण्डिनी पताका लेकर चल रहे थे। मडावरी कस्वा गगापुर व लालसोट के बीच मे पडता है अपरिचित जगह हम ओम का झण्डा लेकर चल रहे थे पता नही कहा पर रूकगे। यकायक अग्रसैन जयन्ती के प्रोग्राम मे कुछ लोक दिखाई दिये हम लोग वहा चले गये। लोगों ने झण्डा लेकर एक सन्यासी को आता देखा कोतुहलवश सबने पूछा कहा से आये हो तो हमने अपना परिचय दिया कुछ लोगों ने कहा कि आपका एक कार्यक्रम यहा पर दे दो तब हम देखेंगे। मैंने भूपेन्द्र जी को कहा और उन्होंने जब हारमोनियम पर गीत सुनाया लोग झूम गये और कहा अब आपका प्रोग्राम हम करायेंगे। मडावरी कस्वे में तीन दिन तक सार्वजनिक सभा हुई। सीनियर सैकण्डरी विद्यालय में हमने प्रोग्राम दिया। आजादी कैसे प्राप्त हुई। हमने बताया कि स्वराज्य के प्रथम उदघोषक महर्षि दयानन्द थे। गीत के माध्यम से आर्य समाज के विचार रखे। कार्यक्रम को सुनकर सत्यार्थ प्रकाश अध्यापकों ने खरीदे तथा छात्रो व गावालों की आख में आसू आ गये। मडावरी कस्वे में तीन दिन का हमारा प्रोग्राम चला। मडावरी कस्वे मे तीन दिन तक वैदिक नाद बजाकर हमारा टोला ओ३म का झण्डा लालसोट पहुचा। लालसोट मे पूर्व परिचित अरविन्द जी खण्डेलवाल की दुकान पर पहुचे उन्होने प्रचार के लिए अनाउन्स करवाया। पुरानी अनाज मडी मे सभा रखी गई। मुश्किल से चालीस लोग उपस्थित थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी व भूपेन्द्र जी ने ओजस्वी व्याख्यान ऐसा लगा जैसे हमने दीवारो को भाषण सुनाया। दूसरे दिन आश्चर्यजनक घटना घटी। कालीमाता मदिर के व्यवस्थापकगण मुझे आकर मिले और आग्रह किया कि आपके विचार हमने घर पर सोते सुने थे बहुत अच्छे लगे। आज आपका प्रोग्राम कालीमाता मदिर पर करायेगे। मैंने उनसे कहा कि आयसमाज का प्रोग्राम मदिर पर होगा कहीं पुराजियो को बुरा नही लगेगा। उनके अधिक आग्रह करने पर मैने अपनी स्वीकृति दे दी। उन्होंने मदिर के माईक से आर्यसमाज के विद्वानों का भाषण होगा ऐलान कर दिया। हम समय पर पहुच गये। कई हजार की भीड हमे सुनने इकटठी हो गई। तीन घटे तक भूपेन्द्र जी भजनोपदेशक ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने श्रोताओं को बाधे रखा। सैंकडो रुपये का साहित्य बिका जिसमे नित्यकर्म विधिव सत्यार्थ प्रकाश ज्यादा बिका। लोग लालायित रहें। तीसरे दिन हमारा प्रोग्राम सी विद्यालय मे हुआ करीब 1500 छात्रों की सभा में श्री भूपेन्द्र जी ने समा बाध दिया। आर्य समाज लालसोट में यह प्रथम सभा थी।

निष्कर्ष– एक माह के वैदिक धर्म प्रचार से ऐसा लगा कि अगर आर्यसमाज के लोग व्यर्थ के झगडों को छोडकर जिला स्तर पर एक उपदेशक मण्डली रखें तथा शहरो व कस्वो मे आर्य वीर दल की शाखाए चले तो पाच वर्ष मे हम एक बहुत शक्ति तैयार कर सकते हैं। आर्यवीर दल ही आर्यसमाज के प्रचार का सशक्त माध्यम है। हमे उत्सवों पर खर्च होने वाला धन गावो में व आर्य वीर दल की शाखाओ पर व्यय करना चाहिये। हम पुन दीपावली के बाद प्रचार अभियान चलायेगे।

मदनमोहन आर्य
प्रधान आर्य उ प्र सभा सवाईमाधोपुर व करौली

दीप जले फिर

गहन तिमिर हो दूर धरा का
बिखरे भू पर नव आलोक।
हर्षित जन समुदाय यहा हो
उन्नतियो का दृश्य बिलोक।
अनय तथा असान अविद्या
का तम हरे यहा दुस्तर।
सत्य धर्म व मानवता के
दीप जले फिर यहा निरन्तर।
फैल रही है आज राष्ट मे
निर्भय होकर असर वृत्तिया।
जन जन के ही मध्य खडी हैं
भेद भाव की कटुक भित्तिया।
मनुज बना है आज मनुज के
लोल लहू का ही प्यासा।
पलट गया है आज समय का
परिवर्तन मय सा पासा।
जग मग दीपो के इस पावन
दिन पर कैसे खुशी मनाए।
घाव लगे है कठिन हृदय पर
कैसे हम सब दीप जलाए।
अपनी पावन सस्कृति से हम
ले ले आओ! दिव्य प्रकाश।
कटक मय स्थितियो मे भी
किचित होवे नही हताश।
श्रद्धा से निष्ठा से आओ
नैतिकता का दीप जलाए।
करे समुज्वल हम चरित्र को
घना कुहासा दूर भगाए।
दीपावली का पर्व सुपावन
देता हमे यही सन्देश।
दया क्षमा व प्रेम भाव का
दीप जले अन्तर सविशेष।

राधेश्याम आर्य विद्यावास्पति
मुसाफिरखाना सुलतानपुर उ प्र

चिट्ठी आई है

श्रद्धेय स्वामी अग्निवेश जी

'राजधर्म' के सितम्बर 02 अक में आपकी ओर से आर्य समाज समाज का 21 वीं सदी के लिए घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान परिस्थितियों में आर्य समाज को निष्क्रियता के गर्त से निकाल कर पुन अग्रणी रूप देने हेतु आप कितने उत्सुक हैं। आपे जैसे ऊर्जावान और जुझारू सन्यासी का मैं 1972 से ही प्रशसक रहा हू और यह मानता हू कि आप आर्य समाज के हित को सर्वोपरि रखकर सक्रिय हों तो विश्व की आर्य जनता–विशेषकर सच्चे आर्य जन आपका प्रशस्ति गान करेगे। वास्तव मे आर्य समाज के सगठन की वर्तमान दुर्दश से आर्यजन ममहित हैं।

किन्तु उक्त घोषणा पत्र तभी लागू हो सकता है जब आर्यो का एक सगठन हो जिसका आदेश निर्देश सभी आर्य समाजें व अधीनस्थ सभाए मानें। दो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाए रहते हुए यह सम्भव नही है। यह सर्वविदित है कि पदलोभी स्वार्थी धूर्त व्यक्ति आर्य समाज का भवन व सम्पत्ति आदि हड़पने के लिए येन–केन प्रकारेण समानान्तर आर्य समाज गठित कर लेते हैं और उसे दो मे से एक प्रदेशीय प्रतिनिधि सभा तुरन्त बिना जाच किए मान्यता प्रदान कर देती है ताकि उससे सम्बन्धित आर्य समाजों की सख्या में वृद्धि हो। इसी प्रकार स्वार्थी नेतागण राजनैतिक व आर्थिक लाभ हेतु समानान्तर आर्य प्रतिनिधि (प्रादेशिक)सभा बना रहे हैं जिन्हें दो में से एक सार्वदेशिक सभा मान्यता प्रदान कर देती है।

इस प्रकार आर्य जनता द्वारा श्रद्धापूर्वक आर्य समाजों को वेदप्रचार हेतु दिए गए दान का दुरूपयोग मुकदमें लडने और भ्रष्ट कर्मचारियों को रिश्वत देने मे हो रहा है। आर्य जनता की दृष्टि मे आर्य नेतागण भी राजनैतिक नेताओं की भाति अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु सामान्य जन को मूर्ख बना रहे हैं। उच्चस्थ आर्य नेतागण अपने झूठे अहकार में महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों को दरकिनार कर स्वामी श्रद्धानन्द प लेखराम जैसे अनेकों जीवन त्यागी ऋषि भक्तों के रक्त से सिचित आर्य समाज के वृक्ष पर कुठाराघात कर रहे हैं।

ऐसी विषम परिस्थिति में क्या आप और श्रद्धेय स्वामी इन्द्रवेश जी आर्य समाज के व्यापक हितों को ध्यान में रखकर दूसरे पक्ष के वरिष्ठ आर्य नेताओं तथा देश के प्रतिष्ठित आर्य सन्यासियों विद्वानों के साथ बैठकर एक प्रभावी सगठन बनाने हेतु प्रयास करेंगे। यदि पद लिप्सा व अहकार के स्थान पर त्याग को प्राथमिकता दी गई तो आने वाले समय में आप सबका नाम आर्य समाज के इहिास में स्वर्णाक्षरो मे लिखा जाएगा।

मेरे इस पत्र को राजधर्म सहित अन्य आर्य पत्रिकाओं मे प्रकाशित करके आर्य जनता से प्रतिक्रिया मागी जाए तो अधिकाश आर्य जन उपरोक्त का समर्थन करेगे–ऐसा मुझे विश्वास है।

सादर सविनय
ऋषि दयानन्द का एक भक्त
प्रताप कुमार साधक
पातजल योगधाम
आर्य नगर, ज्वालापुर हरिद्वार–249407
फोन– 0133–454038

सेवामें

सम्पादक महोदय

आपके यहा से प्रकाशित पाक्षिक पत्र आर्य नीति अध्ययन हेतु वाछित हैं।

(आर्य नीति का वार्षिक शुल्क पत्रिका में ही छपा है)

श्री लल्लन प्रसाद ओझा
ग्राम–उल्था बुजुर्ग पो–ओहरोली बुजुर्ग
जि–गोरखपुर–273213 यूपी

आदरणीय श्री सत्यव्रत सामवेदी जी

नमस्ते।

आपके सम्पादकीय लेखों ने ह्रदय में स्थान बना लिया है। मैंने कई आर्य जनो से भी आर्य नीति पत्रिका के सम्बन्ध मे चर्चा की है। मैं पहले आर्य नीति नहीं पढ़ता था लेकिन जब से दिल्ली में आपसे व्यक्तिगत सम्पर्क हुआ तक से मैं इस पत्रिका को मननशील होकर पढता हू। कृपया बधाई स्वीकार करें।

मैं आपके पास प्रकाशनार्थ एक लेख भेंज रहा हू यदि उचित लगे तो अपनी पत्रिका में स्थान देने की कृपा करें। वर्ण व्यवस्था तथा जात पात का प्रभाव।

आप दिल्ली पधारे तो मुझे फोन अवश्य करें।

सादर आपका
मामचन्द रिवाडिया
जी–41 डी डी ए फ्लेट
अजमेरी गेट दिल्ली–6

परमश्रद्धेय श्री सत्यव्रत जी सामवेदी से
खुशहाल चन्द्र आय का सादर नमस्ते।

मैं पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी द्वारा स्थापित गुरूकुल आम सेना के वार्षिक उत्सव 9 10 व 11 फरवरी तक खरियार रोड में हुआ था उसमें गया था। ब 10.02.2002 की रात्रि को आपके दर्शन किये थे। मैंने आपसे स्टेज पर नमस्ते की थी लेकिन आप आदरणीय बिटठलरावजी हैदराबाद वाले से विचार विमर्श में सलग्न थे। पूज्य स्वामी इन्द्रवेश जी अग्निवेश जी धर्मानन्द जी व सुमेधानन्द जी से मेरे बड़े मधुर सम्बन्ध हैं और पत्र व्यवहार भी बराबर चलता रहता है। मेरे लेख व कविताए आर्य जगत की मुख्य–मुख्य पत्रिकाओं में छपते रहते हैं।

सामवेदी जी कुछ दिनों पहले ब्र आनन्द कुमार गुरूकुल आम सेना वाले गद्दी में आये थे। मेरी रचनायें कुल भूमि में तो छपती ही हैं उसने कहा कि आप आर्य नीति पत्रिका में भी अपनी रचनाए भेंजे। मेरे ऊपर सामवेदी जी का बड स्नेह है। आप अपनी रचनाए उनके पास भी भेजे वे आपके लेखों को आर्य नीति मे समय–समय पर छापेंगे।

सामवेदी जी मेरा परिवार आर्य समाजी हैं। मेरे स्व पिता गोविन्द राम जी आर्य प्रधान एक दृढ निष्ठावान आर्य समाजी थे जिन्होंने अपने जीवन में अनेकों परोपकारी कार्य किये। हिन्दी व गो रक्षा आन्दोलनों में बढ चढ कर भाग लिया और जेल की यातनाए सही। गाव में लाखों रुपये चन्दा लाकर हाई स्कूल बनवाया तथा एक आर्य कन्या पाठशाला बीस वर्षा तक चलाई।

81 वर्षीय जीवन में 20–22 बाल विधवाओं का पुनर्विवाह करवा कर उनका जीवन सुखी बनाया। आपको यह जानकर आश्चर्य व प्रसन्नता होगी कि मेरे परिवर में तीन बाल विधवाए बहु बनकर आई हुई है जबकि तीस साल पहले हमारे अग्रवालों में यह प्रचलन नहीं था। स्व लालमन जी आर्य स्व प फूलचन्द शर्मा 'नीडर' मेरे पिता जी स्व फूलचन्द आर्य श्री चन्दूलाल जी आर्य आदि के सद्प्रयासों से यह प्रचलन शुरू हो गया है।

मेरे पूज्य चाचा बनवारी लाल आर्य अब 81 वर्ष के हैं उन्होने कन्या गुरूकुल के 25 वर्ष प्रधान रहकर उनको पुनर्जीवन दिया। मेरा पूरा परिवार सूरत अहमदाबाद राजकोट चिलवाडा सिलीगुडी आदि में है। सब जगह आर्य समाज को तन–मन–धन से सहयोग देते हैं। पूज्य स्व ओमानन्द जी इन्द्रवेश जी अग्निवेजी जी सुमेधानन्द जी मेरे परिवार से परिचित हैं।

योग्य सेवा के लिये लिखें। सब सहयोगियों व साथियों को मेरा यथा योग्य नमस्ते कहें।

आपका
खुशहालचन्द आर्य
गोविन्दराम आर्य एण्ड सस
जनरल मर्चेन्ट एण्ड कमीशन एजेन्ट
180 महात्मा गाधी रोड
2 फ्लोर कलकत्ता–700 007
फोन–033–218–1625

भाई सामवेदी जी

सादर वन्दे

परमेश्वर ओ३म् की कृपा से स्वस्थ सानन्द होंगे।

आर्य नीति का अक देखा अच्छा लगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्वप्नों को साकार करने हेतु आप जिस तन्मयता से लगे हैं वह सराहनीय है।

आपके समस्त प्रयास सत्य है। परमात्मा आपको सफलता प्रदान करें। यहीं मेरी कामना है।

योग्य सेवा लिखें।

वैदिक क्रान्ति परिषद
मानसरोवर 1–छिब्बर मार्ग आर्य नगर
देहरादून–248 001 उत्तराखड

समादरणीया सामवेदिमहाभागा

सादर प्रणम्यते।

मैंने सुना व देखा था श्रद्धेय स्वामी जी ने आपको बहुत ही सम्मान दिया था। आपके सुविचार बडे गम्भीर ओजस्वी है। मै अभिनन्दन करती हू।

शेष प्रभु दया। आपका पुन वन्दन करती हू।

मेघा देवी प्राचार्या
पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी–221010,उ प्र

जीवन की प्यारी गगरिया

बेहोशी मे गवा दी जीवन की सारी ऊमरिया
तृष्णा तरगो मे बहा दी ये प्यारी गगरिया
भोगो के भँवर मे डुबो दी नैया मजिल की।
बेहोशी में गवा

पदार्थ ऊपर आ गया विवेक नष्ट हो गया
मनुष्य खुद नीचे गिर गया ज्ञान सो गया
वासना की पीडा है ये इन्द्रिय विषयों को भोगने की
बेहोशी में गवा

शिक्षक क्रोध लोभादि त्याग के प्रयोग सिखाते नहीं
त्याग सिखाते तो दगे दो नबरी खाते पाने नहीं
कोरी सैद्धान्तिक शिक्षा देते हैं पदार्थ के सुख दुख की।
बेहोशी में गवा

विषय का सुख परिणाम में दुख के बीच बोता है
स्वादी वस्तुए छोड़ने से रस का त्याग होता है
व्रत ऊपवास से क्षम ना आती है अनासक्त रहने की।
बेहोशी में गवा

वस्तु के सग से कामना की विषमता बढ़ेगी
चित्त वृत्तियों और श्वास को देखें तो समता बढ़ेगी
ध्यान एव व्यवहार काल में सुध ले समता की।
बेहोशी में गवा

अदाकार द्वारा विज्ञापन लोगो मे छाए सुदूर
राग बढ़ते पदार्थ की खरीदी से आ जाए गुदूर
पदार्थ के भोग मे डुबो देते है नैया जीवन की।
बेहोशी मे गवा

सच्चा सन्त

न हो एषणा कारण खुद बिकता
न कोई सौदा गुरू या शिष्य करता।
समता का जो अन्तरध्यान सिखाए
ऐसे सच्चे सन्त के पास जाए।
न हो झूठ छल कपट परिग्रह जहा
जा कर मनुष्य जीवन करें सफल वहा।
बिकता न हो भगवान जहा
जाए ऐसे विरक्त भगवान के पास वहा।
बास न बासी जाए आशा की काश
न हो वितैषणा व स्वार्थ की आश
हो ऐसे निर्लोभी विरक्त सन्त शरण की आस।
न हो भूख शिष्य रूपी पुत्रेषणा की
शरण लें ऐसे निरपेक्ष महात्मा की।
ऐसे सच्चे सन्त का सग कर पाए
भवसागर तर कर पार कर पाए।

– सुमन कुमार आर्य –
594 चेतन निवास जवाहर कॉलोनी
सरदारनगर,अहमदाबाद–382475

वेद प्रतिष्ठान

आर्य समाज मंदिर, मंदिर, नई दिल्ली–1

स्व.पं.प्रकाशवीर शास्त्री का एक स्मृति ग्रन्थ का माननीय प्रधानमंत्री द्वारा विमोचन

वेद प्रतिष्ठान द्वारा पीछे स्व पंडित प्रकाशवीर शास्त्री का एक स्मृति ग्रन्थ भारतीयता के प्रबुद्ध प्रहरी प्रकाशित किया गया था। जिसका विमोचन भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी द्वारा किया गया।

वेद प्रतिष्ठान के सदस्यों के निश्चयानुसार स्व प. प्रकाशवीर शास्त्री जी ने जो वक्तव्य अपने 20 वर्ष के राज्य सभा और लोक सभा के सदस्य के रूप में ससद मे दिये उस सपने को प्रकल्प और सकल्प के रूप में लेकर दो खण्डों में स्व प्रकाशवीर जी के ससदीय कृतित्व का सकलन और मुद्रण पूरा कर लिया गया है। डॉ एलएम सिघवी जी चेयरमैन वेद प्रतिष्ठान ने एक पत्र भारत के उप प्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी जी को लिखा है कि वह इसका लोकार्पण करें और उसी दिन चारों वेद 23 जिल्दों में हम उनको समर्पित करेंगे। वह समारोह उनकी स्वीकृति आने पर उनकी सुविधानुसार विज्ञान भवन, फिक्की आडिटोरियम आदि सभागार में किया जायेगा।

यह दोनों ग्रन्थ स्व श्री प्रकाशवीर शास्त्री जी के मुद्रित ससदीय कृतित्व को मैं स्वय 2 खण्डों में पत्र के साथ श्री आडवाणी जी को दे आया हू। उनकी स्वीकृति आने पर कार्यक्रम बनाकर सभी को सूचित कर दिया जायेगा।

रामनाथ सहगल मंत्री

स्वामी वेदव्रतानन्द सरस्वती को एक श्रद्धांजलि



17–18 वर्षों पूर्व स्वामी व्रतानन्द जी से मेरी प्रथम बार आकस्मिक भेंट राँची में हुई थी। उसके बाद यदा–कदा अचानक बिना किसी तिथि के उनसे भेंट होती रही। उनका परिचय उन्हीं से पूछा पर वे टाल गए। बाद में पता चला कि वे मूलतः राँची नगर के ही है। राँची जब महानगर नहीं बना था तब शहर के मध्य चडरी ग्राम मौहल्ला में 27 जनवरी 1946 ई को उनका जन्म हुआ था। उनका जन्म का नाम सुक्खू उराँव था। राँची में इन्टर की परीक्षा पास करके राँची से 75 किलोमीटर पर स्थित लोहरदगा के एक ईसाई मिशन स्कूल में भूगोल के अध्यापक के रूप में ने 1953 तक उन्होंने अध्यापन का कार्य किया। लोहरदगा में ही आर्य समाज के सुप्रसिद्ध प रु. [illegible]या प्रसाद वैदिक मिशनरी (1888–1965 ई) द्वारा अपनी पत्नी की स्मृति में स्थापित शान्ति आ[illegible] इन दिनो पूज्य स्वामी शिवानन्द तीर्थ और स्वामी दु खदमनानन्द नाम के दो आर्य सन्यासी वहा आदिवासियों के मध्य आर्य समाज के प्रचार कार्य में लगे हुए थे। सुक्खू उराव का सम्पर्क वहा ही उक्त सन्यासी द्वय के द्वारा आर्य समाज की विचारधारा से हुआ। इससे आपके जीवन में परिवर्तन आया और आपने ईसाई मिशन के द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए एक सुन्दर ईसाई लड़की को अपनाने का प्रलोभन ठुकरा कर अध्यापक पद से त्याग पत्र देकर घर से विदा लेकर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के सकल्प के साथ वैदिक धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरूकुल अयोध्या उत्तर प्रदेश में प्रवेश ले लिया। उसके पश्चात उनमें विद्या अध्ययन को ग्रहण करने की लालसा तीव्रतर से तीव्रतम होती गई। फलतः उन्होंने वेद विद्यालय दिल्ली उपदेशक विद्यालय यमुनानगर, हरियाणा दयानन्द मठ दीनानगर गुरूकुल खेड़ाखुर्द और दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार में भी अध्ययन किया। 1969 ई में आपने गुरूकुल कागडी विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में एमए किया और 1982 ई तक विभिन्न गुरूकुलों में आचार्य वेदमित्र के नाम से अध्यापन कार्य भी किया। अप्रेल 1983 को आपने गुरूकुल झज्जर के स्वामी ओमानन्द जी से सन्यास धर्म की दीक्षा ग्रहण कर वैदिक सन्यास आश्रम गाजियाबाद में स्वाध्याय एव साधना कर आपने ब्रजघाट उत्तर प्रदेश में उपदेशक विद्यालय की स्थापना की। आर्य समाज पिलखुआ उत्तर प्रदेश आर्य समाज सलकिया हावड़ा प बगाल में भी काफी वर्षों तक रहें।

झारखण्ड राज्य के सथालपरगना क्षेत्र में साहेबगज जिले के आर्य समाजों एव सथाल आदिवासियों के मध्य में वे आर्य समाज का प्रचार स्वशक्ति से करते रहे। यदा–कदा राँची आते रहे और जब–जब मैंने उनसे राँची मे ही रहकर कार्य करने का अनुरोध किया तब–तब उन्होंने भविष्य में राँची में ही रहकर कार्य करने का वचन दिया पर वे एक जगह स्थिर होकर रहने वाले नहीं थे। यायावरी उनके पैरो मे लगी हुई थी। अत वे स्थिर न रह सके। दो वर्ष पूर्व उन पर लकवा ने आक्रमण कर दिया और वे अस्वस्थ होकर राँची आये पर वे पूर्ण स्वास्थ्य लाभ को प्राप्त न कर सके। इसकी जानकारी जब साहेबगज जिले के आर्य समाज के सदस्यों को लगी तो वे लोग उन्हें अपने यहा ले गए और अन्तत 10 सितम्बर,2002 को झारखण्ड आर्य प्रतिनिधि सभा राँची के अन्तरग सदस्य साहेबगज निवासी श्री काशीनाथ आर्य अध्यापक से फोन पर मुझे दु:खद सूचना मिली कि स्वामी वेदव्रतानन्द जी का निधन हो गया है।

वैदिक रीति से उनका अन्त्येष्टि सस्कार सम्पन्न हुआ। सस्कार के समय रिश्ते में उनके भतीजे श्री वेद प्रकाश आर्य शिक्षक राँची सपरिवार वहा उपस्थित थे। उत्तर प्रदेश हरियाणा और बंगाल में वे एक आर्य सन्यासी के रूप में यत्र–तत्र सर्वत्र उन्होंने आजीवन मनसा वाचा कर्मणा वैदिक धर्म का प्रचार और प्रसार किया पर बहुत कम लोग ही जानते थे कि वे मूलत राँची के ही रहने वाले आदिवासी परिवार से थे। आर्य समाज की नींव में अज्ञात पत्थर के रूप में अपना सर्वस्व योगदान करने वाले दिवगत स्वामी वेद व्रतानन्द जी सरस्वती को हमारा शतश नमन् हो।

लेखक– दयाराम राँची
झारखण्ड राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
राँची–834001

आर्य समाज,टोंक

जवाहर बाजार टोक राज

चकवाड़ा गांव में दलितो पर हुयी घटना की आर्य समाज कड़े शब्दों में निंदा करता है

जयपुर जिले की तहसील के चकवाडा गाव में गत शनिवार को दलितो पर हुयी घटना की आर्य समाज टोंक कडे शब्दों में निन्दा एव भर्त्सना करता है। इस घटना की उच्च स्तरीय जाच कराकर दोषियो को सविधान के तहत कडी से कडी सजा देकर दण्डित किया जाना चाहिये।

यह घटना आज के इस सभ्य समाज में व्याप्त विग्रहो और जातीय मानसिकता लेकर भड़क उठना बहुत चिन्ता का विषय है। आर्य समाज प्राचीन काल से ही इन सामाजिक पिछडापन सामाजिक कुरूतिया दलितों पर अत्याचार का घोर विरोधी रहा है तथा आज भी दलितो के प्रति शोषण सामाजिक पिछड़ापन जातीय भेदभाव को मिटाने मे दृढ़ सकल्प है तथा समाज में व्याप्त रूग्ण मानसिकता को दूर करने में विश्वास करता है।

आर्य समाज टोक राज्य सरकार से पुर जोर शब्दो में माग करता है कि भविष्य मे इस घटना की पुर्नरावृत्ति नही हो ऐसे सविधान में सशोधन कर नियमों को पारित किया जावे जिससे दलितो पर होने वाले अत्याचारो पर अकुश लग सके।

प सुखलाल आर्य, प्रधान आर्य समाज टोक
जगदीशचद्र कसेरा, मंत्री आर्य समाज टोक

स्वामी नारायण मंदिर अक्षरधाम में आतंककारियो द्वारा गोलीबारी की आर्य समाज,टोंक ने भर्त्सना की

पाकिस्तान समर्थित सशस्त्र उग्रवादियों ने गाधी नगर के प्रमुख दर्शनीय स्थल स्वामी नारायण मन्दिर अक्षरधाम मे मगलवार शाम को एम्बेसडर कार मे आकर अन्धाधुन गोलीबारी करके दर्शनार्थियों को मारा तथा कइयों को घायल किया। इस कुकृत्य की आर्य समाज कडी निन्दा व भर्त्सना करता है।

पाकिस्तान शुरू से ही भारत के साथ छदम युद्ध लड रहा है। आतककारियों को अत्याधुनिक हथियारों की सप्लाई पाकिस्तान गुजरात मे आतकवाद का बढावा देने के लिए इस्तेमाल कर रहा है। यह कार्यवाही पाक व उग्रवादियों के बीच हताश का भाव उजगार करता है। अराजक तत्वो को गुजरात मे शान्ति प्रसन्द नहीं है। मन्दिर पर हमला सिर्फ साम्प्रदायिक तनाव बढाने के लिये किया गया है।

आर्य समाज अपील करता है कि गुजरात की जनता को आपसी सद्भाव का माहोल बनाये रख कर आतककारियों की साम्प्रदायिक सद्भाव पर हमले के प्रयास विफल कर दें। आर्य समाज केन्द्र की सरकार से माग करती है कि मुटठी भर आतकवादियों को नागरिकों की सुरक्षा की दृष्टि से कुचल देना चाहिये तथा पाकिस्तान के असभ्य एव बर्बर चरित्र को विश्व के सामने उजगार कर पर्दाफाश कर देना चाहिये। आर्य समाज टोंक ने भारत बद का समर्थन दिया है।

समुद्र में अनेक नदियां आकर मिलती है परन्तु शान्त रहता है, उसमें बाढ़ नही आती

आज दिनाक 22 09 2002 रविवार का आर्य समाज कसेरा भवन पर यज्ञ वैदिक मत्रों शान्तिकरणम एव स्वस्तिवाचनम् मत्रों द्वारा प सुख लाल जी आर्य के आचार्यत्व में सम्पन्न हुआ एव साप्ताहिक सत्सग में प रामरतन जी आर्य द्वारा बताया जिस प्रकार समुद्र में अनेक नदिया आकर मिलती है परन्तु समुद्र शान्त रहता है उसमें बाढ नहीं आती।

इसी प्रकार मानव को गम्भीर और नम्र बनना चाहिये। विद्या धन वैभव उच्च पदवी मान और सम्मान मिलने पर अभिमान नहीं करना चाहिये। अपनी मर्यादाओ मे ही सीमित रहना चाहिय। जो नम्र है उसे न किसी से भय होता है और न पतन की चिन्ता। जो नम्र है उसका सर्वत्र आदर होता है और जो अभिमानी होता ह उसका सर्वत्र तिरस्कार होता है।

नम्रता मानव जीवन का भूषण होता है। नम्रता से मनुष्य के गुण सुवासित और सुशोभित हो उठते हैं।

नम्रता विद्वान की विद्वता को धनवान के धन को बलवान के बल को और सुरूप के रूप को चार चान्द लगा देती हैं। सच्चा बडप्पन और सभ्यता भी नम्रता मे ही है।

जगदीशचद्र कसेरा
मंत्री आर्य समाज टोंक

आर्य समाज मन्दिर
बी–ब्लाक जनकपुरी नई दिल्ली

वेद प्रचार समारोह सम्पन्न

आत्म कल्याण और आत्म साक्षारता के लिए वेदों की ओर लौटना आवश्यक

नई दिल्ली। आत्म कल्याण और आत्म साक्षात्कार के लिए वेदो की ओर लौटना तथा योग की शरण मे जाना आवश्यक है यह बात उत्तराचल से पधारे आचार्य डॉक्टर विनय विद्यालकार ने आर्य समाज बी–ब्लाक जनकपुरी के वेद प्रचार समारोह के दौरान कही। पाच दिवसीय इस श्रावणी पर्व वेद कथा मे उन्होने कर्म के विभिन्न भागो का वर्णन करते हुए यज्ञ दान आदि श्रेष्ठ कर्मों के करने पर बल दिया। समारोह के अतिम दिन श्री कृष्ण जन्माष्टी के अवसर पर भगवान श्री कष्ण के योगेश्वर रूप को मुख्य रूप से उजागर किया गया कार्यक्रम के मुख्य अतिथि आचार्य धर्मपाल प्रधान आर्य केन्द्रीय प्रतिनिधि सभाने श्रावणी पर्व के महत्त्व को रेखाकित करते हुए यह बताया कि यज्ञोपवीत के तीन तार तीन ऋणों वेद ऋण पितृ ऋण एव गुरू ऋण का स्मरण दिलाते है। आचार्य ध र्मपाल जी ने डॅा सुन्दर लाल कथूरिया द्वारा सम्पादित मनुष्य बन (मनुर्भव) शीर्षक लघु पुस्तिका (ट्रैक्ट) को भी लोकार्पित किया जिसे उपस्थित जन समुदाय मे नि शुल्क वितरित किया गया। इस लघु पुस्तक के प्रकाशन में डॅा उदयभान बजाज की भूमिका उल्लेखनीय है। समारोह की अध यक्षता करते हुए आर्य समाज के प्रधान डॅा सुन्दरलाल कथूरिया ने श्री कृष्ण के चरित्र के सम्बन्ध मे प्रचलित भ्रामक धारणाओ का निराकरण कर उनके जीवन के उज्जवल पक्ष को समझाने तथा अपनाने पर बल दिया। गीता के आत्मज्ञान एव निष्काम कर्मयोग पर उन्होने उपनिषदो के प्रभाव की चर्चा करते हुए इसे भी जन सामान्य के लिए उपयोगी बतलाया।

दिल्ली नगर निगम की सदस्या डॅा मीना ठाकुर भी समारोह में उपस्थित थी। डा सारस्वत मोहन मनीषी जी की कविता आज बासुरी नहीं सुदर्शन चक्र जरूरी है ने समा बाध दिया। श्री कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर यह कविता श्रोताओं को विशेष प्रासगिक लगी। कार्यक्रम का सचालन आर्य समाज क मत्री श्री जगदीश गुलाटी ने किया। समारोह को सफल बनाने में जिन सभासदों का विशेष योगदान था उनके प्रति आभार प्रकट किया गया तथा शाति पाठ के साथ समारोह सम्पन्न हुआ। इस आयोजन मे आकाशवाणी दिल्ली से विशेष रूप से पधारे डा हरिसिह पाल ने कहा कि कृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ और स्वामी दयानन्द सरस्वती के ज्ञान चक्षु खोलने वाले स्वामी विरजानन्द सरस्वती भी मथुरा में थे।

इन दिनो सम्पन्न हुए ऋग्वेद ब्रह्म पारायण यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य श्री हरि प्रताद आर्य थे। भजनोपदेशक श्री कचन कुमार के सुमधुर गीतों ने श्रोताओं को आत्म चिन्तन की प्रेरणा दी। कार्यक्रम मे श्रीमती राज मोहन श्रीमती विमला मलिक श्री विनय आर्य व श्री राजवीर शास्त्री श्री जगमाल आर्य आदि के भजनो ने भी श्रोताओ का मनमोह लिया।

उक्त आयोजन मे स्त्री समाज की ओर से जहा वेद प्रचार का सफल आयोजन किया गया वहा आर्य वीर दल ने भी एक रात्रि मे अपना आयोजन रखा। इस आयोजन में आर्य वीरो ने उत्साहपूर्वक भाग लिया तथा इसमे अनेक बालको एव आर्य वीरों को उपस्थित श्रोताओ ने पुरस्कार राशि देकर सम्मानित किया। आर्य वीर दल के इस सम्मेलन को श्री विनय आर्य ने कुशलता पूर्वक सचालित किया।

योगेश्वर चन्द्रार्य प्रचार
आर्य समाज मदिर बी ब्लाक नई दिल्ली 58

योग का वास्तविक स्वरूप

नई दिल्ली। आर्य समाज में प्रवचन करते हुए वैदिक विद्वान श्री ब्रजेश गौतम विद्यालकार ने कहा कि योग में वैराग्य और अभ्यास का विशेष महत्व है। योग के नाम पर आज अनेक प्रकार की भ्रतिया प्रचलित हैं जिनका निराकरण आवश्यक है। महर्षि पतजलि के अनुसार योग चित्त की वृत्तियों का नियत्रण है। अपनी वृत्तियो का अन्तर्मुखी बनाकर ही हम परमात्मा तक पहुच सकते हैं। बाहरी आकर्षणो से बचकर मन को वश में कर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही हम अपने को जान और पहचान सकते हैं। श्मशान वैराग्य के द्वारा योग का अकुर फूट तो सकता है पर वह स्थायी तभी होगा जब हम उसे पुष्पित और पल्लवित करेगे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने योग के नाम पर शारीरिक सिद्धि के प्रदर्शन को बाजीगरी माना है। प्रदर्शन और आडम्बर में उनका विश्वास नहीं था।

अन्ध भक्ति और पाश्चात्य सभ्यता के इस दौर मे योग का वास्तविक स्वरूप भी विलुप्त हो गया है। अग्रेजी लोग इसे बडे गर्व के साथ योगा कह रहे हैं पर योगा मे केवल आसनो पर बल है जबकि आसन योग के आठ अगो मे से केवल एक है और वह समाधि से बहुत पहले का अग है। आज के इस व्यावसायिक युग मे योगा का भी व्यावसायीकरण हो गया है। योग के वास्तविक स्वरूप को तो महर्षि पतजलि के सूत्रो से ही जाना जा सकता है। श्री कष्णलाल कुमार श्री विनय आर्य आदि ने अपनी जिज्ञासाए रखी जिनके समाधान का प्रयत्न विद्वान वक्ता ने किया। आर्य समाज के प्रधान प्रो सुन्दर लाल कथूरिया ने वक्ता के प्रति आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का सचालन समाज के मत्री श्री जगदीश गुलाटी ने किया।

जगदीश गुलाटी मत्री

राष्ट्र भाषा से जुड़ी है राष्ट्रीय अस्मिता

नई दिल्ली। हिन्दी सप्ताह के अन्तर्गत आर्य समाज द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में व्याख्यान करते हुए श्री कैलाशचन्द्र ने कहा कि राष्ट्र भाषा से राष्ट्रीय अस्मिता का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। भाषा और सस्कृति का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। भारतीय सस्कृति का मूल स्रोत सस्कृत एव वैदिक साहित्य है किन्तु आज इस दायित्व का निर्वाह राष्ट्र भाषा हिन्दी को करना है क्योकि वह सस्कृत की पुत्री है। अनेक देशों के उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्र भाषा के समुचित प्रयोग के बिना न तो राष्ट्र की पहचान बनती है न उसके गौरव की रक्षा ही होती है।

प्रधान पद से बोलते हुए डॅा सुन्दर लाल कथूरिया ने हिन्दी की सवैधानिक स्थिति को स्पष्ट किया और इस बात पर चिन्ता व्यक्त की कि यद्यपि रस्मी तौर पर प्रति वर्ष हिन्दी दिवस मनाया जाता है तथापि स्वाधीनता प्राप्ति के इतने वर्षो के बाद भी हिन्दी राजकाज की भाषा नहीं बन सकी है। हालाकि सविध ान के अनुच्छेद 143 मे इसका स्पष्ट निर्देश है। हिन्दी को जब तक सरकारी दफ्तरों और न्यायालयों की भाषा नहीं बनाया जाएगा और उसे समुचित रूप से रोजी रोटी से नहीं जोडा जाएगा तब तक इस देशर के राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा सम्भव नहीं।

मुख्य वक्ता के व्याख्यान पर श्रीमती विमला मलिक श्री कष्ण देव आदि ने कुछ जिज्ञासाए रखीं जिनका समाधान करने की चेष्टा वक्ता ने की। कार्यक्रम का सफल सचालन श्री जगदीश चन्द गुलाटी ने किया।

योगेश्वर चन्द्रार्य प्रचार
आर्य समाज मदिर बी–ब्लाक
नई दिल्ली–58

सत्कर्म के बिना सद्गति असम्भव

नई दिल्ली। आर्य समाज में प्रवचन करते हुए वैदिक प्रवक्ता आचार्य श्री गणेश प्रसाद विद्यालकार ने बताया कि मनुष्य जन्म परमात्मा का दिया वरदान ही नहीं अपितु सर्वोत्तम पुरस्कार है। पुरस्कृत व्यक्ति की नैतिक जिम्मेदारी है कि वह अपने पुरस्कार की गरिमा को अक्षुण रखे। इसी क्रम में उन्होंने सुकर्म पर बल देते हुए सुकर्मा बनने का सन्देश दिया। आचार्य श्री ने यह भी समझाया कि अपराध और प्रज्ञापराध किसे कहते हैं। किसे अधिक दण्ड भोगना पडता है। अपराध हुआ समझने के पश्चात न किए जाने का सकल्प लेना उत्तम है परन्तु प्रकृष्ट रूप से ज्ञानवान होने के पश्चात भी किया गया अपराध ा प्रज्ञापराध की कोटि मे आ जाता है। अतएव सावधान! प्रज्ञापराधी न बने। सत्य और असत्य के प्रसग मे उन्होंने बताया कि सत्यवक्ता मानसिक रूप से स्वतत्र है किन्तु असत्य वक्ता मानसिक रूप से परतन्त्र रहता है। असत्य वक्ता को अपने द्वारा बोले गए असत्य को निरन्तर ध्यान में रखना पड़ता है कि उसने कब तथा किससे किस प्रकार का असत्य भाषण किया है जबकि सत्य वक्ता को ऐसा कुछ नहीं करना पडता।

जीव का निचोड (सत्य) बताए बिना कैसी परिसमाप्ति अतएव उन्होने अत्यन्त मार्मिक एव हृदयग्राही पक्तिया कुछ इस प्रकार कही– ओ३म गुणगान करो जीवन महान करो प्रभु के भजन में ही लगन लगी रहे। सत्य ही आचार करो सत्य ही विचार करो सत्य ही व्यवहार करो यही मानव धर्म है।

आर्य समाज
गाव व पत्रालय फतेहपुर,यमुनानगर–1

आर्य समाज फतेहपुर मे युवको को ब्रह्चर्य सन्देश

गत दिनो आर्य समाज फतेहपुर में दस विद्यालयो के दसवीं के तथा गाव फतेहपुर में दसवीं से स्नातकोत्तर तक के विद्यार्थियों में ब्रह्चर्य नामक पुस्तक में से लिखित प्रतियोगिता करवाई गई जिसका समापन 04 09.2002 को हुआ। समारोह में आचार्य देवव्रत जी गुरूकुल कुरुक्षेत्र ने उपस्थित श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि हर व्यक्ति का कर्त्तव्य बनता है कि वे अपने ही नही अपितु अपने आस पास के नवयुवकों को ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए प्रेरित करता रहें।

आचार्य जी ने (जैसा खाओ अन्न वैसा होगा मन) उद्बोधन में नवयुवकों को कहा कि ब्रह्चर्य पालना की शुरूआत सात्विक अहार से होती है। हमे हर परिस्थिति में सात्विक आहार ही करना चाहिए। आचार्य जी ने कहा ईश्वरीय रचना के मनुष्य मासाहारी है ही नही प्रमाणिक रूप से बताया कि मासाहारी जीव जब पैदा होता है तो उनकी आखे बद होती है। शाकाहारी प्राणियों की पैदा होती ही आखे खुल जाती है। मासाहारी जीव के दात ईश्वर ने नुकीले बनाये हैं। शकाहारी के दात चपटे बनाये हैं। शाकाहारी दयालु होत हैं मासाहारी निर्दयी होते हैं। प्रशसा में कहा देखो–गाय अगर दो दिन की भूखी भी है तब भी पास बधे बच्चे को चाटती रहती है। परन्तु मासाहारी भूखा रहने पर अपने बच्चे को ही खा जाता है।

उपस्थित श्रोताओं जिनमें दस विद्यालयों के सन्त शीतल गिरि तथा दयानन्द विद्या मदिरों के नवयुवकों ने हाथ खड़ाकर शाकाहारी से ब्रह्मचर्य पालन पर सहमति दी। तत्पश्चात गाव के भूतपूर्व सरपच श्री नरेश कम्बोज ने प्रथम रहे प्रतियोगी कुलदीप सिंह को 500रु द्वितीय रोहित कुमार को 300रु तृतीय नवीन कुमार को 200रु तथा हर प्रतियोगी को सात्वना पुरस्कार प्रदान की।

प्रीतमलाल आर्य मत्री

आर्य समाज,जवाहर बाजार, कसेरा भवन,टोंक

मनुष्य को अपने शत्रुओं से भी प्यार से बात करना चाहिए

आज दिनाक 15 09 2002 को आर्य समाज कसेरा भवन टोंक पर साप्ताहिक यज्ञ वैदिक मत्रों द्वारा प. सुख लाल आर्य द्वारा सम्पन्न कराया गया। सत्सग के दौरान श्री राम रतन जी आर्य द्वारा अपने प्रवचन में बताया कि मित्र स्याह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । यजुर्वेद के मत्र के आधार पर सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखना चाहिये। मनुष्य को अपने शत्रुओं से भी प्यार करना चाहिये जो आपसे घृणा करते हैं उनके साथ श्रेष्ठताका बर्ताव करो।

प्राणिमात्र से प्रेम की भावना घर से आरम्भ होती है पहले अपने माता–पिता के साथ प्रेम का व्यवहार करो। अपने भाई–बहन बन्धु–बान्धव पड़ौसी समाज देश और राष्ट्र से प्रेम करो फिर अपने प्रेम की परिधि को बढ़ाते हुए ससार के प्राणिमात्र से प्रेम करो। यही है वास्तविक प्रेम मनुष्य का महान धर्म। प्रेम करो और प्रेममय हो जाओ। सत्सग के अन्त में श्री केदार नारायण विजय द्वारा वैदिक भजन प्रस्तुत कर शातिपाठ के साथ कार्यक्रम का समापन किया गया।

जगदीश चद कसेरा मत्री

स्वामी अग्निवेश के नेतृत्व में भारत निर्माण महाअभियान
सुश्री आचार्या सूर्यादेवी की प्रतिक्रिया

आज सम्पूर्ण विश्व में इस्लामी आतंकवाद की टोली (खूनी कार्यवाही की) हमारें मानवीयता के साथ जो खिलवाड़ कर रही हैं यह किसी से छिपी नहीं है। स्थिति यह है कि विश्वव्यापी इस्लाम आतकवाद इस्लाम मत का पर्याय बन चुका है। आतकवाद की इस समस्या से निबटने के लिए देश के सजग पहरी श्री के आर नारायणन भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वामी अग्निवेश जी आर्य समाज के मूर्धन्य सन्यासी श्री शकराचार्य स्वामी माधवाश्रम जी महाराज आदि बुद्धिजीवी महानुभावो ने 'मिल के चलो' अभियान 27 सितम्बर से 2 अक्टूबर तक अयोध्या से राजघाट तक चलाने का सकल्प किया वह उत्तम है।

यह रैली अभियान अयोध्या से प्रारम्भ होकर फैजाबाद, लखनऊ सीतापुर शाहजहापुर फरीदपुर होता हुआ 29 सितम्बर को बरेली भी पहुचा। इस रेली में सभी मतावलम्बी यानी ईसाई इस्लाम बौद्ध पौराणिक सिक्ख एव आर्य समाज आदि सगठनों के राष्ट्रचिन्तकों ने भाग लिया। ऐसी रैलिया राष्ट्र के नागरिकों को जहा सजग जागरूक देशभक्त बनने के लिए प्रेरित करती हैं वहीं परस्पर के राग द्वेष हिंसा के भाव मिटाने में सहायक बनती हैं जो राष्ट्र के हित में सर्वथा उचित है। पर थोड़ा रैली के नेतृगणों को एवं सम्बोधनकर्ताओं को विचारना होगा कि हमार चिन्तन हमारा सन्देश कैसा हो? वर्तमान समय में देश की विषम परिस्थितियों को देखते हुए सरकार या पार्टियो को कोसने या गिराने से काम नहीं चलेगा या रैली में कदम से कदम मिला करके एक साथ बढ़ने से आतकवाद दूर नहीं होगा अपितु रैली में विचार तो 'मनुर्भव' का करना है यानी सबको मनुष्य बनना है और बनाना है। मनुष्यपन का भाव जगाना है। मनुष्य वह होता है जो मत्वा कर्माणि सीव्यति' अर्थात जो मनन पूर्वक कार्य करता है वह मनुष्य कहाता है। कर्म करने से पूर्व देश के सभी नेता व नागरिक भली प्रकार विचार करे कि मेरे इस कर्म से फल क्या होगा? इसका क्या–क्या प्रभाव होगा? यानी विश्व के सभी प्राणियो के प्रति रक्षा का भाव रखना एव हिंसा अत्याचार के भाव हटाना ही मनुष्य बनना है। अतः प्रत्येक नेता के लिए बहुत आवश्यक है कि एक नेता दूसरे नेता की टाग न घसीटें थोड़ा कहने से पहले सोचें कि क्या राम मदिर बनने न बनने का किसी भी पार्टी पर आरोप लगाकर आतकवाद को दूर किया जा सकता है? अथवा क्या अन्य मिसाइल परीक्षण जैसी राष्ट्रहित की अन्दरूनी बातो को छलालकर आतकवाद हटाया जा सकता है? यदि गहराई से सोचेंगे तो ज्ञात होगा कि 'हमारे ये आरोप हम बिखरे हुए हैं इसके परिचायक हैं' और जब ये परिचय तीसरे को ज्ञात होते हैं तब तीसरा अवश्य फायदा उठाता है। फायदा उठाने का साधन आतकवाद व्यापारवाद या सेवावाद कुछ भी हो सकता है। क्या जितने भी ईसाई मुसलमान आदि मत मतान्तर हैं वे नही जानते या विभिन्न पार्टियो वाले हिन्दू कहे जाने वाले भारतीय नहीं जानते? कि यह भारतभूमि राम और कृष्ण की भूमि है। अत भारतभूमि मे राम और कृष्ण के प्रेरक स्थान होने पहले आवश्यक है क्या 'सोमनाथ मदिर' जो मुस्लिम मतावलम्बियो ने तोड़ फोड कर इस्लाम का रग चढा दिया था उसे पुन' जब स्वतन्त्र भारत में 'लौह पुरूष सरदार वल्लभभाई पटेल' ने उसका भारतीयकरण किया तब क्यों नहीं इस्लामी आतवाद ने घेरा था? स्पष्ट है आज आतकवाद की जो भी परिस्थिति है वह मात्र कुर्सी की लालच ही है पार्टियों की खींचातानी है अत नेताओं को अपने सम्बोधन अपने भाषण 'मनुर्भव' के हों जनहित के हों काग्रेस भाजपा मुस्लिमलीग सपा आदि पार्टियो के निमित्तक न हों। 29 09 2002 को बरेली की रैली में जहा मैं भी उपस्थि थी (मैं आर्य समाज बिहारीपुर बरेली के 23–29 तक होने वाले वेद प्रचार सप्ताह में प्रवचनार्थ सम्मिलित थी) वहा वरिष्ठ नेता सदीप पाण्डेय ने जनसमुदाय को जो सन्देश दिया उससे स्पष्ट जाहिर था कि उनका सन्देश 'सब एक हो' की अपेक्षा जनसमुदाय काग्रस पार्टी का समथक हो इसका घोतक था। जो आतकवाद से जूझने के स्थान पर बिलगाव वाद का सन्देश था। हमे स्मरण रहे कि जितनी प्रत्येक पार्टी के लिए सुरक्षा दस्ता की आवश्यकता है उतनी ही राष्ट्रवासियों की सुरक्षा के लिए मिसाइल आदि शास्त्रो का होना आवश्यक है। यह आरोप का विषय नहीं है। क्या पार्टी बदलने से आतवाद हट जायेगा? कभी नहीं। आतवाद से निबटने का मनुष्य बनना ही उत्तम तरीका है। ईसाई बौद्ध मुसलमान या किसी दूसरे सम्प्रदाय के समर्थक बनने से नहीं। क्योंकि ईसाई बनने से केवल ईसाइयों का हमदर्द बनेगा मुसलमान बनने से मोमिनों का बौद्ध बनने से बौद्धों का, मनुष्य बनने से वसुधा भर के छोटे–बडे सभी लोगो का हितैषी बनेगा।

मनुष्य का ही पर्यायवाची आर्य है। अर्य ईश्वर को कहते हैं और आर्य ईश्वर के पुत्रो को जो हिसा राग द्वेष से रहित हैं उन्हें कहा जाता है अर्थात सम्पूर्ण विश्व ही आर्य है। तात्पर्य हुआ सम्पूर्ण विश्व के लोग आर्य बनेगे मनुष्य बनेगे तभी आतकवाद से निबटा जा सकता है। इसे रैली के लोगों को अथवा अन्यत्र कार्य करने वाले नेताओ को भली भाति समझना होगा।

आर्य नेताओ को थोडा यह भी विचार करना होगा कि रैली के पोस्टर ओ३म ध्वज के सिम्बल से तथा दयानन्द और श्रद्धानन्द के नाम व चित्रों से अछूते न रहें जिससे कि हम सही दिशा पर चलते रहे भटके नहीं अन्यथा 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का' यह स्थिति बन जायेगी। 'मिल के चलो' अभियान के पोस्टर मे बने नक्शे मे मुसलमान ईसाई सिक्ख काग्रेस हिन्दू इन सबके प्रतीक थे और आर्य समाज की गन्ध तक न थी। आर्य नेता अपनी कार्य प्रणाली को सोचें। हा दैव!!!

नैकेनापि सम गता वसुमती आतकिमि यास्यति।।

सुश्री आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी–10

|| ओ३म ||

पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी
"पाणिनि मन्दिरम्"
निर्माण के लिये मुक्त हस्त से दान दे

"सस्था ने पाणिनि मन्दिरम् के निर्माण के लिये 6 लाख रुपये में भू भाग खरीदा है।

द्वारा पाणिनि मन्दिरम् में अष्टाध्यायी के 4000 सूक्त सगमरमर की दीवारों पर अकित होंगे

6 दिसम्बर 2002 को स्व डॉ प्रज्ञा देवी जी की 7वीं पुण्यतिथि

आगामी 6, 7 व 8 दिसम्बर, 2002 (शुक्र शनि रवि मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीय तृतीय व चतुर्थी को)

वार्षिकोत्सव

आप सब सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

इस वर्ष सम्पूर्ण महाभाष्य निरुक्तादि पढ़कर तीन कन्याओं का दीक्षान्त कार्यक्रम।

तीन बड़े प्रकोष्ठों का वार्षिकोत्सव के समय उदघाटन

अपना सात्विक उदार सहयोग 'पाणिनि कन्या महाविद्यालय' इस नाम से ड्राफ्ट/ चेक द्वारा आप भेज सकते हैं। सस्था आयकर से मुक्त है।

मेघा देवी प्राचार्या
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
वाराणसी–221 010 उ प्र

- चुनाव सम्पन्न -

आर्य समाज, केकड़ी सापण्डा रोड, जि अजमेर

आर्य समाज भवन में नारायणदास लड्ढा मत्री आर्य समाज सरवाड़ की देखरेख में चुनाव सर्व सम्मति से सम्पन्न हुए–

श्री देवकी वल्लभ द्विवेदी–सरक्षक
श्री रतनलाल डसाणिया –प्रधान
श्री खेमराज पवार – उपप्रधान
श्री चिरजीलाल सोनी – मत्री
श्री भागचन्द छावड़ा – मत्री
श्री छोटूलाल कुमावत–उपमत्री
श्री राजेश चौधरी – उपमत्री
श्री बलभद्रसिह पवार –कोषाध्यक्ष
श्री मूलचद महावर – सगठनमत्री
श्री रामेश्वर उपाध्याय– प्रचार मत्री
श्री बुद्धिप्रकाश दाधीच–पर्व मत्री
श्री कपूरचद सोनी– हवन व्यवस्थापक
श्री विष्णुप्रकाश जी–हवन व्यवस्थापक
श्री सत्यनारायणजी–आ वीर द अधि
श्री हेमन्त जैन व श्री शैलेन्द्र राठौड (विधिक सलाहकार)
श्री गोपाल यादव श्री हसराज मेघवशी किशोरीलाल यादव श्री धनीराम यादव श्री प्रहलाद बैरवा श्री कैलाशचद श्री कमलेश अहीर आदि कार्यकारिणी सदस्य निर्वाचित रहे।

मत्री

आर्य समाज, टोंक जवाहर बाजार, टोंक

आर्य समाज कसेरा भवन जवाहर बाजार टोंक के त्रिवार्षिक चुनाव निम्न प्रकार सर्व सम्मति से सम्पन्न हुए–

श्री धर्मपाल गोगिया– सरक्षक
श्री सुख लालआर्य – प्रधान
श्री केदार नारायणविजय– उपप्रधान
श्री जगदीश चन्द्र कसेरा– मत्री
श्री राम रतन आर्य – कोषाध्यक्ष
श्री सीताराम शर्मा – प्रचार मत्री
श्री नवल चन्द्र महावर–पुस्त अध्यक्ष
श्री बृजबिहारी शर्मा– सलाहकार
श्री पुरषोत्तम अग्रवाल सदस्य
श्री माधोदास बालानी–सदस्य
श्रीमती नन्दनी देवी सोनी–सदस्य

मत्री
जगदीश कसेरा
आर्य समाज टोक

आर्य समाज, पानीपत बड़ा बाजार, पानीपत–3

आर्य समाज, बड़ा बाजार,पानीपत का वार्षिक चुनाव सर्व सम्मति से सम्पन्न हुए–

श्री मेघराज जी – सरक्षक
श्री वीरेन्द्र सिगला– सरक्षक
श्री कुलभूषण आर्य – प्रधान
श्री सुलेखचन्द्र गुप्ता– उपप्रधान
श्री सुशील गर्ग – उपप्रधान
श्री नवनीत शिगला– मत्री
श्री विश्रुत आर्य – उपमत्री
श्री लक्ष्मीचन्द्र जी – कोषाध्यक्ष
श्री आदित्यप्रकाशजी – प्रचार मत्री

– सदस्यगण –

श्री रामशरणपाल –पुस्तकाध्यक्ष
श्री द्विजेन्द्र गुप्ता श्री गुरबचनसिह
श्री सुधीर मित्तल श्री ज्ञानप्रकाश
श्री जगतसिह श्री विनोद कुमार
श्री सुशील शिगला श्री रजनीश गुप्ता
श्री रणवीरसिह श्री राकेश सिगला

मत्री
आर्य समाज बडा बाजार पानीपत

वैदिक भक्ति साधन आश्रम आर्य नगर,रोहतक–124001 हरि0 का

स्वर्ण जयन्ती महोत्सव 7 नवम्बर से 16 नवम्बर,2002

आश्रम स्थापना के 51वें वर्ष में 51 कुण्डीय महायज्ञ सोल्लास सम्पन्न होगा। जिसमें स्वामी दीक्षानन्द जी स्वामी दिव्यानन्द जी स्वामी सत्यम जी आचार्य हरिदेव जी स्वामी धर्ममुनि जी दुग्धाहारी स्वामी जीवनानन्दजी आचार्य सत्यव्रत जी आचार्य जैमिनि शास्त्री आचार्य अखिलेश्वर, आचार्य नरेन्द्र मैत्रेय आचार्य रामदत्त डॉ सुरेन्द्र कुमारजी डॉ महेश विद्यालकार, डॉ देव शर्मा आर्य तपस्वी सुखदेव जी प खुशीराम जी आदि के आध्यात्मिक प्रवचन तथा रेडियों एव दूरदर्शन कलाकार गायक श्री राजेन्द्र काचरू एव श्री सुचित नारग के मनोहर भजन होंगे।

1 ऋग्वेद आशिक 2 योग साधना
3 विशाल शोभायात्रा 4 51 कुण्डीय महायज्ञ
5 महात्मा प्रभु आश्रित स्मारक उदघाटन
6 भजन सध्या 7 पूर्णाहुति तथा आशीर्वाद

विशेष ज्ञातव्य– 1 आवास तथा भोजन की निःशुल्क व्यवस्था होगी। 2. ऋतु अनुकूल बिस्तर साथ लाए। 3 17 से 19 51 कुण्डीय यज्ञ के यजमान बनने के इच्छुक जन अपना नाम पहले आरक्षित करा लेवें।

सभी धर्म प्रेमी समारोह में सम्मिलित होने के लिए सादर आमन्त्रित हैं।

– निवेदक –

महात्मा व्यास देव(अधिष्ठाता) दर्शन कुमार अग्निहोत्री (प्रधान) वेद प्रकाश आर्य (मत्री)

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग दें

1 देश–विदेश की आर्य समाजो मे घटित घटनाओ से आर्य जगत को अद्युनातन जानकारी देना।

2 आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।

3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोडना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओ पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।

4 आर्य समाज द्वारा धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र मे किये जा रहे कार्यों की जानकारी देना।

5 समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओ का आर्य जगत को परिचय देना।

6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एव युवको का सगठन खडा करना।

7 आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाओ के माध्यम से देश मे सशक्त छात्र शक्ति खडी करना।

8 विश्व के आर्य परिवारो का सगठन बनाना।

9 देश के 100 विद्वानो की परिषद बनाना।

10 विश्व की समस्त भाषाओ मे वेद सन्देश प्रकाशित कर वैदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।

11 विश्वशाति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरुद्ध मुहिम छेडना तथा देश में राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्रान्ति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीवाद दे कि परमपिता परमेश्वर हमे इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामर्थ्य दे।

तन मन धन से सहयोग दे पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने क कष्ट करे।

कैप्टन देवरत्न को सभा भग करने का कोई अधिकार नहीं

आर्य समाज में विघटन के सरदार कैप्टन आर्य सज्जन अपनी निष्क्रियता तोडें

आर्य प्रतिनिधि सभा आध्र प्रदेश ने कहा कि कैप्टन देवरत्न को सभा भग करने का कोई अधिकार नहीं है। सभा ने साथ ही कहा कि अनियमितताओ व धोखाधडी में फसे कैप्टन देवरत्न सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान नहीं है। सभा मत्री विटठलराव आर्य ने एक प्रेस विज्ञप्ति मे कहा कि दिल्ली मे पिछले नवम्बर मे चुनाव के समय कै देवरत्न द्वारा बरती गई अनियमितताओ और न्यायालय के आदेश को धिक्कार ने की वजह से एव आध्र प्रदेश सहित कई आमत्रित प्रतिनिधियो को चुनाव मे शामिल होने की नही देने तथा बोगस सूची के आधार पर अधिवेशन के आरम्भ होते ही ... 10 मिनट में चुनाव सम्पन्न की घोषणा करने की वजह से राष्ट्रीय स्तर पर आर्य समाज मे विवाद हुआ। परिणाम स्वरूप 2–2 सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाओ का गठन हुआ जिसका विवाद अभी भी न्यायालयों मे चल रहा है। अत कै देवरत्न को आर्य प्रतिनिधि सभा आध्र प्रदेश को भग करने का कोई अधिकार नहीं है। विज्ञप्ति मे कहा गया है कि जिनकी खुद की मान्यता ही न हो तो उनका यह कार्य घिनौनी हरकत के सिवाय और कुछ नही। सार्वदेशिक सभा के पूर्व प्रधान स्वामी ओमानन्द सरस्वती को इन महानुभावो ने सडक पर बैठाने का घिनौना कार्य किया है। आर्य प्रतिनिधि सभा आध्रप्रदेश ने प्रजातात्रिक तरीके से विधिवत गत 14 अप्रेल को डॅा राधाकृष्ण वर्मा के चुनाव अधिकारी की देख रेख में चुनाव सम्पन्न कराया। डॅा टी वी नारायण प्रधान पद के लिये तथा विटठलराव आर्य मत्री के रूप में निर्वाचित हुए हैं।

सभा ने अपनी साधारण सभा मे निर्णय लिया है कि सार्वदेशिक सभा के विवाद समाप्त होने तक यह निष्पक्ष रूप से कार्य करती रहेगी। श्री विटठलराव आर्य ने कहा कि वे राष्ट्रीय स्तर पर आर्य समाज में एकता के पक्षधर हैं। उन्होने प्रान्त के आर्य समाजों एव आर्य बन्धुओ से निवेदन किया है कि वे किसी भी व्यक्ति द्वारा चाहे वह कितना भी बडा हो कि जा रहे भ्रामक प्रचार के झासे मे न आए। उन्होंने कहा कि आर्य प्रतिनिधि सभा आन्ध्र प्रदेश यथाविध काम कर रही है। अत सभी लोग सगठन को मजबूत बनाने के लिये कार्य करे। तथाकथित गठित तदर्थ समिति मात्र भानमति का कुनबा है जिसका कोई भी अस्तित्व नहीं है।

विज्ञप्ति में बताया गया है कि आर्य प्रतिनिधि सभा आ... देशभर का दौ... व ... ताम ... को जागृत करें ... सगठन को मजबूत निष्पक्ष रूप से प्रयास करेंगे। विटठलराव आर्य ने कहा कि नियमानुसार और धर्मानुसार जो भी व्यक्ति एव समाज कार्य करेगा उन सभी को साथ लेकर कार्य किया जाएगा। उन्होंने आर्य बन्धुओ से अपील की कि आर्य सभा की गरिमा की रक्षा के लिये राष्ट्रीय स्तर पर आर्य समाज मे एकता के पक्ष में अपने स्वर को मुखर करें।

...ने के लिए सादर आमंत्रित हैं।
निवेदक –
कुमार अग्निहोत्री (प्रधान) वेद प्रकाश आर्य (मत्री)

प्रिय अशोक जी

आर्य नीति के दर्पण में आपके नेतृत्व मे राजस्थान की छवि को प्रतिबिम्बित करने का प्रयास किया जाता है ताकि राजस्थान सरकार की उज्ज्वल छवि को कुरूप बनाने वाली कालिमा को मिटाया जा सके और आपकी सरकार जनहित में कार्य करते हुए सवदेनशील और पारदर्शी बनी रहे।

मित्रहीन व्यक्ति सबसे अभागा व्यक्ति होता है। कोई भी व्यक्ति भाई–बहन माता–पिता एव परिजन विहीन हो सकता है परन्तु शायद ही कोई व्यक्ति मित्रहीन हो परन्तु सच्चा मित्र भी सौभाग्य से ही मिलता है। इसीलिए वेद में ईश्वर से मित्र से अभय की कामना की गई है। शत्रु से तो हम सर्तक रहते हैं परन्तु मित्र से नहीं। इस मन स्थिति का मित्र लाभ उठाता है और पीठ में छुरा भोक देता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने ऐसे ही मित्रो के बारे मे लिखा है– सेवक सठ नृप कृपन कुनारी कपटी मित्र सूल सम चारी। ये चार लोग सूल के समान होते हैं– दुष्ट सेवक कजूस राजा चरित्रहीन नारी और कपटी मित्र।

आपके एक मित्र श्री डॉ पी सी व्यास आपकी कृपा से माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर के अध्यक्ष बनें। शिक्षा विभाग किसी भी प्रान्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभाग होता है और प्रान्त की आम जनता अपने बच्चों की शिक्षा के लिये प्रान्त की शिक्षा पद्धति एव प्रणाली पर आशा भरी नजरो से देखती है। आपके मुख्यमत्री बनने पर राजस्थान की जनता को आशा थी कि राजस्थान मे शिक्षा के प्रचार प्रसार पर आप सर्वाधिक बल देगे। आपने शिक्षा सबके द्वार और पैरा टीचर्स आदि की व्यवस्था करके राजस्थान मे शिक्षा के प्रचार–प्रसार का प्रशसनीय प्रयास किया है परन्तु आपके मित्र श्री व्यास किस प्रकार आपकी सरकार की छवि को धूमिल कर रहे हैं उससे मैं आपको अवगत कराना चाहता हू। शिक्षा विभाग का कोई भी जन विरोधी कार्य प्रान्त की सारी जनता को उद्वेलित कर देता है और विद्यालयो के सचालक एव उनमें कार्य करने वाले अध्यापक–अध्यापिकाए लाखों छात्रो के माध्यम से सरकार की छवि को बिगाड देते हैं। गत वर्ष 50 हजार रुपया बालिका शिक्षा फाउडेशन में स्थाई निधि के रूप मे जमा कराके शिक्षा विभाग ने हजारों सस्थाओं को क्रमोन्नत किया था परन्तु आज तक भी इन सस्थाओं को बोर्ड से मान्यता नहीं मिली है। हमें ज्ञात हुआ है कि जो सस्था बोर्ड के कार्यालय में जाकर रिश्वत देती है उसी सस्था की मान्यता जारी की जाती है। हम यह नहीं कहते कि यह रिश्वत श्री व्यास लेते हैं परन्तु आम जनता को यह सदेह तो है ही कि जब यह तथ्य व्यास जी के सामने लाया गया तब उन्होंने तत्काल कदम क्यों नहीं उठाया? सस्थाओं के सचालकों ने अनेक बार व्यास जी को अपनी कठिनाई से अवगत कराया परन्तु इसके बावजूद भी आज तक मान्यता जारी नहीं हुई। राजस्थान के इतिहास में पहली बार बोर्ड द्वारा ऐसा सवेदनहीन रवैया अपनाया गया है। राजस्थान शिक्षा की दृष्टि से भारत वर्ष में सबसे पिछडा हुआ प्रान्त है। राजस्थान सरकार घोर आर्थिक सकट में है और सरकार विद्यालय खोलने की स्थिति में नहीं है। इन परिस्थितियों मे जब समाज सरकार से एक पैसे की मदद लिये बिना करोडों रुपये व्यय करके सस्थाओं की स्थापना करता ... सरकार सस्थाओं को प्रोत्साहन देने के स्थान पर अवरोध उत्पन्न क्यो ... जनद्रोह नहीं है? सस्था के क्रमोन्नत होने पर सस्थाओं ने ...क्षा में प्रवेश दे दिया और इस वर्ष वे विद्यार्थी 10वीं कक्षा मे ... के परीक्षा के फार्म बोर्ड को भेजे तो बोर्ड ... कर दिया। इसका साफ ... अस्वीकार किये जायेंगे। ... रही है इसका शायद ... के अनेक कदमों से गैर ... सरकारी शिक्षा...

श्री व्यास ने प्रतिवर्ष प्रत्येक ... माध्यमिक विद्यालय से एक हजार रुपया लेने का निर्णय लिया है। राजस्थान के इतिहास मे पहली बार मान्यता के हेतु निरीक्षण के लिये 5000 रुपये वसूल किये जा रहे हैं। सस्था की क्रमोन्नति के लिये माध्यमिक स्तर तक 25000 रु एव उच्च माध्यमिक स्तर तक 50 हजार लेने के बावजूद प्रत्येक सकाय की मान्यता के लिये पुन 25 हजार रुपया जमा कराने का निर्देश दिया गया है। यही नही सस्था में नया विषय खोलने के लिये दो हजार रुपया जमा कराने का प्रावधान रखा गया है। क्या राजस्थान की गरीब और भोली भाली जनता का यह भयकर शोषण नही है?

शिक्षा विभाग ने अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने के लिये बालिका शिक्षा फाउण्डेशन मे 25 हजार एव 50 हजार रुपये की स्थिर निधि रखने के निर्देश दिये और यह निर्देश एक विज्ञापन के माध्यम से दिये गये जबकि इस हेतु सरकार ने कोई आदेश भी जारी नहीं किये। यह स्थिर निधि तो सस्थाओ के नाम होती है ताकि सकट की घड़ी मे कर्मचारियों को वेतन दिया जा सके। हमे ज्ञात हुआ है कि शिक्षा फाउण्डेशन में जमा स्थिर निधि पर सरकार ने ओवर ड्राफ्ट ले लिया है। श्री व्यास के तुगलकी नीतियो से व्यथित होकर आज सारा प्रान्त बेबसी का गीत गा रहा है–

सब अफरगी सब तातारी आज बची और बची मारी।
कब तक सरमाये के धधे कब तक यह सरकारदारी।
कब तक जनता की बेचैनी कब तक जनता की लाचारी।
बोल अरी ओ! धरती बोल राजसिंहासन डावाडोल।

आपका शुभचिन्तक
सत्यव्रत सामवेदी, अध्यक्ष
स्वय सेवी शिक्षण सस्था सघ राजस्थान

सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक 5च–13 जवाहर नगर द्वारा नीतू प्रिन्टिग प्रेस बाबा हरिशचन्द मार्ग जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि 652607 का 622065 e-mail Vishwamaryam@satyam.net.in
आर्य समाज विद्या समिति एव शिक्षा समिति आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज राजापार्क जयपुर–4
राजस्थान

पजियन सख्या RAJHIN(RNI)/2000/2967
डाक पजीकरण सख्या RJ 2837

डाक टिकिट

प्रेषित – श्री धर्मपाल आर्य
उप कुलपति
गुरुकुल कागडी
विश्वविद्यालय हरिद्वार

वेद प्रचार, आर्य समाज, विश्व शान्ति, राष्ट्रोत्थान, मानव... एवं सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र



वर्ष 2 अंक 44 08 नवम्बर 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पंजियन सख्या RJ-2637/2001 वार्षिक मूल्य 75रुपये

ऋषि निर्वाण दिवस

दिवाली के दिन माताओं की गोद में बच्चों की लाशें
भारतमाता के 35 करोड़ बच्चे भूखे सो गए

(ऋषि निर्वाण दिवस पर श्री सत्यव्रत सामवदी क भाषण के कुछ अश प्रस्तुतकर्ता राजेश भटनागर)

जयपुर 4 नवम्बर। आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर द्वारा ऋषि निर्वाण दिवस वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय के सभागार मे अत्यन्त उल्लास एव उमग पूर्वक मनाया गया। दिवाली पर्व के बावजूद सभागार ऋषि भक्तों से खचाखच भरा हुआ था। इस अवसर पर श्री सत्यव्रत सामवेदी ने युग पुरुष महर्षि दयानन्द के अप्रतिम व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा–

आज हम उस युग पुरुष को श्रद्धाजलि देने क लिए उपस्थित हुए हैं जिसन हजारा वर्षों से नारकीय यात्रा करती हुई और अधकार में भटकती हुई मानवजाति को सुख और शांति की मजिल दिखाकर स्वर्गिक पथ को प्रशस्त किया। आज अज्ञान अधविश्वास और दुराग्रह के कारण मानवजाति भले ही युग पुरुष महर्षि दयानन्द की उपेक्षा करे परन्तु अज्ञान तिमिर के विच्छिन्न होने पर मानवजाति को द्युलोक में प्रकाश के अतुल राशि विकीर्ण करता हुआ आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द दिखाई देगा।

वैदिक धर्म के तीन स्तम्भ हैं–मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र योगेश्वर कृष्ण और देव दयानन्द। पौराणिकों ने श्रीरामचन्द्र और श्री कृष्ण को अवतार के आसनो पर बैठा कर दो स्तम्भों को तो तोड दिया है और अब वैदिक धर्म एक स्तम्भ पर टिका हुआ है और वह स्तम्भ है देव दयानन्द का स्तम्भ। यह स्तम्भ इतना दृढ है कि पौराणिक इस स्तम्भ के आस–पास भटकने का भी साहस नहीं करते परन्तु मानवजाति का दुर्भाग्य यह है कि इस स्तम्भ के उन्मूलन के लिये तथाकथित आर्यसमाजियो की सैना खडी हुई है। जिस प्रकार 'राम को रूप धर्‍यो दसकन्धर' उसी प्रकार अनेक मायावी लोग गैरिक वस्त्र धारण कर आर्यसमाज के ठेकेदार बने हुए हैं। आज आर्य समाज को खतरा न मुसलमानो से है न जैनियों से न बौद्धों से न पौराणिकों से उसे खतरा है इन तथाकथित आर्यसमाजियों से। जीवन और जगत का कौनसा पक्ष है जिस पर देव दयानन्द ने हमारा पथ प्रदर्शन नहीं किया। क्या यह विश्व की आश्चर्य जनक घटना नहीं है कि महर्षि दयानन्द ने ज्ञात इतिहास में पहली बार ईश्वरीय ज्ञान को उद्घाटित किया? महर्षि का केवल यही एक कार्य महर्षि दयानन्द को महापुरुषों के सर्वोच्च आसन पर आसीन करने के लिए पर्याप्त था। विश्व के समस्त सम्प्रदाय धर्म के नाम पर हजारों वर्षों से इन्सानियत के खून से धरा को लाल करते रहे। वैदिक मार्ग से हटकर मानवजाति ने विश्व के समस्त समुद्रों के जल से भी अधिक आसु बहाये। क्या यह विश्व की आश्चर्य जनक घटना नहीं है कि महर्षि ने धर्म के नाम पर कत्लेआम करने वाले असुरों को धर्म का ज्ञान कराया? महर्षि ने 1857 की क्राति के बाद मरणासन भारतवासियो की शिराओ मे देश की आजादी



युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती

के लिये शौर्य का रक्त प्रवाहित किया और उनकी प्रेरणा से भारत माता के नौजवान बेटो ने अपने प्राणो की आहुति देकर ब्रिटिस साम्राज्य को ध्वस्त कर दिया। क्या यह अविश्वसनीय घटना प्रतीत नहीं होती? जातिवाद और अस्पृश्यता के पाताल भेदी जड़ों की चूले हिलाकर रख दीं। क्या यह अकल्पनीय नही है? मातृ भूमि मातृ भाषा एव मातृ सस्कृति की सजीवनी से महर्षि ने मुर्दा राष्ट्र को खडा कर दिया। क्रान्तदर्शी ने 19वी शताब्दी में हिन्दी भाषा को देश की राजभाषा बनाने का अभियान चलाकर भारत को ऊर्ध्वगामी बनाया। इस भविष्य भेदिनी दृष्टि की तुलना किस ऋषि से की जा सकती है। दया और आनन्द के सागर दयानन्द ने विश्वशांति का मार्ग प्रशस्त करते हुए वेद का सदेश दिया–

माता भूमि पुत्रोऽह पृथिव्या

विश्वशांति नरसहारक परमाणु बमों के सग्रह से नहीं हो सकती। आज विश्व के समस्त राष्ट्रों के पास जितने परमाणु बम हैं उनके 5 प्रतिशत परमाणु बम ही सारे विश्व को मरघट बनाने के लिए पर्याप्त है। विश्व शाति के लिए तो मस्तिष्क परिवर्तन करना होगा। आर्ष ग्रथों का प्रचार करना होगा। करूणा और प्रेम का सागर प्रवाहित करना होगा। विश्व के समस्त मत मतान्तरो का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है परन्तु क्या महर्षि के अतिरिक्त अन्य कोई महापुरूष ईश्वर के बुद्धिसम्मत स्वरूप को प्रस्तुत कर सका? ईश्वर प्राप्ति ... महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित मार्ग के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। जीवन और जगत के इन जटिल प्रश्नों के जो उत्तर महर्षि ने दिये आज उनकी व्याख्या करने का यह उचित अवसर नहीं है।

आज अकाल मौत बनकर राजस्थान के आकाश पर मण्डरा रहा है। जब लाखो नर–नारी और बच्चे भुखमरी के शिकार हो और चारे के अभाव मे करोडो पशु और गौए दम तोड रहे हो तब ईश्वर मोक्ष धर्म की बात करना क्या वेद और दयानन्द का अपमान करना नही है? महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के 10 नियमो मे एक नियम यह दिया– 'ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। जब तक अकाल है तब तक हमे अन्य नियमो का भूल जाना चाहिये और केवल इसी एक नियम के प्रकाश मे अपना रास्ता तय करना चाहिये।

क्या कहते हैं महर्षि अकाल की समस्या के समाधान के लिये। दैनिक अग्निहोत्र मे महर्षि ने हमे प्रार्थना दी– अग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे देश की भूखी जनता की जठराग्नि को शात करने के लिये अर्थात हवि को खाने के लिये मैं अग्नि की स्थापना करता हू। भूखी जनता के 35 करोड यज्ञकुण्डों की अग्नि अन्न की हवि माग रही है। उन भूखो को अन्न देना ही सबसा बडा यज्ञ है। फिर महर्षि ने हमे समिधा दान मत्र दिये और हमने ईश्वर की प्रार्थना करते हुए कहा– अस्मान प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।

हम उस अग्नि को प्रज्ज्वलित करे जो प्रजा पशु धन धान्य तेज यश और भोग–सामर्थ्य को बढ़ाये। इसी प्रकार स्वस्ति वाचन के मत्रों में हम प्रतिदिन निम्नलिखित मत्र का पाठ करते है–"इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ यजमानस्य पशून पाहि।

हे सर्वरक्षक एव सर्वव्यापक प्रभो! हम भोग्यपदार्थों की प्राप्ति एव उनके सदुपयोग से बल पकराक्रम की प्राप्ति के लिये आपका आश्रय लेते हैं आपसे याचना करते हैं। हमारी दुधारू

गौवें हृष्ट–पुष्ट होवें, और राष्ट्र को दूध धृत आदि समस्त सेवनीय पदार्थ प्राप्त होवें। हमारी गौवें उत्तम प्रजा बछड़े–बछड़ी जनने वाली होवें क्षुद्र रोग और बड़े रोगों से रहित होवो। उप पर कोई हिंसक चोर और पापी पुरूष शासन न करे, स्वामी न होवे। गौवों की रक्षा करने वाले स्वामी के आश्रय में स्थिर निश्चल होवें, और खूब बढ़ें। हे प्रभो! आप शुभ कार्य करने वाले पुरूष के धन सम्पत्ति आदि की रक्षा करो।

इसी प्रकार वेद माता की स्तुति के माध्यम से ब्रह्मज्ञानियो को निर्देश दिया कि ब्रह्मलोक जाने से पूर्व तुम जनता को आयु, प्राण प्रजा पशु, कीर्ति धन और वेद ज्ञान देकर ब्रह्मलोक को जावो।

आयु प्राण प्रजा पशु कीर्ति द्रविण ब्रह्मवर्चस। मह्य दत्वा व्रजत ब्रह्मलोक।।

महर्षि ने शंकर की भाँति केवल ब्रह्म प्राप्ति और मोक्ष का मार्ग ही नही बताया अपितु इससे पूर्व इस लोक को सुधारने का सदेश दिया। इस लोक को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक शक्ति शाली पक्ष अर्थ हे। व्यक्ति परिवार समाज राष्ट्र विश्व अर्थ पर आधारित है। उस अर्थ की उपेक्षा कैसे की जा सकती है। भारत वर्ष मे आर्थिक क्रांति का सर्वप्रथम प्रचण्ड घोष महर्षि ने किया। ब्रिटिस साम्राज्य के शाषण की चक्की मे पिसत हुए

कचहरियो में आवेदन पत्र व मुकदमें दायर करते हुए जो कागज (स्टाम्प) खरीदना होता है उसकी कीमत में वृद्धि भी महर्षि की दृष्टि में अनुचित थी। उन्होंने कहा था– 'सरकार कागज को बेचती है और बहुत सा कागजो पर धन बढ़ा दिया है। इससे गरीब लोगों को बहुत क्लेश पहुचता है। सो यह बात राजा को करनी उचित नही क्योंकि इसके होने से गरीब लोग दुख पाके बैठे रहते हैं। कचहरी में बिना धन के कुछ बात होती नही इससे कागजो के ऊपर जो बहुत धन लगाया है सो मुझको अच्छा मालूम नहीं देता।

शोषण के विरूद्ध जनता को बगावत करने के लिये महर्षि प्रेरणा देते हुए कहते हैं– 'जो ये राजपुरूष हम लोगो से कर लेते हैं वे हमारी निरन्तर रक्षा करे नही तो न ले। हम भी उनको कर न देवे। इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टो के साथ युद्ध

करने के लिए ही कर देना चाहिए अन्य किसी प्रयोजन के लिए नही यह निश्चित है।

महर्षि की इसी विचार धारा से अनुप्राणित हाकर अनेक आर्य नेताओ ने प्राकतिक प्रकोपो के समय जाति पीडितो की सेवा करना और राहत कार्यों मे लगना अपना पावन कर्त्तव्य

समझा। जब राजस्थान मे

ने अकाल पीडितो की तन–मन–धन से सहायता की। आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर से 10 लाख रुपये का अनाज जोधपुर और जैसलमेर के गावों में भेजा गया। जून की भयकर गर्मी में जोधपुर मे श्रीरामसिह आर्य एव श्री गणपतसिह आर्य के नेतृत्व में सैंकड़ो आर्य वीर गाव–गाव जाते। भुखमरी के शिकार लोगों का पता लगाते। उन्हे अनाज बाटते। अजमेर से 100 ट्रक चारे का लेकर आर्यसमाज अजमेर के निष्ठावान कार्यकर्ता आचार्य गोविन्द सिह बाढमेर गये और चारे का वितरण किया। आर्यसमाज के राहत कार्यों की खबरो से दैनिक समाचार पत्र भरे रहते थे। चारो तरफ आर्यसमाज का यश फैला। यदि प्रान्तीय स्तर पर आर्यसमाज द्वारा कोई समन्वित प्रयास होता तो राजस्थान की जनता के हृदय मे आर्य समाज का स्थाई स्थान बन जाता। अनेक आर्यसमाजो ने राहत कार्यों के लिए अपने जिले के कलेक्टर को ही धन राशि दे दी। इस वर्ष भी आर्य समाज अलवर के प्रधान श्री छोटूसिह ने मुख्यमत्री राहत कोष मे एक लाख रुपया दिया। यदि यही राशि आर्य समाज के माध्यम से दी जाती तो आर्य समाज के यश की पताका फहरती।

इसी प्रकार गुजरात मे भूकम्प पीडितो के लिये आर्य समाज

श्री मनोहर लाल सतीजा श्रीमती अरूणा सतीजा श्री नाथूलाल शर्मा कोषाध्यक्ष एव श्री नद किशोर सैनी सदस्य

आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर के पूर्व प्रधान श्री ज्ञानेन्द्र आर्य जो अलवर मे अनेक आर्य समाजो के सस्थापक श्री हेतराम आर्य के सुपुत्र हैं।

भारतवासियों को देखकर महर्षि का हृदय द्रवित हो उठा और सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास के प्रारम्भ मे अपनी वेदना व्यक्त करते हुए महर्षि ने कहा–

यह आर्यावर्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल मे दूसरा कोई देश नहीं है। इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। जिसने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशसा करते है और आशा रखते हैं पारसमणि पत्थर सुना जाता है यह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात धनाढय हो जाते हैं।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम सस्करण मे उन्होने लिखा था कि एक तो यह बात है कि नोन और पौन रोटी मे जो कर लिया जाता है। मुझको अच्छा मालूम नहीं होता क्योंकि नोन बिना दरिद्र का भी निर्वाह नही किन्तु सबको नोन आवश्यक होता है और वे मेहनत मजदूरी से जैसे–तैसे निर्वाह करते हैं। उनके ऊपर भी यह नोन का (कर) दण्ड तुल्य रहता है। इसमें दरिद्रों को क्लेश पहुचता है। अत कर (टैक्स) लवणादिको के ऊपर न चाहिए। पौन रोटी पर कर लगाने से भी गरीबो को बहुत क्लेश होता है क्योकि गरीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले जाए या लकडी का भार उनके ऊपर कौडियो के लगने से उनको अवश्य क्लेश होता होगा इससे पौन रोटी का जो कर स्थापन करना है सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं। महात्मा गाधी ने सत्याग्रह आदोलन का प्रारम्भ नमक कानून के विरूद्ध ही किया था (सन 1930) नमक एक ऐसी वस्तु है जिसका प्रयोग गरीब से गरीब आदमी द्वारा भी किया जाता है। सरकार ने उस पर भी कर लगा रखा था और सरकार से लाइसेन्स लिये बिना कोई व्यक्ति नमक का निर्माण नहीं कर सकता था। कर के कारण नमक बाजार में महगा बिकता था और इसीलिए गाधीजी इस कर को अनुचित व अन्याय समझते थे। पर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने महात्मा गाधी से आधी सदी से भी अधिक समय पूर्व स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया था कि नमक सदृश वस्तु पर कर लगाना सर्वथा अनुचित है। सरकारी

छपनिया अकाल पड़ा तब पजाब केसरी लाला लाजपतराय का हृदय द्रवित हो उठा और उन्होने अत्यन्त दुखी होकर कहा कि आज राजस्थान ने महाराणा प्रताप और महाराणा सागा के वशज कीड़े–मकोडे की तरह भूख से मर रहे हैं, लाला जी ने उस समय पजाब से राजस्थान की भूखी जनता के लिये अनाज भेजा और अनाथ बच्चों को लाकर अपने घर मे उनका पालन–पोषण किया। जब रेलगाडी पर अनाथ बच्चे लाहौर के स्टेशन पर पहुचे तब लाला लाजपतराय उन बच्चों को लेने के लिये स्टेशन पर आए और उनके साथ थे लाहौर के हजारो आर्य। इसी प्रकार जब उत्तर प्रदेश में अकाल पड़ा तब उनको राहत कार्य देने के लिये उन्होने रात दिन एक कर दिया। कागड़ा मे भूकम्प के समय वे अपने सैकड़ो साथियो के साथ भूकम्प पीडितों की सेवा के लिये चले गए। लालाजी ने अत्यन्त आक्रोश पूर्वक ब्रिटिश सरकार पर आरोप लगाते हुए कहा कि भूख से मौतो के लिये ब्रिटिश सरकार जिम्मेदार है। भुखमरी के बावजूद भी ब्रिटिश सरकार अन्न का निर्यात कर रही है। लाला लाजपतराय (आर्यसमाज लाहौर 1932 पृ 239) ने इस विषय मे लिखा है कि सामान्य रूप से उन दिनो भारत में अपनी जनसख्या के लिए अनाज की पैदावार पर्याप्त होती थी किन्तु विदेश मे अनाज की ऊची कीमत प्राप्त करने के लिए इसका निर्यात किया जाता था और अकाल के वर्षों में भी इसके जारी रहने से देशमें अनाज की भारी कमी हो जाती थी। 1877–78 मे जब भारत मे अकाल का प्रकोप था इससे 52 लाख व्यक्तियों की मृत्यु हुई। उस वर्ष केवल कलकत्ता में बदर गाह से 1 करोड 60 लाख हड्रेडवेट चावल का निर्यात हुआ। यही स्थिति 1899–1900 ई के अकाल में थी। उपर्युक्त कारणों से पिछली शताब्दी के अन्तिम चरण मेंहर दो बरस में भारत के किसी न किसी प्रान्त में एक अकाल पड़ा करता था।

राजस्थान मे अकाल

राजस्थान मे अनावृष्टि का यह पाचवा वर्ष है। 5 वर्ष तक अकाल पीडितों ने कैसे जिन्दगी काटी इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। गत वर्ष अकाल के समय कश आर्य समाजो

आदर्श नगर जयपुर ने 10 लाख रुपये की धनराशि भेजी। श्रीरामसिह आर्य एव श्री गणपतसिह आर्य के नेतृत्व मे सैंकडो आर्य वीर भूकम्प पीडितों की सहायता के लिये 25 लाख रुपये की मशीन लेकर गुजरात गये और 15 दिन तक मकानों के मलवे उठाते रहे और उसमें दबे हुए माल को भूकम्प पीडितों को देते रहे। जब ये आर्य वीर राजकोट के गावो से रवाना हुए तो ग्रामीणों की आखो मे आसू थे।

इस वर्ष राजस्थान मे अकाल की भीषण स्थिति–

इस वर्ष अकाल की स्थिति अत्यन्त भयानक है। जोधपुर सभाग मे एक भी पशु के बचने की सम्भावना नहीं है। राजस्थान का अधिकाश भाग पशुओ का मरघट बन जायेगा। आज आर्यसमाज को पुन खडा होने की आवश्यकता है ताकि वे दयानन्द और लाला लाजपतराय के पद चिन्हों पर चलते हुए आर्यसमाज की गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखें। पजाब हरियाणा उत्तर प्रदेश में हजारों आर्य समाजे हैं। प्रो कैलाशनाथ सिह व स्वामी अग्निवेश को अपने साथियो सहित उक्त प्रान्तों के गाव–गाव मे जाकर चारा और अनाज एकत्रित करके राजस्थान भेजना चाहिये। इस पावन कार्य में समस्त धार्मिक सगठन बिना किसी भेदभाव के उन्हे सहयोग देगे। हमें राजस्थान सरकार से मिलकर राहत कार्य की कोई योजना बनानी चाहिये। यह आर्यसमाज के लिये परीक्षा की घड़ी है। यदि इस मुसीबत की घडी में आर्यसमाज खड़ा होता है तो दिग्दिगन्त में आर्यसमाज का यश फैलेगा और करोडों भूख पीड़ितों एव पशुओं की रक्षा हो सकेगी। जोधपुर एव अन्य जिलों के हजारों आर्य वीर राहत कार्यों के लिये तन–मन–धन अर्पित करने के लिए तैयार है। राजस्थान की समस्त आर्य समाजें भी इस परोपकार के कार्य में पूर्ण सहयोग देंगी। वेद कहती है कि केवलाघो केवलाघी भवति। जो अकेला खाता है वह पाप खाता है। ईश्वर का यह सदेश है कि दूसरों को अन्न न खिलाकर स्वय खाना उस का पाप है। हम इस सदेश को जन–जन तक पहुचाये। यही वास्तविक धर्म का प्रचार है। क्या आर्य जगत इस चुनौती को स्वीकार करने के लिये तैयार है?



राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधिपति बासवाड़ा में आर्यसमाज के संस्थापक एवं हृदय का ऑपरेशन को बावजूद स्नेह मिलन समारोह मे उपस्थित हुए [illegible]



आर्य महिला समाज आदर्शनगर जयपुर के पदाधिकारी एवं सदस्याए मध्य मे मंत्री अरुणा सतीजा बाए प्रधाना पुष्पा सडाना सुमित्रा बत्रा शकुन्तला क्षत्रपाल वेद साहनी



अपनी स्वर लहरी से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करते हुए श्री राजेश भटनागर



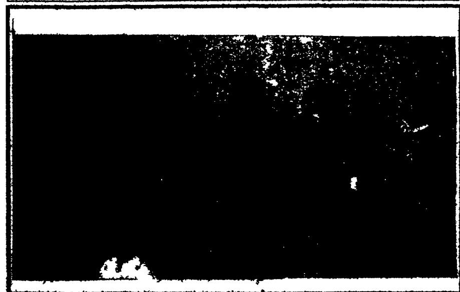
श्रोताओ को अपने भजनो से भावविभोर करते हुए श्री परशुराम स्वामी



आ.आदर्श नगर जयपुर के उपप्रधान एवं राजस्थान विधि सहाय के पूर्व श्री सुनीलमादू अपनी धर्म पत्नी श्रीमती सरीना के साथ



श्रीमती शारदा के साथ



कन्या [illegible] के मंत्री श्री [illegible] सामवेदी अपनी धर्म पत्नी श्रीमती [illegible] के साथ



[illegible] समिति के मंत्री श्री राजकुमार साहनी अपनी धर्म पत्नी श्रीमती वेद साहनी पुत्र श्री अनिरुद्ध साहनी एवं पुत्रवधु श्रीमती कविता साहनी

सन्तप्त धरा को दयानन्द का मनुर्भव का संदेश

भारतीय संस्कृति धर्मप्रधान संस्कृति है। उसका सौंदर्यबोध कण–कण में विश्वात्मा का दर्शन करता है। वह जीव मात्र के धर्म का आदर करता है साथ ही प्रत्येक जीव से स्व धर्मपालन की आशा भी करता है। इसी सदर्भ में भारतीय दर्शन एव मानव संस्कृति के प्रतीक सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है कि मानव का दानव बन जाना उसकी पराजय है मानव का महामानव होना उसका चमत्कार और मानव का मानव होना उसकी विजय है।

चट्टानों के पृष्ठों पर अंकित विकास की कहानी पढ़ने में समर्थ मनुष्य ही यह बता सकता है कि विकास की इस सीढ़ी तक जीव को लाने के लिए प्रकृति ने कितने प्रयोग और परीक्षण किये। प्रकृति के लेखे–जोखे का ज्ञान रखने वाला मनुष्य ही यह सोच सकता है कि जीवन की एकता प्रकृति का एक तथ्य है। इस तथ्य को स्वीकार करने का प्रमाण विश्वबन्धुत्व की परिकल्पना है। उन्मुक्त आकाश के नीचे विशाल पृथ्वी पर निवास करने वाले विभिन्न जातियो के असंख्य जीवों को एक परिवार के रूप में देखने वाला यह मनुष्य कितना महान है। परन्तु क्या हमने कभी इस दृष्टि से अपने मनुष्य होने की सार्थकता पर विचार किया है? खलील जिब्रान के अनुसार मानवता प्रकाश की वह नदी है जो सीमित से असीमित की ओर बहती है। परन्तु आज यदि हम अपने चारों ओर दृष्टिपात करे तो प्रकाश की यह नदी भौतिकवाद स्वार्थपरता आतंकवाद, कुटिल–राजनीति का विशाल दलदल बन चुका है एक ऐसा दलदल जिसमें मानवता गहरे धसती हुई छटपटा रही है और अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए हाथ पाव मार रही है। निराशा और अंधकार के इस घुटन भरे माहौल में आर्यसमाज की विचार धारा और महर्षि दयानन्द का संदेश ही जीवन रक्षक महामंत्र के रूप में हम सही दिशा निर्देश द सकता है। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का मंत्र देते समय महर्षि दयानन्द ने समूचे विश्व को आर्य बनाने का स्वप्न देखा था। यहा आर्य शब्द से उनका तात्पर्य था सज्जन व्यक्ति। समूचे विश्व को सज्जन बनाने की उनकी वृहद कल्पना आर्यत्व का सच्चा रूप थी। उनका मानना था कि मनुष्य अपने जीवन को अपनी इच्छानुसार बनाने की सामर्थ्य लेकर जन्म लेता है। वह आजीवन इस बात के लिए प्रयत्नरत रहता है कि वह अपने द्वारा किये गया कर्मों को सार्थकता प्रदान करें। परन्तु अपने इस प्रयास में विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और इसी के फलस्वरूप हमें धर्म की प्रकृति और धर्म से जुड़े अन्य प्रयत्नों पर चिंतन करना पड़ता है। आज हम उसी विकट और अराजकता से परिपूर्ण दौर से गुजर रहे हैं। इस विडम्बनापूर्ण स्थिति से बचने के लिए हमें महर्षि दयानन्द के संदेश पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब–जब हम धर्म की शाश्वत परिभाषा से दूर गये हैं तब–तब हमें घोर अनर्थ का सामना करना पड़ा है। महाभारत का दृष्टात इस कथन को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। युद्धक्षेत्र में अर्जुन को श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया गीता का उपदेश उसे स्वधर्म पालन का ज्ञान कराता है। यह उपदेश अर्जुन को तब दिया गया था जब वह रणक्षेत्र में किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़ा हो गया था और युद्ध करने में अपने आपको असमर्थ महसूस कर रहा था। यदि अर्जुन पूर्ण आत्मविश्वास एव निष्ठा से युद्ध के लिए तत्पर हो जाता तो सम्भवतः गीता जैसे महान ग्रंथ की रचना न हुई होती। वर्तमान समय में महर्षि दयानन्द द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश जैसे महान ग्रंथ ही स्वधर्म की समुचित व्याख्या का सर्वश्रेष्ठ सूत्रधार है। क्योंकि यह हम उन परिस्थितियों में दिशानिर्देश देता है जहा हम अपनी भूमिका अपने कर्तव्य या अपने उत्तरदायित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा हुआ पाते हैं।

शास्त्रीय व्याख्या के अनुसार जो धारण किया जाए वह धर्म है। ऐसे में प्रश्न उठता है मनुष्य का धर्म क्या है? तो हम उत्तर पाते हैं कि मनुष्य मानवता को धारण करता है अतः मनुष्य का धर्म है मानवता। सत्य दया शाति प्रेम और अहिंसा आदि। मानवता के आधार स्तम्भ है। इन लक्षणों को किसी व्यक्ति समाज स्थान या समय से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। मानवता की यह एक शाश्वत एव निरपेक्ष व्याख्या है इसीलिए महर्षि दयानन्द ने कहा कि 'मनुर्भव' अर्थात मनुष्य बनो। मनुष्य बनने के परिप्रेक्ष्य में धर्म अपने कर्त्तव्यों और दूसरे के अधिकारों के संतुलन का नाम है। वेदों में कहा गया है कि सत्य वद धर्म चर। धर्म यहा आचरण का द्योतक है। उसमें सब कुछ समाहित है लेकिन इसका सबसे प्रबल पक्ष है मानवता। भीष्म महाभारत मे इसे तब स्पष्ट करते हैं जब उनसे पूछा गया कि धर्म क्या है? वे कहते हैं कि यू तो धर्म की परिभाषा नहीं दी जा सकती परन्तु फिर भी धर्म वह है जिस कार्य से अधिक से अधिक लोगों का हित हो सके। यहा पर हित का अर्थ भौतिक हित से नहीं है। हित का अर्थ यहा श्रेयस से है। उस श्रेयस को प्राप्त करने के लिए अर्थ और काम को साधना होगा। अर्थ काम और धर्म के पालन से मोक्ष स्वतः ही प्राप्त हो जायेगा। परन्तु आज अर्थ और काम की साधना तो दूर उन पर बेलगाम घोडो की तरह नियन्त्रण तक करना दूभर हो गया है। ऐसे मे इन बेलगाम घोडों पर से धर्म छिटक कर दूर जा गिरा है और असहाय मानवता धर्म के स्पंदन को सुन पाने में असमर्थ है।

11 सितम्बर,2001 को वर्ल्ड ट्रेड सेंटर में निर्दोष प्राणियों की हत्या 13 दिसम्बर को भारतीय ससद पर हमला मास्कों के थियेटर मे हजारों लोगों को बंधक बनाया जाना और बाली मे सैंकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार देना किसी भी धर्म के नाम पर किया गया मौत का व्यापार है। इस व्यापार की व्याकरण के प्रथम सूत्र में अर्थ और काम महानायक की भूमिका निभा रहे हैं। काम एक ऐसा कामना है जो मनुष्य को धर्म से दूर ले जा रही है। महर्षि दयानन्द हमें इसी कामना पर नियन्त्रण का संदेश देते हैं। यदि हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनके विचारों की उपादेयता का विश्लेषण करें तो उनके अनुसार धर्म के द्वारा लोगों में सहअस्तित्व और सामाजिक मूल्य व्यवस्था का भाव विकसित होना चाहिए। सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास के प्रारम्भ में वे कहते हैं कि राजा और प्रजा पुरुष मिलकर मनुष्यादि प्राणियों को विद्या स्वातंत्र्य धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें। उनका मानना था कि इससे सामाजिक सुदृढ़ता विकसित होती है लोग एक होकर रहते हैं। धर्म द्वारा समाज पर अनौपचारिक नियंत्रण होता है। शासन तो समाज को नियंत्रित रखता ही है पर धर्म भी व्यक्ति में स्वअनुशासन विकसित करता है। इससे परस्पर निर्भरता और सहयोग की भावना को बढ़ावा मिलता है। आज की सभी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं स्वअनुशासन के अभाव का परिणाम है। धर्म के निरपेक्ष अर्थ को भूलने के कारण ही हम स्वअनुशासन खोने लगे हैं। मानव होने पर भी हम मनुष्य नहीं हैं क्योंकि हमने अपना धर्म अपनी मानवता को छोड़ दिया है। इसे हम तभी वापस पा सकेंगे जब हम दयानन्द के संदेश 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' को याद रखेंगे।

आज उस महापुरुष के निर्वाण दिवस पर हमें शपथ लेनी होगी कि हम उनके द्वारा बताये गये धर्म के [illegible] पथ पर अग्रसर होंगे क्योंकि यही वह सन्मार्ग है जो श्रेयस और अभ्युदय की ओर ले जा सकता है।

डॉ. मुणि राघदेव
[illegible]
वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय आर्य समाज आदर्श नगर, जयपुर।

विश्व शांति के लिये दयानन्द को पुकारती हुई मानवजाति

भारत हमेशा से विश्व शांति का समर्थक रहा है। वेदों में विश्व शांति की प्रार्थना की गई है। वेदों में न केवल आध्यात्मिक शाति की बात कहीं गई है अपितु सामाजिक और मनुष्य की प्रकृति के मध्य सामंजस्य बना रहे इसके लिये भी प्रार्थना की गई है। भारत की सांस्कृतिक विरासत में शांति के लिये कई प्रकार के अनुष्ठान व यज्ञ बताये गये है। 19वीं शताब्दी में स्वामी दयानन्द ने शांति की समृद्ध परम्परा के रूढ़िवादी व्यक्तियों द्वारा दूषित किये जाने का विरोध किया व पुनः वेदों की स्वस्थ परम्परा को स्थापित करने का प्रयास किया। उनके निर्वाण दिवस पर आज हम उनके द्वारा किये गये शाति के प्रयासों का स्मरण कर रहे हैं।

आज सारे विश्व में शाति की चर्चा हो रही है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना भी विश्व में शाति को रोकने का सकारात्मक कदम था। विश्व युद्ध को टालने के लिये राष्ट्रों के मध्य की समस्याओं को युद्ध के बिना सुलझाने के प्रयास प्रारम्भ हुए। इन प्रयासों को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं एव सम्मेलनों द्वारा समय–समय पर प्रोत्साहन मिला। राष्ट्रों के मध्य के संघर्ष निवारण के साथ–साथ राष्ट्र के अन्तर्गत समाज में होने वाले संघर्षों को भी शांतिमय तरीके से सुलझाने के प्रयास होने लगे है। पश्चिम के देशों में शाति के सामाजिक राजनीतिक पहलुओं को अधिक महत्व दिया गया और संघर्ष को अहिंसात्मक तरीके से सुलझाने पर बल दिया। इसमें विभिन्न स्तरों पर गैर सरकारी संगठनों का प्रमुख योगदान रहा। भारत में आधुनिक समय में दयानन्द ने शाति स्थापना के लिये न्याय को बराबर का स्थान दिया। भारत जैसे देश में सामाजिक एव राजनीतिक स्तर पर शाति की स्थापना बिना न्याय के नहीं हो सकती।

भारतीय समाज में फैली बुराईया जैसे छूआछूत ऊँचनीच जातिगत भाव महिलाओं को दूसरा स्थान देना विवाह में अनापशनाप खर्च करना आदि। सामाजिक अन्याय के ही रूप है। जब तक इन कुरीतियों को खात्मा नहीं किया जायेगा शाति की स्थापना सम्भव नहीं है। लेकिन सामाजिक और राजनीतिक शांति अपने आप में अधूरी है जब तक कि व्यक्ति आत्मिक स्तर पर शाति प्राप्त नहीं करता। व्यक्ति को आध्यात्मिक शाति की भी आवश्यकता है और वह उसको प्राप्त करके ही सामाजिक एव राजनीतिक न्याय एव शांति के लिये सार्थक प्रयास कर सकता है। दयानन्द के बताये हुए रास्ते से व्यक्तिगत एव सामाजिक दोनों शाति प्राप्त की जा सकती है। इसी बात महात्मा गांधी ने राजनीति के आध्यात्मिकरण की अवधारणा से स्पष्ट किया है जिसमें राजनीति में नैतिक मूल्यो की स्थापना की बात कही गयी है। हिंसा एक बिमारी के रूप में है समाज जिस प्रकार शारीरिक बीमारियों से छुटकारा पाने के लिये डॉक्टर पर अपनी संसाधन खर्च करके प्रशिक्षण प्रदान करता है उसी प्रकार हिंसा की बीमारी से बचाव केलिये प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिये। विश्व में हिंसा का वर्चस्व होने का एक कारण यह भी है कि लोग न तो शाति के विषय में जानते है और न ही उसकी प्रशसा करते हैं इस लिये 11 सितम्बर 2001 को अमरीकी वाणिज्य केन्द्र पर आतंकवादी हमले से युद्ध के विभिन्न रूप सामने आने लगे हैं। हिंसा का यही व्यवहार अमरीका के छात्रों में भी देखा जा सकता है। भारतीय वायुयान का अपहरण कर कंधार ले जाना। 13 दिसम्बर,2001 को भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला जम्मू काश्मीर समस्या स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही भारत में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एव दो पूर्व प्रधानमंत्रियो की आतंकवादी हमले में हत्या भारत के पूर्वी राज्यों में बोडो लैण्ड उल्फा आतंकवादी दक्षिण में नक्सली हिंसा और समूचे उत्तर में विदेशी आतंकवादियों से जूझनेके कारण युवा वर्ग को स्थानीय हिंसा छोटे अपराध जातीय घृणा एव पर्यावरणीय विध्वंस आदि समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो इनके जीवन को अस्त व्यस्त एव भयभीत बना देगा। दो दिन पहले किशनगढ़ में घटित तेजाब काड जिसमें दो बहनों पूजा व निशा पर युवकों द्वारा तेजाब डालना इसी तरह के जीवन के उदाहरण है।

शांति की स्थापना मनुष्य की शाश्वत एव सार्वभौमिक समस्या है जिसका समाधान अभी तक नहीं हुआ है जबकि मनुष्य शाश्वत समय से ही शाति के सपने देखता रहा है उसके लिये प्रार्थना करता रहा है और उसके लिये प्रयास करता रहा है। अब समय आ गया है जब इससे पहले कि हिंसा की वर्तमान विकराल समस्या समूचे माननीय जीवन को तहस नहस कर दे शांति के विकल्प का प्रयोग हिंसा के बचाव एव शांति के वातावरणके निर्माण के लिये युद्ध स्तर पर किया जाये।

भारत अपने सांस्कृतिक सामाजिक आर्थिक एव आध्यात्मिक उत्थान के कारण प्राचीनकाल मे एक वैभवशाली राष्ट्र रहा है। यह विश्व में शाति का अग्रदूत राष्ट्र भी रहा है तथा हमेशा एक शांतिप्रिय राष्ट्र के रूप में विश्व भर में जाना जाता रहा है। वैदिक साहित्य में शाति को केवल मनुष्य मात्र तक ही सीमित नहीं किया है अपितु समूचे ब्रह्माण्ड से जोड़ा है। शातिपाठ सम्पूर्ण शाति का द्योतक है। मनु स्मृति में मनु ने भी अहिंसा को मनुष्य को नुकसान नहीं पहुचाने के अर्थ में माना है। महाभारत काल में भी शाति को व्यापक रूप मे अपनाया गया है। जैन धर्म में अहिंसा को मोक्ष का मार्ग बताया है। जैन धर्म में सत्य अहिंसा अस्तेय अपरिग्रह ब्रह्मचर्य में अहिंसा पर सर्वाधिक बल दिया है। महावीर स्वामी ने अपने उपदेशों में जीवों पर दया करो एव जीओ और जीने दो का संदेश दिया।

महात्मा गांधी का अहिंसा आन्दोलन शांति शिक्षा का नवीन सशक्त माध्यम रहा है उनके अनुसार अहिंसा मनुष्यों का कानून है जबकि हिंसा पशुओं/जगली लोगों का कानून है। अहिंसा आत्मिक बल है। अत मनुष्यों को पाश्विक बल से बचने के लिये अहिंसा पर निर्भर होना चाहिये। प्राचीन वैदिक काल से लेकर आज तक शाति शिक्षा भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण अंग रही है लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यालय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत इसे लागू करना एक महती आवश्यकता है। आर्य समाज के प्राण महिलायें हैं। शायद ही अन्य धार्मिक संगठन में ऐसा [illegible]। आज अतिशयोक्ति न होगी कि यह महिलाओं की [illegible] से ही जीवित है लेकिन [illegible] के लिये कोई भी संगठित प्रयास नहीं हुए है। आर्यसमाज की महिलाओं का [illegible] के स्तर पर महिला संगठन बनाये [illegible] सशक्त तरीके से महिला उत्थान का [illegible] में शांति स्थापित हो सकती है। महिलाए ही परिवार में प्रथम शिक्षण संस्था का कार्य करती हैं। [illegible] को शाति की शिक्षा देने कार्य [illegible]।

शांति के लिये प्रयास किस प्रकार किये [illegible] इसके बारे में भृगु स्मृति में [illegible] साधारण जन को [illegible] में [illegible] और [illegible] है–उसमें [illegible] ने प्रश्नों के उत्तर [illegible]। ये [illegible] प्रश्न धर्म में महत्वपूर्ण माने जाते है। [illegible] था कि [illegible] — [illegible]। [illegible] रास्ते से [illegible] के युग में हमें दयानन्द [illegible] रास्ते पर चलना होगा तभी हमें शाति की [illegible] सकती है।

[illegible]
वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आर्य समाज,आदर्श नगर, जयपुर।

आधिदैविक अशांति और वैदिक उपचार

ईश्वर ने जब सृष्टि की रचना की तब वायु, जल, भूमि वनस्पति मानव और पशुओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया कि पृथ्वी पर एक सतुलित जीवन चलता रहे। इसके लिये प्रकृति ने सूर्य,चन्द्र,खनिज पदार्थ एव प्राकृतिक ससाधनों का सम्पूर्ण भण्डार उपलब्ध कराया। वेदों में कहा गया है कि ईश्वर द्वारा रचित प्रत्येक वस्तु को लोक कल्याण के लिये बनाया गया है–

ईशा वास्यमिद सर्व यत् किच जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुजीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम्।।

वेदो मे मानव जीवन को अनिष्ट से सुरक्षित करने वाले तत्वों को देवत्व की श्रेणी में रखा गया है। यजुर्वेद का निम्न मत्र देवत्व का वर्णन करता है– अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रूद्रा देवतादित्या देवता मरूतो देवता विश्वेदेव देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता। मनुष्य ने प्रारम्भ में प्रकृति द्वारा प्रदत्त सभी तत्वों का भरपूर उपयोग कर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति की। किन्तु समय के साथ उसकी इच्छाए एव लोभ बढता गया एव उसने ससाधनों के उपयोग के स्थान पर उनका दोहन आरम्भ कर दिया। लगातार बढ़ती जनसख्या के कारण उत्पन्न आवास, भोजन एव आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिये शहरीकरण वनों का कटाव औद्योगीकरण आदि क्रिया कलापो के कारण पर्यावरण में असतुलन की स्थिति पैदा हो गई। प्रकृति का कोई भी तत्व खण्डित होने से पर्यावरण का सतुलन बिगड जाता है और प्राणिमात्र के लिये यह विनाश का कारण बन जाता है। यजुर्वेद मे भी वर्णित है–

सुमित्रिया न आप ओषधय सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि य च वय द्विष्म।।

अर्थात प्रकृति के पदार्थ जल औषध हमारे लिये मित्रवत एव कल्याणकारी होवे। समस्त प्राणियों में मानव ने प्रकृति के सतुलन को सर्वाधिक बिगाड़ा है।

इसके परिणाम स्वरूप पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। जीवन के पाच तत्व हैं–जल,तेज,वायु,भूमि और आकाश। इसमें तेज और अकाश पर मनुष्य का अधिकार स्थापित नही हो पाया है किन्तु शेष तीनों तत्वों को अपनी गतिविधियों द्वारा मनुष्य ने प्रदूषित कर दिया है जिसके कारण सम्पूर्ण जीवन जगत के लिए सकट उत्पन्न हो गया है। प्रदूषण का जहर कही सूक्ष्म एव अप्रत्यक्ष तो कहीं स्पष्ट रूप से हमारे चारों और घुलता जा रहा है। वायु प्रदूषण जल प्रदूषण मृदा प्रदूषण ध्वनि प्रदूषण तापीय प्रदूषण औद्योगिक प्रदूषण एव कूडे कचरे से उत्पन्न प्रदूषण ऐसे उदाहरण हैं जिनके कारण पर्यावरण दूषित हो गया है एव सभी जीव जगत के जीवन की सम्भावनाओं पर एक प्रश्न चिन्ह लग गया है। जिन हानिकारक [illegible] से पर्यावरण मे अवाछनीय परिस्थिति का निर्माण होता है उन्हे प्रदूषक कहा जाता है। ये प्रदूषक अन्तत जीवन के मूल तत्वों वायु जल एव भूमि को ही प्रदूषित करते हैं।

वायु– वायु पर्यावरण का महत्वपूर्ण साधन एव जीवन का आधार है। वायु के बिना जीवन सुरक्षित नहीं है किन्तु स्वच्छ वायु का सेवन ही प्राणियों के लिए हितकर होता है इसीलिए ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है कि–

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हित। ततो नो देहि जीवसे।

अर्थात हे वायु तेरे घर में जो अमृत निधि रखी हुई है उसमें से कुछ अश हमें भी प्रदान कर जिससे हम दीर्घजीवी हों।

वायु प्रदूषण का मुख्य कारण वाहनों एव कल कारखानों से निकलने वाला धुआ वनों का कटाव एव विभिन्न स्त्रोतों से निकलने वाली गैसे हैं। शहर का 60 प्रतिशत प्रदूषण चार पहिया वाहनों की अपेक्षा दुपहिया वाहनों से निकले धुए में हाइड्रोकार्बन की मात्रा छ गुणा अधिक होती है कार की अपेक्षा बस 90 गुणा अधिक कार्बनमोनोक्साइड वातावरण में छोड़ती है। दिल्ली में चलने वाले वाहनों से प्रतिदिन 170 टन कार्बन मोनोक्साइड 70 टन हाइड्रोकार्बन 80 टन नाइट्रोजन तथा 2 टन सल्फर डाइआक्साइड वायुमण्डल में छोड़ी जाती है। स्थिति इतनी भयावह है कि प्रात काल सैर करने वाले व्यक्तियों को भी मुह पर मास्क लगाना पड़ता है। वायु मे उपस्थित धूल के कणों के कारण गले और आखो में जलन फेफड़ो के रोग खून की कमी सरदर्द उल्टी श्वसन सस्थान में सूजन एवं केसर जैसी कई बीमारियों ने लोगों को घेर लिया है। इतना ही नहीं वायुमण्डल में छोडी गई सल्फर डाइआक्साइड और नाइट्रोजन आक्साइड वायुमण्डल के पानी के साथ मिलकर अम्लीय वर्षा का रूप ले लेती है जो इमारतो एव स्मारकों को प्रभावित करने के साथ फसलों एव फलदार वृक्षों को भी नष्ट कर देती है। वातावरण में लगातार बढती कार्बनडाई आक्साइड के कारण पृथ्वी का तापमान लगातार बढता जा रहा है। वैज्ञानिकों का मत है कि 21वीं सदी के मध्य तक पृथ्वी के तापमान में 2 से 4 डिग्री तक की वृद्धि हो सकती है। इस कारण ध्रुवों पर जमी बर्फ के पिघलने से महासागर के जलस्तर में वृद्धि होगी एवं अनेक तटीय देश एव द्वीप जलमग्न हो जाएगे। वायु प्रदूषण के कारण उत्पन्न हुई अन्य मुख्य समस्या ओजोन परत का विरल होना है। अधोमण्डल की ऊपरी सतह पर लगभग 25 से 40 कि.मी. तक यह एक परत के रूप में होती है एव सूर्य की पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकती है जो त्वचा कैंसर का मुख्य कारण है। आजोन परत के विरल होने का प्रमुख कारण घातक क्लोरोफ्लोरोकार्बन गैस है जो एयरकण्डीशनरों जैट विमान के ईंधन से नाईट्रोजन उर्वरक का निर्माण करने वाले उद्योग एव परमाणु विस्फोटो से निकली विषैली गैसे आदि ओजोन परत को हानि पहुचाती है। भोपाल गैस त्रासदी का उदाहरण हमारे सामने है। मथुरा रिफाइनरी के कारण विश्व का सातवा अजूबा कहे जाने वाले ताजमहल की खूबसूरती को भी खतरा उत्पन्न हो गया है।

वृक्ष वनों के ही कारण सम्भव है। साथ ही ये वन औषधी एव अन्य उपयोगी वस्तुए उपलब्ध कराने के साथ–साथ ध्वनि प्रदूषण को भी रोकते हैं। वनों के कटने से पशुओं के आवास समाप्त होते जा रहे हैं। यही कारण है कि कई दुर्लभ पशु जातिया लुप्त होने के कगार पर पहुच गई है। वेदों में वनों के महत्व को बखूबी बताया गया है–वेद कहता है वनस्पतिया उगाओ–वनस्पति वन आस्थापयध्वम्।।

यह वनस्पति को काटना भी पड़े तो ऐसे काटे कि उसमें सैंकड़ों स्थानों पर फिर से अकुर फूट आए। वेद का कथन है कि हे वनस्पति! इस कुल्हाडे ने तुझे इसलिए काटा है कि तू शताकुर होती हुई बढ़ तेरा उपयोग करके हम सहस्त्राकुर होते हुए वृद्धि को प्राप्त करें–

अय हि त्वा स्वधितिस्तेतिजान: प्रणिनाय महते सौभाग्य।
अतस्त्व देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्त्रवल्शा वि वय रूहेम्।।

मत्स्य पुराण में वृक्षों के महत्व को इस प्रकार बताया है–दस कुए एक वापी(नाली) के समान दस वापी एक सरोवर के समान दस सरोवर एक पुत्र के समान एव दस पुत्र एक वृक्ष के समान हैं।

अत हमें अपने पुत्रों की तरह इन वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए न कि इन्हे उखाड़ फैंकना चाहिए।

जल– जल ही जीवन है। प्रकृति का समस्त जीवन जल से सचालित होता है। मानव शरीर के अन्दर भोजन के पाचन एव पोषण रक्त सचरण शरीर से अपद्रव्यो के बाहर निकालने तथा शरीर के तापमान को नियन्त्रित करने मे जल परम सहायक है। वेदों में कहा गया है कि शुद्ध जल के अन्दर अमृत होता है अप्स्वन्तरमृतम आसु भेषजम।।

शुद्ध जल आरोग्यदायक होते हैं शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करते हैं वृद्ध प्रदान करते हैं। कठस्वर को ठीक तथा देखने की शक्ति को बढाते हैं।

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।।

शुद्ध जल की आवश्यकता वैदिक काल से ही स्वीकृत है। अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि शरीर के लिए शुद्ध जल बहता रहे और हम शुद्ध व्यवहार से जल के प्रदूषण को रोके जल से शरीर का मल दूर होता है।

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो न सेदुर प्रिये। त्र निदध्म पवित्रेण पृथिवी मोत पुनामि।।

अफसोस यह है कि एक तो वर्षा न होने से लगातार पृथ्वी के जलस्तर में कमी आती जा रही है। दूसरा जो जल उपलब्ध है वह इतना प्रदूषित होता जा रहा है कि जल पीने पर जीवन देने कि बजाय उसमें मिले कई विषैले पदार्थों के कारण जीवन से भी जा सकता है। जल प्रदूषण के मुख्य कारण औद्योगिक अपशिष्ट कृषि रसायन डिटर्जेन्ट मनुष्य के दैनिक कृत्यों से निकली गन्दगी औद्योगिक तापीय प्रदूषण एव खनिज तेल हैं। उपरोक्त पदार्थों के जल में मिलने से उसके मौलिक रसायनिक एव जैविक तत्वों मे परिवर्तन आ जाने से जल अपनी गुणवत्ता खो देता है। जल प्रदूषण का सबसे अधिक प्रभाव मनुष्य पर पडता है इसके कारण अतिसार पेचिस श्वास कास हैजा चर्म रोग पीलिया रतिरोग एव आत के रोग हो जाते हैं।

[illegible] उद्योगो से निकले [illegible] पदार्थ के [illegible] होने हैं जो पानी में मिलकर उसे विषैला कर देते हैं। फ्लोराइड जिक सीसा पारा फीनोल नाइट्रोइड आदि कुछ ऐसे तत्व है जिनके कारण खून की कमी हड्डियों का मुड़ना गुर्दे फेफडे एव त्वचा रोग हो जाते हैं और जान भी जा सकती है।

भारत में हर वर्ष गणेश चतुर्थी दुर्गा पूजा एव अन्य कई त्यौहारो पर मूर्ति की पूजा कर उसे जल में विसर्जित किए जाने प्रथा है। इन मूर्तियों को बनाने मे जिन रगों का उपयोग किया जाता है उनमें भी ये विषैले रसायन पाए जाते हैं जो पानी में उपस्थित जीवों के लिए हानिकारक है।

जल की कमी को दूर करने का एक उपाय है–यज्ञ। यज्ञ से उठा धूआ ऊपर की ओर उठकर न केवल वर्षा लाने में सहायक है अपितु यज्ञ में उपयोग ली जाने वाली समिधा एव सामग्री वायुमण्डल के प्रदूषण को दूर करके उसे स्वच्छ सुगन्धित एव रोगहर वायु में बदल देती है किन्तु यज्ञ करते समय भी स्वामी जी ने कुछ चुन्निदा वृक्षों की ही समिधा उपयोग में लाने की बात कही है जैसे पलाश पीपल बड गूलर आम बिल्व आदि ये शीघ्र जलती हैं तथा विषैली गैसे उत्पन्न नहीं होती है। इसी प्रकार सामग्री मे औषधीयुक्त तत्वों जैसे केसर अगर चन्दन फल चावल, मेहू, शक्कर छुहारे दाख गिलोय आदि के उपयोग की बात कही गई है।

भूमि– जब भूमि के भौतिक रसायनिक या जैविक गुणो में ऐसा परिवर्तन आ जाए जिससे उसकी गुणवत्ता व उपयोगिता मे कमी आ जाए एव इसका प्रभाव जीवो एव पेड–पौधो पर पडे तब वह भूमि प्रदूषण कहलाता है। भूमि प्रदूषण के मुख्य स्त्रोत कीटनाशक एव रसायनिक उर्वरकों का उपयोग घरेलू एव औद्योगिक एव नगरपालिका द्वारा अपशिष्ट पदार्थ मृदा अपरदन एव जल की कमी है।

भूमि पर खुले में फैंका गया कचरा एव औद्योगिक अपशिष्ट भूमि की गुणवत्ता को कम कर देते हैं एव वह भूमि कृषि योग्य नहीं रहती। साथ ही इस ढेर में कई ऐसे सूक्ष्मजीवी उत्पन्न हो जाते हैं जो वातावरण में फैल कर कई श्वास एव त्वचा रोगों का कारण बनते हैं। मुम्बई के उपनगर गोराई मे स्थित डपिंग ग्राउड आजकल चर्चा मे है। प्रतिवर्ष लगभग 6250 टन कचरा मुबई व विभिन्न भागों से एकत्रित कर गोराई एव देवनगर के डपिंग ग्राउड में डाला जाता है। वातावरण में उठे धूल के कणों एव सूक्ष्म जीवों के उत्पन्न होने से आसपास 2–3 कि.मी. में रहने वाले लोगों का जीना दूभर हो गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन के पाच तत्वों में से तीन तत्व वायु, जल और भूमि को प्रदूषित कर मनुष्य ने अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है। ऋषियों ने प्रकृति के महत्व को बखूबी समझा था इसलिए नित्य यही प्रार्थना करता रहा–

ॐ द्यौ शाति रन्तरिक्ष शांति पृथिवी शातिराप शातिरोषधय शाति: वनस्पतय शातिर्विश्वेदेवा शान्तिर्ब्रह्म शांति सर्व शांति: शांति रेव शाति सामा शातिरेधि।।

यही सत्य है समस्त पृथ्वी, आकाश और वनस्पति की शांति अर्थात शुद्धता में ही सबका कल्याण है। इस प्रार्थना को दोहराते हम भी हैं किन्तु इसकी सार्थकता तभी है जब हम इस शांति को बनाए रखने में अपना सक्रिय सहयोग देकर वातावरण को स्वच्छ बनाने में सहायता करें।

डॉ. कविता साहनी
विभागाध्यक्ष प्राणिशास्त्र,
वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
आर्य समाज आदर्श नगर, जयपुर।

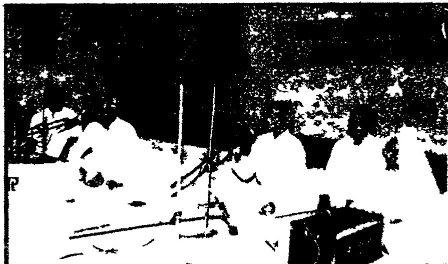
आर्य परिवार संघ जयपुर का दीपावली स्नेह मिलन समारोह

अभिनव प्रयोग की अभूतपूर्व सफलता

राजेश भटनागर एव परशुराम स्वामी द्वारा प्रवाहित भक्ति की मदाकिनी मे श्रोता डूब गये

—बलदेवराज आर्य द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट

जयपुर 7 नवम्बर। आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर के तत्वधान में जयपुर के इतिहास में पहली बार जयपुर के आर्य परिवारों का दीपावली स्नेह मिलन आयोजित किया गया जिसमें आर्य समाज के समस्त आर्य परिवारो को सपरिवार निमंत्रित किया गया। इस अवसर पर आर्य परिवारो को सम्बोधित करते हुए श्री सत्यव्रत सामवेदी ने कहा कि आर्य समाज का सगठन निरन्तर टूटता जा रहा है। आर्य परिवारों की नई पीढी आर्य समाज में आ नहीं रही है। विश्व में केवल एक मात्र धार्मिक सगठन ऐसा है जिसके साथ समाज शब्द लगा हुआ है परन्तु समाज गायब है। उस सगठन का नाम आर्य समाज है। हर शहर में सैंकडों और हजारो आर्य परिवार हैं परन्तु वे आर्य समाज नहीं आते। आखिर



श्री भगवती प्रसाद सिद्धान्त भास्कर अनेक वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा के मत्री वैशालीनगर भवन निर्माण के लिये 56 हजार दान दिया।



श्री सुभाषचंद गुप्ता वैध मानसरोवर निवासी वैशाली नगर आर्यसमाज के भवन निर्माण के लिये उनके परिवार ने एक लाख रुपये दान दिया

नई पीढी की आर्य समाज के प्रति अरूचि क्यों है? सामवेदी जी ने कहा कि रविवार को हम एक घटा यज्ञ करते हैं और एक घटा प्रवचन होता है। दो घटें में लोग ऊब कर चले जाते हैं। अनेक वर्षों से हम आर्य समाज मे आ रहे हैं। हम एक दूसरे का नाम तक नहीं जानते। घर जानना तो दूर की बात है जब तक हम एक दूसरे के घर नहीं जायेंगे सुख—दुख के साथी नहीं बनेंगे तब तक



श्री के एल ना प्रधान आर्यसमाज वैशाली नगर जन्होंने वै० लीनगर मे य [illegible] ने [illegible] करवाये।



आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर के मंत्री श्री प्रवीण [illegible] अपनी धर्म पत्नी के साथ बाएं बैठे हुए आर्य जगत के प्रसिद्ध लेखक डा. ओम प्रकाश वेदालकार

आर्य समाज के प्रति नई पीढी को कोई रूचि नहीं होगी। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक सुरक्षा चाहता है। सामवेदी जी ने कहा—

इसी शहर में कई साल से
मेरे कुछ करीबी अजीज है।
उन्हें मेरी कोई खबर नहीं
मुझे उनका कोई पता नहीं।

एक विचारधारा के होकर भी सगठित न हो पाना यह आश्चर्य का विषय है। हमें नई पीढी की रूचि के अनुरूप कार्यक्रम तैयार करने चाहिये। आर्य परिवार के सगठन की बात तो सभी करते हैं परन्तु इस दिशा में कोई कार्य नहीं होता। सामवेदी जी को गत दो—तीन महीनों से [illegible] सवार हुई कि हमे [illegible] आर्य परिवार के घर में जाना चाहिये। परिवार के सदस्यों के साथ बैठकर बातचीत करनी चाहिये। सामवेदी जी महीने में 15—20 दिन बाहर रहते हैं। 10—15 दिन जयपुर में रहते हुए उन्हें शिक्षण सस्थाओ के सैंकडों कार्यों को निपटाने के लिए समय देना पडता है। इसके बावजूद जब भी वे जयपुर रहते हैं तो अपनी कार लेकर आर्य परिवारो से मिलने चले जाते हैं। [illegible] 3 मास मे [illegible] सैंकडो परिवारों से सम्पर्क किया। [illegible] पीढी से भी मिले। [illegible] पीढी आर्य परिवार सघ की योजना सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। दीपावली से कुछ दिन पूर्व अचानक उन्होंने दीपावली के अवसर पर आर्य परिवार सघ के स्नेह मिलन आयोजित करने का निर्णय लिया और नई पीढी से कहा कि इस आयोजन में केवल भक्ति गीत होंगे और [illegible] सपरिवार भाग लें।

सामवेदी जी ने श्री राजकुमार साहनी एव श्री बलदेव राज आर्य के साथ घर घर जाकर आर्य परिवारों से पुन सम्पर्क किया। आर्य परिवार सामवेदी जी को पहली बार अपने घर में आया देखकर बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि गत 20—30 वर्षो से आर्य परिवारो के निमत्रण के बावजूद भी वे किसी के घर नहीं गए। अत इस अवसर पर उन्हें बिना निमत्रण आए देखकर आर्य परिवारों को आश्चर्य और प्रसन्नता होती।

इस अवसर पर प्रीतिभोज का भी आयोजन किया गया। हमे आशा थी कम से कम आर्य परिवारों के 300 सदस्य इस समारोह में भाग लेंगे परन्तु आयोजन के दिन पहले कुछ निराशा हुई क्योंकि मानसरोवर में आर्य परिवार सजापार्क आने के लिये एकत्रित ही नहीं हुए। 300 लोगों के भोजन की व्यवस्था थी परन्तु 100 लो[illegible] के आने की भी सम्भावना नहीं थी परन्तु हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब साय 6.30 बजे तक लगभग 480 व्यक्ति समारोह में आ गए। तत्काल 180 अतिरिक्त व्यक्तियों की भोजन की व्यवस्था की। समारोह में उपस्थित सभी उपस्थित आर्य जन इस आयोजन की भूरि—भूरि प्रशसा कर रहे थे। अधिकाश परिवारों पहली बार परिचय हुआ। नई पीढी के अनेक डॉक्टर थे अनेक इजीनियर थे अनेक बडे—बडे व्यवसायी थे अनेक प्रोफेसर एव शिक्षा शास्त्री थे अनेक परिवारों के सुपुत्र और सुपुत्रिया इगलैण्ड अमेरिका कनाडा में बडे—बडे पदों पर कार्यरत हैं।

इस सगीत सध्या के गायक थे श्री राजेश भटनागर जो अपनी सगीत लहरी से श्रोताओं को मत्रमुग्ध कर देते थे। जो आर्य परिवार जीवन भर यह शिकायत करते थे कि आर्य समाज में भक्ति सगीत का अभाव है उस दिन राजेश भटनागर एव परशुराम स्वामी के द्वतत्री को निनादित करने वाले सगीत को सुनकर उनकी यह शिकायत समाप्त हो गई। श्रोताओं ने कहा कि हमें तो यह कल्पना भी नहीं थी कि आर्य समाज के पास ऐसे प्रतिभाशाली सगीतज्ञ भी हैं [illegible] होकर अनेक बार आत्म विस्मृति की स्थिति का अनुभव हुआ।

श्री राजेश भटनागर ने जब कुम्भ के मेले पर अज्ञान अधविश्वास और पाखण्ड के विरूद्ध महर्षि दयानन्द के पराक्रम का वर्णन करते हुए गीत सुनाया" दुदुभी बाज गई सुनते हैं कि गगा उलट गई तो श्रोताओं ने तुमुल करतल ध्वनि से सभागार को गुजा दिया।

श्री परशुराम स्वामी के गीत आर्य वीर बलवान ऋषि दयानन्द आओं ना ने श्रोतागणों को मत्रमुग्ध कर दिया।

उपस्थित आर्य परिवारों ने आर्य परिवार संघ के सफल आयोजन पर श्री सत्यव्रत सामवेदी को बहुत बधाई दी और आग्रह किया कि इस प्रकार के आयोजन वर्ष में अनेक बार होते रहने चाहिये। आर्य समाज के प्रति पूर्णत समर्पित श्री भगवती प्रसाद सिद्धान्त भास्कर ने आर्य परिवार संगठन की आवश्यकता को प्रतिपादित करने वाली कविता सुनाई।

सामवेदी जी ने कहा कि यदि [illegible] के एक लाख परिवार भी संगठित हो जाए तो विश्व में एक क्रान्ति हो सकती है। यदि आर्य समाज के 100 समर्पित कार्यकर्ता भी संकल्प लें तो यह कोई असभव कार्य नहीं है।

जोधपुर में राष्ट्र उत्थान यज्ञ– कुछ झांकियाँ

आर्य वीरदल की साहसिक यात्रा का प्रेरणादायक इतिहास

विश्व को आर्य बनाना ही आर्य समाज का लक्ष्य –स्वामी अग्निवेश

राजस्थान प्रान्त के जोधपुर की एक छोटी सी बस्ती पाबूपुरा आदिवासी नायक जाती जिनका मूल काम जगलों मे घूमकर वनस्पति पशु घासादि से स्वय का पोषण करना था। मद्य सेवन जिनकी सस्कृति में था इसी तरह अनेक रूढियों आदि से ग्रसित लोग पिछले 100 वर्षों से भी अधिक समय से निवास करते रहे हैं। लगभग 27 वर्ष पूर्व यहा स्व मदनसिह आर्य द्वारा आर्यवीर दल अर्जुन शाखा' की स्थापना की गई ओर महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित वैदिक धर्म के मार्ग को अपनाने की परम्परा आरम्भ की। थोडे दिन बाद ही यहा आर्यसमाज की भी स्थापना हुई।

आर्य वीरदल राजस्थान के सस्थापक स्व मदनसिह आर्य सबसे पहले स्वामी अग्निवेश जी को लेकर यहा पाबूपुरा आये। उन्होने यहा आर्य समाज के माध्यम से उस समय मृत्यु भोज तथा नशाखोरी के विरूद्ध सघर्षरत युवको के साथ वहा के गाववासियो को भी सम्बोधित किया और उन्होने शिक्षा ग्रहण करने धूम्रपान शराब मास भक्षण आदि छोडकर आर्य बनने की प्रेरणा दी। उन्होने बेहद खर्चीले मृत्युभोज तथा रूढीग्रस्त हानिकारक रीतिरिवाज बदलने की बात करते हुए जीवन को वैदिक सस्कारों के अनुसार चलाने का उपदेश दिया। तब से यहा के निवासी एव आर्य युवको ने उनकी दी गई शिक्षा एव प्रवचन पर मन वचन एव कर्म से लगते हुए पिछले 27 वर्षो से लगभग 10000 आबादी वाले नायक समाज से मृत्युभोज को समूल समाप्त कर दिया। शराब खोरी पर प्रतिबन्ध लगाते हुए सामाजिक दण्डात्मक प्रक्रिया आरम्भ की। बच्चों को पढाने लिखने लगे और यहा की सामाजिक आर्थिक एव धार्मिक दशा सुधरने लगी।



पाबूपुरा आर्य समाज के प्रधान श्री भवरलाल नायक स्वामी अग्निवेश जी का सम्मान करते हुए



पाबुपुरा आर्य समाज के अध्यक्ष श्री ओमप्रकाश आर्य श्री सत्यव्रत सामवेदी का सम्मान करते हुए

पाबूपुरा हालाकि आदिवासी गरीब शोषित वर्ग अनुसूचित जाति जनजाति के लगभग शतप्रतिशत निवासियो की बस्ती है किन्तु यहा के लोग हीन भावना के शिकार कभी नहीं हुए और न ही कभी उनके दलित होने का भय उन्हें लगा क्योंकि स्व मदनसिह एव स्वामी अग्निवेश के मार्गदर्शन ने उन्हे साहसी बना दिया था तथा वैदिक मार्ग ने उनके आत्मबल की वृद्धि कर दी थी। स्वामी जी द्वारा वर्तमान समय में पूर विश्व मे सभी सप्रदायो मे धर्म प्रचार अर्थात धर्म की असली धारणा क्या है? किस तरह सप्रदाय चल सकते हैं ऐसे कार्यक्रम से प्रेरणा लेकर उनके 'भारत निर्माण महाभियान' के तहत 'मिल के चलो' कार्यक्रम की कड़ी में राष्ट्र उत्थान यज्ञ के नाम से साम्प्रदायिक सद्भावना एव देश के बिगडते धार्मिक राजनैतिक सामाजिक एव आर्थिक हालात पर चिन्तन एव कार्य की दिशा निश्चित करने हेतु दिनाक 19 10 2002 को कार्यक्रम तय किया गया। पाबूपुरा निवासी आर्य समाज के अनेक प्रधान रहे एव आर्य समाज के अनेक सम्मेलनों सती प्रथा के विरूद्ध 'दिल्ली से देवराला पदयात्रा' में भागीदारी निभाने वाले भवरलाल नायक ने ही उपरोक्त कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की और गुलाबचन्द आर्य (छोटे भ्राता) श्री यशपाल मेहता एव के महेन्द्र माथुर के आर्थिक सहयोग के आश्वासन पर स्वामी जी को फोन पर बताया कि पाबूपुरावासी पाबूपुरा मे राष्ट्र उत्थान यज्ञ का आयोजन करना चाहते हैं। स्वामी ने भवरलाल नायक को श्री रामसिह आर्य उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राज से सम्पर्क कर कार्यक्रम निर्धारित करने का निर्देश दिया। स्वामी जी के निर्देशानुसार श्रीरामसिह जी के दिशा निर्देश में पाबूपुरा पचायत समिति एव आर्यसमाज पाबूपुरा की बैठक मे राष्ट्र उत्थान यज्ञ करने का प्रस्ताव पारित कर कार्य आरम्भ किया गया एव आज ही के दिन राज प्रदेश पूर्व सैनिक काग्रेस के प्रदेशाध्यक्ष के महेन्द्र माथुर के द्वारा पूर्व सैनिक सगठन एव आर्य वीर दल राज के साथ मिलकर कार्य करने की घोषणा की गई।

राष्ट्र उत्थान रैली दिनाक 13 10 02 को आर्य वीरदल राजस्थान के अध्यक्ष श्री रामसिह आर्य द्वारा ओ३म का झडा दिखा कर रैली को रवाना किया। रैली जोधपुर के विभिन्न क्षेत्रो से गुजरती हुई 150 आर्यवीरो की 60 दुपहिया एव दो कारों तथा एक टैक्सी सहित यह सद्भावना सदेश पत्र बाटती हुई महर्षि दयानन्द स्मृति भवन से आरम्भर होकर पुन यही समाप्त हुई। रैली का नेतृत्व भवरलाल नायक आर्यवीर दल जोधपुर के अध्यक्ष श्री गणपतसिह पवार व सचालक नारायणसिह आर्य ने किया।

पूरे कार्यक्रम की व्यवस्था राष्ट्र उत्थान यज्ञ समिति के सयोजक भवरलाल नायक की देखरेख में सचिव श्री पूनमसिह शेखावत पचायत समिति के अध्यक्ष ओमप्रकाश आर्य पचगण पाचूराम जी बिंवाल बिरदाराम जी छगन लाल जी रामदेव जी राकेशजी सचिव भवरलाल खाल्डू प्रभुराम सिसोदिया श्रीकिशनजी मदनजी हठवाल, रतनजी एव दीपक जी द्वारा की जा रही थी। आर्य समाज के प्रधान श्री भवरलाल आर्य मत्री नेमीचद आर्य देवकिशन आर्य भवरलाल आर्य सिसोदिया रोशनलाल आर्य जयनारायण आर्य सुखदेव आर्य गणेश आर्य रेखराज सहित सैंकडो आर्यवीर व्यवस्था में लगे रहे।



स्वामीअग्निवेश जी श्री सत्यव्रत सामवेदी एव श्री आर क सास्त्री का अनेक आर्यवीरों द्वारा जोधपुर रेलवे स्टेशन पर स्वागत करते हुए



राष्ट्र उत्थान यज्ञ समारोह मे सभा को सम्बोधित करते हुए श्री सत्यव्रत सामवेदी साथ मे बैठे स्वामी अग्निवेश जी

19 10 02 को प्रात विश्वविख्यात आर्य सन्यासी स्वामी अग्निवेश जी एव आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यवाहक प्रधान श्री सत्यव्रत सामवेदी जी के जोधपुर पहुचने पर सैंकड़ों आर्यवीरों ने ओ३म् की पताकाए हाथ में लिए आर्य समाज के नारों से तथा महर्षि दयानन्द की जयघोष से वातावरण को गुजयामान करते हुए उन्हे एक रैली के रूप में स्वागत के साथ पाबूपुरा में लेकर आये। स्वामी एव सामवेदी जी के ठहरने की व्यवस्था श्री गुलाबचद आर्य के निवास 'गगाकुटीर' मे की गई थी।

साय 4 बजे राष्ट्र उत्थान अग्निहोत्र कार्यक्रम आरम्भ हुआ। अग्निहोत्र के ब्रह्मा आर्य समाज जोधपुर के प्रधान हनुमानप्रसाद गौड थे जबकि आर्य समाज पाबूपुरा के पुरोहित सुखदेव आर्य के पौरोहित्य मे आर्य समाज पाबूपुरा की वीरागनाओ द्वारा मधुर स्वरो मे वैदिक मत्रोच्चारण राष्ट्र प्रार्थना एव स्वर ताल सहित वैदिक प्रार्थना के साथ अग्निहोत्र सम्पन्न हुआ तत्पश्चात राष्ट्र उत्थान यज्ञ सत्सग सभा आरम्भ हुई। आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यवाहक प्रधान श्री सत्यव्रत सामवेदी जी के सभापतित्व मे इस सभा के मुख्य यजमान श्री राजेन्द्रसिह सोलकी अध्यक्ष नगर विकास न्यास जोधपुर थे जबकि विशेष यजमानो मे जोधपुर के विधायक श्री जुगल काबरा अन्य पिछडा वर्ग आयोग राज के अध्यक्ष श्री विजयसिह राज प्रदेश पूर्व सैनिक काग्रेस के अध्यक्ष के महेन्द्र माथुर आर्य प्रतिनिधि सभा राज के उप प्रधान श्रीरामसिह आर्य शहर खतीब काजी मोहम्मद अयूब असारी मारवाड हज वेलफेयर सोसायटी के अध्यक्ष हाजी हाशम खा मारवाड मुस्लिम एज्यूकेशनल सोसायटी के सदर महासभा जोधपुर के सदर हाजी अजीत खा कौमी सद्भावना समिति के अध्यक्ष जनाब आजम जोधपुरी आर्य वीर दल जोधपुर के अध्यक्ष श्री गणपतसिह पवार तथा सचालक नारायणसिह आर्य थे।

इसके पश्चात राष्ट्र उत्थान यज्ञ के प्रणेता एव मुख्य वक्ता स्वामी अग्निवेश जी जब अपना भाषण प्रारम्भ किया तो हजारो आर्य वीरों के उल्लास और उमग का अजीब नजारा था। हजारों नवयुवक खडे हो गए और वैदिक धर्म की जय युग पुरुष महर्षि दयानन्द की जय क्राति शिरोमणि प रामप्रसाद बिस्मिल की जय देश के शहीदों की जय आर्य समाज जिन्दाबाद ओ३म का झडा ऊँचा रहे के नारो से धरती और आकाश गुजाने लगे। बडी मुश्किल से उन्हे नारे लगने से रोका गया और तब स्वामी का भाषण प्रारम्भ हो सका।

स्वामी जी ने कहा कि आज देश के सामने बडा खतरा साम्प्रदायिकता है। यह दुख की बात है कि आर्यसमाज के अनुयायी भी इन साम्प्रदायिक ताकतो की सेना मे खडे हो गए हैं। आर्य समाज की कमजोरी के कारण ही साम्प्रदायिकता के पिशाच ने अपना सिर उठाया हुआ है और हमारी धरती खून से लथ–पथ हो रही है।

स्वामी जी ने कहा कि आज धर्म की धारणा गलत हो गई है। पूजा उपासना योग और भक्ति ने पाखण्ड का रूप ले लिया है। विजयदशमी पर हिन्दू रावण का पुतला जलाकर खुश हो जाते हैं किन्तु पास ही खडे असली रावण उनकी इस मूर्खता पर हसते हैं क्योंकि उस रावन ने तो एक सीता का हरण किया, किन्तु आज के ये रावण देश की हजारों सीताओं पर अत्याचार

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग दें
1 देश–विदेश की आर्य समाजो मे घटित घटनाओ से आर्य जगत को अधुनातन जानकारी देना।
2 आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।
3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोडना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओ पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।
4 आर्य समाज द्वारा धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनोतिक क्षत्र मे किये जा रहे कार्यो की जानकारी दना।
5 समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओ का आर्य जगत को परिचय देना।
6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एव युवको का सगठन खडा करना।
7 आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाओ के माध्यम से देश मे राष्ट्रभक्त छात्र शक्ति खडी करना।
8 विश्व के आर्य परिवारो का सगठन बनाना।
9 देश के 100 विद्वानो की परिषद बनाना।
10 विश्व की समस्त भाषाओं में वेद सन्देश प्रकाशित कर वैदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।
11 विश्वशाति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरुद्ध मुहिम छेडना तथा देश मे राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्रान्ति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीर्वाद दे कि परमपिता परमेश्वर हमे इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामथ्य द।

तन मन धन से सहयोग दे
पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने का कष्ट करे।

बलात्कार दलितों । हत्याए करते हुए खुले आम घूम रहे हैं। हमारे देश मे पूजा के पाखण्ड का अन्धानुकरण किया जा रहा है। हमारे देश में सबसे अधिक धन की देवी लक्ष्मी का पजन होता है किन्तु आज हमारा देश सबसे गरीब है। इस देश में सरस्वती पूजन सबसे अधिक होती है पर हमारे देश में सबसे अधिक अनपढ है। उन्होंने कहा भगवान राम कृष्ण,लक्ष्मी सरस्वती के केवल नाम लेने से काम नही चलेगा अपितु उनके आदर्शों को अपने जीवन मे ढालना होगा तभी हमारे देश का उत्थान होगा।

राष्ट उत्थान यज्ञ समारोह म स्वामी अग्निवेश जी सम्बोधित करते हए

उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि देश में साप्रदायिक सद्भावना स्थापित करने एव गैर बराबरी अन्याय जातिवाद भ्रष्टाचार समाप्त करे प्रेम भाईचारा एव एकता रखने के आर्य समाज के काम मे जोधपुर के मुस्लिम नेताओं ने साथ देने का वादा किया है। उन्हें हम आर्यसमाज का सहायक सदस्य बनायेंगे। उन्होने कहा कि आर्यसमाज क साथ हमारी सुरक्षा सेनाओं का पूर्व सैनिक सगठन भी आगे बढकर हमारा साथ देना चाहता है। स्वामी जी ने कहा कि अब तो हिन्दू समाज जिसकी ये लोग ठेकेदारी करते हैं वह भी इनकी साम्प्रदायिक हिंसा को नही मानता। हिन्दू, मुस्लिम सिक्ख ईसाई आदि सभी को आर्य समाज अपने आगोश मे लेकर समाज में व्याप्त हिसा एव बुराईयो को समाप्त करने मे आगे बढगा। सभी मिलकर चलें। अंग्रेजो से पोषित हिन्दू मुस्लिम एकता में दरार पैदा करने वाले राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ और विश्व हिन्दू परिषद् को हारना पडेगा। कट्टरपथी लोगों को देश के टुकडे नहीं करने दिया जायेगा।

स्वामी जी ने कहा कि हिन्दुत्व के नाम पर नफरत और घृणा पैदा करने वाले हिन्दुओं के सबसे बडे दुश्मन हैं। धर्म परिवर्तन पर रोक लगाने का राग अलापने वाले दलितों को क्यों नहीं गले लगाते? उनसे घृणा और नफरत क्यों करते है? यही कारण है कि वे अन्य धर्मो में प्रविष्ठ हो रहे हैं और हिन्दुओं की सख्या घटती जा रही है।

उन्होंने धर्म परिवर्तन का विरोध करते हुए कहा कि धर्म परिवर्तन से भी गैर बराबरी की समस्या हल नहीं होती। धर्म परिवर्तन करने वालों के साथ भी जिस धर्म मे वे जाते हैं उसमें उनका दर्जा निम्न होता है। स्वामी जी ने कहा कि महर्षि दयानन्द ने ईश्वर द्वारा रचित प्राचीनतम वैदिक ज्ञान का हवाला देते हुए कहा कि मानव मात्र एक है। अपने गुण कर्म स्वभाव के कारण उसका वर्ण भिन्न है। किन्तु उनके साथ भेदभाव और ऊँच–नीच की भावना का उन्होंने विरोध किया। स्त्री सम्मान तथा यज्ञोपवीत अग्निहोत्र करने हेतु सबसे लिए आर्यसमाज ने दरवाजे खोल दिये। आर्यसमाज पहले से सारे समाज मे एकता प्रेम भाईचारा बढा रहा था। आर्य समाज के साथ रहमत उल्ला असर्गी खेंका जैसे हाजी मुसलमान थे। क्या आवश्यकता थी आर.एस. एस की स्थापना की जिसने हिन्दू मुस्लिम एकता मे दरार पैदा कर देश को हिंसा की आग मे झोंक दिया।

स्वामी जी ने कहा कि आर्य समाज सभी धर्मो के अनुयायियो का अपना सहायक सदस्य बनायेगा। उन्होंने कहा जरूरी नहीं कि आप हमारी सभी बाते मजूर करो जितना कर सकते हो करो अच्छे बनने का प्रयास करो। स्वामी जी ने सभी को मिकर चलने के नारे के साथ अपना भाषण समाप्त किया।

मुख्य यजमान श्री गजेन्द्र सोलकी ने अपने उद्बोधन में कहा कि आर्यसमाज द्वारा स्वामी अग्निवेश जी के द्वारा चलाये जा रहे अभियान में वे अपने साथियों सहित सदा उनका साथ देते रहेंगे।

विशेष यजमान जोधपुर शहर के विधायक श्री जुगल काबरा ने कहा कि पहले साम्प्रदायिक सद्भावना जितनी थी उतनी अब नहीं रही। उन्होंने कहा कि राष्ट्र उत्थान यज्ञ जैसे कार्यक्रमों से समाज में जागरूकता आयेगी और साम्प्रदायिक सद्भावना का माहौल बनेगा।

श्री विजयसिह शहर खतीब मो अयूब असारी हासम खा आदि नेताओ ने आर्य समाज द्वारा चलाये जा रहे अभियान का समर्थन किया और मिलकर चलो अभियान में सम्मिलित होने का भरोसा दिलाया।

आरम्भ में राष्ट्र उत्थान यज्ञ के सयोजक भवरलाल नायक तथा उनके साथियो ने स्वामी जी एव अन्य अतिथियों को दुशालें भेंट कर उनका सम्मान स्वागत किया। आर्य प्रतिनिधि सभा के उप प्रधान श्री रामसिह आर्य ने धन्यवाद ज्ञापित किया और कहा कि इस तरह से अनेक आयोजन राजस्थान में किये जायेगे।

भवरल लाल नायक
सयोजक

आर्य परिवार सघ, जयपुर स्नेह मिलन

श्री बलदेव राज कार्यकारीप्रधान आर्यसमाज आदर्श नगर जयपुर अपनी धर्म पत्नी के साथ

श्री रवि नैयर अध्यक्ष राजापार्क व्यापार मण्डल अपनी धर्म पत्नी श्रीमती पारूल नैयर एव माताजी श्रीमती दमयन्ती नैयर के साथ

श्री एस.पी.सिह पूर्व अभिय विद्युत विभाग अपनी धर्म पत्नी पुत्री एव पुत्र वधू के साथ

टका सिंह उपदेशक महाविद्यालय के पूर्व स्नातको से अपील

कुछ पूर्व स्नातकों ने ट्रस्ट को सम्पर्क कर यह आग्रह किया कि सभी पूर्व स्नातकों को एक सम्पर्कसूत्र में बाध 'कौन–क्या और कहा'? नाम से एक डायरेक्ट्री उनके चित्र सहित प्रकाशित की जाय एवं आने वाले ऋषिबोधोत्सव पर पूर्व स्नातक मधुर मिलन सम्मेलन का भी आयोजन किया जाए। इसी उपलक्ष में सभी पूर्व स्नातकों से आग्रह है कि निम्नलिखित सयोजकों से शीघ्र सम्पर्क करें–

प रामकृष्ण शर्मा	पं मेघश्याम आर्य (शास्त्री)
पो.बोक्स न. 40243	आर्यसमाज,[illegible]–2
नैरोबी,केन्या(ईस्ट अफ्रीका)	सी–ब्लॉक [illegible]

सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक 5ग–13 जवाहर नगर,द्वारा नीतू प्रिन्टिंग प्रेस,बाबा हरिशचन्द्र मार्ग जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि 652667 का. 622056 e-mail [illegible]
आर्य समाज विद्या समिति एव शिक्षा समिति आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज राजापार्क जयपुर–4
राजस्थान

पजियन सख्या
RAJHIN(RNI)/2000/2567
डाक पजीकरण
सख्या RJ 2637

प्रति 2
श्री धर्मपाल आर्य
उप कलपति
गुरूकुल कागडी
विश्वविद्यालय हरिद्वार–

[illegible] मानवता एवं सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र

//ओ३म्//
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य नीति

वर्ष 2 अंक 45 21 नवम्बर 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पंजियन संख्या RJ-2637/2001 वार्षिक मूल्य 75 रुपये

काश्मीर में खूनी दरिंदों के रहनुमा

मुफ्ती मोहम्मद सईद का राज्याभिषेक

धरती का स्वर्ग फिर बेकसूर लोगों और बच्चों के खून से लाल होगा

सत्यव्रत सामवेदी

जयपुर 20 नवम्बर। काश्मीर में चुनाव के बाद फारूख अब्दुल्ला की पराजय पर काश्मीर की जनता ने जश्न मनाया और चुनाव के नतीजों को लोकतन्त्र की विजय और जनता की आकांक्षाओ के अनुरूप माना परन्तु मुफ्ती की ताजपोशी के बाद जनता की खुशियों पर तुषारापात हो गया। उस दिन काश्मीर की जनता को यह महसूस हुआ कि मुफ्ती की ताजपोशी प्रच्छन्न रूप से आतकवादियो की ताजपोशी थी।

मुफ्ती पर आतकवादियो के साथ मिलीभगत का आरोप लगता रहा है। मुफ्ती की बेटी रूबिया सईद को आतकवादियों द्वारा बन्धक बनाना और इसके बदले खूनी दरिंदों को छोड़ना जनता की निगाहो मे मुफ्ती की चाल मानी जाती है। भारतवर्ष के इतिहास मे यह एक राष्ट्रीय शर्म की घटना थी जिसे विश्व ने वीर राष्ट्र की कायरता की अभिव्यक्ति माना। भारत सरकार ने बेशर्मी से राष्ट्र की अस्मिता को कुचलकर मुफ्ती की बेटी को बचाने का अक्षम्य अपराध किया। देश की अस्मिता की रक्षा के लिये कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र अपनी समस्त जनता की कुर्बानी देने के लिये तैयार रहता है। कारगिल युद्ध में भारत क सैंकडो नौजवाना ने देश की सरहद की रक्षा के लिये अपनी जवानी की आहुति दे दी। कितनी माताओं की गोद सूनी हो गई कितनी बेटियों का सुहाग लुट गया परन्तु मुफ्ती की बेटी की रक्षा के लिये भारत सरकार ने भारत की प्रतिष्ठा को दाव पर लगा दिया। रूबिया के बदले जिन खूखार दरिंदों को छोडा गया उन्हीं में से एक पिशाच ने नेपाल से भारतीय विमान का अपहरण किया था और अफगानिस्तान के हवाई अड्डे पर भारत माता की एक नवविवाहिता बेटी के पति का उसकी आखो के सामने गला का" दिया। भारत माता की इस बिटिया को आज तक भी इस असह्य हादसे से छुटकारा नहीं मिला। आज तक भी उसके आसू नहीं थमे है और सूनी आखों से असीम आकाश की ओर निहारती रहती है। वह विक्षिप्त हो गई है। भारतवासियों को चुल्लू भर पानी में डूब मरने की अनुभूति उस दिन हुई जब विमान अपहरणकर्ता खूनी दरिंदों के आदेश पर भारत के रक्षा मंत्री जसवतसिंह इसानियत के दुश्मनों को जेल से निकालकर ससम्मान अपने साथ अफगानिस्तान विदाई देने गए। उस दिन हमारे राष्ट्र का सिर शर्म से झुक गया।

मुफ्ती मोहम्मद सईद ने चुनाव के समय अपने घोषणा पत्र में प्रतिज्ञा की थी कि यदि उनकी पार्टी सत्ता में आई तो उग्रवादियों को छोड दिया जाएगा। इसी घोषणा पत्र से उत्साहित होकर उग्रवादियों ने मुफ्ती का साथ दिया और वह काश्मीर के मुख्यमत्री बनने में सफल हुए यद्यपि उनके दल के विधायको की सख्या नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस के विधायको से भी कम थी। कांग्रेस के नेता गुलामनबी आजाद को मुख्यमत्री नहीं बनने दिया गया क्योंकि उन्होने उग्रवादियो के सफाए की मतदाताओं के सामने कसम खाई थी। गुलामनबी आजाद की इसी कसम पर विश्वास करक जम्मू क्षेत्र ने कांग्रेस के 15 प्रत्याशियो को विजयी बनाया और भाजपा का केवल एक प्रत्याशी ही विधानसभा जाने मे सफल हुआ।

मुख्यमत्री बनने के बाद मुख्यमत्री बनने की कोई खुशी नहीं है–सिर काटो के ताज से झुका हुआ है

क्या काश्मीर की जनता उग्रवादियो को छोडने के पक्ष मे है?

मुफ्ती मिया कहते हैं कि वे अपनी पार्टी के घोषणा पत्र के अनुसार उग्रवादियों को छोड़ने के लिये मजबूर है परन्तु हम पूछना चाहते हैं कि क्या काश्मीर की जनता ने उन्हें उग्रवादियो को छोडने का जनादेश दिया है? यद्यपि फारूख अब्दुल्ला चुनाव हार गये परन्तु काश्मीर में सर्वाधिक मत नेशनल कांफ्रेंस को मिले हैं। इसके बाद मतदाताओं ने कांग्रेस को तरजीह दी है जिसने उग्रवादियों के सफाए की घोषणा करके वोट मागे थ।

मुफ्ती साहब का यह तर्क भी निराधार है कि उन्हें अपनी पार्टी के घोषणा पत्र के अनुसार उग्रवादियों को छोड़ना ही पड़ेगा। यदि मुफ्ती साहब अन्य दलों से गठबधन किये बिना सरकार बनाते तब उनके तर्क में कोई दम होता। अब मुफ्ती साहब यह कह सकते हैं कि गठबधन की मजबूरियों के कारण उग्रवादियों को रिहा नहीं किया जा सकता। जब काश्मीर में पी डी पी को स्पष्ट बहुमत मिलेगा तब उग्रवादियों को छोड़ दिया जाएगा। भाजपा ने भी तो अपने घोषणा पत्र में राम मदिर निर्माण और कामन सिविल कोड का वचन दिया था परन्तु आज भाजपा साफ कहती है कि गठबधन की सरकार के कारण वे अपने मुद्दों को अमली जामा नही पहना सकते। जब भाजपा जैसी जिद्दी हिन्दुत्व वादी पार्टी अपने महत्वपूर्ण मुद्दों को तिलाजलि दे सकती है तो मुफ्ती साहब को उग्रवादियो के छोडने के मुद्दों को तिलाजलि देने मे क्या हिचक है?

इसके अतिरिक्त मुफ्ती साहब को जम्मू और लद्दाख तो क्या काश्मीर घाटी मे भी बहुमत नहीं मिला है।

उग्रवादियों को छोड़ना देशद्रोह

आखिर मुफ्ती साहब को उग्रवादियों को छोडने से क्या मिला? यदि उग्रवादियो से नरमी बरतने पर या बातचीत के जरिये मसला हल करने मे कोई मदद मिलती तो सारा राष्ट्र इनका समर्थन करता। मुफ्ती ने मुख्यमत्री बनते ही जम्मू काश्मीर लिबरेशन फ्रट के अलगाववादी नेता यासीन मलिक को रिहा कर दिया। यासीन को इस साल पोटा क तहत गिरफ्तार किया गया था। यासीन का काम उग्रवादियों को आर्थिक सहायता देना है। यासीन को नाटकीय ढग से सवाददाता सम्मेलन के बाद गिरफ्तार किया गया था। एक दम्पति हवाला के माध्यम से यासीन के लिये एक लाख डालर लेकर आया था। यासीन इसी काले धन के जरिये उग्रवाद की आग को भडका कर काश्मीर के बेकसूर लोगों और बच्चो की हत्या करवाता है और स्वय ऐययाशी करता है। उसकी बीमारी पर देश–विदेश में लाखो रुपया इसी काले धन से व्यय किया जाता है।उसकी गिरफ्तारी से पता चलता कि यह काला धन भारत मे भेजकर उग्रवाद की नारकीय अग्नि भडकाने वाले देश द्रोही कौन है? पर अब तो जेल से रिहा होकर वह पिशाच काश्मीर की सडको पर दहडता फिरता है। क्या काले धन पर ऐय्याशी करने वाले मौत के सौदागर को जेल से छोड़ना देश द्रोह नहीं है? कानून की अवज्ञा करने का हक तो प्रधानमत्री और राष्ट्रपति को भी नहीं है तब यासीन को किस कानून के तहत कानून की अवज्ञा करने की खुली छूट दी गई?

देशद्रोही यासीन मलिक

मुफ्ती साहब को गलतफहमी है कि वे प्रेम से या नरम नीति से धर्मान्ध जेहादियो का हृदय परिवर्तन कर सकते हैं। अलगाववाद इन पिशाचो का धधा है। अलगाववाद के नाम पर

इन्हें विदेशों से करोड़ो रुपये मिलते हैं। काश्मीर समस्या के समाधान में इन लोगों की कोई रूचि नहीं है। इन लोगों का ध्येय देश भक्त लोगों का कत्लेआम करना है जो काश्मीर समस्या के समाधान के लिए आवाज उठाते हैं।

मुफ्ती साहब! जेल से छूटने पर यासीन ने आपको ललकारते हुए कहा– मुफ्ती काश्मीर में कहीं भी मेरे खिलाफ चुनाव लड़कर देख लें। यासीन ने मुफ्ती की सरकार की वैधता को चुनौती दी है। यासीन ने जेल से छूटने के बाद फिर घोषणा की है कि वह काश्मीर की आजादी का समर्थक है और वह भारतीय सविधान को नहीं मानता है। क्या हमारा सविधान देशद्रोही को जेल से छोड़ने की इजाजत देता है?

यासीन मलिक कागजी शेर

काश्मीर का यह अपाहिज बीमार और कायर सियार कागजी शेर का स्वाग रच कर मुफ्ती को चुनाव लड़ने की चुनौती दे रहा है और कहता है कि हुर्रियत्त काफ्रेस काश्मीर की जनता का प्रतिनिधित्व करती है। अगर यासीन काश्मीर का इत ा लोक प्रिय नेता है तो उस े और उसकी हुर्रियत कार्फ्रेंस ने चुनाव मे १ ाग क्यो नही लिया? जब उसे मालूम था कि मुफ्ती उग्रवादियों को जेल से छोड़ देगा तो मुफ्ती की मदद करके उसने पी डी पी को बहुमत क्यों नही दिलाया?

यासीन द्वारा जेठमलानी की आलोचना

यासीन मलिक ने काश्मीर समस्या को सुलझाने के लिए गठित काश्मीर कमेटी के अध्यक्ष राम जेठमलानी पर दोहरे मानदण्ड अपनाने का आरोप लगाते हुए कहा कि राम जेठमलानी ने पाक अधिकृत काश्मीर को पाकिस्तान को देने भारत को जम्मू और लद्दाख देने व काश्मीर घाटी को आजाद करने का प्रस्ताव दिया था। यदि जेठमलानी ने इस प्रकार का प्रस्ताव दिया है तो उसकी सारे राष्ट्र द्वारा भर्त्सना होनी चाहिये। हमें यह भी मालूम नहीं कि यासीन मलिक के इस आरोप में कितनी सच्चाई है?

मुफ्ती सरकार को देशहित में काम करने का आदेश दिया जाए

मुफ्ती की नीति से उग्रवादियों के हौसले बुलन्द हो रहे हैं। पाकिस्तान से खूनी दरिंदों की फिर घुसपैठ शुरू हो गई है। उग्रवादी फिर सिर उठाने लगे हैं। उग्रवादी पुन बेकसूर लोगों और बच्चों के खून से धरती के स्वर्ग को लाल करने की योजना बना रहे हैं। भारत सरकार को सख्ती से काम लेना चाहिये और मुफ्ती को आदेश देना चाहिये कि वह उग्रवादियो से सख्ती से निपटे और इसमे कोई भी ढील बर्दाश्त नहीं की जाएगी। काश्मीर की स्वतन्त्रता को भारत पाकिस्तान और चीन भी मजूर नहीं करता। हुर्रियत्त कार्फ्रेंस को मालूम है कि अन्तर्राष्ट्रीय नियमो एव कानून के तहत्त काश्मीर को पाकिस्तान में नहीं मिलाया जा सकता है। हुर्रियत कार्फ्रेंस यह भी जानती है कि सै य बल से पाकिस्तान सात जनम तम भी काश्मीर को नहीं हथिया सकता है।

1948 के युद्ध विराम के बाद पाकिस्तान ने हमेशा जोर आजमाईश की है परन्तु उसे हमेशा ही धूल चाटनी पड़ी है और पाकिस्तान के वजीरे आजमों को कब्र में पनाह लेनी पड़ी है।

मुफ्ती सरकार को यह सोचना चाहिये कि उनकी गठबधन सरकार ने शामिल पी डी पी काग्रेस सी पी एम और पैन्थर्स पार्टी को केवल 38 प्रतिशत मत मिले हैं। यह गठबधन सरकार न तो काश्मीर प्रतिनिधित्व करती है और न ही यह काश्मीर की जनता की आवाज है।

मुफ्ती मोहम्मद सईद को मुख्यमंत्री पद से हटना होगा

मुफ्ती साहब मुख्यमंत्री पद पर कुछ दिन के ही मेहमान हैं। इन्हें यह कुर्सी छोड़नी पड़ेगी। यह गठबधन चल नहीं सकता क्योंकि काग्रेस की उग्रवादियों से सख्ती से निपटने की नीति है और गठबधन में शामिल पैन्थर्स पार्टी तो जम्मू को काश्मीर से अलग प्रान्त बनाने के लिए आन्दोलन करती रही है। काश्मीर में गठबंधन में शामिल होने के कारण काग्रेस के सामने गुजरात में कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है।

आर्य समाज की प्रतिक्रिया

आर्य समाज हमेशा देशद्रोहियों से सख्ती से निपटने का पक्षधर रहा है। उग्रवादियों को छोड़ने से सारा आर्य जगत क्षुब्ध है। मुफ्ती साहब को सत्यार्थ प्रकाश का षष्ठसमुल्लास पढ़ना चाहिये जिसमें मनुस्मृति के श्लोंको को उद्धृत करते हुए महर्षि ने निर्देश दिया है–

दण्ड शास्ति प्रजा सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्ड विदुर्बुधा ।।

दण्ड प्रजा का शासनकर्ता सब प्रजा का रक्षक सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसीलिये बुद्धिमान लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं।

पर अफसोस की बात यह है कि आज आर्यसमाज की राष्ट्रनिर्माण में कोई भूमिका नहीं है। राष्ट्र की ज्वलत समस्याओं पर उसका कोई चिन्तन नहीं है। यदि आर्य समाज के 10 हजार प्रतिनिधि प्रतिवर्ष राष्ट्र को नई दिशा देने के लिये एकत्रित हो और प्रस्ताव पारित करके सरकारों को देशहित एव जनहित में कार्य करने के लिये बाध्य करें तो राष्ट्र को विनाश से बचाया जा सकता है परन्तु आर्य समाज को अपने झगड़ों से ही फुर्सत नहीं है।

हरियाणा में पांच दलितों की हत्या–दयानन्द की हत्या
धर्मान्ध हिन्दुओं द्वारा सारे राष्ट्र को मुसलमान बनाने की मूर्खता

जयपुर 11 नवम्बर। लगता है कि महर्षि दयानन्द अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द एव आर्य मुसाफिर प लेखराम का प्राणोत्सर्ग व्यर्थ जाने वाला है। डूबती हुई हिन्दू जाति को आर्यसमाज ने बचा कर एक युगान्तरकारी कार्य किया था। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने गुरू के पदचिन्हों पर चलते हुए देश को सदेश दिया था कि इन हरिजनों को गले लगा लो वरना ये गैरों के घर जाएगे और हिन्दू जाति हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगी। स्वामी श्रद्धा न्द ने अप ा सारा जीवन हरिजनो एव दलितो के उत्थान मे समर्पित किया था और हिन्दू धर्म के अत्याचार से पीड़ित होकर जो दलित मुसलमान बन गए थे उन्हे फिर से हिन्दू बनाने के लिए स्वामी जी को अपने प्राणो की आहुति देनी पड़ी थी। आजादी के बाद हिन्दू फिर वही पुरानी लीक पर चलने लगा और आए दिन दलितो एव हरिजनो पर अत्याचार होने लगे। यह अत्याचार का सिलसिला थम ही नहीं रहा है इसीलिये आज की तारीख में भी लाखों हरिजन मुसलमान ईसाई और बौद्ध हो रहे हैं। इसके बावजूद भी हिन्दू चिन्तित नहीं है और अपने कुकर्मों से हरिजनों को मुसलमानों और ईसाइयों की झोली मे डालता जा रहा है। ईसाइयों और मुसलमानों के अरबों डालर धर्म परिवर्तन पर व्यय हो रहे हैं। एक तरफ उड़ीसा मे स्वामी धर्मानन्द के नेतृत्व मे सैंकड़ो कार्यकर्ता अपने प्राणों को हथेली पर रखकर 600 किलो मीटर के क्षेत्र में ईसाइयों का मुकाबला कर रहे हैं और हजारों ईसाइयों को शुद्ध करके वैदिक धर्म में दीक्षित कर रहे हैं और दूसरी तरफ हिन्दू हरिजनों पर अत्याचार करके उन्हें मुसलमान या ईसाई बनने के लिये विवश कर रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह हादसा उस हरियाणा में हुआ जो आर्य समाज का गढ़ माना जाता है हरियाणा के दुलीना गाव में पाच दलितों की निर्मम हत्या ने हि दू धर्म के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। क्या कसूर था इन दलितो का। उन्होंने तथाकथित सवर्णों से कोई बराबरी का अधिकार भी नही मागा था उनके सर्वोच्चता को भी कोई चुनौती नही दी गई थी। इन दलितों पर गौ हत्या का आरोप लगाया गया और इस झूठे आरोप के आधार पर उनकी हत्या कर दी गई। उनकी पत्नियों को विधवा बना दिया गया उनका सिन्दूर लूट लिया और बच्चों को अनाथ बना दिया गया।

हत्यारों ने अपनी पशुता का ही परिचय दिया। पहली बात तो यह है कि उन्होंने गौ की हत्या की ही नहीं थी और हमारी मान्यता यह है कि यदि उन्होंने गौ हत्या की भी हो तो भी उनकी हत्या करना एक महापाप था। हमने ऐसे–ऐसे साधु महात्मा देखें हैं जो गौ रक्षा के नाम पर गौशाला चलाते हैं इनके लिये करोड़ों रुपयों का अनुदान लेते हैं और दूध न देने वाली गौओं को कसाईयों को बेच देते हैं। मनुष्य हत्या पशु हत्या से भी बड़ा पाप है। हत्यारों ने कानून अपने हाथ में क्यों लिया क्या जरूरत है फिर कचहरियों और पुलिस की। ये ढोंगी हिन्दू गाय के चमड़े के जूते पहनेंगे और गौ हत्या के नाम पर मनुष्यों की हत्या करेंगे। धर्मान्ध हिन्दुओं ने लोगों को उकसाया कि गौ वध करने वालों की हम हत्या कर दें अन्यथा इस क्षेत्र का मुस्लिम अधीक्षक उन्हे छुड़वा देगा।

हरिजनों की कुछ जातिया हमेशा से ही मरी हुई गायों का खाल उतारने का धधा करती है और जब कोई गाय मर जाती है तो इन्हीं जातियों को मुर्दा गौ को उठाने के लिए बुलाया जाता है।

हरियाणा में जिन दलितों को मारा गया उनमे चार के नाम थ–दयानन्द राजू, सीताराम और धीरेन्द्र। ये सब खालों का व्यापार करते थे। मा–बाप ने इनका नाम दयानन्द और सीताराम क्यों रखा था। महर्षि दयानन्द दलितों के मसीहा थे जिन्होंने हजारों साल की गुलामी और अत्याचार से पीड़ित दलितों को मुक्ति दिलाई थी। इसी कृतज्ञता भाव से मा–बाप ने अपने बच्चें का नाम दयानन्द रखा होगा। हमें मालूम हुआ है कि ये दलित अत्यन्त धार्मिक वृत्ति के थे और सत्सग में कबीर, रैदास के गीत सुनाया करते थे और राम चरित मानस के पद सुनाया करते थे। इनकी इच्छा थी कि हम अपने बच्चों को पढ़ा लिखा कर किसी अच्छे धधे में लगाये ताकि हमें पशुओ की खाल उतारने के घृणित धंधे से निजात मिल सके।

भारतवर्ष में प्राय दलित भूमि हीन मजदूर है। न चाहते हुए भी इन दलितों को अपने परम्परागत धधो पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इस दुलीना गाव के दलितों ने भी गाय की खाल उतारने के लिए मुर्दा गायो को खरीदा था और जब इ ा मुर्दा गायों को गाडी पर लेकर जा रहे थे तब पुलिस वालों ने उनके पैसे मागे और जब वे पैसे नहीं दे सके तो उन्हे मारपीट कर बद कर दिया गया। कुछ धर्मान्ध हिन्दुओं ने उस समय यह अफवाह फैलाई कि इन दलितो ने गौ वध किया है और इस अफवाह से धर्मान्ध हिन्दुओं ने पुलिस थाने को घेर लिया परन्तु पुलिस ने इन दलितो को बचाने में कोई रूचि नही दिखाई और दलितों को हत्यारों के हवाले कर दिया। जब सारे देश में दलितो की हत्या पर शोर मचा तो हरियाणा की सरकार हरकत में आई और हत्यारों को पकड़ने का प्रयास किया गया परन्तु दुलीना क्षेत्र के 22 गाँवो की पचायत ने संगठित होकर यह निर्णय लिया कि हम हत्यारों को गिरफ्तार नहीं होने देंगे। पुलिस जब हत्यारों को पकड़ने गई तो इन गावो की जनता ने जबर्दस्त प्रतिरोध किया और पेड़ काटकर सड़कों पर मार्ग अवरूद्ध कर दिया। सरकारी गाड़ियों को आग लगा दी गई।

यह कैसी सरकार है जो हत्यारों को नहीं पकड़ सकती और कानून की अवज्ञा करने वालों को दण्ड नहीं दे सकती। हमारा कानून, सविधान कसाइयों के सामने लाचार है, विवश है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस अवसर पर आर्य समाज भी दलितों की रक्षा के लिए नहीं उठा। फिर दलित किस आधार पर जीवित रहें फिर वे धर्म परिवर्तन क्यों नहीं करें। हमने तो यहा तक सुना है कि कुछ आर्य समाजी नेता भी दलितों की हत्या का समर्थन कर रहे थे और कह रहे थे कि अच्छा हुआ जो गौ हत्यारों को मार दिया गया। उन्हें स्वामी श्रद्धानन्द का यह सदेश याद करना चाहिये जो उन्होने दिल्ली में हिन्दुओं को दिया था–यदि तुम्हारी आखों के आगे कुर्बानी के लिए गौमाता जाती हो तो क्रोध और द्वेष का लेश भी अपने अन्दर न आने दो, प्रत्युत परमात्मा से हार्दिक प्रार्थना करो कि वे परम पिता उनकी बुद्धियों को प्रेरणा करें जिससे स्वय गौ माता की रक्षा का भाव उनमें उत्पन्न हो। जितना तुम सहन करोगे और मुसलमान भाईयों को प्रेम का मार्ग दिखाओगे उतना ही भगवान तुम पर कृपा करेंगे।

स्वामी श्रद्धानन्द ने गौ हत्या पर मुसलमानों को मारने की भी अनुमति नहीं दी और तुमने दयानन्द और सीताराम को मार दिया।

दिसम्बर मास में आर्य वीरदल जोधपुर संभाग के लिए गौ और पशुओं का चारा केन्द्र खोलेगा

राजस्थान में आर्य समाजों द्वारा अकाल राहत कार्य प्रारम्भ

आर्यसमाज,दयानन्द मार्ग, बीकानेर ने वार्षिकोत्सव स्थगित कर इस पर व्यय होने वाली धनराशि को अकाल राहत मे उपयोग का निर्णय

आर्य नीति के गत अक में आर्य समाजों से आग्रह किया गया था कि वे अकाल राहत कार्य में जुट जाए और आर्य समाज के इस नियम को अपने जीवन में उतारे—ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।

महर्षि दयानन्द ने वेद का सदेश देते हुए हमें शिक्षा दी कि हम मनुष्य मात्र का ही नहीं अपितु समस्त प्राणि जगत का कल्याण करें और इन प्राणियों में भी गौ रक्षा पर उन्होंने सर्वाधिक बल दिया और वैदिक सस्कृति में गाय को अघ्न्या कहा गया है। वैदिक सस्कृति में गाय के प्रति इतना सम्मान है कि हम उसे गौ माता कह कर पुकारते हैं। महर्षि दयानन्द ने गौ करूणा निधी में गौ की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उसके पालन—पोषण और रक्षा के लिए सर्वाधिक बल दिया और गाय को उन्होंने भारतीय अर्थ तत्र का मेरूदण्ड माना। महर्षि ने वैदिक नित्य कर्म निधि में हमें बलि वैश्व देव यज्ञ करने का निर्देश दिया।

भारतवर्ष में जब—जब भी अकाल पडा है आर्य समाज परोपकार की भावना से प्रेरित होकर भूखे मनुष्यों और पशुओं की रक्षा के लिए दौड पड़ा। भारतवर्ष की जनता आर्य समाज के परोपकार के कार्यों से ही आकृष्ट हुई और आर्य समाज में शामिल होती गई। आज हमने परोपकार का काम छोड दिया है और अब परोपकार केवल भाषणो तक ही सीमित है इसीलिए जनता ने आर्य समाज से सबध विच्छेद कर लिया। न तो हम अब दलितो के पास जाते हैं और न ही भूखों के पास।

गत वर्ष अकाल के समय आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर ने जोधपुर क्षेत्र में अकाल पीड़ितों के लिए 10 लाख रु का अनाज भेजा और श्री रामसिह आर्य और श्री गणतपसिंह पवार के नेतृत्व में सैंकड़ों आर्य वीरों ने जून की चिलचिलाती धूप की परवाह न करते हुए गाव—गाव जाकर अकाल पीड़ितों को अन्न बाटा। अकाल पीड़ितों की सहायता अभियान के माध्यम से आर्य समाज ने पहली बार गावों में प्रवेश किया और आर्य समाज के परोपकार के कार्यों से मुग्ध होकर आर्य समाज का जयघोष किया। इस बार उन्हीं गावों से फिर आवाज आ रही है कि इस बार आर्य समाज हमारी सुध लेने क्यों नहीं आया। गावों से लोगों के श्री रामसिह आर्य एव श्री गणपतसिह पवार के पास फोन आ रहे हैं परन्तु अभी तक भी राहत अभियान नहीं चलाया है। सुना है अलवर में आर्य प्रतिनिधि सभा के पूर्व प्रधान आर्य जगत के दिग्गज नेता श्री छोटूसिह आर्य ने मुख्यमत्री सहायता कोष मे अकाल राहत कार्य के लिए एक लाख रुपया दिया है। हो सकता है कि आर्य समाज द्वारा राहत कार्य प्रारम्भ न करने के कारण उन्हें मजबूरी में मुख्यमत्री सहायता कोष मे यह धनराशि देनी पड़ी हो परन्तु अब तो आर्य समाजों ने घोषणा करके अकाल राहत अभियान प्रारम्भ कर दिया है।

अत प्रत्येक आर्य समाज को अपने झण्डें के नीचे इस पावन कार्य को प्रारम्भ करना चाहिये ताकि आर्य समाज का दिग्दिगन्त में यश फैले और जनता में आर्यसमाज का प्रचार हो।

राजस्थान में अनावृष्टि का यह पाचवा वर्ष है। सरकार जनता को अनाज देने की तो व्यवस्था कर रही है परन्तु गौ पशुओं के लिए चारे का नितान्त अभाव है। अकालग्रस्त क्षेत्रो में ग्रामवासियों ने पशुओं को टीका लगाकर दु खी दिल से यह कहते हुए विदाई दे दी कि अब हम तुम्हे पालने में असमर्थ हैं और अब तुम ईश्वर की सृष्टि मे ईश्वर के सहारे ही जीओ। गौ और पशु क्षितिज तक फैले हुए रेगिस्तान में चारा और पानी ढूढ रहे हैं परन्तु उन्हें कुछ भी नहीं मिल रहा है। पशु जगत भी सब दिशाओं में आर्य समाज को निहार रहा है कि शायद दयानन्द के दयालु अनुयायी चारा लेकर के आ रहे हैं।

अत समस्त आर्य समाजों से अपील है कि वे अपने—अपने जिले में गौ और पशुओं की चारे की व्यवस्था के लिए घर—घर जाए। केवल आर्य समाज की चार दीवारी मे ही योजना नही बनाए। अब तो सारे शहर मे फैल जाए। एक एक घर मे जाए मडियो मे जाए सेठो क पास जाए माहेश्वरी अग्रवाल खण्डेलवाल आदि समाजो के नेताओं से सम्पर्क करे और उन्हे मुक्त हस्त से दान देने के लिए प्रेरित करें।

हरियाणा उत्तर प्रदेश और पजाब की आर्य समाजों से अनुरोध है कि वे इस सकट की घडी मे कम से कम एक ट्रक और अधिक से अधिक जितने चाहे उतने ट्रक चारे के राजस्थान मे भेजने का सकल्प लें। यही महर्षि दयानन्द के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि होगी। यह आर्य समाजियों की परीक्षा की घडी है। इस परीक्षा को उत्तीर्ण करना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये। इस हेतु श्री सत्यव्रत सामवेदी श्री रामसिह आर्य एव अन्य अनेक आर्य नेताओं के साथ दिसम्बर मास में हरियाणा पजाब और उत्तर प्रदेश में तूफानी दौरा करेंगे और गौ तथा पशुओं की चारे की व्यवस्था के लिए अधिक से अधिक आर्य समाजों से सम्पर्क करेंगे। दिसम्बर मास में जोधपुर में गौर और पशुओं के लिए चारा केन्द्र खोला जाएगा जहा से बाढमेर जैसलमेर की दूर दराज की ढाणियों तक पशुओं के लिए चारा पहुचाया जाएगा।

अत समस्त आर्य समाजो से अनुरोध है कि राहत कार्यों में तन—मन धन से जुट जाए। आर्य समाज महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर इस कार्य में जुट गया है और उसने वार्षिकोत्सव पर होने वाले 25—30 हजार रुपये व्यय को बचाकर राहत कार्यों में व्यय करने का निर्णय लिया है और वार्षिकोत्सव को स्थगित कर दिया है। उन्होंने घोषणा की है कि अकाल पीड़ितों की सहायता करना ही वार्षिकोत्सव है। इस उदात एव परोपकार के कार्य के लिए श्री शूम्भूराम यादव श्री भवरलाल आर्य एव श्री महेश सेनी प्रसशा के पात्र हैं और हमें पूर्ण आशा है कि बीकानेर की आर्य समाजें लाखों रुपया एकत्रित करके अकाल पीड़ितों को सहायता पहुचाएगे।

वर्ण व्यवस्था तथा जात—पांत का प्रभाव

प्राचीन काल में भारतीय अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत श्रम विभाजन क रूप मे वर्ण व्यवस्था स्वीकार की गई थी। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। समाज का यह चतुर्विभाजन कर्म के आधार पर किया गया था जिसका स्पष्ट निर्देश 'मनु' ने अपने स्मृति ग्रन्थ में किया है—

मनु के अनुसार ब्राह्मण के कर्तव्य और गुण निम्न है—

पढ़ना—पढाना यज्ञ करना—कराना दान लेना और देना ये छ कर्म है।

क्षत्रिय के कर्तव्य – कर्म और गुण निम्न है—

न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात पक्षपात छोडकर श्रेष्ठो का सत्कार और दुष्टो का तिरस्कार करना। विद्या धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा मे धनादि पदार्थों का व्यय करना। वेदादि शास्त्रों का पढ़ना और पढाना और विषयों मे न फसकर जितेन्द्रिय रहकर सदा शरीर और आत्मा से बलवान रहना।

वैश्य के कर्म और गुण निम्न है—

व्यापार करना कृषि—पशुपालन करके देशवासियों का भरण—पोषण करना विद्या—धर्म की वृद्धि करने के लिए धनादि की व्यवस्था करना आदि।

शूद्रो के कर्म है—

समाज के सब वर्गों की सेवा करना इनका एकमेव मुख्य कर्तव्य है और इसी सेवा के आधार पर अपना जीवन निर्वाह करना।

मनु महाराज की उपरोक्त उक्तियों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में वर्ण विभाजन गुण—कर्म के आधार पर किया गया था। कोई जन्म से ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता कर्म के आधार पर होता है। यजुर्वेद के 31वे अध्याय का 11 वा मत्र है। इसमें कहा गया है कि ब्राह्मण अपने गुणों के कारण समाज का मुख होता है। क्षत्रिय अपने रक्षक गुणों के कारण बाहू होता है। वैश्य अपने कृषि आदि कार्यों के कारण समाज का उदर होता है। शूद्र अपने सेवा के कार्यों के कारण पग होता है। जिस प्रकार इन अगों का शरीर में महत्व है उसी प्रकार समाज में इन चारों वर्णों का महत्व है।

मनु महाराज ने यह भी लिखा है कि शूद्रकुल में जन्म लेकर अपने कर्म के आधार पर शूद्र ब्राह्मण—क्षत्रिय वैश्य भी बन सकता है और ब्राह्मण अपने कर्मों के आधार पर शूद्र भी बन सकता है अर्थात चारों वर्णों में जिस—जिस वर्णों के पुरुष स्त्री अपने—अपने गुण कर्म स्वभाव के अनुसार होंगे उसी वर्णों में गिने जायेंगे। इसी तरह का भाव आपस्त धर्म सूत्र में भी व्यक्त किया गया है—धर्माचरण से युक्त वर्ण अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त कर लेता है और वह उसी वर्ण मे गिना जाता है जिसके वे योग्य होता है। वैसे भी अधर्माचरण से युक्त उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जाता है।

सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में लिखा है— ऐसी सुन्दर वर्ण व्यवस्था के रहते हुए भी स्वार्थी एव अहकार के वश मदोन्मत हुए तथाकथित ब्राह्मणों ने मिथ्या कल्पना का विस्तार करके नाना प्रकार की जटिलताओ का विकास किया जिसको ब्राह्मणवाद कहते है।

प्राचीनकाल में गुरूकुल के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। चारों वर्णों के बच्चे साथ—साथ गुरूकुल मे विद्या प्राप्त करते थे। विद्या प्राप्ति के बाद जो जैसा होता था उसी वर्ण में जाकर अपना कर्त्तव्य निभाता था। जब से जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था कायम हुई तब से इस देश मे विघटन पैदा हो गया है। ब्राह्मण दुष्टतापूर्ण कार्य करता है [illegible] भी ब्राह्मण और शूद्र धर्मानुसार यज्ञ हवन पठन—पाठन करता है फिर भी शूद्र है। इसी से सामाजिक जात—पात ने हमारे देश को पगु बना दिया है। जात—पात की राजनीति का देश में बोलबाला है। जात—पात के आधार पर ही बड़े—बड़े नेता बन रहे हैं। हर वर्ग इन्हीं राजनेताओं के पीछे बिना विचारे भाग रहा है। समाज उन व्यक्तियो और सस्थाओं को सम्मान नहीं देता जो प्राचीन वर्ण व्यवस्था पर आज भी कार्य कर रहे हैं। आज सार्वजनिक जीवन में खोटे सिक्कों का चलन इतना अधिक हो गया है कि अब अच्छे सिक्के यदि कहीं दिखाई भी देते हैं तो वह नकली मालूम पड़ते हैं। आज जो जितना अधिक अपराधिक प्रवृत्ति का व्यक्ति होगा वह उतना ही प्रतिष्ठित नेता होगा। जिसके पीछे कोई सांप्रदाय जाति वर्ग होता है उसके सकेत पर सत्ता प्रतिष्ठान उठक—बैठक लगाते हैं। देश के गद्दार देश भक्ति का उपदेश देते हैं और विदेशी धन पर पलने वाला स्वदेशी का प्रवक्ता बनता है। देश की अखण्डता को खडित करने वाले राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार समझे जाते हैं।

वैदिक वर्ण व्यवस्था ने समाज के सामने यह शर्त रखी थी कि तुम्हारे लिए सम्मान सत्ता और सम्पदा के अवसर समान रूप से उपलब्ध हैं तुम स्वय ही अपना मार्ग चुन लो कि तुम्हे क्या चाहिये या सम्पदा का राजसिहस। इस चुनाव करने तक तो व्यक्ति स्वतत्र रहता था। बाद में यह शर्त रखी थी कि सम्मान उसे मिलेगा जो प्रबुद्ध एव त्यागी होगा। सभी को त्यागी व्यक्तियो का सम्मान करना होता था क्योंकि वह अपने लिए नहीं जीता था बल्कि समाज के लिए जीता था। जब तक देश मे प्राचीन वर्ण व्यस्था कायम रही तब तक देश का चरित्र तथा सुन्दर सगठन बना रहा। जब से यह व्यवस्था बिगडी तब से देश भी बिगडता गया।

आज देश मे चारो तरफ हा—हा कार मचा हुआ है। पुन जाति सघर्ष होने की सम्भावनाये बढ़ गई है। चारों तरफ वोट की राजनीति ने समाज में विघटन पैदा कर दिया है। दलितों शोषित पर अत्याचार बढ गये हैं। वे सामूहिक रूप से धर्मान्तरण कर रहे हैं। मेरी मान्यता है कि जब धर्मान्तरण होता है तो किसी सीमा तक राष्ट्रीयतरण भी होता है। आगरा जिले के पनवाडी गाव में हरिजनो की बारात नही निकलने दी जिसके कारण बड़ा भारी जाति सघर्ष हुआ। रिवाड़ी जिले में कालढ़ावास गाव में दलितों की इसलिए पिटाई की गई कि वह घोडी पर क्यों चढे। वैदिक वर्ण व्यवस्था पुन स्थापित करने तथा जात पात को समाप्त करने के लिए देश में ऐसा सगठन बनाने की आवश्यकता है जिसमें चरित्रवान निष्ठावान तथा नि स्वार्थ भाव से काम करने वाले पूर्णकालिक व्यक्ति हो जो देश में जाकर इस कार्य को करें। गुण कर्म स्वभाव के आधार पर अन्तर्जातीय विवाह भी वर्ण व्यवस्था तथा जात—पात रहित समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकता है।

श्री रामराज में भारत की राजधानी दिल्ली में 4 11 2001 को हजारों की सख्या में दलित समाज के व्यक्तियो का हिन्दू धर्म से धर्मान्तरण कराकर यह सिद्ध कर दिया है कि अब आर्य नेता नहीं जागे तो हिन्दू धर्म अल्पसख्यक में आ जायेगा।

मामचन्द रिवाड़िया
सदस्य अनुसूचित कल्याण परिषद
जी—41 डी डी ए फ्लैटस अजमेरी गेट
दिल्ली—110006 फोन—011—3278777 3236475

चिट्ठी आई है

मान्यवर प सत्यव्रत जी

नमस्ते।

आर्य नीति नियमित रूप से मिल रही है और उसमें व्यक्त किये गये आपके सन्तुलित विचारों को पढ़कर प्रसन्नता होती है। विगत अक में आपने लखनऊ से दिल्ली तक की सद्भावना यात्रा पर जो सन्तुलित तथा निष्पक्ष विचार रखे वे सर्वथा विचारणीय एव सराहनीय है। नये अक में कु सूर्या ने भी आपकी ही भाति एतद् विषयक विचार रखे हैं। देखना होगा कि ऐसी यात्राए कहीं एकाकी तथा पूर्वाग्रह युक्त न बन जायें।

स्वामी अग्निवेश जी के 18 अक्टूबर के जोधपुर के कार्यक्रम के जो समाचार दैनिक भास्कर में छपे हैं वे आश्वस्ति देने वाले नहीं है। आपने स्वय अपने वक्तव्य में लिखा था कि हापुड मे एक मुस्लिम नौजवान का व्याख्यान अत्यन्त एक पक्षी है तथा साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काने वाला था। गोधरा काण्ड को नरेन्द्र मोदी द्वारा प्रायोजित बताना भी भयावह है। वह बिना किसी प्रमाण के कहा गया प्रतीत होता है। यदि हिन्दू अतिवादियों के भाषणों को इमोशनली ब्लेकमेल करने वाला कहा जा सकता है तो भारत माता को डाइन बताने वालों को क्या कहा जाएगा? सच तो यह है कि दोनों पक्षों के साम्प्रदायिक दुराग्रह खतरनाक हैं।

आर्य समाज में अल्पसख्यकों को एसोसियट मेम्बर बनाने का कोई प्रावधान नहीं है। क्या अन्य मतावलम्वी वैदिक सिद्धान्तो में पूर्ण आस्था व्यक्त किये बिना ही आर्य समाज क सभासद् बन सकते हैं यह विचारणीय है। पुन आर्य समाज के पर्व और त्यौहार सुनिश्चित है। ईद और क्रिसमय को आर्य पर्वों की सूची में लाना सम्भव नहीं है। क्या ईद की कुर्बानी (पशु हत्या) को भी वैधता दी जा सकती है?

स्वामी दयानन्द ने जोधपुर के तास्सुबी डाक्टर अलीमर्दान को अपनी चिकित्सा करने की सहमति कभी नहीं दी थी। वह तो घातकों के षड़यत्र का औजार बन कर महर्षि को दवा में विष देता रहा था। आर्य समाज के दस नियम लाहौर के डॉ रहीम खा के घर पर बनाये गये न कि डॉ असारी के घर पर। अय निज परोवेत्ति— यह सस्कृत की सूक्ति है न कि उपनिषद् वचन। ये तीनों बाते राज धर्म (सितम्बर2002) के अक में प्रकाशित स्वामी अग्निवेश जी के वक्तव्य (पृ 18—19) के सम्बन्ध में है।

डॉ भवानी लाल भारतीय
8/423 नन्दनवन चौपासनी आवासन मण्डल
जोधपुर—8 फोन—0291— 755883

आदरणीय सत्यव्रत सामवेदी जी

नमस्ते।

आपके द्वारा प्रेषित आर्य नीति के सभी अक प्राप्त हुए धन्यवाद। 08 09.2002 के अक में आर्य समाज के सस्थापक योगीराज कृष्ण तथा पृ 7 पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एक प्रा लि कम्पनी बनकर रह गई। आलेख पढ़ा। 21 09 2002 के अक में अधिकाश पृष्ठों पर विभिन्न सम्मेलनो आर्यजनों समारोहों की रिपोर्ट छापी गई है। जैसे पृ 3 पर आर्यवीर दल जोधपुर तथा आर्य समाज हिरण मगरी उदयपुर की रिपोर्ट छापी गई है तो पृ 6 पर आर्य समाज बीकानेर द्वारा दिवसीय वेद प्रचार के आयोजन की रिपोर्ट है पृष्ठ 7 पर आर्य वीर दल जालोर का समाचार छापा गया है। पृष्ठ आठ पर जयपुर जिले के फागी तहसील के चकवाड़ा गाव मे अस्पृश्यता के विरूद्ध हरिजनो के आन्दोलन ने दम तोडा रिपोर्ट जातिवाद के प्रसग मे पठनीय है।

08 10.2002 के अक मे पृष्ठ 5 पर जातिवाद के विषधर का भयकर स्फीत फत्कार (जयपुर जिले के फागी तहसील कस्बे मे 1000 हरिजन नर—नारियों के सामूहिक सहार का हादसा टल गया) पठनीय है।

हिन्दू समाज अब भी छुआछूत एव जातिवाद क कोढ से ग्रस्त है। आर्य समाज तथा विश्वहिन्दू परिषद् को इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिये। पृष्ठ 7 पर वैदिककाल मे पुत्रियों/बेटियों का भी उपनयन सस्कार होता था पाठनीय एव अनुकरणीय है। पृष्ठ 8 पर शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार को लेकर श्री सत्यव्रत सामवेदी जी की चिन्ता वास्तविक है।

आर्य नीति के लिए एक लेख भेज रहा हू—राष्ट्र भाषा हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का माध्यम कब बनेगी? इस शोध लेख को दो किस्तों में छापे।

भवदीय
प्रो चन्द्रप्रकाश आर्य
432/8 आर्य निवास अर्बनएस्टेट
करनाल—132001 हरियाणा

आदरणीय पूज्य भ्राता श्री सत्यव्रत सामवेदी जी

सादर नमस्ते।

आशा है कि आप सपरिवार कुशल पूर्वक होंगे। मैं हर समय आपके स्वास्थ्य लाभ दीर्घायु और आपका परिवार फले—फूले परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हू। मेरी शुभकामनाए आपके साथ हैं।

आपका आर्य नीति पत्र हमें कल ही मिला और उसमें आपके विषय में किसी ओमप्रकाश ने जो लिखा था उसका उत्तर दिया है। मैंने सब पढ़ा है और आप जैसे व्यक्ति पर जिन्होंने सारी आयु आर्य समाज व इससे जुड़ी सस्थाओं म कार्य किया है ऐसा लिखना उचित नही था पर श्री रामसिह जी ने इस विषय में उस पत्र के उत्तर मे जो प्रकाशित किया है उससे लिखनें वाले को आपके विषय में काफी जानकारी हो जायेगी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ट्रस्ट टकारा की ओर से हर वर्ष की भाति अगले वर्ष भी शिवरात्री से एक दिन पहले और एक दिन बाद भव्य ऋषि मेला ऋषिबोधोत्सव 28.02.2003 से 02 03 2003 तक मनाया जायेगा।

इससे पहले एक सप्ताह यज्ञ होगा मेरी बडी इच्छा है कि आप वहा सपरिवार पधारे।

आप यह तिथिया अभी से अकित कर लें। यह हमारा सौभाग्य होगा। वहा आपके ठहरने और भोजन आदि की सब सुव्यवस्था टकारा ट्रस्ट की ओर से होगी और आपको किसी प्रकार की कोई असुविधा नहीं होगी।

शुभकामनाओं के साथ।

रामनाथ सहगल,मत्री
श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टकारा
आर्य समाज अनारकली मदिर मार्ग नई दिल्ली—1

उदबोधन

वेद पथ अनुगामी बनो साथियो।
सत्य का सदा हामी बनो साथियो।।
बुराइयो से रहना सदा दूर तुम।
बन दयालु बनो मत कुटिल क्रूर तुम।
कभी कायर बनो मत बनो शूर तुम।
मान अभिमानियो का करो चूर तुम।
आर्य बन न कुपथ गामी बनो साथियो।।

दण्ड दुष्टो को देना न मुख मोडना।
कभी अन्यायियो को न तुम छोडना।
बिखरी जो शक्तिया हो उन्हे जोडना।
एकता सूत्र को मत कभी तोडना।
तुम न शकुनी हरामी बनो साथियो।।

देना धोखा किसी का है अच्छा नही।
आदमी दुष्ट पाजी वह सच्चा नही।
बनो देश भक्त पक्का कच्चा नही।
कभी लगा नाम पर अपने बट्टा नही।
तुम दयानन्द स्वामी बनो साथियो।।

ढोगियो की सदा पोल को खोलना।
सत्यवादी बनो झूठ मत बोलना।
कुछ कहे कोई सत्य तुला पर तोलना।
रहो सिद्धान्त पर अटल कभी न डोलना।
सत्य हरिश्चन्द्र नामी बनो साथियो।।

भेष भाषा स्वदेशी से कर प्यार तुम।
कर नकल न विदेशी की नर नार तुम।
आर्य सस्कृति का आदर्श लो धार तुम।
विश्व मे कर प्रबल इसका विस्तार तुम।
बन खरा न स्वर्ण खामी बनो साथियो।

इन्द्रकवि आये कितने चले वो गये,
थे बुरे उनमें कितने भले हो गये।
काले इतिहास में उजले हो गये,
कितने सज्जन यहा मनचले हो गये।
कभी क्रोधी न कामी बनो साथियो।।

इन्द्रस्वामी (पूर्व नाम ठा इन्द्रदेवसिंह,इन्द्रकवि)
ग्राम पो विष्णुपुरा कला भाया एकमा
जनपद—सारण छपरा बिहार—841208

सुन्दरता की क्षण भंगुरता

जिस सुन्दरता पर बड़ा नाज था वो कहा है
वो भोग भुगता के छोड गई, तृष्णा तो सदा रहा है
जिस सुन्दरता पर
बुढ़ापे की रमणीयता को झुरियों से किया मार
बदली के नोटिस नहीं पढ़े, इस को भोग बार बार
भोग वासना ही भेजे योनि भ्रमण मे हर बार
जिस सुन्दरता पर ..
जिस रम्य शरीर से सदा खेल अटखेलियों का खेला
वह आग मे जल के हुआ मिटटी व अस्थियों का ढेला
मिलन की स्मृति सताए याद आए वो खुशियों का मेला
जिस सुन्दरता पर
जरा उन्हें ये मिटटी और हड्डियों का ढेला दिखाओ
वहा से शारीरिक सौदर्य को ढूढ के लाओ
माटी के ढेले मे क्या मनोहर है वह बताओ
जिस सुन्दरता पर ..
इस नाश होके बना मिटटी वो स्मरण करेगा बीमार
आकर्षण को बदले करे चैतन्य का विचार
आत्म रम्यता को देखे शात रस मिलेगा बार बार
जिस सुन्दरता पर

— सुमन कुमार आर्य —
594 चेतन निवास जवाहर कॉलोनी
सरदारनगर,अहमदाबाद—382475

मम श्रेष्ठ आर्य आत्मीय स्वजन! सविनय सादर सस्नेह नमन!

दो वर्षों से क्रम छूट गया
स्थितियों ने कुछ बाध दिया।
पर स्नेह तन्तु क्या उजड़ गया?
था सघन गहन वह निखर गया।
घन प्रहारों से कभी टूटे नहीं हैं दृढ भवन
होते रहें शत बार चाहे नित नये ही उत्खनन।
देती रही 'प्रज्ञा' न ऐसा पूजनीया वे बहिन
जिनके अलौकिक तेज से उद्दीप्त रहता यह चमन।
सस्कृति का शुचि सरोवर
दे रहा उल्लास घर—घर।
वेद के अनुसार चल कर
पर्व होते मधुर—सुन्दर।
आज कर लें प्रण प्रतिज्ञा यज्ञवेदी पर सभी
व्रतशील ही परिवार होते सर्वदा श्रेष्ठी सुखी।
जगदीश के आशीष से प्रत्येक बगियॉं हो हरी
वेदपाठी पुत्रिया नित प्रार्थना यह कर रहीं।

स्नेहाधीना—
मेधा देवी एव सम्पूर्ण पाणिनि परिवार
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
वाराणसी—10 उ प्र
फोन 0542—360340

आर्य समाज

सेक्टर–19, राउरकेला–5,सुन्दरगढ, उडीसा

वेदप्रचार सत्र सम्पन्न

आर्य समाज राउरकेला (उत्कल) के तत्वावधान में श्रावण पूर्णिमा से भाद्र पूर्णिमा तक एक मास व्यापी वेद प्रचार सत्र सात्विक भावना व श्रद्धा के साथ सम्पन्न हुआ श्रावण पूर्णिमा के पवित्र अवसर पर आर्य समाज में आयोजित मुख्य उत्सव में विशेष यज्ञ के साथ सामूहिक यज्ञोपवीत परिवर्तन भजन प्रवचनादि कार्यक्रम किया गया। यज्ञोपवीत धारण की महत्ता जीवन को ऊँचा उठने के लिए स्वाध्याय की आवश्यकता और इस पर्व पालन की यथार्थता के सम्बन्ध में विस्तार से बताया गया। इसके साथ उत्कल वेद प्रचार समिति के सचालक पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी के लिखित उडिया भाषा में आसन्तु वेदाध्ययन' नामक एक पुस्तक को आर्य समाज के प्रधान ने लोकार्पण किया। इस सत्र मे इस्पात नगर के शताधिक श्रद्धालु व्यक्तियों के मध्य में सध्या यज्ञ भजन प्रवचनादि कार्यक्रम अनुष्ठान करके मनुष्य जीवन की सार्थकता के लिए वेद मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया गया। सितम्बर 22 में सत्र की उज्जयन समारोह में आर्य समाज में प्रात काल अनुष्ठित हुआ था। इसमें ढाई सौ से अधिक श्रद्धालू सम्मिलित हुए थे।

कार्यक्रम में यज्ञोपरान्त भजन प्रवचनादि अनुष्ठित हुआ था। प्रवचन प्रसग में सत्सग में उपस्थित पूज्य स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती जी मनुष्य जीवन मे धर्माचरण की आवश्यकता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लोगो को धर्मयुक्त आचरण करने के लिए प्रेरित किया। सत्सग के पश्चात सामूहिक प्रसाद सेवन के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

पदमनाभ खाई
मत्री

आर्य समाज मंदिर

बी–ब्लाक, जनकपुरी,नईदिल्ली'58

सुख प्राप्ति का साधन है–शिव संकल्प

नई दिल्ली। यदि हम जीवन में सुखी होना चाहते हैं और आनन्द पाना चाहते हैं तो हमें अपने मन को शिव सकल्प मय बनाना होगा। वेद में अनेक बार यह कहा गया है कि हमारा मन शिव सकल्पों अर्थात कल्याणकारी विचारों से युक्त हो। मन में शुभविचारों को लाने के लिए यह आवश्यक है कि हम बुरे विचारों को मन में न आने दें। उक्त विचार प्रवक्ता डॉ सुन्दरलाल कथूरिया ने प्रबुद्ध श्रोताओंके सामने रखे। उन्होने कहा कि मन बड़ा चचल और वेगवान है। वह जागते समय ही नहीं सोते समय भी कहीं का कहीं चला जाता है किन्तु उसे अभ्यास से ही वश में किया जा सकता है। मन तो सकल्प विकल्पात्मक होता है, किन्तु हमें विकल्प को छोडकर सकल्पशील बनना है। सकल्प शीलता में दृढ़ता का भी समावेश है अर्थात हमें अच्छे कामों में दृढ़ता के साथ लगना है। ढुलमुल होकर हम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। शिव और अशिव की पहचान विवेक बुद्धि से सम्भव है। परोपकार के सभी कार्यों का समावेश शिव सकल्प में हो जाता है। परोपकार से बड़ा और कोई धर्म नहीं है और परपीड़ा से बड़ा कोई पाप नहीं है। धर्म के सभी लक्षणों का समावेश भी शिव संकल्प में हो जाता है तथा अन्य सभी श्रेष्ठ गुण भी इसी में समाविष्ट हैं। श्रीमती राज मैहन श्री योगेश्वर चन्द्रार्य श्री विनय आर्य श्री सोहनलाल ओहरी आदि की शंकाओं का विद्वान प्रवक्ता ने समाधान किया। कार्यक्रम का सफल सचालन आर्य समाज के मत्री श्री जगदीशचन्द्र गुलाटी ने किया।

जगदीश चन्द्र गुलाटी
मत्री
आर्य समाज मदिर, बी–2,
जनकपुरी नई दिल्ली

आर्य समाज,हाँसी

हिसार–125033(हरियाणा)

नवरात्रों में सामवेद पारायण

आर्य समाज मदिर हासी में अक्टूबर माह में वृहद सामवेद पारायण यज्ञ श्रीमती इन्द्रदेवी आर्य भवन से देविया निर्मलादेवी आदि अनेकों देवी स्वरूप सयोजिकाओं द्वारा पुरोहित रामकिशोर शास्त्री द्वारा वेदपाठ सस्वर करते हुए आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य रामकिशोर शर्मा के ब्रह्मत्व में सामवेदीय यज्ञ की पूर्णाहुति विराट महिला सम्मेलन के साथ सम्पन्न की गई। आचार्य जी ने अपने प्रवचन में कहा कि सामवेद शाति औषधि ऐश्वर्यता सम्पन्नता उपासना का परोपकार यज्ञ स्वरूप कर्मव्यता का प्रतीक है इसलिए नर–नारियो को यज्ञ जैसा पुनीत कार्य हर घर मे रचाते रहना चाहिए। गृहस्थ जीवन का अतिश्रेष्ठ अग भजनोपदेशक जबरसह खारी ने समुधुर भजनो को सुनाकर सभी को मत्रमुग्ध किया।

इस शुभावसर पर श्री भरतलाल शास्त्री स्वामी कीर्तिदेव तथा गणमान्य व्यक्ति एव आर्य समाज के प्रधान चौ देवदत्त जी आर्य मत्री सतीश जी इन्चार्ज बृजमोहन सिगला आर्य स्कूल मैनजर श्री सतीशकुमार मुजाल आदि पदाधिकारी एव काफी सख्या में स्त्री–पुरूष विराजमान थे। यज्ञीय दृढ सकल्पियो महिलाओ को विद्वानो द्वारा पुष्प एव अमृत रूप जल द्वारा आयुवर्धक स्वस्थ ऐश्वयर्ता हेतु सुख शाति आनन्द की कामनाओ पूर्वक वेद मत्रों के उच्चारण के पश्चात आशीर्वाद दिया। इस कार्यक्रम की सभी आर्यजनों ने सराहना की।

दिव्य वेद कथा का समापन

आर्य समाज मदिर,हासी में सुचारू रूप से 17 से 22 सितम्बर तक एक विशेष दिव्य वेद कथा का आयोजन किया गया जिसमे आर्य जगत के प्रसिद्ध त्यागी सत स्वामी माधवनन्द जी सरस्वती के ब्रह्मत्व में बडे हर्षोल्लास पूर्वक प्रात एक विशाल यज्ञ के साथ अनेकों यजमान दम्पतियों को यज्ञोपवीत धारण करा पुरोहित रामकिशोर शास्त्री ने परोपकारमय यज्ञ जैसा पुनीत कार्य सम्पन्न कराया। तदुपरान्त उच्चकोटि के प्रसिद्ध वैदिक भजनोपदेशक श्रीमान जबरसिंह ने प्रतिदिन दिव्य वेद कथा का सुमधुर भजनो द्वारा आरम्भ कराते हुए कहा कि ईश्वर भक्ति हमारे जीवन को प्रथम अग होना चाहिए तथा यह भी कहा कि आर्य समाज के लोगों को वैदिक सिद्धान्तों हेतु कभी भी किसी कीमत पर समझौता नहीं करना चाहिए जैसेकि मूर्तिपूजा गुरूडम, नशा दहेज बाल विवाह आदि विषय मुख्य हैं।

स्वामी माधवनन्द जी ने चार दिनों के प्रवचनों का सार बताते हुए कहाकि धन से धर्म बडा है इसलिए आर्य समाज के मचों से वैदिक विद्वानों आचार्यों सयासियों भजनोपदेशकों का विशेष सम्मान होना चाहिये।

मत्री सतीश कुमार आर्य

आर्य परिवार संस्था

4–भ–27, विज्ञान नगर, कोटा–324005

कोटा 25 अक्टूबर। हिन्दू उग्रवाद को दलित भी पसन्द नहीं डॉ श्योराज सिंह लिखित और दैनिक भास्कर कोटा में प्रकाशित लेख में हरियाणा मे हुई 5 दलित हत्याओ का विवरण पढ़कर दु ख हुआ कि आज भी सवर्णों द्वारा दलितो की हत्या करना सामान्य बात होती जा रही है। लेख में राजस्थान के चकवाडा ग्राम में दलित बहिष्कार में विश्वहिन्दू परिषद् के साथ आर्य समाजियों को भी सम्मिलित दिखाया गया है। आर्य परिवार सस्था कोटा के अध्यक्ष प्रेमनाथ कौशल मत्री कृष्ण गोपाल आर्य और वरिष्ठ कार्यकर्ता डॉ रामकृष्ण आर्य ने विज्ञप्ति जारी कर बताया कि आर्य समाज के अनुयायियों का चाहे कितना भी पतन हो जाए परन्तु वे दलित बहिष्कार अर्थात दलित शोषण में सम्मिलित नहीं हो सकते। फिर भी लेख के लेखक के अनुसार यदि ऐसा हुआ है तो आर्य परिवार सस्था के समस्त सदस्य ऐसे आर्य समाजियों की कटु से कटु निन्दा करते हैं तथा आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान से माग करते हैं कि घटना की व्यापक जाच कर ऐसे दोषी आर्य समाजियों के विरूद्ध प्रस्ताव पास कर समुचित कार्यवाही करें।

स्पष्टीकरण डॉ राम कृष्ण आर्य

यह पूर्णत असत्य है। दलित बहिष्कार में एक भी आर्य समाजी नहीं था अपितु श्री सत्यव्रत सामवेदी अपने अनेक कार्यकर्ताओं के साथ दलितो की यात्रा में शामिल हुए जिसका विवरण आर्य नीति में दिया जा चुका है।

आर्य समाज

बाहरी रिंग रोड विकासपुरी नईदिल्ली

21 कुण्डीय विराट गायत्री महायज्ञ उल्लासमय वातावरण मे सम्पन्न

नई दिल्ली। विश्व शाति एव मानव कल्याण हेतु आर्य समाज एव वैदिक यज्ञ समिति विकास कुज के तत्वावधान में आयोजित 21 कुण्डीय विराट गायत्री महायज्ञ वैदिक विद्वान आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी के ब्रह्मत्व मे सेन्ट्रल पार्क विकास कुज मे उल्लासमय वातावरण मे सम्पन्न हुआ।

महायज्ञ के अवसर पर आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी को स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित करते हुए श्री विद्यासागर नागिया श्री प्रेम भाटिया डॉ रमा शर्मा एव श्री हरीश ओबराय

इस अवसर पर धार्मिक जगत के महान प्रवक्ता आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी ने विराट जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा कि ससार में परोपकार का सबसे बडा उदाहरण यज्ञ हवन है। मनुष्य दूसरों का भला करके सुनाता व जतलाता है। अच्छे काम करके इतरात है। जिससे वैर द्वेष हो उसका भला करने की सोच भी नही सकता परन्तु हवन का लाभ सबको पहुचता है मित्र हो चाहे शत्रु।

वेदज्ञ विद्वान आचार्य श्री ने श्रद्धालुों को सम्बोधित करते हुए कहा कि यज्ञकुण्ड की अग्नि में घृत की आहुति से प्रखर उष्णता की ऊर्जा तैयार होती है जिसमें अशुद्ध वायु को शुद्ध करने तथा शरीर और मन के तनावों को भी दूर करने का अद्भुत सामर्थ्य है। यज्ञ से पर्यावरण शुद्ध पुष्ट एव सुगन्धित होता है। यज्ञ मानव को दानशील बनाता है तथा इससे मनुष्य सर्वहित मे अपना हित समझता है।

मुख्य यजमान श्रीमती भारती तनेजा श्री सुधीरकान्त सेठ श्रीमती निर्मला सेठ श्री हरीश ओबराय आदि को आचार्य श्री चन्द्रशेखर जी के कर कमलों से स्मृति चिन्ह प्रदान किया गया। इस अवसर पर अनेक लोगों ने मासाहार एव मादक पदार्थों को छोडने का सकल्प लिया। हजारों लोगो ने यज्ञ समारोह मे उपस्थित होकर विश्व शाति एव मानव कल्याण हेतु घृत सामग्री की आहुतिया प्रदान की।

वैदिक विद्वान आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी द्वारा मानव कल्याण हेतु किये हुए कार्यों को देखते हुए स्मृति चिन्ह देकर उन्हें सम्मानित किया गया। डॉ रमा शर्मा के क्रातिकारी भाषण एव भजन सम्राट श्री नरेन्द्र आर्य के सुमधुर भजन हुए। इस यज्ञ में प्रत्येक समुदाय के लोग उपस्थित थे। विकास कुज में पहली बार 21 कुण्डीय यज्ञ का आयोजन था जिसकी भूरि–भूरि प्रशसा हो रही है।

इस अवसर पर श्री यशपाल आर्य प्रदेश मत्री भा ज पा श्री अशोक सुनेजा उपप्रधान भारत विकास परिषद श्री कुलभूषण कपूर,नेशनल बुक ट्रस्ट श्री वी एस नागिया समाजसेवी डॉ पुष्पलता वर्मा,प्रधान आर्य समाज बाहरी रिंग रोड विकासपुरी श्री विजय आर्य आदि गणमान्य लोग उपस्थित थे। कार्यक्रम के सयोजक श्रीमती चचल किज समाज प्रधान डॉ पुष्पलता ने सभी का आभार प्रकट किया।

कार्यक्रम के अन्त में नागिया परिवार द्वारा दैनिक यज्ञ पद्धति नामक पुस्तक का वितरण किया गया तथा हजारों लोगों ने ऋषि लगर ग्रहण किया।

डॉ पुष्पलता
प्रधान

आर्यसमाज के ओजस्वी नेता–निडर, यशस्वी संपादक–महाशय कृष्ण

विश्वनाथ उपप्रधान आर्य प्रादेशिक सभा एव डी.ए.वी कॉलेज मैनेजिंग कमेटी

महात्मा मदन मोहन मालवीर जी जब भी कभी लाहौर आते थे तो महाशय कृष्ण जी से अवश्य मिलते थे। उनकी दृष्टि में पजाब और सीमात प्रान्त में महाशय कृष्ण जी हिन्दुओं के हितो के प्रमुख सरक्षक थे।

महाशय कृष्ण जी का जन्म 1881 में पश्चिमी पाकिस्तान में वजीराबाद में हुआ था। स्कूली शिक्षा–दीक्षा वहा हुई इसके बाद लाहौर में इस्लामिया कॉलेज मे प्रवेश लिया। वहा से बी ए की शिक्षा पास की। उस जमाने में बी ए का महत्व आज की पी.एच.डी से कम नहीं होता था।

यदि यह कहा जाए कि महाशय कृष्ण पजाब के हिन्दुओ के सर्वमान्य नेता थे तो इसमें अत्युक्ति नही होगी। किसी भी समस्या अथवा आदोलन में वह दिशा निर्देश देकर जनमत तैयार करते थे और यदि आदोलन की आवश्यकता होती तो उसमें भी सबसे पहले आप स्वय कूद पडते थे। आर्यसमाज के तो वह कर्णधार सेनापति थे। वह आर्य समाज का उदयकाल और यौवन काल था। प्रत्येक आर्यसमाजी मे उत्साह और आर्यसमाज के काम को आगे बढाने की उमग थी।

आर्य समाज के नेता तो थे ही महाशय कृष्ण जी एक विशिष्ठ ओजस्वी सपादक भी थे। उनकी लेखन शैली में एक तेजस्विता थी। पाठक उनके सपादकीय पढने के लिए उत्सुक रहते थे। 'दैनिक प्रताप' और 'साप्ताहिक प्रकाश' दोनों पत्रों के वह सचालक भी थे और सपादक भी। कहा यह जाता है कि पजाब के हिन्दू चाहे वे नगर मे रहते थे या दूर किसी गाव मे प्रताप अवश्य खरीदते थे और सबसे पहले महाशय कृष्ण जी का सपादकीय पढ़ते थे। जैसे आजकल कुछ लोगों की सुबह चाय के बिना शुरू नही होती उसी तरह महाशय जी के हजारो पाठक उनका सपादकीय पढकर ही अपनी सुबह शुरू करते थे। वह एक निडर स्पष्टवादी थे समझौते की प्रवृत्ति उनमें थी ही नहीं। अपनी बात के लिए वह अकाट्य तर्क देते थे और लोगो को प्रभावित करते थे। सपादकीय स्वतत्रता के लिए उन्हें जेल यात्रा भी करनी पडी। हजारों रुपयो की जमानतें भी कई बार जब्त हुई। आर्थिक कठिनाई भी उठानी पडी परन्तु उन्होंने अपनी वैचारिक आजादी पर आच नहीं आने दी। यह सारी बात उन दिनों की है जब भारत मे अग्रेजो का राज्य था और पजाब में मुसिलम बहुल यूनियनिस्ट पार्टी की सरकार थी। पजाब के मुख्यमत्री सर सिकदर हयात खान थे जो महाशय जी की लेखनी का लोहा मानते थे। कई बार उन्होंने उनसे समझौता करने की कोशिश की परन्तु महाशय जी तो अपनी धुन के पक्के थे। प्रलोभन और समझौते की गुजाइश थी ही नहीं। उस जमाने में हिन्दुओ का प्रतिनिधित्व करने वाले दो प्रमुख अखबर थे–'प्रताप और दूसरा 'मिलाप' जिसका सचालन और सपादन महाशय खुशहाल चद जी (बाद में महात्मा आनन्द स्वामी) करते थे। दूसरी और मुसलमानों के अखबार थे जमींदार और इकलाब। दोनों दैनिको के बीच निरतर नोक झोक और आक्षेप प्रत्याक्षेप चलते रहते थे।

महाशय जी का जीवन अत्यत सादा था। उन्होने खादी पहनने का व्रत ले रखा था। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि वह अपने कपडे स्वय धो लेते थे। अपने निवास मे उन्होंने यज्ञशाला बनवाई थी और जो इस जमाने में एक नई पहल थी। प्रतिदिन स्नान करने के बाद नियम से पहले ही सपरिवार हवन करते थे। हर शनिवार व रविवार को वह लाहौर से बाहर किसी न किसी आर्य समाज के उत्सव में भाषण देने जाते थे। उनके भाषण मे सैकड़ों हजारों की भीड जुट जाती थी। लाला लालाजपत राय की ही तरह उनकी भाषण देने की मुद्रा बडी विशिष्ट थी। हमेशा खडे होकर भाषण करते थे। ईश्वर ने उन्हे बहुत ओजस्वी वाणी दी थी। सिह की तरह गरजते हुए विपक्षियों को ललकारते हुए वह अपने दायें हाथ को खड़ा करके अपनी तर्जनी से मानो प्रतिपक्षियों को चैलेन्ज कर रहे हो कि वैदिक धर्म के सत्य के सामने कोई नहीं टिक सकेगा।

वह सबसे अधिक अवधि तक आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के मत्री रहे और आय समाज के इतिहास में उन्हें यह श्रेय दिया जायेगा कि सारे पजाब और फ्रंटीयर प्रदेश में उन्होंने आर्यसमाज की दुन्दुभि बजा दी और छोटे–छोटे नगरों और कस्बों में भी आर्य समाज की स्थापना की। प्रतिदिन आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय गुरुदत्त भवन में जाना उनका नियम था वही उनकी कार्यस्थली थी। अनेक सहयोगी आर्य–समाजी उनके घनिष्ठ मित्र थे जो उनके इशारे पर कुछ भी करने को तैयार रहते थे। एक दूसरे में इतना अधिक विश्वास था उनमें और इतना अधिक लगाव था आर्य समाज को आगे बढ़ाने में। इन महानुभावों में पडित विशम्भर नाथ जी अर्जुन देव जी बबई लाला चरणदास पुरी स्यालकोट डॉ. कुलभूषण श्रीनगर लाला गगादास अमृतसर लाला लभूराम नैयर लुधियाना लाला नारायणदत्त ठेकेदार दिल्ली लाला देशबधु गुप्ता दिल्ली, घनश्यामसिह गुप्त स्पीकर मध्यप्रदेश आदि अनेक नाम स्मरण आ रहे हैं। पजाब और लाहौर के प्रमुख आर्य समाज का नाम था। आर्य समाज वच्छोवाली जो शाह आलमी दरवाजे के अदर तग गलियों में एक बडी हवेली में स्थित था। महाशय जी का प्रत्येक रविवार को अपने घर से पैदल चलकर जाना निश्चित था। वह आर्य समाज के सत्सग में समय से पहले पहुचते और अन्त तक रहते थे। उस जमाने में सभी प्रतिष्ठित आर्य समाजी साप्ताहिक सत्सग मे सम्मलित होते थे। मुझे स्मरण है पडित ठाकुरदत्त अमृतधारा सरदार मेहरसिह जी लाला रोशनलाल पायनियर स्पोर्टस वैद्य पडित ठाकुर दत्त जी मुल्तानी प. ज्ञानचद आयसेवक प. यशपाल सिद्धातालकार प्रियव्रत जी महाशय चिरजीलाल वानप्रस्थी सभी नियम से आते थे।

महाशय जी का घर और कार्यालय हमेशा स्थानीय और बाहर से आने वाले आर्य समाजियो के लिए खुला रहता था। यहा विचार–विनिमय भी होता था और आगे के कार्यक्रम भी बनते थे। स्वामी स्वत्रानद जी स्वामी वेदानद जी का मैं विशेष रूप से स्मरण करना चाहूगा जो हर दूसरे तीसरे दिन महाशय जी से मिलने आते थे और आर्य समाज के सबध मे चर्चा किया करते थे। उन दिनों गुरुदत्त भवन मे उपदेशक विद्यालय भी चलता था जिसके आचार्य स्वामी स्वत्रानद जी थे। आर्यसमाज के अनेक विद्वान उपदेशक प्रचारक पुरोहित इस विद्यालय ने आर्य जगत को दिए हैं।

महाशय जी को स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति बडी श्रद्धा और स्नेह था। गुरुकुल कागडी में प्रतिवर्ष जाना विशेष अधिवेशन में भाषण देना धन सग्रह करने के लिए अपील करना उनके जीवन का अग था। इस गुरुकुल के सवर्धन में और इसके उत्कर्ष मे महाशय जी का बडी योगदान था। वह अपने इस सकल्प को पूरी तरह निभाते थे। गुरुकुल के आचार्य पडित चमूपति जी से उनका विशेष स्नेह था। जो उर्दू, फारसी हिन्दी सस्कृत और अग्रेजी के अनुपम पडित थे। उन्होंने आर्य जगत को अनेक विद्वत्तापूर्ण पुस्तके दीं। इसी प्रकार गुरुकुल के पूर्व आचार्य प्रो रामदेव जी से भी उनकी अतरगता थी।

एक बार उन्हें दक्षिण भारत की यात्रा पर जाना पडा जहां मद्रास में उन्हे एकाएक अग्रेजी में भाषण करने के लिए कहा गया। कोई पूर्व सूचना नही तैयारी नही। फिर भी उन्होंने अपनी ओजस्वी शैली में धाराप्रवाह भाषण दिया जिसकी अगले दिन स्थानीय अग्रेजी समाचारों मे चर्चा हुई। महाशय जी को कई बार जेल यात्रा करनी पडी। 1918 मे मार्शल लॉ के दिनों में 1931 में सत्याग्रह में 1942 में भारत छोडो आदोलन में और एक बार हिंदी सत्याग्रह के सिलसिले में भी।

उनके सुपुत्र श्री वीरेन्द्र जी और नरेन्द्र जी ने भी विरासत मे उनसे सपादकीय कला निष्पक्षता और निर्भयता आदि गुण प्राप्त किए। वीरेन्द्र जी तो क्रातिकारियो के साथ मिलकर आजादी की लडाई में भाग लेते रहे और इसके कारण उन्हें अपना कमाकाल में कई बार जेल यात्रा भी करनी पडी। अपने जीवन की युवावस्था के 7 8 वर्ष पडित जवाहरलाल जी की तरह जेलों में बिताये। वीरेन्द्र जी अब तक प्रताप में सपादकीय लेख लिख रहे है और पिता जी के चरण चिन्हों पर चलकर समाज और देश की सेवा कर रहे हैं। महाशय कृष्ण जी को हम ताया जी कहते थे। वह मेरे पिता महाशय राजपाल जी के बडे भाई के समान थे इसीलिये हमारे परिवार में उनका परिवार के बडे बुजुर्ग का स्थान और सम्मान था। उन्होंने इस दायित्व को मेरे पिता के जीवन काल में और 1921 में उनके बलिदान के बाद परिवार के सरक्षक के रूप में पूरी तरह निभाया।

प्रतिदिन सुबह लम्बी सैर के लिए जाना उनका दैनिक नियम था। इसमें कभी भी नागा नहीं होने देते थे। लबा छरहरा बदन सुदर्शन व्यक्तित्व हाथ में छडी नगे सिर, धोती कुर्ता सैर के समय उनकी विशिष्ट पहचान थी। सैर से लौटते समय अथवा दोपहर के भोजन के समय वह हमारे घर में थोडे समय के लिए अवश्य आते थे। हम बच्चों के साथ बच्चों की तरह खेलना उनके सरल स्वभाव का एक अग था। मुझे याद है कई बार वह हमसे ताश भी खेल लेते थे। हमारा घर उनके पड़ोस में ही था। हल्के मनोरजन से एकदम उठकर गभीर सपादकीय लिखवाना उनके लिए सहज होता था।

अब मैं एक व्यक्तिगत बात कहना चाहता हू जिसके कारण मेरे मन में उनके प्रति असीम श्रद्धा है। मेरे पिता जी का बलिदान 6 अप्रेल 1929 को हुआ था। महाशय जी प्रति वर्ष 6 अप्रेल के दिन मेरे पिता जी पर लेख लिखते थे और यह क्रम न केवल 1947 तक 18 वर्ष तक चलता रहा अपितु आजादी के बाद जब प्रताप जालधर और दिल्ली से पुन प्रकाशित होना शुरू हुआ तो उसमें भी यह सिलसिला जारी रहा। आज इस ससार में लोग अपने निकटतम, अत्यन्त प्रिय व्यक्तियों को भी एक दो साल में भूल जाते हैं। ऐसे में यह एक अनुपम उदाहरण है मित्रता निभाने का और बलिदान हुए व्यक्ति की स्मृति को जीवित रखने का। ऐसा उदाहरण शायद ही अन्यत्र मिले।

महाशय जी का निधन 24 फरवरी 1963 को दिल्ली में हुआ। मैं प्राय उनसे मिलने उनके निवास 8 कीलिंग रोड अब टाल्स्टाय मार्ग पर जाता था। निधन के एक दो दिन पहले जब मैं उनसे मिला तो उन्होंने एक बात कही 'मुझे पता है मेरा अतिम समय निकट है। मैंने भरपूर जीवन जिया है भरसक देश और समाज की सेवा की है। केवल एक बात मन में रह रहकर आती है कि मैं इस समय विदा ले रहा हू, जब ससार में अनेक क्रातिकारी परिवर्तन होने वाले हैं और विज्ञान अनेक उपलब्धिया प्राप्त कर रहा है। मुझे दीख रहा है कि एक दिन मनुष्य चाद पर भी पहुचेगा और कम्प्यूटर द्वारा एक ऐसी क्रांति होगी जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मैं यह सब नहीं देख पाऊगा। सम्भवत यह एक उस जागरूक सपादक की अतर्वेदना थी जो विश्व की प्रत्येक गतिविधि पर नजर रखते थे समय के साथ चलते थे।

आचार्य देवव्रत, प्राचार्य गुरुकुल कुरुक्षेत्र, अमेरिकन मैडल ऑफ ऑनर से सम्मानित

समस्त आर्य जगत को जानकर अति प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल कुरुक्षेत्र के प्राचार्य आचार्य देवव्रत को अमेरिकन बॉयोग्राफिकल इन्स्टीयूट द्वारा समाज सेवा के क्षेत्र मे अति सराहनीय योगदान के लिए अमेरिकन मैडल ऑफ ऑनर से सम्मानित किया गया है। अमेरिकन बॉयोग्राफिकल इन्स्टीयूट अपनी गहरी एव पैनी नजर द्वारा अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से समस्त विश्व में निष्कामभाव से समाज सेवा के क्षेत्र में कार्यरत समाज सेवियों की खोज करता है।

ध्यान रहें आचार्य देवव्रत शिक्षाविद् प्रखर वैदिक प्रवक्ता हैं। ये 21 वर्ष की अल्पायु मे ही गुरुकुल कुरुक्षेत्र का चहुमुखी विकास करते हुए भारतवर्ष में शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल कुरुक्षेत्र को अग्रणी पक्ति मे ला खड़ा करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। यहा के छात्र विभिन्न खेलो में राष्ट्रीय स्तर पर प्रथम स्थान प्राप्त कर चुके हैं। जिम्नास्टिक एथलेटिक्स कबड्डी फुटबाल कुश्ती एनसीसी निशानेबाजी आदि खेलो मे भी कीर्तिमान स्थापित कर चुके हैं। यहा की गौशाला भारतवर्ष की उच्चकोटि की गौशाला कही जा सकती है जिसमे 20 कि.ग्रा से कम दूध देने वाली गाए नहीं है और अधिकतम 40 कि.ग्रा तक दने वाली गाए हैं।

आचार्य के प्रयासो द्वारा गुरुकुल कुरुक्षेत्र में अति सुन्दर स्वामी श्रद्धानन्द योग एव प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की गई जिसमें सैकडों रोगी प्रतिदिन सफल उपचार लेकर असाध्य रोगों से मुक्त हो रहे हैं। इस चिकित्सालय में मरीजों हेतु आवासीय सेठ ज्योति प्रसाद आरोग्य धाम का भी निर्माण किया गया है। इस समूचे कार्य पर लगभग 50 लाख रुपये लगाए गए हैं। गुरुकुल कुरुक्षेत्र प्रबन्ध समिति पूर्ण एकता भाव से आचार्य देवव्रत के इन प्रयासो की प्रशसा करती है तथा अमेरिकन बायाग्राफिकल इन्स्टीयूट का भी धन्यवाद करती है कि जिन्होंने अमेरिकन मैडल ऑफ ऑनर से आचार्य देवव्रत को सम्मानित किया है। आचार्य देवव्रत गुरुकुल कुरुक्षेत्र के कार्य को देखने से अतिरिक्त गावों के किसानों के समग्र विकास के लिए गत 8 वर्षों से निरन्तर सघर्षशील रहते हैं। गावों में जाकर यज्ञ एव उपदेशों के माध्यम से अनेक लोगों का धूम्रपान शराब आदि व्यसन छुड़ा चुके हैं। सामाजिक कुरीतियों से मुक्त करने के लिए निरन्तर प्रयासरत् रहते हैं तथा वेदप्रचार के लिए विभिन्न स्थानों पर जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करते हैं।

डॉ सत्यवीर विद्यालकार प्रधान गुरुकुल कुरुक्षेत्र

आर्य समाज

दयानन्द मार्ग, भीलवाड़ा

वैदिक ज्ञान प्रतियोगिता सम्पन्न

वैदिक साहित्य प्रचार हेतु आर्य समाज भीलवाड़ा द्वारा वैदिक ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन दो चरणों में किया गया जिसमें भीलवाड़ा शहर के 16 विद्यालयों के 800 छात्रों ने स्वामी जी की जीवनी एव वैदिक साहित्य को पढकर लिखित एव मौखिक परीक्षा में भाग लिया। प्रत्येक विद्यालय के प्रथम द्वितीय तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले छात्रों को सत्यार्थ प्रकाश एव प्रमाण पत्र सह 701/501/301 रुपये देकर सम्मानित किया गया। ये विद्यार्थी 14 से 20 वर्ष की आयु के थे। इसके साथ ही भीलवाडा शहर के सभी माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक विद्यालयों हेतु पुस्कतकालयों मे सत्यार्थ प्रकाश की एक–एक प्रति नि शुल्क भेंट की गई। इसी प्रचार भावना से प्रेरित हो आर्यसमाज द्वारा आयोजित सत्यार्थ प्रकाश पत्राचार प्रतियोगिता हेतु पजीयन में 50 प्रतिशत की छूट दी गई हे। साथ ही 40 प्रतिशत छूट सत्यार्थ प्रकाश पर दी जा रही है।

प्रधान
जिला उप प्रतिनिधि सभा भीलवाड़ा

आर्य समाज मंदिर

आर्यसमाज गली,गाधी नगर,दिल्ली–31

भव्य वेद प्रचार सप्ताह सम्पन्न

आर्य समाज गाधी नगर में एक सप्ताह का भव्य वेद प्रचार कार्यक्रम रविवार 22 09 2002 को यज्ञ की पूर्णाहुति के साथ सम्पन्न हुआ।

16 09 2002 से प्रारम्भ हुए इस वेद प्रचार सप्ताह में प्रात ऋग्वेद यज्ञ एव साय श्री सत्यपाल जी के भजन तथा आचार्य अखिलेश्वर जी के प्रवचन हुए। पूरे सप्ताह आर्य समाज का प्रागण आर्य जनों से भरा रहा। रात्रिकालीन कथा में हजारों आर्यजनों ने नित्यप्रति कथा का श्रवण कर अपने जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास किया।

रविवार 22.09.2002 को समापन समारोह में भी आर्यजनों ने बढ़चढ़कर श्रद्धा के साथ यज्ञ में आहुति देकर अपने जीवन को सफल बनाया। इस अवसर पर पूज्य स्वामी स्वरूपानन्द जी ने ध्वजारोहण किया एव डॉ महेश वेदालकार का विशेष व्याख्यान हुआ।

इस वर्ष का 'आर्य ज्योति' सम्मान श्री रमेश कुमार मल्होत्रा जी को दिया गया। इस कार्यक्रम में समाज के सभी अधिकारियों एव सदस्यों ने तन–मन–धन से सहयोग देकर कार्यक्रम को सफल बनाने में सहयोग दिया। सभी विद्वानों ने अधिकारियों तथा सदस्यों की कार्यक्रम सफलता से सम्पन्न होने की भूरि–भूरि प्रशसा की।

शिवशकर गुप्त
मत्री

राष्ट्र भाषा हिन्दी तथा भारतीय भाषायें, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का माध्यम कब बनेगी?

प्रो चन्द्रप्रकाश आर्य,432/8,आर्य निवास,अर्बन एस्टेट, करनाल–132001, हरियाणा

हिन्दी को सविधान में राज भाषा का दर्जा दिया गया है इसलिए नहीं कि इसका अन्य भारतीय भाषाओं से कोई विरोध या टकराव था अपितु हिन्दी देश की राजभाषा इसलिए बनी कि यह देश की सर्वाधिक बोली एव समझी जाने वाली भाषा है। अन्य भारतीय भाषायें अपने–अपने क्षेत्र तक सीमित है जैसे तमिल कन्नड़ मलयालम बगाली असमिया उडिया आदि जबकि हिन्दी पूरे देश में फैली हुई है। उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश बिहार राजस्थान हरियाणा हिमाचल तथा दिल्ली की यह सरकारी भाषा है। पजाब में पहले से ही हिन्दी का प्रचार है। वहा हिन्दी साहित्य लिखा गया। गुरमुखी लिपि में भी वहा हिन्दी का साहित्य मिलता है। गुरू गोविन्दसिह की रचनाये हिन्दी ब्रज मे हैं। जालन्धर से अब हिन्दी के कई अखबार छपते हैं। चडीगढ़ से भी हिन्दी के 4–5 अखबार छप रहे हैं।

हिन्दी आज से बहुत पहले ही भक्ति आन्दोलन के कारण पूरे देश मे फैल गई थी। भक्ति आन्दोलन की लहर के कारण समूचे देश में 14वी 15वीं शताब्दी में हिन्दी में भक्ति रचनाये लिखने का प्रचलन हो गया था। महाराष्ट्र गुजरात मे सतनाम देव तुकाराम एकनाथ दादूदयाल नरसी मेहता प्राणनाथ आदि ने हिन्दी में अपनी रचनायें लिखी। विस्तार के लिए हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (डॉ राजूनाथ शर्मा) पृ.154–155 198–201 द्रष्टव्य हैं। इसी प्रकार बगाल में चैतन्य महाप्रभु, ज्ञानदास चडीदास असम में शकरदेव माधवदेव ने उड़ीसा मे रामानन्द भटटनायक जगन्नाथदास आदि ने तथा काश्मीर मे केशवदेव भटट तथा श्रीलाल आदि ने हिन्दी में अपनी भक्ति रचनाये लिखी। यहा तक कि सुदूर केरल मे महाराज स्वातितिसनाल ने हिन्दी में चौंतीस भक्ति पद लिखे। आन्ध्र कर्नाटक तमिलनाडु में गुरू गोरखनाथ के शिष्यों द्वारा स्थापित अनेक मठो से हिन्दी का साहित्य प्राप्त हुआ है।

डॉ मलिक मुहम्मद द्वारा लिखित पुस्तक 'हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रदेश की देन' (राजपाल एण्ड सस नई दिल्ली–77) मे विस्तार से इन प्रान्तों के योगदान पर प्रकाश डाला गया है।

राजनीतिक कारणों से भी दक्षिण भारत में 14वीं सदी में ही हिन्दी *का प्रचलन हो गया था। जब मुहम्मद तुगलुक ने अपनी राजधानी* दिल्ली को देवगिरि का दौलताबाद बसाई तब वहा दिल्ली की भाषा हिन्दी का भी प्रचलनन हो गया। वहा इसे दक्खिनी या दक्षिणी हिन्दी कहा जाता था। 18वीं शताब्दी तक वहा इसे बहमनी वश के राजाओ का भी आश्रय मिला और इसमें पर्याप्त साहित्य रचा गया। देखें, 'भाषा विज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा' (डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना) चतुर्थ सस्करण पृ.363. इस प्रकार हिन्दी का प्रसार पूरे देश में हो गया था। सदियों से यह देश की राष्ट्र भाषा और सम्पर्क भाषा रही है। हिन्दी सिनेमा ने भी आज इसे देश के कोने–कोने में पहुचा दिया है। आज दक्षिण भारत के अनेक कलाकार इसके प्रसार मे योगदान दे रहे हैं। आज मद्रास हिन्दी फिल्मों का सशक्त केन्द्र बना हुआ है।

हिन्दी के बाद भारतीय भाषाओं में गुजराती मराठी पजाबी बगला आदि का नाम लिया जा सकता है। भाषा विज्ञान के अनुसार ये एक ही अपभ्रश के विभिन्न रूपों से विकसित हुई हैं। देखें भाविज्ञान और मानक हिन्दी (डॉ नरेश मिश्रा)। गुजराती की लिपि यद्यपि अलग है किन्तु यह देवनागरी का ही रूपान्तर है। मराठी की लिपि ही देवनागरी है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार बगला प्राचीन देवनागरी से ही विकसित एक लिपि में लिखी जाती है। असमिया की लिपि कुछ परिवर्तित बगला लिपि ही है। उडिया की लिपि भी प्राचीन देवनागरी से ही विकसित हुई है। भाषा वैज्ञानिक यहा तक मानते हैं कि उत्तर भारत की प्राय लिपिया देवनागरी के ही रूप भेद है और उनमे अत्यधिक समानता है। देखे–राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली–2 द्वारा प्रकाशित भाषाविज्ञान की भूमिका (देवेन्द्रनाथ शर्मा सस्करण 1989 पृष्ठ 138 139 पृ 357)

इस प्रकार हिन्दी तथा भारतीय भाषायें परस्पर जुडी हुई हैं। वे एक ही भारतीय आर्य परिवार की भाषाये हैं। इनका परस्पर कोई विरोध नहीं है। इनका विरोध अग्रेजी के साथ है। अग्रेजी के कारण हिन्दी को राजभाषा का पूरा सम्मान एव स्थान नहीं मिल पाया है। राज–काज प्रशासन विज्ञान चिकित्सा प्रबन्धन प्रौद्योगिकी इजीनियरी आदि क्षेत्रों में अग्रेजी का प्रभुत्व जारी है। अग्रेजी के कारण अन्य भारतीय भाषायें भी पिछड गई है। इनका भी विकास रूक गया है। विज्ञान प्रौद्योगिकी एव तकनीकी शिक्षा मे इनका प्रयोग नहीं होता। जबकि भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार दक्षिण की भाषाये–तमिल तेलगू, कन्नड मलयालम आदि अत्यन्त समृद्ध भाषाए हैं। उनमें उच्च कोटि का श्रेष्ठ साहित्य मिलता है। (देखें–भाषाविज्ञान एव भाषाशास्त्र डॉ कपिलदेव द्विवेदी चतुर्थ सस्करण 1994 पृ 424–425) किन्तु आधुनिक विज्ञान चिकित्सा प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एव तकनीकी शिक्षा की दृष्टि से उनका विकास ही नहीं किया गया क्योंकि अग्रेजी उन पर भी हावी रहीं। इनका वास्तविक विरोध अग्रेजी के साथ है *हिन्दी के साथ नही। इसी कारण पहले कर्नाटक में सरकारी* काम–काज में अग्रेजी के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाया गया और बाद मे तमिलनाडु मे भी डी एम के सरकार द्वारा स्कूलों में तमिल को पढाना अनिवार्य किया गया।

अग्रेजी के कारण ही हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाए आज इस स्थिति में पहुच गई है कि स्वतत्रता के 55 वर्ष बाद भी देश में सभी क्षेत्रों में अग्रेजी का प्रभुत्व है। देश की सौ करोड जनता की भाषाओं को हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को न्यायालयों प्रशासन विज्ञान चिकित्सा आदि में कोई स्थान नहीं। हमने अपनी भाषा का विकास ही नहीं किया। हिन्दी तथा भारतीय भाषाओ को इस योग्य बनने ही नहीं दिया। (क्रमश)

आर्य समाज के प्रति पत्नी प्रतिकूल क्यों है?

यह देख कर बडा आश्चर्य होता है कि आर्य समाज के अनेक अधिकारियों के बीवी (पत्नी) बच्चे आर्य समाज में नहीं आते बल्कि कहीं और पूजास्थलों पर जाते हैं। मैंने 4–5 प्रधान/मत्रियों से पूछा कि आपकी धर्मपत्नी आर्य समाज में क्यों नहीं आती? एक ने कहा मैं उसे जबरदस्ती खींचकर तो ला नही सकता। मैंने उसे कितनी बार कहा है परन्तु नहीं आती वह पड़ोस की महिलाओं के साथ राममदिर में जाती है। दूसरे ने कहा क्या करू बहुत समझाता हू फिर भी नहीं आती दुर्गा के मदिर में जाती है। तीसरे ने बताया कि गुरूद्वारे में जाती है इधर आने को तैयार नहीं। चौथे ने स्पष्ट कहा वो तो आर्य समाज के नाम से ही चिढ़ती है। जब मैं ज्यादा जोर देकर पूछता हू तो कुछ कह देते हैं कि आपका कहना मान जाये तो आप समझाकर देख लो।

मैं दो तीन अधिकारियो के घर भोजन के निमित्त गया तो उनकी श्रीमती से पूछा आप आर्य समाज के सत्सग में क्यों नहीं आती? आर्य समाज से कुछ नफरत या नाराजगी है? उन्होंने प्रेम से कहा नहीं ऐसा कुछ नहीं है। फिर न आने का क्या कारण है? आपको गर्व होना चाहिए कि आपके पतिदेव आर्य समाज में प्रधान या मत्री है। आपको आर्य समाज मेंआना चाहिये। श्रीमती ने यह कहकर पीछा छुड़ाया कि मैं सोचकर बताऊगी। मैं अनेक वर्षो से इस खोज में लगा हुआ हू कि क्या कारण है जो पत्नी पति की अनुगामी नहीं है अर्थात साथ मिलकर नहीं चलती या कहना नहीं मानती। दीर्घ अनुभव से पता चला कि पति की उपेक्षावृति (लापरवाही) और त्रुटिया इसका कारण है। निम्नलिखित कुछ तथ्यों पर ध्यान दीजिये–

1 पति पत्नी की आवश्यकता और इच्छा की ओर ध्यान नहीं देता है या यू कहो कि पूर्ति नहीं करता है।

2. पत्नी का उचित सम्मान नहीं करता है बल्कि सबके सामने डांटकर अपमान करता रहता है।

3. पत्नी की गलती पर उसे गालिया देता है दुर्व्यवहार करता है प्यार से समझाने की बजाय गुस्से मे धमकाता है पीटता है।

4 उसके किये हुए अच्छे काम की प्रशसा नहीं करता है बल्कि नुक्स छाटता रहता है।

5 पत्नी से सत्य को छुपाकर झूठ बोलता है। उसके सामने धूम्रपान या मद्यपान करता है। अन्य स्त्री से प्रेम करता इत्यादि।

यदि कोई सज्जन कहे कि उपर्युक्त कारणों में मेरे साथ कोई कारण नहीं घटता है फिर भी अनुकूल नहीं है। तब आपको थोडा सयम से काम लेना होगा। घर में रहते हुए पत्नी से केवल आवश्यकतानुसार बात करो परन्तु उसको स्पर्श मत करो। कम से कम पन्द्रह बीस दिन जरा दूर रहकर देखो इसका क्या प्रभाव होता है।

इतने पर आपकी पत्नी कुछ परवाह नहीं करती तब एक सप्ताह के लिए घर में भोजन करना बद कर दो। दूध फल बिस्कुट खाकर रहो। इतना करने पर लज्जावती पत्नी अवश्य बदलेगी। यदि इतने पर भी नहीं समझती और आपकी उपेक्षा करके मनमानी करती है तो एक ही तरीका है या तो उसके दास बन जाओ या उसके साथ रहना छोड दो। जो पत्नी अपने पति के साथ सन्मार्ग पर चलने को तैयार नही है वह तो कुछ भी बीज बो सकती है। उसका परिणाम पति को भी भोगना पड़ेगा।

देवराज आर्यमित्र,आर्य समाज
कृष्णनगर दिल्ली 51

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग द
1 देश–विदेश की आर्य समाजो मे घटित घटनाओं से आर्य जगत को अधुनातन जानकारी देना।
2 आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।
3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोडना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।
4 आर्य समाज द्वारा धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र मे किये जा रहे कार्यों की जानकारी देना।
5 समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओ का आर्य जगत को परिचय देना।
6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एव युवकों का सगठन खडा करना।
7 आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाओं के माध्यम से देश मे सशक्त छात्र शक्ति खड़ी करना।
8 विश्व के आर्य परिवारो का सगठन बनाना।
9 देश के 100 विद्वानो की परिषद बनाना।
10 विश्व की समस्त भाषाओं में वेद सन्देश प्रकाशित कर वदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।
11 विश्वशाति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना, कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरूद्ध मुहिम छेड़ना तथा देश में राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्रान्ति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीर्वाद दें कि परमपिता परमेश्वर हमे इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामर्थ्य दे।

तन मन धन से सहयोग दे
पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने का कष्ट करे।

सार्वदेशिक साप्ताहिक में स्वामी अग्निवेश पर अनर्गल आरोपों की विषवर्षा

आंखों में रहा दिल में उतर कर नहीं देखा, किश्ती के मुसाफिर ने समुन्दर नहीं देखा

सत्यव्रत सामवेदी

जयपुर 15 नवम्बर। सार्वदेशिक साप्ताहिक पत्र में स्वामी धर्मानन्द नाम के किसी सन्यासी ने आर्य जगत के ओजस्वी नेता स्वामी अग्निवेश पर अनर्गल आरोपो की झड़ी लगा दी है। लेख का शीर्षक है–

आर्य बन्धुओ! सावधान!! कामरेड अग्निवेश से

समझ नही आता कि यह लेख है या चरित्रहनन के अभ्यस्त राजनीतिज्ञ का पोस्टर है ताकि वह विरोधी प्रत्याशी को बदनाम करके चुनाव में विजयी हो सके। हजारो मत भेदो के बावजूद हमें आर्य समाज के विवादित एव विभाजित अन्तर्राष्ट्रीय सगठन के पत्र में इस प्रकार के वीभत्स और घृणित लेख प्रकाशित होने की आशा नहीं थी। इस लेख के प्रत्येक शब्द से ईर्षा घृणा और द्वेष की दुर्गन्ध आ रही है। मत–भेद मानव विकास की पहली शर्त है। यदि मत भेद नहीं होता तो ज्ञान विज्ञान का प्रचार प्रसार ही नहीं हो सकता था और मानवजाति आदिम युग में रह रही होती। मत भेद का हम स्वागत करते हैं परन्तु मन भेद मानवजाति के विकास मे सर्वाधिक बाधक तत्व रहा है। यह लेख मत भेद की नहीं अपितु मन भेद की कुत्सित सतान है। यदि आर्य समाज के सन्यासी भी ईर्षा द्वेष से प्रेरित होकर असत्य का आश्रय लेने लगेंगे तो समान्य व्यक्तियो की क्या स्थिति होगी। वस्तुत जब–जब क्रान्तिकारी महापुरुषों ने समाज की जडता अज्ञान अधविश्वास गतानुगतिकता को छिन्न–भिन्न करने का प्रयास किया तब–तब जडता युक्त समाज ने उसका भयकर विरोध किया और अनेक महापुरुषों की जीवन लीला समाप्त कर दी। ईसा से यहूदी मत के पाखण्डी धर्माचार्यों जब पर्दाफाश किया तो धर्माचार्यों ने उसे सूली पर चढ़ा कर ही दम लिया। मोहम्मद साहब ने जब जाहिल मूर्ति पूजक समाज ने व्याप्त कुरीतियो के उच्छेदन का प्रयास किया तो सारी जनता उनके विरुद्ध खडी हो गई और उन्हें अपनी जान बचाने के लिए मक्का छोड़कर मदीना में शरण लेनी पडी। अहिसा और करूणा का सदेश देने वाल महावीर का शरीर तीक्ष्ण शूला स विदीर्ण कर दिया गया। आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती को अनेक बार विष दिया गया और विश्व को अमृत का सागर देकर विषपान करके चले गये। जिस मरणासन्न धर्म की रक्षा के लिए महर्षि ने अपने प्राणों की आहुति दी और विश्व के समस्त मत–मतान्तरों को चुनौती दी उसी धर्म रक्षक महर्षि दयानन्द को उसी [illegible] ने ईसाइयों का एजेन्ट घोषित कर कदम–कदम पर अपमानित किया इसीलिए गोस्वामी तुलसी दास ने अपने ग्रथ राम चरित मानस का प्रारम्भ करने से पूर्व खलवदना करते हुए कहा–

वचन वज्र जेहि सदा पिआरा सहस नयन परदोष निहारा।

इस लेख में वज्र वचन है और सहस्त्र नयनों से दोष देखने की प्रवृत्ति है। आर्य जगत हमेशा इस तथ्य से पीड़ित रहा कि विदेशों मे वेद प्रचार का योग्यताधारी एक भी विद्वान या सन्यासी नहीं है। आर्य जगत की अदम्य कामना थी कि काश! स्वामी विवेकानन्द की भाँति हमारे पास भी कोई सन्यासी होता जो विदेशों में वेद ज्ञान की धूम मचा देता। ईश्वर की कृपा से आर्य समाज के इतिहास मे पहली बार एक सन्यासी ने ससार के कोने कोने मे वेद की दुन्दुभी बजा दी और उस सन्यासी का नाम है स्वामी अग्निवेश।

ईसाइयों की धार्मिक राजधानी रोम में अग्निवेश जी यज्ञकुण्ड लेकर के गए और ईसाई पादरियों को अग्निहोत्र की वैज्ञानिक व्याख्या करके अग्निहोत्र का महत्व प्रतिपादित किया। विश्व के इतिहास में पहली बार रोम के पादरियों को एक गैर ईसाई वैदिक सन्यासी स्वामी अग्निवेश वेद और आर्य समाज के मन्तव्यो को समझा रहे हैं और सैंकड़ों पादरियों ने निरन्तर चार दिन तक तन्मयता से उनके भाषणों को सुन कर कहा– 'हमें तो पहली बार मालूम हआ कि वेद उदात विचारों की ईश्वरकृत पुस्तक है। हमें तो आज यही बताया गया कि वेद में बहुदवतावाद है प्रकृति की पूजा है जादू–टोने हैं। यह आदिमकाल के मूर्ख लोगों की अज्ञानतापूर्ण पुस्तक है।

आज स्वामी अग्निवेश जी ने वेद के शुद्ध ज्ञान की जानकारी देकर हम पर असीम कृपा की है। क्या यह ईसाइयत का या साम्यवाद का प्रचार है? आज विश्व के अनेक राष्ट्र एव उनके विश्वविद्यालय उन्हें भाषण देने के लिए साग्रह आमत्रित करते हैं। क्या यह आर्य समाज के लिये गर्व की बात नहीं है? एक वर्ष में नौ महीने तो उन्हें विश्वविद्यालयों में वेदों पर भाषण देने जाना पड़ता है और कभी–कभी समयाभाव के कारण उन्हें असमर्थता भी व्यक्त करनी पड जाती है। प्रत्येक विश्वविद्यालय में जाकर वे सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास की अनुभूमिका में लिखित निम्नलिखित सदेश को सुनाते हैं– 'मेरा तात्पर्य किसी की हानि वा विरोध करने मे नहीं किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है। मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के के लिये है न कि वाद विवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मत मतान्तर के विवाद से जगत् मे जो जो अनिष्ट फल हुए होते हैं और होंगे उनको पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं।

स्वामी धर्मानन्द ने इस लेख मे अरोपो की झड़ी लगाते हुए एक आरोप यह लगाया है कि उन्होने नवलखा भवन में आयोजित सम्मेलन में आर्य समाजियो को आह्वान किया कि वे अपनी बेटियों का विवाह मुसलमानों से कराये इस पर मच पर विराजे हुए श्री राजेन्द्र जिज्ञासु ने मच से अग्निवेश को ललकारते हुए समाज विरोधी वक्तव्य की घोर निदा की। नवलखा भवन में आयोजित जिस सम्मेलन में स्वामी अग्निवेश भाषण दे रहे थे उस सम्मेलन का सचालन मैं कर रहा था। मच पर श्री राजेन्द्र जिज्ञासु भी बैठे हुए थे। कै देवरत्न आर्य मुझे बार–बार कह रहे थे कि राजेन्द्र जी को भी भाषण देने के लिए बुलाये। मैंने कहा कि पहले घोषित वक्ताओ का भाषण होने दे बाद मे उन्हें भी समय दे दिया जाएगा परन्तु राजेन्द्र जी नाराज होकर मच से उठकर चले गए और सम्मेलन स्थल से बाहर किसी पुस्तक विक्रेता की स्टॉल पर मेरे और अग्निवेश जी के विरूद्ध बोलते रहे। उस समय श्रोताओं में श्री रामनाथ सहगल भी उपस्थित थे और अन्य सैंकड़ों आर्यजन भी। उस सम्मेलन मे उपस्थित क्या एक भी व्यक्ति स्वामी धर्मानन्द के इस आरोप की पुष्टि करने के लिए तैयार है कि स्वामी अग्निवेश ने आर्य समाजियों को अपनी बेटियो के विवाह मुसलमानों के साथ करने को कहा? जब श्री राजेन्द्र जिज्ञासु सम्मेलन स्थल पर ही नहीं थे तब उन्होंने स्वामी अग्निवेश को कब कहां और कैसे ललकारा? श्री राजेन्द्र जिज्ञासु निरन्तर लिखते रहते हैं और उनके लेख अनेक पत्र–पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। यदि राजेन्द्र जी द्वारा स्वामी अग्निवेश को ललकारने की बात सत्य होती तो वे अब तक अपने समस्त लेखों मे इस घटना का उल्लेख किये बिना नहीं रहते।

श्री राजेन्द्र जिज्ञासु से अनुरोध है कि वे ही इस प्रकरण पर प्रकाश डाले ताकि आर्य जगत को वास्तविकता की जानकारी हो सके। मैं स्वय अग्निवेश जी का न तो अध भक्त हू और न ही अनुयायी। कभी–कभी उनके विचारो से [illegible] भी होता है परन्तु उन्हें इस पर कोई आपत्ति नहीं होती। लखनऊ से दिल्ली तक मिल कर चलो यात्रा में मैं उनके साथ रहा और मैंने स्पष्ट प्रतिक्रिया आर्य नीति में प्रकाशित करते हुए इस प्रकार की यात्राओं को व्यर्थ माना और परामर्श दिया कि आर्य समाज के तत्वावधान मे ही यात्राओ का आयोजन होना चाहिये जिसे उन्होने सहर्ष स्वीकार किया।

स्वामी अग्निवेश जी पर आरोपो का घटाटोप खड़ा करने वाले स्वामी धर्मानन्द जी से अनुरोध है कि वे ईर्षा द्वेष को त्याग कर अपने सन्यासी जीवन को सार्थक करें। हम प्रतिदिन मनसा परिक्रमा मत्रो में छ बार ईश्वर से ईर्षा द्वेष से मुक्ति प्रार्थना करते हैं परन्तु हमारा ईर्षा द्वेष जाता नहीं है। जब स्वामी अग्निवेश यह कहते हैं कि वेद ज्ञान को वर्तमान परिस्थितियों में प्रासगिक बनाओं तो उनका मन्तव्य यही होता है कि केवल द्वेषभाव का त्याग करने के लिए मत्र पाट ही मत करो उसे अपने जीवन में आत्मसात करो और उस पथ पर चलो।

स्वामी अग्निवेश पर यह भी आरोप लगाया गया कि वे साम्यवाद के एजेन्ट हैं और प्रमाण यह दिया गया कि उन्होंने वैदिक समाजवाद नामक पुस्तक लिखी। यह एक अत्यन्त हास्यास्पद तर्क है। पुस्तक के नाम से ही यह स्पष्ट है कि वे मार्क्स द्वारा प्रतिपादित साम्यवादी विचारधारा का विरोध कर रहे है और विश्व को वैदिक समाजवाद के पथ पर चलने की दिशा बता कर आर्थिक क्राति का सदेश दे रहे हैं। महात्मा गाधी ने भी कहा था कि मैं अहिंसक साम्यवादी हूँ।

प्रसिद्ध अग्रेज लेखक मोलियर (Molier) ने मानव की ईर्षा द्वेष की प्रवृति पर व्यग करते हुए ठीक ही लिखा है–"Envious people will die but envy will never die" अर्थात् ईर्ष्यालु व्यक्ति तो मर जायेंगे परन्तु ईर्षा कभी नहीं मरेगी।

(क्रमशः)

सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक 6 व 13 जवाहर नगर द्वारा नीतू प्रिन्टिंग प्रेस बाबा हरिशचन्द्र मार्ग जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि. 652087 का. 622056 e-mail [illegible]
आर्य समाज [illegible] समिति एव शिक्षा समिति आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज [illegible] जयपुर–4
राजस्थान
पजियन [illegible]
RAJ[illegible]
डाक पंजीकरण
संख्या [illegible] 2637

प्रेषित
70 श्री जगदीश वेदालकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरूकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार उत्तरांचल यू पी

[illegible] प्रचार, आर्य समाज, विश्व शान्ति, राष्ट्रोत्थान, मानवता एव सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र

।।ओ३म्।।
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य नीति

वर्ष · 2 अंक · 46 08 दिसम्बर, 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पजियन सख्या RJ-3637/2001 वार्षिक मूल्य 75रुपये

बर्बर बलात्कारियों की बाहुओं में तड़पती अबलायें

मातृदेवो भव की अन्त्येष्टि

—सत्यव्रत सामवेदी

जयपुर 7 दिसम्बर। सीता द्रौपदी गार्गी अपाला घोषा सावित्री, मदालसा के देश में बर्बर बलात्कारियों का वर्चस्व है। सारा देश उनकी खूनी भुजाओं के गिरफ्त में है। भारत का आकाश बलात्कारियों की बर्बरता की शिकार अबलाओं के हाहाकार, विलाप क्रन्दन और सिसकियों से व्याप्त हो रहा है।

उस दिन सारा देश यह समाचार पढकर हतप्रभ रह गया जब कुछ गुण्डों ने मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज के सामने भीड़ भरी सड़क से हजारों लोगों के सामने एक 20 वर्षीय छात्रा का अपहरण कर लिया और पास में ही किसी बहुमजिली इमारत में ले जाकर उससे सामूहिक बलात्कार किया। उस आवासीय बहुमजिली इमारत के पहरेदार अपने हाथों में बन्दूकें थामे हुए इस वीभत्स और घृणित आसुरी कुकृत्य को मूक देखते रहे और न जाने किस लाचारी से वे हरकत में नहीं आए।

यह उस राम का देश है जिसने सीता के अपहरण पर विश्व के अजेय खलनायक रावण को मौत के घाट उतार दिया था और स्वर्णमयी लंका को जलाकर राख कर दिया था। यह अर्जुन और भीम का देश है जहा द्रौपदी के केश खींचने पर भीम ने दुशासन के शरीर को फाड़कर उसका रक्तपान करने की शपथ ली थी और जिस दुर्योधन ने भरी सभा में द्रौपदी से कहा था कि इन जघाओं पर आकर बैठो, उन जघाओं को भीम ने गदा से चूर-चूर कर दिया था। वाहरे भीम के वशजो! तुम्हारे सामने 20 वर्षीया बालिका चीखती रही, चिल्लाती रही सहायता के लिये पुकारती रही और तुम हीजड़ो की तरह चुपचाप देखते रहे।

हीजडो से भी गया बीता समाज

आज भारत में मर्दों (नामर्दों) की हीजड़ो से तुलना करना हीजड़ो का अपमान है। यदि 20 वर्षीया मेडिकल की छात्रा का अपहरण करते समय हीजडे होते तो अपहरणकर्ताओ को मार-मार कर भुर्ता बना देते। यदि देश में बलात्कार को रोकने का ठेका हीजड़ों को दे दिया जाए तो बलात्कार के कुकृत्य पर अकुश लगाया जा सकता है। हमारा समाज हीजड़ों से भी गया बीता है। क्या आपने किसी मुसलमानों के मोहल्ले में किसी मुस्लिम युवती के साथ बलात्कार की घटना होते हुए सुनी? इस मामलें में मुस्लिम कौम सतर्क और जाँबाज कौम है। किसी मुस्लिम बहुल क्षेत्र में यदि अपहरण या बलात्कार की घटना घटित होती तो वहा के मुसलमान अपहरणकर्ता या बलात्कारी के टुकड़े-टुकड़े कर देते।

बलात्कार के प्रति हमारी प्रतिक्रिया

बलात्कार की खबर सुनते ही हमारे क्रोध का उफान चरम सीमा पर होता है। हम एक मत से कहते हैं— इन कमीनों को फांसी की सजा देनी चाहिये— इनका सिर धड़ों से अलग कर दिया जाना चाहिये, इन पर शिकारी कुत्ते छोड़कर उनसे नुंचवा कर उनकी जीवन लीला समाप्त कर देनी चाहिये। इन्हें आग में तपते हुए लोहे के पलंग पर सुलाकर मार डालना चाहिये। परन्तु हमारे चाहने से क्या होता है? हम तो विवशता के गीत गाने के लिए मजबूर हैं—

ऐ गमे दिल क्या करूँ, ऐ बहशते दिल क्या करूँ
जी में आता है कि मुर्दा चांद तारे नौंच लू।
इस किनारे नोंच लू और उस किनारे नोच लू।
एक दो का जिक्र क्या सारे के सारे नोंच लू।

क्या मृत्यु दण्ड से बलात्कार रूक जाएगा

ससद में बलात्कार की घटनाओं पर सासद उत्तेजित थे और अडवाणी ने बलात्कारियों को मृत्यु दण्ड देने की वकालत की जिसका पूरे सदन ने समर्थन किया। जार्ज फर्नांडीज—जिसने गुजरात में बलात्कार की घटनाओं को रोजमर्रा घटित होने वाली घटना बताकर खारिज कर दिया— ने भी बलात्कारियो को मृत्यु दण्ड देने का समर्थन किया परन्तु जब हमारा गुस्सा ठडा हो जाता है या उबाल खत्म हो जाता है तब हमारा विवेक कुछ और ही रास्ता दिखाता है। यदि बलात्कारियों के विरूद्ध मृत्युदण्ड का प्रावधान कर दिया जाता है तो बलात्कारी अपने हवस की शिकार स्त्री कीहत्या कर सकता है ताकि कोई साक्ष्य ही नहीं रहे।

विश्व के समस्त न्यायालयों की यही मानसिकता रही है कि जब अपराधी को मृत्यु दण्ड देने का निर्णय अनिवार्य हो जाता है तब वह साक्ष्य के सदहास्पद होने के बहाने अपराधी को छोड़ देता है। इसके अतिरिक्त बलात्कारी अन्य साक्ष्यों को समाप्त करने के लिए हत्या कर सकता है या घर से किसी का अपहरण करके ब्लैक मेल कर सकता है।

तो फिर इलाज क्या है?न्याय प्रक्रिया बदली जाए?

देश पूछ रहा है कि यदि मृत्यु दण्ड से बलात्कार पर अकुश नहीं लग सकता है तो इसे रोकने का क्या तरीका है? हमारी निकम्मी एव सडी-गली न्याय प्रणाली बलात्कार को बढावा देने के लिए जिम्मेदार है। सवेदनहीन, स्वार्थी, पाखण्डी और ढोंगी समाज इसके लिए जिम्मेदार है। बलात्कार पीडिता के माँ बाप को रिश्तेदार शुभचिन्तक पडोसी सलाह देगे कि पुलिस मे प्राथमिकी दर्ज मत कराओ। इससे लड़की का जीवन बर्बाद हो जाएगा बात और फैलेगी। इसकी शादी नहीं होगी। तुम्हें गवाह ही नही मिलेंगे। बलात्कारी बहुत बड़ा गुण्डा है। वह घर में से किसी का अपहरण करके ले जायेगा या किसी की हत्या कर देगा। लडकी के माँ बाप या अभिभावक अपने रिश्तेदारो एव शुभचिन्तकों की सलाह पर मामले को रफा-दफा करने का साहस बना लेते हैं। अन्याय के विरुद्ध सघर्ष करने की मानसिकता का समाप्त करना अक्षम्य अपराध है और हमारे समाज की घृणित त्रासदी है।

हमारी सड़ी-गली न्यायप्रणाली को बदलना होगा

यदि हम बलात्कार को रोकना चाहते हैं तो सड़ी गली न्याय प्रणाली—जो हमें पश्चिम से विरासत में मिली है— को बदलना होगा।

हमारी न्याय प्रणाली की जटिलताए बालिका या युवती की कोमल मानसिकता को झकझोर देती है, उसके साथ प्रति क्षण मानसिक बलात्कार प्रारम्भ हो जाता है। उद्दाम काम वासना के विषाक्त कीटाणुओं से भरे हुए मस्तिष्क के काले कुत्तों के समान वकील पूछेंगे— क्या तुम्हें उसने नगा किया था? कैसे किया था? कब किया था? कहा किया था? तुम्हें फर्श पर लिटाया था या पलग पर? फर्श पर क्या बिछा हुआ था? गद्दा या दरी। सामूहिक बलात्कार में पहले किसने बलात्कार किया। क्या तुम्हें उस समय दर्द हुआ था? फिर वह काला कोट पहने हुए पिशाच जोर से चीखेगा—नही। तुम झूठ बोल रही हो। जिस मासूम बालिका ने जिन्दगी में वकील ही नहीं देखा वह उस वकील की चिघाड को सुनकर कापने लगती है।

बलात्कार पर अकुश लगाने के उपाय

शिक्षा प्रणाली मे परिवर्तन—शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण एव नैतिकता का विकास करना है। आज हम पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के गुलाम हैं जिसमें नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। आदर्श मानव या आदर्श परिवार आदर्श समाज आदर्श राष्ट्र आदर्श विश्व की नींव ब्रह्मचर्य है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय सम्मुल्लास में लिखा है 'इसलिये वे ही धन्यवादार्ह और कृतकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानो को ब्रह्मचर्य उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढावें।

ब्रह्मचर्य के पालन के लिये महर्षि ने यमों (अहिसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियमो (शौच सतोष तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान को बहुत उपयोगी माना हैं। ब्रह्मचर्य में महर्षि वीर्य रक्षा को बहुत महत्व देते थे। 'देखो जिसके शरीर मे सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य बुद्धि बल पराक्रम बढ के बहुत प्रकार की प्राप्ति होती है जिसके शरीर मे वीर्य नहीं होता वह नपुसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल निस्तेज निर्बुद्धि उत्साह साहस धैर्य बल पराक्रम आदि गुणो से रहित होकर नष्ट हो जाता है।

परन्तु आजादी के बाद भी हम पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली से उसी प्रकार चिपके है जैसे बदर का बच्चा अपनी मरी हुई माँ से चिपका रहता है। आज पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली की लपटें सारे राष्ट्र पर छाई हुई है और उसका विष फल खा कर हम मृत्यु का आलिगन कर रहे हैं।

इश्क का जोके-नजारा मुफ्त मे बदनाम है
हुस्न खुद बेताब है जलवे दिखाने के लिए

केवल हम पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का ही अन्धानुकरण नहीं कर रहे अपितु भोजन और वेष-भूषा का भी अन्धानुकरण कर रहे हैं। क्या आप अपनी पुत्रियों को पाश्चात्य वेष-भूषा में देखकर प्रसन्न नहीं होते? ऐसे तग और टाईट कपडे पहनना कि लड़की के उभरे हुए उरोज और नितम्ब दिखाई दें। कपड़े पहनकर भी नगे दिखाई दें। घंटों तक श्रृगार करना और सौन्दर्य प्रसाधनों से सुन्दरतम दिखने का प्रयास करना इस प्रयास की मनोवृत्ति समाज में विकृति को ही उत्पन्न करती है। हम स्त्रियोचित मर्यादाओं की होली जलाते जा रहे हैं। युवती का सबसे बड़ा आभूषण लज्जा है जिसे आधुनिक नारी ने उठाकर फेंक दिया है। बालिकाओं में स्वभाव से सकोच होता है। कामायनी महाकाव्य में लज्जा श्रद्धा से कहती है—

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हू, शालीनता सिखाती हू।

आज लज्जा का परित्याग करने के कारण बालिकाओ में

शालीनता भी समाप्त हो गई है। इसी का परिणाम है–बालिकाए लफगो और गुण्डो की काम वासना का शिकार बन रही है।

ऋग्वेद मे युवती को सदेश दिया गया है–

अधःपश्यस्व मोपरि सतरा पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।।

सदा नीची निगाह रख, ऊपर न देख सावधानी से कदम रख तेरे उभार अथवा जोड़ियाँ अक दिखाई न दे, क्योकि स्त्री प्रजनन यज्ञ की ब्रह्मा है।

हम बालिका में अच्छे सस्कार डालने का प्रयास ही नहीं करते हैं। आज हिन्दू धर्म जो जिन्दा है वह अशिक्षित पत्नियों के अच्छे सस्कारो के कारण। मुशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) के मुख से अपनी पतिव्रता एव धर्मपरायणा पत्नी क त्याग को देखकर उद्‌गार प्रकट हुए थे–

'वैदिक आदर्श से गिरकर भी जो सतीत्व धर्म का पालन पौराणिक समय में आर्य महिलाओं ने किया है उसी के प्रताप से भारत भूमि रसातल को नहीं पहुची और उसमें पुनरुत्थान की शक्ति अब तक भी विद्यमान है। यह मेरा निज का अनुभव है। भारत माता का ही नहीं उसके द्वारा सभ्यता तहजीब व सिविलिजेशन की ठेकेदार ससार की सब जातियों का सच्चा उद्धार भी उसी समय होगा जब आर्यावर्त की पुरानी सस्कृति जागने पर देवियों को उनके उच्चासन पर फिर से बिठाया जाएगा।

महर्षि दयानन्द ने नारी जाति को हजारों वर्षों की गुलामी से मुक्त कराके समाज में सर्वोच्च स्थान दिया। उन्होंने ही विश्व को मातृदेवो भव का सदेश दिया और राष्ट्रीय प्रार्थना के माध्यम से नारी को राष्ट्र का आधार बनाया परन्तु पश्चिम की भोगवादी चकाचौंध का शिकार होकर वह सर्वोच्च आसन से उतर कर असुरों के शयन कक्ष में भोग्या बन कर रह गई। उसे मालूम ही नहीं कि वेद ने नारी का स्तुतिगान करते हुए क्या कहा है–

यस्या भूत समभवत यस्या विश्वमिद जगत्।
तामद्य गाथा गास्यामि स्त्रीणा यदुत्तम यश।।

वेद के अनुसार वह विश्व की अधिष्ठातृ है। सारा विश्व उसी के कारण चल रहा है। नारी धर्म की रक्षिका है इसीलिए उसे धर्म पत्नी कहा जाता है। पति को धर्म पति नही कहते।

श्रद्धामयी या इच्छामयी

आज की नारी श्रद्धामयी नहीं बनना चाहती। वह तो इच्छा के पदचिन्हों पर चल रही है जिसने पाया न हृदय विकल कर रही है अभिनव'। उसे जयशकर प्रसाद के इस उदबोधन से अनुप्राणित करना होगा–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल मे।

नई पीढ़ी पर टीवी व दूरदर्शन का प्रभाव है। वेद सदेश देता है–

भद्र कर्णेभि श्रृणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्षभिर्यजत्रा

परन्तु हम दिन रात टीवी और दूरदर्शन पर देख रहे है–हिंसा अपहरण हत्या व बलात्कार के वीभत्स दृश्य और नई पीढ़ी उसी के अनुसार अपना जीवन ढाल रही है। बच्चों पर अच्छे सस्कार डालने के दो ही तरीके हैं–भद्र देखो और भद्र सुनो। बच्चा जो कान से सुनेगा और आख से जो देखेगा वही बनेगा।

अत आर्य समाज को टीवी व दूरदर्शन द्वारा परोसे जा रहे विषाक्त आत्मिक व मानसिक भोजन के विरुद्ध राष्ट्र व्यापी आन्दोलन करना होगा और उसे बाध्य करना होगा कि वह बच्चों मे अच्छे सस्कार डालने वाले कार्यक्रम प्रस्तुत करे।

महर्षि दयानन्द का उपदेश

आज से 150 वर्ष पूर्व महर्षि ने आदर्श न्यायप्रणाली एव व्यवस्था के लिये निर्देश दिये थे कि न्यायधीशों व राजपुरुषों का चाहे कोई व्यक्ति कितना ही आत्मीय क्यों न हो उसे अपराध करने पर दण्ड मिलना ही चाहिये और उसके प्रति पक्षपात नहीं करना चाहिये। स्त्रियों के मुकदमें की सुनवाई स्त्री न्यायाधीशों द्वारा ही की जानी चाहिये। स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भय युक्त होकर यथावत् बोल ही नहीं सकती है। (यजुर्वेद भाष्य 10/26) महर्षि ने लिखा है कि स्त्रियों की स्त्री रानी और पुरुषो का पुरुष राजा न्याय करें। केवल न्याय कार्य में ही नहीं अपितु युद्ध में भी स्त्री को पुरुष की सहधर्मिणी होना चाहिये। महर्षि के अनुसार 'हे पुरुषों जो स्त्री धनुर्वेद जानती हुई अस्त्र–शस्त्र फेंकने वाली है उसका वीरों को निरन्तर सत्कार करना चाहिये। सग्राम में राजा के अभाव में रानी सेनापति हो और जैसे राजा युद्ध करने की वीरो को प्रेरणा दे वैसे ही वह भी आचरण करे।

अमेरिका में अभिनव प्रयोग–न्यूयार्क में भी पिछले दशक में बलात्कार की घटनाओं से सब नागरिक त्रस्त थे। वहा पर एक प्रयोग किया गया जिसका नाम है 'शून्य सहिष्णुता नीति' अर्थात किसी युवक को बलात्कारी बनने से पहले ही उसकी हरकतों पर नजर रखो। कोई भी व्यक्ति एक दम बलात्कारी नहीं होता है। पहले वह कुछ समय तक छेड़छाड़ करता है पीछा करता है, जिस वाहन में लड़की बैठती है उसी में वह भी चढ़ जाता है और जहां भी लड़की को देखता है गंदी हरकतें करने लगता है कभी आवाज लगायेगा, कभी फिल्मी गीत गायेगा। न्यूयार्क में पुलिस ने युवकों को बलात्कारी बनने से पहले ही बालिकाओं एव युवतियों के साथ छेड़छाड़ करने पर ही उन्हें पकड़ लिया और सजा दी। इस प्रकार उसे बलात्कारी बनने ही नहीं दिया गया।

भारत में जब तक कोई युवक बलात्कार का कार्य नहीं कर ले तब तक हम उसे गम्भीरता से नहीं लेते। छात्राओं के शिक्षण सस्थाओं के बाहर समाज विरोधी नवयुवक झुण्ड बनाकर खड़े रहते हैं और जब छात्राए कॉलेज से बाहर निकलती है तब वे गुण्डे उनका पीछा करते हैं। पुलिस को इसी अवसर पर गुण्डों को पकड़ लेना चाहिये और उन्हें ऐसी सजा देनी चाहिये कि वे कभी अपनी कुत्सित हरकतों की पुनरावृत्ति न कर सके।

आर्य समाज का दायित्व

महर्षि दयानन्द के 'मातृदेवो भव' के अमर सदेश की अन्त्येष्टि हो रही है परन्तु उनके अनुयायी कुम्भकरण की नींद सो रहे हैं। मानो कि सब बहरे हो गये हो। उन्हें अपनी बेटियों का विलाप भी सुनाई नहीं देता। वे सब तो 'स्वाहा' और ओ३म् स्वाहा' के विवाद में मल्लयुद्ध कर रहे हैं। पुस्तकाए छापी जा रही हैं। इस विषय पर महायुद्ध हो रहा है मानो कि परमेश्वर उसी पर प्रसन्न होगा जो स्वाहा और ओं स्वाहा के शास्त्रार्थ में विजयी होगा। आर्य समाज इन सब विवादों को छोड़कर सर्वस्पर्शी नैतिक उत्थान का आन्दोलन क्यों नही चलाता? चारित्रिक पतन करने वाली शिक्षा नीति को बदलने के लिए सघर्ष क्यों नहीं करता? महर्षि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द ने वैदिक सस्कृति पर आधारित जो शिक्षा प्रणाली दी थी उसको अपनाने के लिये विश्व को प्रेरित क्यों नहीं करता? बलात्कार की पीड़िता को सत्वर न्याय दिलाने के लिये महर्षि दयानन्द के निर्देशानुसार न्याय प्रणाली में बदलाव लाने के लिये आवाज क्यों नहीं उठाता?

अग्निलोक आश्रम, गुड़गांव में चिन्तन शिविर सम्पन्न

आर्य समाज के शीर्षस्थ नेताओ एव विद्वानो का एक चिन्तन शिविर दिनाक 13 व 14 नवम्बर, 2002 को 'अग्निलोक आश्रम' ग्राम बहल्पा जिला गुड़गाव में सम्पन्न हुआ। शिविर में निम्नलिखित महानुभाव उपस्थित रहे–

1. श्री स्वामी इन्द्रवेश
2. श्री स्वामी अग्निवेश
3. प्रो कैलाश नाथ सिह
4. डॅा वेद प्रताप वैदिक
5. डॅा राम प्रकाश
6. श्री सत्यव्रत सामवेदी
7. प्रो विट्ठलराव
8. श्री जगवीर सिह
9. श्री बिरजानन्द
10. प्रो श्योताज सिह
11. श्री गणपत सिह
12. श्री नारायण सिह
13. श्री शुक्ला

ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना मत्रों के उच्चारण के साथ शिविर प्रारम्भ हुआ। शिविर के आयोजक स्वामी अग्निवेश जी ने शिविर की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला तथा बताया कि आर्य समाज की विचारधारा को इस समय हमें विश्व स्तर पर फैलाने का प्रोग्राम बनाना चाहिये। इसके लिए आवश्यक है कि हम सिहावलोकन भी अवश्य करें। जिन मुख्य विषयों पर चर्चा की जानी है उनका निश्चय हो जाये आदि। शिविर में चर्चा के लिये चुने गये विषय इस प्रकार हैं–

1. आर्य समाज का सगठन
2. प्रचार की शैली
3. साहित्य प्रकाशन
4. ज्वलन्त मुद्दों पर आर्य समाज का दृष्टिकोण
5. युवा एव छात्रों में कार्य

दो दिन के गम्भीर चिन्तन एव मनन के पश्चात सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि आर्य समाज के प्रचार को प्रखरता के साथ करने के लिए निम्नलिखित मुख्य बिन्दुओं पर शक्ति केन्द्रित की जाये

1. आर्य समाज के आध्यात्मिक पक्ष को प्रभावशाली ढग से प्रचारित व प्रसारित करने के लिए अष्टांग योग को माध्यम बनाकर कार्य किया जाये। इस योजना को तैयार करने के लिए दर्शनों एव वेदो के प्रामाणित विद्वान स्वामी इन्द्रवेश जी महाराज आर्य समाज के अन्य आध्यात्मिक चिन्तको के साथ विचार विमर्श करके एक पद्धति तैयार करेंगे तथा उसे क्रियान्वित करने की रूपरेखा बनाएगें।
2. स्कूल व कॉलेजों को अपना मुख्य कार्यक्षेत्र बनाकर कार्य किया जायेगा तथा योग्य एव अनुभवी युवक एव युवतियों को व्यायाम व बौद्धिक शिक्षक का प्रशिक्षण देकर इस कार्य में लगाया जायेगा। ऐसे युवा कार्यकर्ताओं को निश्चित मानदेय देने की व्यवस्था भी की जायेगी। इस कार्य में सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् व आर्य वीर दल की भूमिका महत्वपूर्ण होगी।
3. वैदिक सिद्धान्तों एवं समसामयिक समस्याओं पर प्रभावशाली ट्रैक्ट प्रकाशित करने व जनता के बीच वितरित करने की योजना तैयार की जायेगी। प्रारम्भ मे पाच ट्रैक्ट प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इनमें मुख्यतया वेद विमर्श व यज्ञ विमर्श–(डॅा रामप्रकाश) योगी अरविन्द द्वारा लिखित 'दयानन्द आर्यो का आदि देश' (डॅा वेदप्रताप वैदिक) व योग से सम्बन्धित स्वामी इन्द्रवेश जी द्वारा तैयार की जाने वाली पुस्तक सम्मिलित है।
4. जातिवाद एव धर्मान्तरण के विरुद्ध अभियान चलाया जायेगा तथा युवाओं को अन्तरजातीय विवाहों के लिए प्रेरित किया जायेगा।
5. आर्य समाज के सदस्यों को जाति सूचक नाम हटाने के लिए प्रेरित किया जायेगा।
6. आर्य समाज के सगठन मे प्रजातान्त्रिक प्रणाली को मजबूत करने के लिए सार्वदेशिक सभा के सविधान की धारा (10–ग) को समाप्त करने का निश्चय किया जायेगा। इस धारा का उपयोग/दुरुपयोग कर सार्वदेशिक सभा अपने से जुड़ी प्रान्तीय सभाओं को भग कर एडहॉक कमेटी बनाती रही है।
7. आर्य समाज के प्रचार को तेज करने के लिए आगामी मार्च मास में एक विशाल प्रचार यात्रा का आयोजन किया जायेगा।
8. दयानन्द शिल्प विद्यालयों के नाम से प्रान्तीय एवं केन्द्र सरकारों से अनुदान लेने की योजना बनाई जायेगी। अन्य कार्यों के लिए भी यथा सम्भव प्रोजैक्ट आदि तैयार कर संस्थागत आर्थिक सहयोग जुटाया जाये।
9. आर्य समाज के सगठन में समन्वय बनाने के लिए डॅा वेद प्रताप वैदिक को जिम्मेदारी दी गई।
10. डॅा वेद प्रताप वैदिक व सत्यव्रत सामवेदी जी उपयोगी साहित्य का अग्रेजी अनुवाद करायेंगे।

–जगवीर सिंह

भारतीय अर्थव्यवस्था को रौंदते अदृश्य पाँव

(महर्षि दयानन्द ने चार पुरुषार्थों के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने का निर्देश दिया–धर्म, अर्थ काम और मोक्ष। आर्यसमाज मे धर्म और मोक्ष पर तो रात दिन प्रवचन और भाषण होते रहते हैं परन्तु अर्थ और काम के प्रति उसका कोई दृष्टिकोण समाज के समक्ष नहीं है जबकि ससार अर्थ और काम के दो चक्रों पर चलता है। अर्थ नामक पुरुषार्थ का पथ प्रशस्त करने के लिए इस लेख मे प्रयास किया गया है।)

लोकतात्रिक समाजवाद की नींव पर टिकी भारतीय अर्थव्यवस्था चरमराती नजर आ रही है। योजनाकाल में आर्थिक प्रगति व प्रवृत्तियों ने देश में पूंजीवादी ढंग के समाज को ही अधिक सुदृढ़ बनाया है। वास्तव में यह चिन्ता का विषय है क्योंकि भारतीय नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य देश में एक ऐसे समाज की स्थापना करना रहा है जिसमें सभी नागरिकों को आर्थिक व सामाजिक विकास के समान अवसर मिले और आर्थ व धन के वितरण की विषमताए समाप्त की जा सके। लेकिन जब देश में आर्थिक सत्ता मुट्ठीभर व्यक्तियों व परिवारों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है तो हम अपने सामाजिक लक्ष्यों से दूर होते चले जाते हैं चाहे उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में हमने कितने भी ऊँचे कीर्तिमान क्यों न स्थापित कर लिए हो।

उदारीकरण, वैश्वीकरण की प्रक्रिया से आर्थिक व्यवस्थाए लगातार भ्रमित हो रही है। देश में सूखे एव अकाल से त्राहि–त्राहि मच रही है। दारूण गरीबी से देश ग्रसित है और भोजन के अभाव में बिल–बिलाकर मरते मनुष्य पशुओं की घटनाए देश में व्याप्त है। साथ ही आतकवाद की जड़े भी मजबूत हो रही है। इन सबके बावजूद महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय क्रेडिट रेटिंग एजेन्सियों जैसे मूडी और जेनेवा आधारित विश्व आर्थिक फोरम ने न जाने किस आधार पर यह विश्लेषण किया कि भारत का प्रतिस्पर्धात्मक सूचकाक तेजी से बढ़ रहा है और दस सर्वोच्च प्रगतिशील अर्थव्यवस्थाओं में भारत का नाम जुड़ गया है।

प्रश्न उठता है कि इन उपलब्धियों के लिए कौन जिम्मेदार है? जबकि वास्तविकता यह है कि सरकार न तो ज्यादा सक्रिय है और न ही आर्थिक प्रोत्साहनों के प्रति सवेदनशील है। उदारीकरण ने सरकार की भूमिका को सीमित ही नही किया वरन् प्रमुख दायित्वों से छुटकारा भी दिला दिया है। सरकार के अतीत में किये गये प्रयास अब अविश्वसनीय प्रतीत होते हैं। जब वो एक साथ कई जिम्मेदारियों का निर्वहन किया करती थी। अपनी सीमित वित्तीय और प्रशासनिक क्षमताओं के साथ देश के आर्थिक विकास में अपना भरसक योगदान प्रदान करती थी और व्यक्तिगत प्रयासों एव स्वार्थों का दमन करती थी। अब वर्तमान में स्थिति में पूर्णतः बदलाव आ गया है। निजी क्षेत्र अपने दम पर एक क्षमतावान नवोन्मेषी और सशक्त क्षेत्र बनकर उभर चुका है। सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभुत्व लुप्त प्राय हो रहा है।

आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत उदारीकरण की नीति अपनाये जाने के पश्चात भारत सुनिश्चित रूप से दो प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में विभाजित हो गया है। एक ओर तो 'इण्डिया' है जहा सड़कों पर दौड़ती चमचमाती कारों विदेशी शराब के प्रसिद्ध ब्राण्डों रेडीमेड गारमेन्टस, सौन्दर्य प्रसाधनों, उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं विलासिता की वस्तुओं से भरे डिपार्टमेन्टल स्टोर्स मेकडोनॉल्ड रेस्तराओं की श्रृखला अनेक शीतल पेय आइसक्रीम चॉकलेट के ब्राण्डों, बहुमंजिली ईमारतों राजधानी शताब्दी एक्सप्रेसों, कार्पोरेट, हॉस्पीटल एव वातानुकूलित पब्लिक स्कूल हैं। ऐसे इण्डिया में रहने वाली जनसख्या मुश्किल से 10 प्रतिशत ही होगी। दूसरी तरफ 'भारत' है जहा 35–40 प्रतिशत लोग निरक्षर है। 36 प्रतिशत आबादी निर्धनता रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है जो प्राथमिक आवश्यकताओं से भी वचित है। लगभग आधी आबादी बेरोजगारी, निर्धनता कुपोषण के मकड़जाल में फसी है। इन सब विषमताओं के लिए निश्चित रूप से सरकार उत्तरदायी है। कुछ क्षेत्रों में दिखाई देने वाली समृद्धि से ही भारत विश्व के साथ कदमताल करता नजर आ रहा है। सॉफ्टवेयर सेवाए मनोरजन उद्योग और आई.टी.आधारित सेवाएं भारतीय अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख शक्ति बनकर उभरी है। इन सबके पीछे कुछ अदृश्यहाथ अवश्य उत्तरदायी है जो विशिष्ट क्षेत्रों में तरक्की पर तरक्की कर रहे हैं।

एडम स्मिथ ने अपनी रचना वेल्थ ऑफ नेशन्स (1976) मे इस बात पर प्रकाश डाला कि जब व्यक्ति अपने हित वृद्धि की बात करता है तो इस क्रिया में अनजाने में सामाजिक हित भी हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरों की चिन्ता किये बिना अपनी इच्छा से कार्य करता हे किन्तु निःसन्देह वह अपने कार्य के अन्तिम परिणाम को भली भाँति समझता है। वह आर्थिक समाज को एक ऐसे जीवित शरीर के समान समझता है जो स्वय अपने आवश्यक अगों को उत्पन्न कर लेता है। इन सब के लिए एडम स्मिथ ने अदृश्य हाथ को उत्तरदायी माना जो चुपचाप बिना किसी प्रयत्न के समाज में आर्थिक समृद्धि बढ़ाता चला जाता है।

दुर्भाग्य यह है कि आज देश में अदृश्य पाँव ने अपना खेल प्रारम्भ कर दिया है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पॉल स्ट्रीटन के अनुसार प्रतिस्पर्धा के माध्यम से यह सामाजिक आर्थिक विध्वसता का सिद्धान्त है। विकसित देशों की कुनीतियो के दबाव मे आकर भारतीय अर्थव्यवस्था एडम स्मिथ के अदृश्य हाथों के चमत्कार से वचित होकर अनुत्पाक एव विध्वसकारी स्थिति मे आ गई है। अतः सरकार को चाहिए कि वह ऐसे रास्ते ढूँढ़े जो अदृश्य पाँवों तले अर्थव्यवस्था को कुचलने से रोके और अदृश्य हाथों द्वारा किये जाने वाले अच्छे कार्यों को नष्ट होने से बचाये। अदृश्य पाँव इस तरह अर्थव्यवस्था का दमन कर रहे हैं कि देश में गहरी विषमताओं ने जन्म ले लिया है। देश में एक तरफ विलासिता से सुसज्जित विशाल फ्लेटस बन रहे हैं और दूसरी तरफ शहरी गरीब हेतु निम्न लागत के घर। उच्च एव मध्यम वर्ग के बच्चों हेतु वातानुकूलित स्कूल एव (अनुदानित) विश्वविद्यालयी शिक्षा के अवसर है और ग्रामीण एव शहरी गन्दी बस्तियों के गरीब बच्चों हेतु उचित विद्यालयो का अभाव है। धनवानों के लिए खाद्य सब्सिडी के अवसर हैं जबकि गरीब हेतु अल्प खाद्य भी उपलब्ध नहीं है। देश में ऐसी खाद्य सस्कृति विकसित हो रही है जहा एक वर्ग आवश्यकता से अधिक खाना ठूस रहा है और मोटापे से ग्रसित है और इन्हीं लोगों के कारण वजन कम करने वाली क्लिनिक धड़ल्ले से बड़े शहरों मे व्यापार कर रही है जबकि दूसरी तरफ ग्रामीण जनता कुपोषण की शिकार हो रही है एव अनेक बीमारियों से ग्रसित है और उनके मानसिक विकास की गति भी धीमी है। बारा एव देश के अन्य भागों से आई खबरें इस बात की पुष्टि करती है कि भूख से लगातार मौते हो रही हैं लेकिन सरकार इस बात का खण्डन इस रूप में कर रही है कि मौतें भूख से नहीं कुपोषण से हुई है। सरकार भी कुपोषण को स्वीकार कर रही है। जहा एक ओर उच्च आय वर्ग के अधिकारी हैं जिनकी आय तेजी से बढ़ रही है वही दूसरी ओर श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी दर में मात्र 5 रु की बढ़ोत्तरी हुई है। निजी अस्पतालों की सख्या में निरन्तर वृद्धि एव सरकारी अस्पतालों की शोचनीय स्थिति बरकरार है। बैंकों के पास पर्याप्त मुद्रा के भण्डार हैं लेकिन गरीबों को देने हेतु नहीं। दूसरी तरफ धनवानों को ऋण प्राप्त करने में कोई असुविधा नहीं है। 1990–91 से महानगरो में ही ऋण लेने वालों की सख्या बढ़ी है। इसका हिस्सा 40 प्रतिशत से बढकर 53 प्रतिशत हो गया है। ग्रामीण क्षेत्र का हिस्सा 21 प्रतिशत से घटकर 14 प्रतिशत रह गया है और अर्द्धशहरी क्षेत्र का हिस्सा 17 प्रतिशत से घटकर 14 प्रतिशत रह गया है। ये नकारात्मक पहलू अर्थव्यवस्था के लिए चिन्ताजनक है। इन सबके बावजूद वर्तमान सरकार ने लघु उद्योगों की जडे काटने वाली योजनाओं को पुनः लागू कर दिया है। उनके लिए आरक्षित उत्पादों में कटौती कर दी गई है। विदेशी निवेश के द्वार इन उत्पादों के लिए खोल दिये गये हैं। यद्यपि भारतीय लघु उद्योग वर्तमान सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में सामाजिक आर्थिक आधारभूत ढ़ाचों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते थे लेकिन सरकार के गलत निर्णयों से इन लघु उद्योगो को पतनोन्मुख होना पड़ा है जो औद्योगिक ढाचा विकसित हो रहा है उसमें समृद्ध वर्ग के उपभोग की माग को पूरा करने की ओर ही झुकाव है। परिणामतः उद्योगों का सामाजिक आधार भी सिकुड़ा है। समय की माग यह है कि मानवीय मूल्यों को पुन कायम करने हेतु आर्थिक सामाजिक आधारभूत ढाचे में विकास करने के लिए पूजीकेन्द्रित और अल्प श्रमिकों वाले बडे उद्योगो को नियत्रित करना पडेगा। साथ ही यही प्रक्रिया समाज में निहित विषमताओ एव समस्याओ से छुटकारा दिला सकती है।

हाल में ही घोषित दसवी पचवर्षीय योजना का मसौदा सिर्फ राजनीतिक चुनावी लोक लुभावनी घोषणा के अलावा कुछ भी नहीं है। इस योजना में यह लक्ष्य रखा गया हैकि राष्ट्रीय उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर 8 प्रतिशत होगी और प्रतिवर्ष कम से कम एक करोड नये रोजगारों का सृजन होगा। लैंगिक समानता स्थापित करने हेतु कृषि विकास पर बल दिया। प्रत्येक गाव को पीने का पानी उपलब्ध कराना गरीबी का अनुपात 26 प्रतिशत से घटाकर 21 प्रतिशत तक ले आना और साक्षरता को 75 प्रतिशत तक पहुचा देना भी इस योजना के लक्ष्यों में शामिल है। कुल मिलाकर इस योजना का प्रमुख लक्ष्य मानव जीवन शैली मे सुधार लाना और उसे सभी आवश्यक न्यूनतम वस्तुए उपलब्ध कराना है। पिछली पचवर्षीय योजनाओं की असफलताओ को देखते हुए दसवीं योजना कितनी सफल हो पायेगी इसमे सदेह हे। नियोजन के 50 वर्षों के बीत जाने के बावजूद क्या लोगों को पर्याप्त खाद्य पदार्थ उपलब्ध हो रहे हैं? क्या उन्हें शिक्षा स्वास्थ्य पेयजल, सफाईजैसी मूलभूत सामाजिक आवश्यकताए पूरी करनेकी सुविधा प्राप्त हो रही है? आर्थिक एव सामाजिक अवसरों में विस्तार किये बिना असमानताओं में कमी किये बिना समाज के सभी वर्गों को आर्थिक सामाजिक विकास की मुख्य धारा से छोडना बेहद मुश्किल होगा।

देश में व्याप्त भ्रष्टाचार की गहरी जडे एव सरकार की उदासीनता ने अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रों में अदृश्य पावों को जन्म दे दिया है जो अर्थव्यवस्था को बेधड़क त्वरित गति से कुचल रहें है। अदृश्य पावो की विध्वसता से अर्थ व्यवस्था को बचाने हेतु सरकार को यह दायित्व बोध करना होगा कि वह योजनाओं की क्रियान्विति इस तरह करें कि उसका सर्वाधिक लाभ समाज के उस वर्ग को मिले जो उपेक्षित एव साधनहीन है।

डॉ. उषा जैन
विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र
वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
राजापार्क जयपुर,राज

क्या कालनेमी गुरू होते हैं?

क्या कालनेमी गुरू भी होते हैं? इन्सान से बच सकता है लेकिन उनसे कैसे बचें! हमारे देश में तो गुरू को भगवान का पद दिया जाता है लेकिन अगर गुरू ही कालनेमी हो तो इनसे हमें कौन बचाये या इसी शिक्षा कहा से मिले? लोग कैसे गुरू को भगवान की तरह पूजें? क्या हमे इनसे बचने की शिक्षा नही मिलनी चाहिए? क्या यह मान लिया जाये कि ऐसे गुरू व चमचे दोनो एक–दूसरे को अन्दर से जानते हुए भी मन ही मन एक–दूसरे को गाली देते हैं? साथ ही यह भी विचारणीय बात है कि क्या कालनेमी गुरू के लिए चेला चमचा बच्चा बूढ़ा पुरुष या महिला में कोई भेद नहीं है और सिर्फ मौत के सिवाय कुछ भी नहीं जानता। तो क्या ऐसे में वैज्ञानिकों को ही भगवान मान लिया जाये जो लोगों को जिन्दगी देते हैं।

– निवेदक –

एक भारतीय, राँची जागरूकता अभियन
दयाराम पोद्दार
आर्य समाज मंदिर स्वामी श्रद्धानन्द पथ

चिट्ठी आई है

आपकी आर्य नीति पत्रिका काफी दिनों से पढ़ रहे हैं। आर्य नीति द्वारा जो आर्य जगत को सन्देश दे रहे हैं आपको धन्यवाद देते हुए दो शब्द कविता रूप में प्रस्तुत है—

बड़ी श्रद्धा प्रेम से पढ़ती पत्रिका आर्य नीति।
जोड़ रही है मानवता की टूट रही जो प्रीति।।
आर्य नीति श्रद्धा भक्ति का भाव सिखाने वाली।
भटक गये जो अपने पथ से राह दिखाने वाली।।
राह दिखाने वाली नीति चमकेगी जग में ज्योति।
आर्यों का सम्मान करेगी चुनकर हीरे मोती।।
कह आशा विश्व के घर में पाएगी सम्मान।
वेद गीता उपनिषद् ऋषि मुनियो का ज्ञान।।
सत्–शतजीओं सामवेदी जी सभी आर्य नीति परिवार।
दम्पत्ति प्रचारक को भी बुलवाओ एक बार।।

आर्य जगत के प्रसिद्ध गीतकार
दम्पत्ति आर्य प्रचारक
प तेजपाल आर्य श्रीमती आशा आर्या
नि आर्य समाज मदिर
अमरोहा उत्तर प्रदेश
फोन–05922–64719

आपने ऋषि निर्वाण दिवस वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय के सभागार में मनाकर बहुत सुन्दर और सराहनीय कार्य किया है। श्री सत्यव्रत सामवेदी जी के भाषण के अश आपने आर्य नीति के 8 नवम्बर 2002 के अक में प्रकाशित किये हैं जो अत्यन्त प्रभवशाली एव ज्ञानवर्धक हैं। आपको इसके लिए हार्दिक शुभ कामनाय अर्पित करते हुए प्रार्थना है कि जयपुर में जितनी भी आर्य शिक्षण सस्थायें हैं उनमें साल में एक पर्व सामूहिक रूप से मनाने की परम्परा आरम्भ करें जिसमें सब आर्य शिक्षण सस्थाओं के शिक्षक वर्ग और विद्यार्थी अपना–अपना योगदान दे।

यह प्रथा देश के डी ए वी कॉलेजो में आरम्भ करने के लिए माना प्रधान जी को विदुषार्थ रिपोर्ट भेज रहा हूं पूरी पूर्ण आशा है कि डी ए वी कॉलेजो में भी इसी प्रकार के आयोजन आरम्भ करने की परम्परा आपकी पहल के अनुकरण में आरम्भ हो जायेगी।

आपके परिवारजनों सहयोगी कार्यकर्ताओं के कुशल क्षेम की मगल कामना परमपिता परमात्मा से करता हू।

सधन्यवाद।

हरवश लाल कपूर
सहमत्री
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा
मदिर मार्ग नई दिल्ली–110001

आदरणीय महोदय
नमस्ते।

दिल्ली के साप्ताहिक 'सार्वदेशिक' पत्रिका के 21 जुलाई 2002 अक में आपक पत्र में प्रकाशित लेख जो स्वामी अग्निवेश जी द्वारा लिखा गया बताया गया है पर एक आलोचनात्मक लेख प्रकाशित हुआ है जिससे प्रतीत होता है कि आपने गुजरात के साप्ताहिक दगा पर कोई तथ्य तर्क टीका टिप्पणी की थी जो यहा सार्वदेशिक वालों को अच्छी नहीं लगी।

चूकि आपके विचार अन्य आर्य समाजी पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादकगणो से भिन्न है और तथ्यों पर आधारित लगते हैं इसलिये मैं आपके विचारों से निरन्तर अवगत रहने के उद्देश्य से आपकी पत्रिका आर्य नीति का ग्राहक बनने का इच्छुक हू।

इन्द्रसिह वर्मा
23 बैंक स्ट्रीट पटौदी ज
गुड़गाव–12200 हरियाणा

सम्माननीया सामवेदि–महाभागा!
सादरमभिवादनम्।

आप द्वारा प्रेषित पाक्षिक "आर्यनीति" के दोनों अक मिले तदर्थ हार्दिक धन्यवाद। प्रथम अक की प्राप्ति के अनन्तर ही आपकी सेवा में पत्र लेखन का अभिलाषा थी किन्तु कार्य बाहुल्य की उलझनों के कारण यथासमय नहीं लिख सकी।

सद्भावना यात्रा के इतिवृत्त लेखन में आपकी निर्भीक व बेबाक लेखनी वस्तुत स्तुत्य प्रशसनीय एव एक आर्य लेखक के योग्य है।

आपका यह गुण सर्वतोभावेन समुन्नत होकर आर्य जगत्, समाज, राष्ट्र को नवीन दिशा प्रदान करें। ऐसी हमारी शुभकामनाए हैं।

सदैव, आपने अपने इस 'कन्या गुरूकुल' के प्रथम दर्शन में स्वानुभूति का जैसा चित्रण किया है उस उदारता के लिए आपका हार्दिक धन्यवाद करती हूँ।

आपकी भावनाओं अनुभूतियों व आशाओं के अनुरूप गुरूकुलीय परम्परा व सस्कृति के सरक्षण के लिए प्रयत्नशील हैं।

आशा है गुरूदेव दयानन्द के ऋण से उऋण होने में यत्किचित सफलता मिलेगी। इस अतिप्रयत्नसाध्य कार्य में आप सदृश उदाराशय शिक्षा शास्त्री तथा विद्वज्जनों की शुभकामना व आशीर्वाद की कामना के साथ।

सुमेधा आचार्या
श्रीमद् दयानन्द कन्या गुरूकुल महाविद्यालय
चोटीपुरा रजबपुर ज्योतिबा फुले नगर,
उत्तर प्रदेश–244236

आर्यों का कर्त्तव्य

आर्यों कदम आगे ही बढ़ाते चले चलो।
मजिल है कड़ी हिम्मत जुटाते चले चलो।।
जो काम अधूरा ही महर्षि का रह गया।
कर पूरा ऋण ऋषि का चुकाते चले चलो।।
तुम देव दयानन्द के सच्चे बनो सैनिक।
हो चौकन्ना औरो को चौंकाते चले चलो।।
गफलत की नींद में जो सो रहें हों अभी भी।
कर होशियार उनको जगाते चले चलो।।
जो आर्यसमाज को समझे नही अब भी।
उनको भी ऋषि भक्त बनाते चले चलो।।
तारिकी जहालत की अभी छाई जहा में।
जहालत निशा को दूर भगाते चले चलो।।
पाखडियो ने ढोंग अभी भी है फैलाया।
जड़ उसकी बेखाबुन से हिलाते चले चलो।।
दुनिया समझ ले दम खम आर्यों में है अब भी।
हल चल जहा में फिर से मचाते चले चलो।।
तैयार है चलने को जमाना तेरे पीछे।
इखलाख अपना ऊँचा उठाते चले चलो।।
कहता है कौन आर्य समाज अब सो गया।
फिर हौसला बुलन्द दिखाते चले चलो।।
कथनी मे और करनी में बड़ा फर्क है समझो।
कथनी को करनियो में चमकाते चले चलो।।
सध्या हवन करते रहो जल्से भी मनावो।
देशोन्नति में हाथ बटाते चले चलो।।
तुम आपसी कलह को समाजों से दूर कर।
मुहब्बत की गगा फिर से बहाते चले चलो।।
वैदिक डगर पै चल राहत पाएगा जमाना।
पैगामे वेद घर–घर सुनाते चले चलो।।
एक दिन चलेगी दुनिया नक्शे पा पै ऋषि के।
तुम हौसला बुलन्द दिखाते चले चलो।।
गढ़ ढोंगियो का चूर–चूर होकर रहेगा।
तुम तर्क के गोले को बरसाते चले चलो।।
कविइन्द्र न कहने की घड़ी अब है रह गई।
आगे बढ़ो कर्त्तव्य निभाते चले चलो।।

इन्द्रस्वामी (पूर्व नाम ठा इन्द्रदेवसिह इन्द्रकवि)
ग्राम पो विष्णुपुरा कला भाया एकमा
जनपद–सारण छपरा बिहार–841208

कवि से

लेखनी से काम कवि कब तक करोगे
आज तो तलवार का युग आ गया है।
आज तक तुमने बहारो के तराने
गा लिये पर्याप्त सारा विश्व जाने
तुम ने दी फूलो को मदमाती जवानी
और कलियो को सुगन्धि के खजाने
किन्तु केवल कल्पनाओं मे विचर कर
तुम कहीं ध्रुव सत्य को ही भूल जाओ
इसलिये उतरो कवि नभ से धरा पर
अब धरा से प्यार का युग आ गया है।
आज तो तलवार का
लौट ही जाए न उपवन से बहारे
आह! भय है फिर कहीं पतझड़ न आवे
मुस्कराते फूल ज्वाला के न सुलगे
और कलियों की जवानी सड़ न जाये
बाग के माली उठो पलकें उघारो
रक्त दे दे कर हर इक पौधा सवारो
फूल की मुस्कान से खिलवाड़ होली
रक्त से सत्कार का युग आ गया है
आज तो तलवार का
जागृति का शख बढ़कर फूक दो तुम
जिसको सुन पलको से तन्द्रा भाग जाये
जिसकी ध्वनि से ह्रदय कापे शत्रुओ का
करवटें ले ले के हर कण जाग जाये
जिसका स्वर रोमाचित कर दे धरा को
और हो विस्तीर्ण नभ जिससे निनादित
अब न मदमाते रसीले गीत गाओ
आज तो हुकार का युग आ गया है
आज तो तलवार का

उत्तम चन्द शरर
मकान न 30/8
पानीपत हरियाणा

महर्षि तुमने विष पिया, अमृत हमें पिला दिया

सनातन वैदिक धर्म का देश को जो गौरव प्राप्त था
सभ्यता सस्कृति ज्ञान का जगत गुरू जो भारत था
ऋषि ने उस युग को पुन स्थापन पर दिया बल था
महर्षि तुमने विष पिया अमृत हमें पिला दिया।
महर्षि तुमने विष
दयानन्द ने स्वतत्रता की पृष्ठ भूमि तैयार की थी,
उन्होंने वैदिक नैतिक मूल्यों की स्थापना की थी,
कुरीतियों, अधविश्वासों को खतम करने की ठान ली थी,
ऋषि ने हमें राष्ट्रीय आत्म सम्मान था लौटा दिया,
महर्षि तुमने विष
ऋषि ने सतीप्रथा का क्रूर कर्म मान के किया वर्जित
स्त्रियां पुरुषों से हीन नहीं उन्हें किया समर्थित
बाल बेमेल बहु विवाह तीनों का किया विरोध घोषित
ऋषि तुमने मुर्दों में जान डालके जिदा कर दिया
महर्षि तुमने विष
ऋषि ने गुरूकुल प्रणाली का किया प्रबल समर्थन,
मात्र आधुनिक सह शिक्षा का किया विरोध सघन,
उत्तम ज्ञानी सदाचारी अध्यापकों को किया अनुमोदन,
ऋषिवर तुमने कमाल पर कमाल कर दिया,
महर्षि तुमने विष
ऋषि ने बलि प्रथा को पाप मान के किया वर्जन
जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता का किया खडन
आश्रम वर्ण और शूद्रों की शिक्षा का किया मडन
अब अज्ञान से कौन छुड़ाएगा? जैसे ऋषि ने था छुड़ा दिया
महर्षि तुमने विष ......
— सुमन कुमार आर्य.—
504 चेतन निवास जवाहर कॉलोनी,
सरदारनगर,अहमदाबाद–382475

आर्य समाज

महाराजपुर, जिला–छत्तरपुर, मध्यप्रदेश

वार्षिकोत्सव सम्पन्न

भरुआ सुमेरपुर। आर्य समाज भरुआ सुमेरपुर का वार्षिकोत्सव 10 नवम्बर से 13 नवम्बर के बीच सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। वार्षिकोत्सव में आर्य समाज के द्वारा वैदिक विद्वान उपदेशक एव भजनोपदेशकों को आमन्त्रित किया गया था जिसमें स्वामी शिवानन्द जी महाराज चन्द्रदेव जी शास्त्री बेमोल जी एव प्रख्यात वक्ता एव भजनोपदेशिका सुश्री पुष्पाशास्त्री आदि को आमंत्रित किया गया था। प्रात 8 बजे से यज्ञ एव प्रवचन कार्यक्रम एव दिन में 2 बजे से तथा रात्रि 8 बजे से सत्सग का कार्यक्रम प्रारम्भ होता था जिसमें भरुआ सुमेरपुर के सैकड़ों की सख्या में सत्सग प्रेमी आर्य भाई–बहिन उपस्थित होते थे। आर्य समाज के कार्यकर्ताओं प्रधान मत्री कोषाध्यक्ष एव अन्य पदाधिकारियों तथा आर्य वीर दल के नवयुवकों में कार्यक्रम को सफल बनाने में अपार उत्साह एव लगन देखी गई।

आमन्त्रित विद्वानों एव विदुषी महिला वक्ताओं ने वेद की अमृत वर्षा कर नगर वासियों को वैदिक सभ्यता एव सस्कृति की रक्षा के लिए वेद मार्ग पर आने के लिए जाग्रत कर दिया। समापन दिवस पर आदरणीय बहिन एव प्रख्यात प्रवक्ता सुश्री पुष्पाशास्त्री ने मातृशक्ति को जाग्रत करने के लिए अपने ओजस्वी विचार सभा मण्डप से धारा प्रवाह प्रस्तुत किये जिनको सुनने के लिए समूचा नगर उमड़ पड़ा एव कार्यक्रम स्थल पर सन्नाटा छाया रहा। ठीक डेढ घटे तक उन्होंने मातृशक्ति देश की शिरोमण शक्ति है जिसमें मानव जीवन की श्रेष्ठता छिपी हुई होती है बतलाकर सभी माताओं, बहिनों के हृदयों को आन्दोलित कर जाग्रत कर दिया। दिनाक 12 नवम्बर एव 13 नवम्बर के कार्यक्रम की अध्यक्षता आर्य समाज महाराजपुर के प्रधान श्री जयनारायण आर्य ने की।

कार्यक्रम को सुसचालित ढग से सम्पन्नता के अन्तिम सोपान तक पहुचाने में श्री रामेश्वर प्रसाद आर्य एव आर्यवीर श्री विवेक आर्य ने अथक परिश्रम किया। साथ ही सभी पदाधिकारी लगन के साथ सहयोग करते रहे।

आर्य युवक सम्मेलन सम्पन्न

महाराजपुर। आर्य समाज के तत्वावधान मे 5 नवम्बर को सध्यावला पर आय युवक सम्मलन श्रद्धानन्द सभा कक्ष म सम्पन्न हुआ जिसमें सैंकड़ों प्रतिभाशाली आर्ययुवक उपस्थित थे। कार्यक्रम का शुभारम्भ वेद मत्रों के साथ प्रारम्भ हुआ।

कार्यक्रम के सयोजक श्री अजय आर्य एव सचालक श्री दयासकर पाण्डे ने अपनी प्रखर वाणी से कार्यक्रम को रोचकता प्रदान की। कार्यक्रम के शुभारम्भ में श्री राकेश आर्य के द्वारा तिलक लगाकर सभी का स्वागत किया गया। प्रत्येक आर्ययुवक ने जीवन को उन्नतिशाली एव समाजोपयोगी बनाने के लिए प्रेरणादायी विचार दिये। विभिन्न क्षेत्रों में शासकीय प्रतिष्ठानों में कार्यरत एव आधुनिक टेक्नोलॉजी में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे इन नवयुवकों ने अपने अनुभव बतलाकर शिक्षण प्राप्त कर रहे नवयुवकों का मार्ग प्रशस्त किया। गुजरातके जामनगर शहर में रेलवे विभाग में पदस्थ श्री योगेन्द्र जी ने अपने अनुभव का लाभ देते हुए हर प्रकार से सहायता करने की घोषणा की।

आर्यसमाज के प्रधान श्री जयनारायण आर्य ने भी नवयुवकों का उत्साह बढ़ाने के लिए उनकोकहा कि आर्यसमाज में महर्षि दयानन्द वाचनालय सचालित हैं जिसमें सभी प्रकार की पत्रिकाए आती है। आर्यसमाज के पुरोहित प श्री वासुदेव जी व्रती के पौरोहित्य में वृहद् यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें आर्यसमाज के प्रधान श्री जयनारायण आर्य अपनी धर्मपत्नी श्रीमती प्रभा आर्य के साथ मुख्य यजमान रहे। यज्ञ सम्पन्न में उपस्थित सभी आर्यजनों ने पुष्प वर्षा कर उन्हें अपना शुभाशीर्वाद प्रदान किया। यदि किसी को अर्थ की आवश्यकता है तो आर्यसमाज द्वारा उसकी आर्थिक मदद भी की जायेगी। रोजगार जो हमारे पास हैं नवयुवको को रोजगार से जोड़ा जायेगा। आप लोग कड़ी मेहनत एव लगन से विद्याध्ययन करें, आर्य पत्रिकाओं को पढ़ें। अपने लक्ष्य के लिए दृढ़ सकल्पित हों।

मंत्री आर्यसमाज, महाराजपुर,
छत्तरपुर मध्यप्रदेश

चन्द्रावती चौधरी स्मारक ट्रस्ट

देसराज परिसर, सी–ब्लाक, ईस्ट आफ कैलाश, नईदिल्ली–65

दयानन्द ने न्यायपूर्ण समाज रचना की नींव रखी

नई दिल्ली। केन्द्रीय कोयला एव खानमत्री उमा भारती ने यहा कहा कि महर्षि दयानन्द ने अधविश्वासों के खिलाफ देशव्यापी अभियान छेडकर न्यायपूर्ण समाज रचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उन्होंने महिला को समाज में बराबरी का दर्जा दिलाने में आर्य समाज के योगदान की सराहना की। उमा भारती ने ये विचार 11 नवम्बर को 18वें देसराज चौधरी स्मृति व्याख्यान के दौरान 'सामाजिक न्याय–समक्ष चुनौतियॉं' विषय पर व्यक्त किये।

राजधानी के गणमान्य नागरिकों को सम्बोधित करते हुए सुश्री भारती ने सामाजिक न्याय को राष्ट्रीय लक्ष्य निरूपित किया और कहा कि यह विषय मेरे ह्रदय के बहुत करीब है। उन्होंने अल्पसख्यको को सुरक्षा दलित और पिछड़े वर्ग का सम्मान तथा महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने का आग्रह किया तथा कहा कि भारतमें विषमताए मिटा कर न्याय पूर्ण समाज सरचना का इससे बेहतर रास्ता नहीं हो सकता।

सुश्री भारती ने टकराव छोड आम सहमति का मार्ग अपनाने की सलाह दी और कहा कि यदि ऐसा हो सका तो 15–20 वर्ष में भारत का उदय एक विश्व महाशक्ति के रूप में होगा। उन्होंने कहा कि वैदिक ज्ञान पर आधारित हमारी सस्कृति उन्नति का समान अवसर सुलभ करने के लिए प्रेरित करती है। उन्होंने दावा किया कि दुनिया में हिन्दू समुदाय ही ऐसा है जहा कम से कम भेदभाव है और जहा सामाजिक असमानता दूर करने के लिए समय–समय पर प्रभावशाली आन्दोलन होते रहे है।

करीब एक घटे के ओजस्वी भाषण में अल्पसख्यकों की सुरक्षा पर बल देते हुए उन्होंने मुस्लिम बधुओं से कहा कि आपको यह सुरक्षा पड़ोसी के साथ सद्भाव पूर्ण सम्बन्धों से ही मिल सकती है। पुलिस और सेना की इस विषय में कोई भूमिका नहीं हो सकती क्योंकि पुलिस थानों की सख्या पचास हजार से अधिक नहीं जबकि भारत की आबादी पाच लाख गावों में निवास करती है।

उमा भारती ने कहा कि अजान होने पर मैं अपना भाषण बीच में रोक कर मुसलमानों की ईश्वर भक्ति के प्रति सम्मान व्यक्त करती हू। उन्होंने अपेक्षा की कि हिन्दुओं के धार्मिक जुलूस यदि मस्जिद के करीब से गुजरे तो मुस्लिम समुदाय को इस पर ऐतराज नहीं होना चाहिये। 'टिकाऊ रिश्ता दोतरफा व्यवहार से बनेगा इकतरफा रूख अपनाने से नहीं।

समकालीन सामाजिक परिदृश्य का विश्लेषण करते हुए उमा भारती ने कहा कि केवल आरक्षण से समस्या सुलझने वाली नहीं। जरूरत ऐसा माहौल बनाने की है जिससे दलित और पिछड़े तबके समाज में सम्मान की जिन्दगी बसर कर सकें। उन्होंने कहा कि महिला के लिए सामाजिक न्याय का अर्थ आर्थिक आत्म निर्भरता है। वर्तमान स्थिति का परिवार के किसी एक पुरूष सदस्य पर निर्भर रहने के लिए बाध्य करती है। उसे इस विवशता से मुक्ति दिलानी होगी।

दिल्ली की पूर्व महापौर शकुन्तला आर्य ने अध्यक्षीय सम्बोधन में कहा कि देसराज चौधरी ने असहाय बालिकाओं की शिक्षा–दीक्षा का प्रबन्ध कर नारी शक्ति के निर्माण में रचनात्मक भूमिका निभायी। उन पर दयानन्द की सत्य निष्ठा श्रद्धानन्द की श्रद्धा और गाधी जी की सादगी का गहरा असर था। उनका यश शरीर उनके द्वारा स्थापित सस्थाओ में देखा जा सकता है।

18 वर्ष पूर्व हुई देसराज चौधरी स्मृति व्याख्यानमाला में यह प्रथम अवसर है जब मुख्य वक्ता और समारोह अध्यक्ष दोनों महिलाए थीं। सभा मच दयानन्द और गाधी के चित्रों से सुशोभित था। देसराज चौधरी के पुत्र पद्मश्री वीरेश प्रताप चौधरी ने कार्यक्रम का सचालन किया और चन्द्रवती चौधरी स्मारक ट्रस्ट के प्रधान सुशील प्रकाश ने अभ्यागतों के प्रति आभार प्रदर्शन किया तथा चन्द्र आर्य विद्या मदिर की छात्राओं ने देशभक्ति पूर्ण गीतों से वातावरण को सरसता प्रदान की।

सुरेन्द्र मोहन प्रचार प्रभारी
आर्य अनाथालय
1488 पटौदी हाउस दरिया गज नई दिल्ली–110002

आर्य समाज, टोंक

कसेरा भवन, जवाहर बाजार, टोक

महर्षि का निर्वाण दिवस सादगीपूर्ण मनाया

टोंक। आर्य समाज के सस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का दीपावली पर निर्वाण दिवस समारोह सादगी पूर्ण मनाया गया। इस समारोह में आर्य समाज टोंक के मत्री जगदीश चन्द कसेरा ने अपने सम्बोधन में अपने विचार प्रकट करते हुए बताया कि धार्मिक सास्कृतिक पुनर्जागरण के महान पुरोधा महर्षि दयानन्द सरस्वती थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पौराणिक सनातन धर्म एव समाज की रूढ़िगत मान्यताओं मूर्तिपूजा बहुदेववाद जाति प्रथा अस्पृश्यता श्राद्धतर्पण स्त्रियों एव शूद्रो को वेद विद्या से वचित रखना बाल विवाह विधवा विवाह का निषेध और हिन्दू समाज में प्रचलित भिन्न–भिन्न मत मतान्तरों को वेद की कसौटी पर कठोर खण्डन करते हुए 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का सदेश दिया। अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' मे स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्वदेश स्वभाषा स्वधर्म और स्वसस्कृति प्रेम का सदेश देते हुए भारत के गौरवशाली अतीत और आर्यों के चक्रवर्ती राज्य का वर्णन किया। उन्होंने वेद के अलावा किसी अन्य ग्रन्थ को नहीं मानते हुए "वेदों की ओर लौटो" की घोषणा की। इस दृष्टि से दयानन्द धार्मिक क्षेत्र मे क्रांतिकारी विचारक एवं सामाजिक क्षेत्र सुधारवादी थे। स्वामी दयानन्द ने वेद की कसौटी पर न केवल सनातन धर्म की रूढ़िवादिता की कटु आलोचना की अपितु बाइबल और कुरान में भी अनेक दोष निकाला दिये। महर्षि दयानन्द का दृष्टिकोण विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदो पर आधारित था न कि मानव निर्मित सम्प्रदाय विशेष के ग्रन्थ पर।

स्वामी जी ने हिन्दुओं के ईसाई और इस्लामीकरण की आलोचना की और हिन्दू धर्म के अवरूद्ध द्वार को अवशिष्ट मानवजाति के लिये खोल दिया। स्वामी दयानन्द ने मत–मतान्तरित हिन्दुओ को शुद्ध करके पुन हिन्दू समाज में समाविष्ट करने का समर्थन कर हिन्दू समाज की सुदृढता में मौलिक योगदान दिया। स्वामी दयानन्द वेदों के प्रकाण्ड पण्डित सस्कृत के धुरन्धर विद्वान और मेधावी योद्धा सन्यासी थे। वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करके सामाजिक एव धार्मिक कुरीतियों से हिन्दू समाज को मुक्त करने के लिए उन्होंने 1875 में मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। इसी के साथ दयानन्द के व्यक्तित्व एव हिन्दू नवोत्थान ने विकास एव प्रगति के पथ पर यात्रा प्रारम्भ कर दी थी।

दयानन्द ने वैदिक राष्ट्रवाद का शिलान्यास किया। उनके ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उनके स्वदेश प्रेम और राजनीतिक विचारो की मीमासा की गयी है। दयानन्द ने वैदिक राष्ट्रवाद वैदिक सस्कृति स्वसस्कृति एव स्वधर्म प्रेम शुद्धि आन्दोलन आदि भारत के गौरवशाली अतीत का बखान और हिन्दी तथा सस्कृत के प्रचार–प्रसार का गहन प्रभाव हिन्दुत्व एव हिन्दू राष्ट्रवाद के चिन्तन पर पड़ा। उनके समाज सुधार सम्बन्धी आन्दोलन ने आधुनिक भारत का शिलान्यास किया। भारत को सबसे पहले आजादी दिलवाने के बिगुल को बजाने वाले स्वामी जी ही थे। उनके अथक प्रयासों के कारण भारत आजाद हुआ। आज हम और भारत सरकार उनके नाम पर न तो कोई विशेष आयोजन कर याद करते हैं और न कोई श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। यह भी एक खेद का विषय है।

"आर्य समाज अमर रहे दयानन्द जी अमर रहे"

जगदीशचन्द आर्य मत्री
आर्यसमाज कसेरा भवन जवाहर बाजार टोंक

अखिल भारतीय शांति समिति

गजमुरादाबाद उन्नाव उ प्र –241502

महर्षि का निर्वाण दिवस मनाया

अखिल विश्व शांति समिति के प्रदेश अध्यक्ष प्रकाश जोशी के बाँगरमऊ स्थित आवास पर युग प्रवर्तक तथा आर्य समाज के सस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का निर्वाण दिवस

यज्ञ वेदी पर यजमान एव समिति के प्रदेशाध्यक्ष प्रकाश जोशी 'विमल' बाए से प्रथम तथा उपस्थित आर्यजन

बडी ही श्रद्धा तथा उल्लास के साथ मनाया गया जिसमें आर्य समाज बाँगरमऊ के पदाधिकारियों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र के भी आर्यजनों ने भी भाग लिया।

निर्वाण दिवस के कार्यक्रम का आरम्भ वेद मन्त्रोंच्चारण के साथ एक विशाल यज्ञ के साथ हुआ जिसमें यजमान आनन्द प्रकाश जोशी विमल तथा पुरोहित आर्यसमाज बाँगरमऊ के उपप्रधान मिश्रीलाल आर्य रहें। तदुपरान्त मत्री अरविन्द कुमार आर्य ने अपनी ओजस्वी वाणीसे ऋषि के निर्वाण दिवस के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उनके जीवन दर्शन का सविस्तार उल्लेख किया। कार्यक्रम के अन्त में जनपद हरदोई से पधारे जूहा स्कूल छावन के प्रधानाचार्य आर्य समाज पाली जनपद हरदोई के पूर्व मत्री तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री राधेश्याम जोशी विमलेश ने अपनी ऋषि के सम्मान में रचनाए प्रस्तुत कर उपस्थित लोगों की प्रशंसा लूटी। अध्यक्ष

धर्म निरपेक्षता का पुनर्मूल्यांकन

कुछ अरसे से यह देखा जा रहा है कि कुछ आर्य समाजी धर्मनिरपेक्षता के मक्कड़जाल में फसते चले जा रहे हैं। ऐसा तो नहीं हो सकता कि वे फस रहे हैं बल्कि बडी होशियारी से आर्यसमाज को धर्मनिरपेक्षता के बाड़े में जान बूझकर ले जाना चाहते हैं। इसमें उनका अपना स्वार्थ हो सकता है अथवा राजनीति उन्हें ऐसा करने से मजबूर कर रही हो।

आर्य समाज में इस समय भीतर और बाहर की राजनीति दोनों काम कर रही है जो बाहर राजनीति से जुडे हुए हैं वे आर्य समाज के भीतर भी उन्हीं विचारों को लाना चाहते हैं जैसे कि अल्प समुदाय के तुष्टीकरण की नीति तथा विशाल जनमानस की उपेक्षा। इसका प्रयोग काग्रेस और समाजवादियों ने 42 साल से इस देश में चला रखा है। आर्य समाज ने इस्लाम की मान्यताओं का प्रारम्भ से ही खण्डन किया है। साथ ही अन्य सभी मतमतान्तरों की गलत मान्यताओं की भी समीक्षा की है।

महर्षि दयानन्द से पूर्व केवल सत कबीर ने हिन्दुओं के साथ–साथ मुस्लिम समाज की बुराईयों का भी सख्ती के साथ खण्डन किया है। उनके पश्चात स्वामी दयानन्द ही एक ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने सर्व प्रथम सभी मतमतान्तरों की फिर से समीक्षा की। उनसे पहले यह परिपाटी थी कि कोई भी साधु सत या सुधारक हिन्दुओं की ओर ही उगली उठाता था। हिन्दू धर्म से भी अधिक सामाजिक और धार्मिक गलत मान्यताओं और परम्पराओं से पीडित इस्लाम, ईसाई जैन बौद्धों की तरफ किसी का ध्यान नही गया। सुधारवादी और परिवर्तनवादी हिन्दू समाज ही सभी के दोषारोपण का लक्ष्य रहा है। इस पक्षपाती प्रकृति को स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने सर्वप्रथम बदलने का प्रयत्न किया।

हिन्दू सहनशील भावुक परिवर्तनप्रिय तथा प्रतिकार से दूर रहने वाला प्राणी है। इसी स्वभाव का सभी लोगों ने लाभ उठाया। यह तो रही वैचारिक दृष्टि से खण्डन करने की बात परन्तु मुगलों के शासन काल में इस सहनशील समाज पर अनेकों अत्याचार, हिंसा और अन्याय के द्वारा उसे पूरी तरह नष्ट करने का सात सौ साल तक प्रयत्न किया गया। जब विचार से लालच से या डरा धमकाकर उनका मतपरिवर्तन न हो सका तो तलवार के जोर पर उनकी सस्कृति पर कुठाराघात किया गया। फिर भी इस अत्याचार को यह समाज सहता गया। अस्तित्व की रक्षा करते हुए यह हिन्दू समाज आज अपनी पहचान बनाये हुए हैं।

काग्रेस की स्थापना १८८५ ईसवी में हुई तभी से काग्रेस हिन्दू–मुस्लिम एकता के नाम पर हिन्दुओं के साथ दुजा भाव अपनाती रही है। महात्मा गाधी को ऐसा लगता था मानो इस एकता के नारे के बिना भारत आजाद नहीं होगा। महात्मा गाधी को हिन्दू और मुसलमानों के एकमेव सर्वमान्य नेता बनने की महत्वाकाक्षा पैदा हो गयी थी। जब वे 1920 मे दक्षिण अफ्रीका से लौटकर भारत आये थे लोकमान्य तिलक के निधन के पश्चात यह आकाक्षा इतनी तीव्र हुई कि भारत स्वतन्त्र होने तक उन्होंने किसी को स्वय नहीं दिया। यह विषय विस्तार से अगले में आयेगा। यह विषय चल रहा है कि आर्य समाजी की झूठी धर्मनिरपेक्षता झांसे में आते दिखाई दे रही हैं। जिस तरह एक झूठ यदि 20 बार बोला जाये तो वह सच लगने लगता है। धर्मनिरपेक्षता का बेसुरा राग यदि कोई बार–बार आलापने लगे तो सुर लगने लगता है।

पहले से ही अग्रेजों ने फिर काग्रेसियों ने समाजवादियों ने हिन्दू समाज को हमेशा दुत्कारा है उनकी उपेक्षा की है। अब क्या आर्य समाजी ही बाकी बच गये हैं जो फटकारने से वंचित रह गये थे। गुजरात के दगों की बात की जाती है। उसे गोधरा हत्याकाण्ड का नाम नहीं दिया जाता। गोधरा हत्याकाण्ड के नाम से विशिष्ट समुदाय के लोगों की बदनामी होती है पर सभी जानते हैं कि सृष्टि में क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। यह सृष्टि का नियम ही है।

गोधरा में जो कुछ हुआ वह पूर्व नियोजित था। साबरमती एक्सप्रेस में सवार हिन्दू यात्री कोई यह निश्चय करके नहीं बैठे थे कि हमें गुजरात में दगे भड़काने हैं। वे तो अपने आराध्य देवता नाम स्मरण भजन और सकीर्तन में मशगूल थे। अपने आराध्य देवता के दर्शन करके आ रहे थे क्या उनका गुनाह यही था कि वे रामभक्त थे या वे अयोध्या क्यो गये थे। उन्हें यह भी नहीं मालूम था कि कुछ ही क्षणों के बाद उन्हें अपने आराध्य देवता के पास पहुचा दिया जायेगा। धर्मनिरपेक्ष देश में अपनी श्रद्धा का इजहार करना भी क्या अपराध है?उनका इरादा भी कोई ऐसा नहीं था कि अपने गाव में जाकर दंगे भडकाने हैं या उनके पास खतरनाक हथियार हों फिर उन बालकों–महिलाओं को इस क्रूर नृशसता के साथ जलाकर क्यों मारा गया?

जब हिन्दुओं पर अत्याचार की बात आती है तो भूल जाने की बात कही जाती है और जब विशिष्ट समाज के नुकसान की बात होती है तो उसे "चर्वित चर्वण" की तरह बार–बार दोहराया जाता है। क्रिया का स्वरूप निश्चित होता पर शत्रुसेना के द्वारा की गयी शुरुआत बहुत थोड़े से भी आक्रमण से हो तो उसकी प्रतिक्रिया शत्रु राष्ट्र को तहस–नहस करने मे तब्दील हो सकती है।

गोधरा में 60 लोग मारे गये लेकिन गुजरात दगों में 900 लोग मारे गये। विनाश के लिये नियम नहीं बना करते। यह तो क्रोध है। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं दगों का समर्थन कर रहा हू। मैं धर्मनिरपेक्षता से आगे बढ़कर सर्व धर्म समभाव का समर्थक हू। यहा दगों का वर्णन मैं नहीं कर रहा मेरा विवेच्य विषय है दगों के बाद की सेक्यूलर मनोवृत्ति की समीक्षा करना। धर्मनिरपेक्षवादी हमेशा न्यायाधीश की भूमिका निभाने का दिखावा करते हैं लेकिन वे पूर्वाग्रह ग्रसित होकर ही एक को दुत्कारते हैं और एक को पुचकारते हैं। उनकी नजर क्रिया की तीव्रता पर या नीयत पर कभी नहीं जाती। गाधीजी की पूर्वमानसिकता के कारण दगों के कारणों और उनकी नीयत पर कभी गौर नहीं करते थे। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जिनमें झगड़े और फसाद का प्रारम्भ अल्पसख्यकों द्वारा किया गया है। भारत के सवेदन क्षेत्र भिवडी मालेगाव, कानपुर सूरत आदि का ब्यौरा लिया जाये तो इस बात का पता चलेगा।

आर्य समाज दगों और दगाइयों का कभी समर्थक नहीं रहा है। लेकिन अन्याय और अत्याचार के प्रतिकार की भी बात का समर्थन करता आ रहा है। अन्याय करने वाले की अपेक्षा अन्याय सहने वाला दोषी है। यह बात सभी आर्य समाजी जानते हैं क्योंकि अन्याय सहन करना अन्यायी व्यक्ति को अन्याय के लिए प्रेरित करना है।

(क्रमशः)

प्रा डॉ कमलेश्वर लोखडे
शास्त्री विद्याभास्कर
सीताराम नगर, लातूर महाराष्ट्र

आर्य समाज मंदिर

बी ब्लाक, जनकपुरी, नई दिल्ली–58

ऋग्वेद पारायण यज्ञ प्रारम्भ

नई दिल्ली कार्तिक पूर्णमा सवत् 2059 विक्रमी (20 11 02) से वेद प्रचारार्थ कार्यक्रम प्रातःकाल 6.30 से आचार्यप्रवर श्री हरिप्रसाद जी के ब्रह्मत्व में ऋग्वेद पारायण यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यज्ञ के पश्चात आदरणीय राज मैहन एव श्रीमती विमला मलिक जी के भजनों के उपरान्त आदरणीय हरिप्रसादार्य जी ने ओ३म् आ हर्ताबाय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम। शुक्रा वियन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः।। सामवेद 551।।

आचार्य जी ने कहा महर्षि देव दयानन्द सरस्वती जी महाराज ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखते हैं कि सबसे श्रेष्ठ दान वेददान का दान है। हम सब वेद के अनुकूल चलें। वेदाज्ञाओं का अनुपालन करने से जीवन को शोभायमान बनायें। हरियद शब्द का अर्थ है कमनीय अर्थात कामना करने के योग्य। वियन्ति–विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। सभी प्राणियो के लिए कामना करने के योग्य परमेश्वर ही है। सृष्टि में चींटी से हाथी तक समस्त प्राणी सुख चाहते हैं। सुखों व शाति का भण्डार एक मात्र आनन्द स्वरूप है। आनन्द केवल मात्र उसी सर्वशक्तिमान के पास ही है। जीवनमात्र सुख तथा शाति के लिए ही भटक रहे हैं। इसीलिए ईश्वर की परमावश्यकता है वही आनन्द स्वरूप है और उसी को स्मरण करना चाहिये। मनुष्य बारम्बार कामना करता है कि उसे सुख और शाति मिले किन्तु उसके अनुरूप पुरूषार्थ नहीं करता। कई बार सकल्प करके प्रयत्न आरम्भ करता है पर आलस्य अथवा प्रमाद के कारण शिथिल पड जाता है। इस कारण सफल नहीं होता। परमेश्वर की उपासना प्रार्थना करने वाला काम क्रोध लोभ मोह ईर्ष्या द्वेष आदि दुर्गुणों को दूर हटाने में सफल हो जाता है जबकि नास्तिक असफल ही होता है। साधक इन बुरी भावनाओं को हटा लेता है। प्रभु उसमें प्राणशक्ति को बढा देते हैं क्योंकि यह साधक इस प्राण शक्ति को बढाने के लिए नियमित प्राणायाम का अभ्यास करता रहता है। उसकी अवरोधक शक्ति बढती रहती है। हम सभी में प्राणशक्ति है। हम भी चाहें तो निरन्तर प्रयास से इसे बढ़ा सकते हैं। श्रोतागण मत्रमुग्ध होकर इस सत्सग का लाभ उठा रहे थे।

मत्री जी ने विद्वान व्याख्यानदाता का धन्यवाद किया। रात्रि के कार्यक्रम की सूचना दी शाति पाठ एव प्रसाद वितरण के साथ कार्य सम्पन्न हुआ।

प्रचार मत्री
आर्य समाज बी ब्लाक जनकपुरी
नई दिल्ली–58

वैदिक विद्वान कृपया समाधान करें

1. महर्षि दयानन्द कृत सस्कार विधि में एक कुण्ड पर अनेक यजमानों के बैठने का विधान नहीं है। ऐसी स्थिति में आहुति डालने के इच्छुक अनेक कुण्डों के अभाव मे अन्य आर्यजन कैसे आहुति डालेंगे?
2. एक कुण्ड पर अनेक यजमान बैठाने की शास्त्र विरूद्ध परम्परा क्या उचित है?
3. जैसे अपनी–अपनी थाली में अपने–अपने घर पर भोजन करने वाले लोग यदि एक दो पक्तियों में बैठकर सहभोज (ऋषिलगर) करें तो कोई आपत्ति नहीं। ठीक वैसे ही अपने–अपने कुण्ड में सामूहिक रूप से आहुति डालने वाले बहुकुण्डीय यज्ञ में क्या आपत्ति है?
4. बहुकुण्डीय यज्ञ के विरोध में कोई वेद का प्रमाण हो तो दें?

आचार्य आर्य नरेश
वैदिक गवेषक
उद्गीथ साधना स्थली पजी धर्मान्यास, हिमाचल
ग्राम कोहर, डाक फागू, तह राजगढ़
जनपद सिरमोर–173001 हिमाचल

राष्ट्र भाषा हिन्दी तथा भारतीय भाषायें विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का माध्यम कब बनेगी?

गताक 5 का शेष

पाश्चात्य एव विदेशी विद्वान आज से 100–150 वर्ष पूर्व हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं पर शोध कर सकते हैं तथा उच्चकोटि की पुस्तके लिख सकते हैं किन्तु हमने अपनी भाषाओं को यहाँ तक कि राष्ट्र भाषा को इस योग्य ही नही समझा। बिशप कॉल्डवेल ने 1856 मे द्राविड़ भाषाओ का 'तुलनात्क अध्ययन' नामक प्रामाणिक ग्रथ लिखा। जॉन बीम्स ने कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ आर्यन लेंगिएजिज नामक ग्रथ लिखा जो तीन भागों में 1872 1875 व 1879 में प्रकाशित हुआ। जार्ज ग्रियर्सन ने 1894–1927 तक तैंतीस वर्षों मे 'लिगुइस्टिक सर्वे ऑफ इडिया नामक विशाल ग्रथ लिखा जो ग्यारह खडो में प्रकाशित है। इसमें भारतीय बोलियो एव भाषाओ के व्याकरण का सोदाहरण परिचय दिया गया है। भूमिका में भारतीय भाषाओ का इतिहास भी दिया गया है। (देखे सरल भाषा विज्ञान अमन प्रकाशन हिसार–125005–प्रथम सस्करण 1992 पृ 48) सर विलियम जोन्स ने 1786 मे सस्कृत की महत्ता प्रतिपादित करते हुए इसे ग्रीक लैटिन से अधिक परिष्कृत बताया। उन्होने शाकुन्तलम् गीतगोविन्द और 'मनुस्मृति' का अग्रेजी मे अनुवाद भी किया था। इसी प्रकार अनेक पाश्चात्य विद्वानो ने सस्कृत तथा भारतीय भाषाओ का उल्लेखनीय अध्ययन किया है तथा उन पर महत्वपूर्ण ग्रथो की रचना की है किन्तु एक ओर हम हैं कि हमने पिछले 50 वर्षों से भी अधिक समय मे किसी भी भारतीय भाषा को यहा तक राष्ट्र भाषा हिन्दी को भी आधुनिक ज्ञान विज्ञान के सक्षम नही बनाया उसे उसके योग्य ही नही समझा?

अब तक कहा जा रहा था कि कम्प्यूटर तथा इटरनेट की भाषा केवल अग्रेजी है किन्तु अब यह भ्रम भी टूट रहा है। इटरनेशनल डेटा कॉरपोरेशन (आई डी सी) के अनुसार 2003 तक इटरनेट के माध्यम से होने वाला खर्च एक खरब चौसठ अरब डालर का होगा। इसमें 47 प्रतिशत भाग जापान और पश्चिमी यूरोप से आएगा। इटरनेट पर एशियाई देशो की भागीदारी भी अग्रेजी के वर्चस्व को तोड रही है। एक रिपोर्ट के अनुसार 2003 तक इटरनेट पर एशियाई उपभोक्ता की सख्या 9 50 83 000 हो जायेगी। इस लिए इटरनेट पर भाषायी समीकरण बदल रहे हैं। आई डी सी के अनुसार जो कम्पनी अपनी वेबसाइट केवल अग्रेजी मे बना रही है वे प्रतिवर्ष एक करोड़ डालर की हानि कर रही है। अत विश्व की बड़ी–बडी कम्पनियाँ अपने वेबसाइटों को बहुभाषी बना रही है। इटरनेशनल कम्यूनिकेशन ऐसी ही कम्पनी है। यह बहुभाषी कम्प्यूटरों तथा तकनीकी सेवा देने वाली कम्पनी है। इसके कार्यालय फ्रास जर्मनी चीन जापान रूस आदि देशों मे है। इसी वर्ष इस अमेरिकी कम्पनी ने इटरनेट बिजनेस सर्विस चाईनाकनेक्ट का आरम्भ किया है। इसकी अनुवाद सेवा से अग्रेजी सामग्री को आसान चीन भाषा मे बदला जा सकता है फिर चीनी भाषा का अग्रेजी मे अनुवाद किया जा सकता है। चीन मे इस कम्पनी ने चाईनानेट के साथ अनुबन्ध किया है। इटरनेशनल कम्युनिकेशन जैसी कई अन्य कम्पनियाँ हैं जो आज गैर अग्रेजी भाषाओं मे अनुवाद करने और बहुभाषी सेवायें देने में लगी हुई है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष के अन्त तक नेट उपभोक्ताओं में 70 प्रतिशत लोग गैर अग्रेजी भाषी होंगे। क्या भारत भी ऐसा करेगा? भारत को भी हिन्दी तथा भारतीय भाषाओ के लिए चाइनानेट की तरह भारत नेट या हिन्दी नेट की स्थापना करनी चाहिये। आज कम्पनियाँ इस ओर अधिक ध्यान दे रही है कि किस भाषा या भाषाओं में वेबसाइट बनाने से उनको अधिक आय हो सकती है। चीनी भाषा की तरह हिन्दी और भारतीय भाषाओं का भी बहुत बड़ा बाजार है।

अत भारत सरकार मानवससाधन विकास मन्त्रालय को शीघ्र ही इस ओर ध्यान देना चाहिये। भारतीय विज्ञान सस्थान बगलौर के द्वारा यह कार्य करवाया जा सकता है।

भारत सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा को सर्व सुलभ बनाने के लिए मानव ससाधन विकास मत्रालय के आधीन प्रारम्भिक शिक्षा तथा साक्षरता विभाग के माध्यम से 15 अगस्त 2001 को अखबारो मे जो आकड़े जारी किए हैं वे उत्साह वर्धक है। जैसे कि वर्ष 2003 तक 6–14 आयु वर्ग सभी बच्चो का स्कूल मे प्रवेश हो जायेगा। इसी प्रकार मानव ससाधन विकास मत्रालय ने माध्यमिक और उच्चत्तर शिक्षा विभाग के अधीन जो सूचनाये 15 अगस्त 2001 को अखबारो मे प्रकाशित की है वे भी ध्यान देने योग्य है। इनमे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान तथा प्रशिक्षण परिषद् मे राष्ट्रीय कम्प्यूटर शिक्षा केन्द्र की स्थापना भारत के प्रथम शैक्षिक चैनल 'ज्ञानदर्शन' का चौबीस घटे प्रसारण उललेखनीय है किन्तु उच्चतर शिक्षा विभाग के इन कार्यक्रमो में राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा भारतीय भाषाओ का कोई उल्लेख नही है उन्हे उच्चतर शिक्षा तथा आधुनिक विज्ञान एव प्रौद्योगिकी तथा तकनीकी शिक्षा का माध्यम बनाने के बारे मे कोई उल्लेख नहीं है? आखिर कब राष्ट्र भाषा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाये ज्ञान विज्ञान का माध्यम बनेगी? यह ठीक है कि मानवससाधन विकास मत्रालय ने कुछ मास पूर्व भारतीय भाषा प्रोन्नयन परिषद् की स्थापना की है किन्तु उससे यह समस्या हल होने वाली नही है। इसके लिए मत्रालय को अलग से कोई योजना तैयार करनी होगी ताकि राष्ट्र भाषा हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं मे विज्ञान चिकित्सा विज्ञान प्रायोगिकी तथा तकनीकी विषयों से सम्बन्धित साहित्य तैयार करवाया जा सके।

ज्ञान के क्षेत्र मे भारत महाशक्ति तभी बन सकता है जब यह ज्ञान–विज्ञान उसकी अपनी भाषाओ मे दिया जाए। अग्रेजी की बैसाखी के सहारे हम कब तक देश के ज्ञान विज्ञान को आगे बढायेगे? पहले सस्कृत देश के ज्ञान विज्ञान की भाषा थी और इसी कारण भारत विश्व का गुरू माना जाता था किन्तु आज हमारे पास आधुनिक विज्ञान एव तकनीकी ज्ञान की अपनी कोई भाषा नही है। सस्कृत को तो हमने पहले ही भुला दिया है किन्तु अब हम राष्ट्र भाषा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ की निरन्तर उपेक्षा किए जा रहे हैं। देश के सौ करोड़ लोगो की भाषाओं की हमें कोई परवाह नहीं? कम से कम राष्ट्रभाषा राजभाषा हिन्दी को तो वैज्ञानिक एव तकनीकी ज्ञान का माध्यम बनाये। उसको तो सक्षम बनाने के उपाय करें। अन्यथा अग्रेजी ही इसका एक मात्र माध्यम रह जायेगी तथा यह ज्ञान अग्रेजी जानने वाले कुछ लोगो तक ही सीमित रह जायेगा। देश की जनता की इसमें कोई भागीदारी नही है। क्या मानव ससाधन विकास मत्रालय शीघ्र इस ओर ध्यान देगा?

जब चीन अपनी भाषा में वैज्ञानिक एव तकनीकी ज्ञान उपलब्ध करवा सकता है तो भारत ऐसा क्यो नही कर सकता? इसी प्रकार कम्प्यूटर एव इटरनेट के क्षेत्र मे हम चीन की तरह इटरनेशनल कम्यूनिकेशन तथा डब ल्यू डबल्यू वर्ल्ड किगो डॉट कॉम जैसी कम्पनियो का सहयोग लेकर हिन्दी तथा भारतीय भाषाओ के लिए भारत इटरनेट या हिन्दी इन्टरनेटसेवा का आरम्भ कर सकते हैं फिर सॉफ्टवेयर के निर्माण और समस्त सूचना प्रौद्योगिकी में हमारी विश्वव्यापी प्रतिष्ठा एव साख है। फिर भी हम हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के सॉफ्टवेयर तैयार नहीं करवा पा रहे हैं। हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं का बहुत बड़ा बजार है। भारत सरकार तथा मानवससाधन विकास मत्रालय को शीघ्र इस ओर ध्यान देना चाहिये। मानवससाधन विकास मत्रालय विभिन्न स्तरो पर शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयत्न कर रहा है उसे इस ओर भी ध्यान देना चाहिये।

प्रो चन्द्र प्रकाश आर्य
432/8 आर्य निवास अर्बन एस्टेट
करनाल–132001 हरियाणा

आर्य नीति का उद्देश्य

तन मन धन से सहयोग दें

1 देश–विदेश की आर्य समाजो मे घटित घटनाओ से आर्य जगत को अधुनातन जानकारी देना।

2 आर्य समाज के पुनर्जागरण के लिये आर्य जगत को प्रेरित करना।

3 आर्य समाज को राष्ट्रीय धारा से जोड़ना और राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं पर चिन्तन एव निवारण के लिए राष्ट्र व्यापी सगठन बनाना।

4 आर्य समाज द्वारा धार्मिक सास्कृतिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में किये जा रहे कार्यों की जानकारी देना।

5 समर्पित एव निष्ठावान कार्यकर्ताओ का आर्य जगत को परिचय देना।

6 देश मे 1000 समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ताओ महिलाओ एवं युवको का सगठन खडा करना।

7 आर्य समाज के आदर्शों से प्रेरित शिक्षण सस्थाओं के माध्यम से देश मे सशक्त छात्र शक्ति खडी करना।

8 विश्व के आर्य परिवारों का सगठन बनाना।

9 देश के 100 विद्वानों की परिषद बनाना।

10 विश्व की समस्त भाषाओं में वेद सन्देश प्रकाशित कर वैदिक धर्म की विश्व को जानकारी देना।

11 विश्वशांति के लिए विश्व व्यापी आदोलन चलाना कट्टरवाद अन्धविश्वास अज्ञानता के विरूद्ध मुहिम छेड़ना तथा देश में राजनीतिक सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक आर्थिक क्रान्ति के लिए अभियान चलाना।

आप आशीर्वाद दें कि परमपिता परमेश्वर हमें इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शक्ति एव सामर्थ्य दे।

तन मन धन से सहयोग दे पाठकगण 100 रू सहयोग राशि भेजने का कष्ट करें।

सार्वदेशिक साप्ताहिक में स्वामी अग्निवेश पर अनर्गल आरोपों की विषवर्षा

पत्थर मुझे कहता है मेरा चाहने वाला, मैं मोम हूं उसने मुझे छू कर नहीं देखा

(गतांक से आगे)

–सत्यव्रत सामवेदी

मुसलमानो का समर्थन या क्रान्ति शिरोमणि प रामप्रसाद बिस्मिल की अदम्य कामना की पूर्ति

स्वामी अग्निवेश जी पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे मुसलमानों के समर्थक हैं और उन्हे प्रसन्न करने के लिये भाषण देते हैं और इस प्रकार धर्मान्ध मुसलमानो को आतकवाद एव देश द्रोह के लिये बढ़ावा देते हैं। वास्तव मे अधिकाश आर्यसमाजियों को राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ या विश्व हिन्दू परिषद् के चश्मे से भारतीय समाज को देखने की आदत पड़ गई है इसीलिये स्वामी अग्निवेश की हिन्दू–मुस्लिम एकता की अपील उन्हें मुसलमानों के तुष्टीकरण की नीति लगती है। हम कैसे भूल जाए जायसी को रहीम को रसखान को और अशफाक उल्ला खा को। फासी से पहले जेल में प रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी जीवनी मे लिखा है कि 'वाईसराय ने जब हम काकोरी के मृत्युदण्ड वालो की दया प्रार्थना अस्वीकार की थी उसी समय मैंने श्रीयुत् मोहनलाल जी को पत्र लिखा था कि हिन्दुस्तानी नेताओं को तथा हिन्दू मुसलमानो को अगली काग्रेस पर एकत्रित हो हम लोगों की याद मनानी चाहिये। सरकार ने अशफाक उल्ला को रामप्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया। **अशफाक उल्ला कट्टर मुसलमान होकर पक्के आर्यसमाजी रामप्रसाद क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध मे यदि दाहिना बनते तब क्या नये भारतवर्ष की स्वतत्रता के नाम पर हिन्दू–मुसलमान अपने निजी छोटे–छोटे फायदो का ख्याल न करके आपस मे एक नहीं हो सकते?**

परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई देती है। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानो में से एक नवयुवक निकाल कर भारतवासियो को दिखला दिया जो सब परीक्षाओ में पूर्णत उत्तीर्ण हुआ। अब किसी को यह कहने का साहस नहीं होना चाहिये कि **मुसलमान पर विश्वास न करना चाहिये।** पहला तजुर्बा था जो पूरी तरफ से कामयाब हुआ। तब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों के फासी पर चढ़ने से जरा भी दुखित हुए हो तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिये कि हिन्दू–मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर काग्रेस को अपना प्रतिनिधि माने।

हिन्दू–मुस्लिम एकता ही हम लोगो की यादगार तथा अन्तिम इच्छा है चाहे वह कितनी कठिनता से क्यो न प्राप्त हो।

प रामप्रसाद बिस्मिल की उक्त कामना भारतवर्ष के स्वतत्रता सग्राम में स्वर्णाक्षरों में अकित है। साम्प्रदायिकता की तलवार लेकर एक–दूसरे का गला काटने वाले हिन्दू और मुसलमान सही रास्ते पर उसी दिल आयेंगे जब वे प रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला को अपना आदर्श नेता मानेंगे। आज पाठयपुस्तकों में धर्मनिरपेक्षता और धर्मसापेक्षता के अशों को लेकर भयकर वाद–विवाद चल रहा है परन्तु क्या कभी दोनों पक्षों ने प रामप्रसाद बिस्मिल की अदम्य कामना को पाठयपुस्तकों में शामिल करने की आवाज उठाई? विश्व हिन्दू परिषद् के चश्मे से देखने वाले आर्यसमाजियों को तो प. रामप्रसाद बिस्मिल की मुस्लिम परस्ती दिखाई देगा। स्वामी अग्निवेश यही कहते हैं कि हमें मत–मतान्तरों के कुए मे न रहकर वैदिक समुद्र में अवगाहन करने वाला देवता बनना है जो अपनी आत्मा में समस्त प्राणियों को देखता है और समस्त प्राणियों में अपनी आत्मा को देखता है।

> यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति
> सर्वभूतेषु चात्मानम् ततो न विजुगुप्सते।

वेदो ने तो 'एकत्वमनुपश्यत का सदेश दिया है। समस्त प्राणी जगत ईश्वर की सन्तान है। क्या ईश्वर की सन्तान से घृणा करना नास्तिकता नहीं है?

स्वामी अग्निवेश पर यह भी आक्षेप लगाया गया कि वे मुस्लिम पर्वों पर मुसलमानों से प्रेमपूर्वक मिलने का सदेश क्यों देते हैं? क्या यह सदेश अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द ने नहीं दिया था? सन् 1925 में ईद के अवसर पर दिल्ली निवासियों को सम्बोधित करते हुए श्रद्धेय स्वामीजी ने लिखा था–

'परमात्मा सारे ससार का पिता है। यदि तुम्हें इस बात पर विश्वास है तो प्राणी मात्र को मित्र की दृष्टि से देखना चाहिए और मनुष्य मात्र को तो भाई समझना चाहिए। क्या इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज से तीन दिन तक अपने अमल से दोगे? आज मुसलमान स्त्री–पुरुष बाल–वृद्ध–युवा नये कपड़े पहनकर एक अद्वितीय ब्रह्म के आगे अपनी श्रद्धा की भेंट धरने जा रहे हैं। क्या वह श्रद्धा अन्दर घर कर गई है? यदि ऐसा होगा तो वे अपने त्यौहारों पर हिन्दुओं का दिल दु खाने की कोई बात नहीं करेंगे। मेरे हिन्दू भाईयो! आज तुम्हें भी अपने भ्रातृभाव का स्पष्ट प्रमाण देना है। परमात्मा की उपासना में अपने मुसलमान भाईयों को निमग्न देखकर कर प्रसन्नता से उनको आशीर्वाद दो। यदि तुम्हारी आखों के आगे कुर्बानी के लिए गौमाता जाती हो तो क्रोध और द्वेष का लेश भी अपने अन्दर न आने दो प्रत्युत परमात्मा से हार्दिक प्रार्थना करो कि वे परमपिता उनकी बुद्धियों को प्रेरणा करें जिससे स्वय गौमाता की रक्षा का भाव उनमे उत्पन्न हो। तुम्हारे भाई भूल से गौ वध को स्वर्ग का साधन समझ रहे हैं। उन पर क्रुद्ध होकर और उनसे घृणा दिखाकर उन्हें अधिकतर गौघात की ओर प्रवृत्त करके दूने पाप के भागी न बनो। जितना तुम सहन करोगे और मुसलमान भाईयों को प्रेम का मार्ग दिखाओगे उतना ही भगवान तुम पर कृपा करेंगे।

स्वामी अग्निवेश जी पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे मुसलमानों और ईसाइयों की सभाओं में भाषण देने जाते हैं। क्या स्वामी श्रद्धानन्द जामा मस्जिद में भाषण देने नहीं गए थे। आज आर्यसमाज की पुस्तकों में बहुत गर्व से हम लिखते हैं कि स्वामी श्रद्धानन्द पहला और अन्तिम महापुरुष है जिसे जामा मस्जिद पर भाषण देने के लिए बुलाया गया और जिन्होंने अपना भाषण वेद मत्र से प्रारम्भ किया और शांति पाठ से समाप्त किया। स्वामी अग्निवेश भी इसी प्रकार मुसलमानों और ईसाइयों के सम्मेलनों में जाकर वेद मत्र से अपना भाषण प्रारम्भ करते हैं। क्या स्वामी श्रद्धानन्द के साथ दीनबन्धु रेवरेण्ड ऐण्डरूज नहीं रहते थे जो महात्मा गांधी के अनन्य सहयोगी और भारतवर्ष की आजादी के महान योद्धा थे। स्वामी श्रद्धानन्द के व्यक्तित्व को देखकर उन्होंने ईसाई धर्म छोड़ दिया और अपने पिता को पत्र लिखते हुए कहा कि इससे आपको दुख तो जरूर होगा मैं आपसे सत्य कहता हू कि मैं अब शुद्ध ईसाई बन गया हू। आर्यसमाज के इतिहास के पाठक जानते हैं कि गुरूकुल कागड़ी को ब्रिटिश सरकार की कोप दृष्टि से बचाने दीनबन्धु ऐण्डरूज की क्या भूमिका रही ह।

वास्तव में स्वामी अग्निवेश वेद ज्ञान को अपने जीवन में उतारने व प्रयोग कर रहे हैं। अब क्या अर्थ करेंगे वेद के इस मत्र का–

> सहृदय सामनस्य अविद्वेष कृणोमिव
> अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्स जातमिवघ्न्या।

तुम एक–दूसरे से इस प्रकार प्रेम करो जैसे गाय अपनी सन्तान करती है। गाय की सन्तान होने पर गाय अपनी जिह्वा से बछड़े व बछड़ी की गदगी साफ करती है। हम शरीर के किसी भी अग से गदगी साफ करने के लिए तैयार हो सकते हैं परन्तु जिह्वा से नहीं। इसी प्रकार आप क्या अर्थ करेंगे निम्नलिखित वेद मत्र का–

> जन बिभ्रती बहुधा विवाचस नानाधर्माण पृथिवी यथौकसम्
> सहस्र धारा द्रविणस्य मे दुहा ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।

जैसे कामधेनु दूधारू गौ अपने पैरों को अविचल जमा कर अपने चारों स्तनों से दूध की धारा बहा देती है उसी प्रकार यह मातृभूमि रूपी गौ अपने दुग्ध रूप अमूल्य रत्न सोना–चादी ताबा–लोहा गधक अभ्रक कोयला पेट्रोल, अन्न औषध, फूल–फलादि रूप दुग्ध की धाराओं से देश को अप्लावित कर दे पर इसके लिए शर्त यह है कि विविध भाषाओं को बोलने वाले, अनेक विचार और क्रियाकलाप वाले बहुत से और बहुत प्रकार के आकार–प्रकार और रग रूप वाले लोग अपने देश में उसी प्रकार रहे जिस प्रकार एक परिवार में छोटे–बड़े प्रेम पूर्वक मिल जुल कर रहते हैं।

यह आरोप भी अत्यन्त हास्यास्पद है कि साम्यवादियों ने उन्हें आर्यसमाज में भेजा है। आरोप लगाने वाले क्या एक भी भाषण प्रस्तुत कर सकते हैं जिसमें उन्होंने साम्यवाद का समर्थन किया हो। क्या आज तक एक भी आर्यसमाजी को उन्होंने साम्यवादी बनाया? आर्यसमाज के दिग्गज नेता राहुल सास्कृत्यायन एव प्रसिद्ध उपन्यासकार यशपाल साम्यवादी बन गये तो स्वामी अग्निवेश को साम्यवादी बनने में क्या बाधा थी? आज भारतवर्ष मे चाहे स्वामी अग्निवेश का कितना ही विरोध क्यों न करें परन्तु भारतवर्ष की सीमाओं से बाहर स्वामी अग्निवेश आर्यसमाज का पर्याय माना जाता है। वे ईसाइयों और मुसलमानों की सभाओं में जाकर उनकी कर्मकाण्डों की जमकर आलोचना करते हैं। लखनऊ से दिल्ली तक की समन्वय यात्रा में बरेली में गुरूद्वारे में हमारा भव्य स्वागत हुआ। वहा पर भाई ग्रंथ साहब पर पखों से हवा कर रहे थे तब स्वामी अग्निवेश ने पूछा कि क्या ग्रथ साहब को गर्मी लग रही है? वहा उपस्थित सिक्खों को यह बात बुरी तो लगी परन्तु क्या समस्त मत–मतान्तरों में व्याप्त पाखण्ड की आलोचना करने का अग्निवेश जैसा साहस किसी और आर्यनेता में है? स्वामी अग्निवेश की आलोचना करने वालों के लिये कबीर के शब्दों में यह कहा जा सकता है–

हीरा पाय परख नही जाने कौड़ी परखन करता।

सत्यव्रत सामवेदी, सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक [illegible]–13, [illegible] नगर [illegible] जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि. [illegible] का. [illegible] e-mail [illegible]
आर्य समाज, [illegible] जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी, सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज [illegible]
राजस्थान

पंजीकरण [illegible]
डाक पंजीकरण [illegible]

श्री जगदीश वेदालकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार उत्तरांचल यू पी

वेद प्रचार, आर्य समाज, विश्व शान्ति, राष्ट्रोत्थान, मानवता एवं सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र

॥ओ३म्॥
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

वर्ष 2 अंक 47 21 दिसम्बर 2002 मूल्य एक प्रति 3 रुपये डाक पंजियन संख्या RJ-2837/2001 वार्षिक मूल्य 75 रुपये

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस

तड़पती आत्मा की पुकार

विनाश के तूफान में आर्तनाद करते हुए भारत, तुम दयानन्द का हाथ क्यों नहीं पकड़ते?

–सत्यव्रत सामवेदी

जयपुर 20 दिसम्बर। महापुरुषों की जीवनगाथा उपन्यासों और नाटको से भी अधिक रोमाचक व रोचक होती है परन्तु स्वामी श्रद्धानन्द की जीवन सरिता का प्रवाह सर्वाधिक विस्मयकारी है। मिल्टन का पैराडाईज लास्ट महाकाव्य विश्व साहित्य का अमर ग्रन्थ है जिसमें सर्वशक्तिमान ईश्वर और शैतान के महायुद्ध का रोगटे खडे करने वाला चित्रण है परन्तु स्वामी श्रद्धानन्द की आत्म कथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' पाठक को नरक से स्वर्ग तक की यात्रा कराते हुए अनेक भयानक वीभत्स घृणित दृश्या के बाद स्वर्गिक सान्दयमय मनाहारी चित्र दिखाते हुए ब्रह्म लोक की अद्वितीय झाकी के दर्शन कराती है। मानव जीवन के उत्थान और पतन के दृश्यों को देखता हुआ पाठक सास लेना भूल जाता है। इस आत्म कथा मे पाप सागर मे डूबती हुई आत्मा का आर्तनाद है एडवेन्चर है मद्य है मदिरा है मीन है मुद्रा है मैथुन है उद्दाम वासना का जहरीला आकर्षण है रोमाच है शायरी है शतरज है हुक्का है अययाशी है मटरगश्ती है आवारगी है और हैं पाप सागर में उत्ताल तरगों को विदीर्ण करने वाले नरभक्षी मगरमच्छ। इस भवसागर मे भयत्रस्त मानव चीख उठता है–बचाओ बचाओ। चारो तरफ निबिड अधकार है कोई आशा की किरण नहीं। नरभक्षी मगरमच्छ के मुह मे आसू बहाते हुए मानव की चीख सुन कर आकाश कापने लगता है और सहसा एक प्रकाश पुज का अवतरण होता है। इस प्रकाश पुज से नरभक्षी मगरमच्छ और उसके शिकार निरीह मानव की आखे चौधिया जाती हैं। उस प्रकाश पुज की शक्तिशाली भुजाए मगरमच्छ के मुह से चीत्कार करते हुए मानव को पकडकर खीचने लगती है और भयकर महासमर प्रारम्भ हो जाता है मानव के खून के प्यासे मगरमच्छ और अमरता के सदेशवाहक प्रकाश पुज के बीच। यह प्रकाश पुज कौन है जिसकी वज्रविनन्दक भुजाए मानवता के त्राण के लिये असुरो से महायुद्ध कर रही हैं। वह प्रकाश पुज है आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती।



ईश्वर भक्त धर्मनिष्ठ निर्भीकता की प्रतिमूर्ति नानकचद अपने लाडले बेटे मुंशीराम को पाप सागर में डूबते हुए देखकर विलाप कर रहा है। पीढियो से ईश्वर भक्ति में लीन परिवार में यह क्या हुआ कैसे हुआ? वासनाओं का जहरीला वासुकि मेरे बेटे को कैसे उठा कर ले गया। मैं क्या करूँ कहा जाऊँ? मेरा बेटा तो दशहरे के दिनों में दिये गये मेले के खर्च में से कुछ धन बचाकर टूटीदार झारी खरीद कर लाया था जिसमें देवता पर जल चढाने के लिये जल भर लेता था उसने पीतल की एक डलिया खरीदी थी जिसके ऊपर पकडने का दस्ता और बीच मे दो कटोरिया जडी होती थी। एक कटोरी में अक्षत दूसरी मे चदन और थाली में फूल और बिल्वपत्र रख लेता था। नित्य प्रात दाये हाथ में झारी और बगल में धोती अगोछा लेकर विश्वनाथ जी के दर्शन करने जाता था। मार्ग में सब शिवलिगो पर झारो से एक बूद चुआते हुए विश्वनाथ शनीचर देवता महावीर अन्नपूर्णा और गणेश ढुन्ढिराज प्रेम पूर्वक चदन अक्षत पुष्प नैवेद्य धूपदान से पूजा करके घर आकर जलपान करना उसका नित्य नियम हो गया था। मेरा बेटा जब 10 वर्ष का था तब नियम पूर्वक तुलसीकृत रामायण का भक्तिपूर्वक नियमित पाठ करता था। एक दिन अपने भाई के साथ उजड मंदिर से शिवलिग उठा लाया और मेरा अनुकरण कर शिवलिग को स्नान कराके उस पर पुष्प बेलपत्र चढाता और धूप दीप नैवेद्य देवार्पण करता था। बादा मे कितने भक्ति भाव से राम चरित मानस का पाठ सुनता था। प्रत्येक आदित्यवार को हनुमान चालीसा का एक टाग पर खडे होकर सौ बार पाठ करने के पीछे नमक शून्य भोजन करता था सनीचर को स्कूल से लौट कर जो बाल काण्ड का आरम्भ करता तो आदित्यवार की रात तक लका काण्ड की समाप्ति कर देता। आज मेरा बेटा नास्तिक हो गया है। हे ईश्वर! मेरी पुकार सुन। मेरे बेटे की रक्षा कर और मेरे परिवार को कलकित होने से बचा।

ईश्वर ने नानकचन्द की पुकार सुनी

विषाद क समुद्र में गोता लगाते हुए नानकचन्द की प्रार्थना को परम कारुणिक परमेश्वर ने सुन लिया। ईश्वर की लीला विचित्र है। जब उसके भक्त को चारो तरफ अधकार ही अधकार दिखाई देता है तब उसकी करूणा भक्त के परित्राण के लिए दिव्य प्रकाश के रूप में प्रकट होती है। मुशीराम 23 वर्ष के नवयुवक हैं।

दयानन्द की सभा मे उपद्रव रोकने का दायित्व बास बरेली के कोतवाल नानकचन्द पर था। महर्षि का भाषण सुनकर कोतवाल साहब को विश्वास हो गया कि यह अद्वितीय व्यक्तित्व मेरे पुत्र को पुन आस्तिक बना देगा और मेरे नास्तिक बेटे के सब सशय दूर कर देगा। रात को घर आते ही दुखी बाप ने अपने बेटे से कहा– 'बेटा मुशीराम! एक दण्डी सन्यासी आये हैं बडे विद्वान और योगीराज हैं। उनकी वक्तृता सुनकर तुम्हारे सब सशय दूर हो जायेगे। कल मेरे साथ चलना।' नास्तिक बेटे की प्रतिक्रिया थी कि केवल सस्कत जानने वाला क्या बुद्धि की बात करेगा? पिता का मन रखने के लिए दूसरे दिन मुशीराम महर्षि का भाषण सुनने चला गया। उस दिव्य आदित्य मूर्ति को देखकर मुशीराम श्रद्धावनत हो गया और जब पादरी टी जे स्काट और दो तीन अन्य यूरोपियनो को उत्सुकता से बैठे देखा तो श्रद्धा और भी बढ गई। अभी दस मिनट वक्तृता नहीं सुनी थी कि मन मे विचार किया 'यह विचित्र व्यक्ति है कि केवल संस्कृतज्ञ होते हुए ऐसी युक्ति युक्त बाते करता है कि विद्वान दंग हो जाए।' व्याख्यान परमात्मा के निज नाम ओ३म पर था। महर्षि के व्याख्यान को सुन कर आनन्दानुभूति का वर्णन करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने लिखा वह पहले दिन का आत्मिक आल्हाद कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आल्हाद से निमग्न कर देना ऋषि आत्मा का ही काम था।

परन्तु मुशीराम का सशय अभी भी दूर नहीं हुआ। उनकी प्रतिक्रिया थी कि यदि ईश्वर और वेद के ढकोसले को पण्डित दयानन्द स्वामी तिलाजलि दे दे तो कोई भी विद्वान उनकी अपूर्व युक्ति और तर्कना शक्ति का सामना करने वाला न रहे।

मुशीराम को अपने नास्तिकपने पर बहुत अभिमान था। एक दिन ईश्वर के अस्तित्व पर आक्षेप कर डाले। पाच मिनट के

प्रश्नोत्तर में ऐसे घिर गये कि जिह्वा पर मुहर लग गई। मुशीराम ने कहा– 'महाराज! आपकी तर्कना शक्ति बड़ी तीक्ष्ण है। आपने मुझे चुप तो कर दिया परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती (अस्तित्व) है। दूसरी बार फिर तैयारी कर के गये परन्तु परिणाम पूर्ववत ही निकला। तीसरी बार फिर पूरी तैयारी कर के गया परन्तु तर्क को फिर पछाड़ मिली। मुशीराम ने फिर अन्तिम उत्तर वही दिया– 'महाराज! आपकी तर्कना शक्ति बड़ी प्रबल है आपने मुझे चुप तो कर दिया परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती है। महाराज पहले हसे फिर गम्भीर स्वर से कहा– 'देखो! तुमने प्रश्न किये मैने उत्तर दिये यह युक्ति की बात थी। मैंने कब यह कहा था कि मैं तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास करा दूगा। तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वय तुम्हें विश्वासी बना देगे।

भद्रता और दुरित के पाटो के बीच मे

अब मुशीराम भद्रता और दुरित की रस्साकशी में फस गये। एक तरफ विषय वासना के असुर की प्रबल शक्ति मुशीराम को अपनी तरफ खींच रही हैं और दूसरी तरफ महर्षि की बलिष्ठ भुजाए अपनी तरफ। इस रस्साकशी में मुशीराम विकल हैं।

वेश्या के कोठे पर

इसके बाद मुशीराम ने फिर जहरीली शराब पी। शराब ने इतना जोर किया कि पाव जमीन पर नहीं पडता था। मित्र के साथ वेश्या के घर जा पहुचे। कोतवाल साहब के पुत्र को देखकर सब सलाम करके खडी हो गई। घर की बड़ी नाई को हुक्म हुआ कि मुजरा सजाए जाए। उसकी नौंची के यहा कोई रुपया देने वाला बैठा था। उसके आने मे देर हुई। न जाने मुशीराम के मुह से क्या निकला। सारा घर कापने लगा। नौंची घबराई हुई दौड़ी आई और सलाम किया। उसने क्षमा मागने के लिए हाथ बढाया और मुशीराम नापाक नापाक कहते हुए नीचे उतर आए।

मुशीराम महर्षि का भाषण सुनकर मोहित तो हो गए परन्तु विषय वासना की भयकर लहरें पाप सागर से उसे बाहर नही निकलने दे रही।

मधु भरी लबालब आती प्यालों की मालाए
अधरों को सिंचित करके जो शोषित करतीं अन्तर को

महर्षि के दर्शन किये पाच वर्ष हो गए हैं। मेरे चेतन मन पर विषयों का आधिपत्य है और अवचेतन मन में दयानन्द बैठा है। दोनों के बीच महासमर छिड़ा हुआ है। विषयों के असुर मास मदिरा शायरी वासना की रस्सियों से मुशीराम को अपनी तरफ खींच रहे हैं। मुशीराम सशय की भयकर नदी में बहे जा रहे हैं। 28 वर्ष की अवस्था में (संवत 1941) जालधर से लाहौर वकालत की परीक्षा के लिये जाने के उपलक्ष्य मे दोस्तों की फिर दावते शुरू हो गई।

अधकार की अन्तिम रात्रि

मद्य–मास खाने–पीने वाले 'हम प्याला हम निवाला' मित्रों ने दावत देना शुरू कर दिया। प्रत्येक शाम को किसी न किसी मित्र के यहा मुर्गों के गले काटे जाते अण्डे भूने जाते और प्यालों के दौर चलते। एक दिन बडे वकील के यहा निमत्रण था। वहा खुला दौर चला और तो सब अपने–अपने घरों पर चले गये और मुशीराम के साथ रह गया 'पाचों ऐब शायरी बाके मुखतार। बाहर निकलते ही मित्र लड़खड़ाने लगा। कच्चे घडे की चढी हुई थी। मुशीराम चाहे कितनी शराब पी लेते पर होश नहीं खोते थे। अपने मित्र को वे शहर की गलियों की भूल भुलैया के अन्दर स्थित मकान पर छोड़ने गये। लडखडाते मित्र की कमर में एक हाथ और दूसरे हाथ से उसके हाथ को सहारा देते हुए जा रहे हैं। मार्ग की एक गली में मुशीराम अपना हाथ छुड़ाकर एक घर के अन्दर चला गया। पीछे–पीछे मुशीराम भी जब उस घर में चले गये तो देखा कि वहा एक वेश्या बैठी थी। मुशीराम ने मित्र की गालिया सहते हुए भी उसे वहा से धकेला और घर पहुचा कर अपने मित्र के घर लौट आये। जिस मित्र के यहा मुशीराम अतिथि बनकर रह रहे थे वह मित्र भी बोतल खोले बैठा था। फिर दौर चलने लग गया। आधी बोतल शेष थी जो दोनों ने समाप्त की और दूसरी बोतल खुल गई। उसी मे से अभी एक बार पैग ही चढाया था कि मेजबान भी आपे से बाहर होने लगे। मुशीराम ने उन्हे पीने से रोक कर सोने को कहा। इस पर वह बीच का किवाड़ खोल साथ के कमरे में चला गया। उसके जाते ही मुशीराम ने एक बार और पी ली और दूसरी बार प्याला भरने की सोच ही रहे थे कि साथ के कमरे से चीख की आवाज आई। मुशीराम किवाड़ खोलकर अन्दर पहुचे तो देखा कि एक युवा देवी उनके रक्षक मित्र के हाथों में छटपटा रही है और वह उस पर पाशविक आक्रमण कर रहा है। यदि मुशीराम को दो मिनट का भी विलम्ब हो गया होता तो शायद उसके पतिव्रत धर्म की रक्षा न हो सकती।

मुशीराम ने उस नराधम मित्र के दोनों हाथ पकड कर उसे धकेल दिया। वह गिरा और देवी कापती हुई अन्दर भाग गई। पिशाच मित्र को जबरदस्ती उसके पलग पर लिटा कर मुशीराम बाहर आ गए। उनका गत सारा जीवन मानसिक दृष्टि के आगे घूमने लगा और तब से पूरा वैराग्य उत्पन्न हुआ परन्तु पुराने अभ्यास के अनुसार यह सूझी कि शेष बोतल समाप्त करके सदा के लिये उसके प्रलोभन से मुक्त हो जाए। इस विचार से पूरा बडा गिलास भरा ही था कि मानसिक दृष्टि के सामने से एक और पर्दा उठा और यति दयानन्द की विशाल मूर्ति कौपीन लगाये शरीर में विभूति रमाये और हाथ में मोटा लट्ठ लिये सामने आ खड़ी हुई। ऐसा जचा मानो महात्मा कह रहे हैं—क्या अब भी परमेश्वर पर तेरा विश्वास न होगा? आख मली मूर्ति कहीं सामने न थी परन्तु हृदय काप उठा। उनका कमरा सड़क की एक ओर था जहा किसी दूसरे घर की दीवार थी गिलास उठा कर जो फेंका तो सामने की दीवार में लग कर चूर–चूर हो गया। फिर बोतल उठा कर जोर से फेंकी वह भी दीवार में टकरा कर टुकडे–टुकडे हो गई।

आचार्य का आदेश पूरा हो रहा है

अभी मुशीराम सशय के झूले में झूल रहे हैं। मुझे आत्मिक शाति कहा मिलेगी? कभी वे आर्य समाज जाते हैं कभी ब्राह्म मदिर। ब्राह्म समाज के भक्तिभाव ने उन्हे बहुत प्रभावित किया और 5–6 दिन तक ब्राह्म समाज का साहित्य पढ़ते रहे। पुनर्जन्म और कर्मफल के प्रश्नो पर ब्राह्म समाजी विद्वानो के उत्तरों से उन्हे सतोष नहीं हुआ तब पारसी स्कॉट के साथ आचार्य दयानन्द के शास्त्रार्थ का स्मरण आया। फिर वे सत्यार्थ प्रकाश लेने आर्य समाज गये और सत्यार्थ प्रकाश लेकर इस प्रकार हर्ष विभोर होकर लौटे मानो बड़ा कोष हाथ लग गया हो। सवत 1941 का माघ मास और आदित्यवार का दिन है मुशीराम अपने कमरे में बैठे हैं और मेज पर सत्यार्थ प्रकाश का आठवा समुल्लास खुला पडा है। इतने में मुशीराम जी के मित्र सुन्दरदास कमरे में प्रवेश करते हैं और पूछते हैं– 'किस चिन्ता में हैं कहिये कुछ निश्चय हुआ? मुशीराम ने उत्तर दिया—पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने फैसला कर दिया। आज मैं सच्चे विश्वास से आर्य समाज का समासद बन सकता हू। इस उत्तर को सुनकर सुन्दरदास की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही और वे मुंशीराम को लेकर आर्य समाज चले गए।

आर्य समाज का दीवाना

वकालत के साथ–साथ आर्य समाज का प्रचार करना उनके जीवन का ध्येय बन चुका है। अब मुंशीराम प्रातःकाल अपने साथियों के साथ एकतारा लेकर निकलते और आलाप के साथ वैराग्य श्रद्धा भक्ति और ईश्वर स्तुति के भजन गाते। मोहल्ले और गली के बीचों–बीच खडे होकर एक भजन पूरा करते और एकतारा पर स्वर छेड़ते आगे चल देते। मुशीराम को देख कर एक माता ने कहा—'बेचारा बड़ा भला फकीर है। केवल भजन गा रहा है और मागता कुछ नहीं। फिर माता आवाज लगाती—ऐ भाई! खैर ले जा। कई देवियां उन्हें भिखमगा समझ कर ही अनाज पैसा दुअन्नी चौअन्नी, आचल में डाल जाती।

पुत्री पाठशालाओं की स्थापना

एक दिन जब मुशीराम जी कचहरी से आये तो उनकी पुत्री वेद कुमारी भागती–भागती आई और गीत सुनाने लगी–

'मन रे ईसा–ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल।
ईसा मेरा राम रसिया ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।

मुशीराम जी चौंक पड़े कि ईसाइयों के स्कूलों में हमारे धर्म के विरुद्ध जहर उगला जाता है और ईसाई धर्म का प्रचार होता है। दूसरे दिन उन्होंने रविवार को आर्य समाज, जालधर में पुत्री पाठशाला खोलने का प्रस्ताव रखा जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ। इसके बाद पजाब के शहर–शहर और गाव–गाव में पुत्री पाठशालाओं का जाल बिछ गया और स्त्री शिक्षा की क्रांति का श्रीगणेश हुआ। आज जालधर में जो विशाल आर्य कन्या महाविद्यालय है उसकी स्थापना इसी अवसर पर हुई थी।

मौत का ताण्डव नर्तन और मुशीराम का धैर्य

मुशीराम जी की प. गुरुदत्त के प्रति अगाध श्रद्धा थी। वे उन्हें आर्य समाज का प्राण मानते थे। उनकी विद्वत्ता सरलता और निश्छल व्यवहार ने उन्हें बहुत प्रभावित किया था। मासाहारी आर्य समाजी पं. गुरुदत्त के शत्रु थे और कटु आलोचक थे। प. गुरुदत्त की अकाल मृत्यु ने मुशीराम जी को बहुत व्यथित किया और उनकी मान्यता थी कि इस क्षति की पूर्ति नहीं हो सकती। इसके बाद निर्भीकता त्याग बलिदान की प्रति मूर्ति आर्य मुसाफिर प. लेखराम की हत्या हो गई। जैसे कि मुशीराम जी का दाया हाथ टूट गया हो। इसके बाद उनकी साध्वी एव पतिव्रता पत्नी शिवदेवी का निधन हो गया। उस समय वेद कुमारी 10 वर्ष की हेमन्त कुमारी 6 वर्ष की हरिश्चन्द्र 4 वर्ष का और इन्द्र 2 वर्ष का था। अब मुशीराम इन बच्चों के माँ और बाप दोनो थे और उस समय उनकी आयु केवल 35 वर्ष थी।

सर्वमेध यज्ञ

साध्वी एव पतिव्रता मधुर भाषणी नम्रता की प्रतिमूर्ति पत्नी शिवदेवी के निधन के बाद मुशीराम जी का जीवन सार्वजनिक हो गया और वे वकालत के साथ–साथ सारे पजाब में आर्य समाज की धूम मचाते रहे और पजाब की पाचों नदिया आर्य समाज की आग से धधकने लगी। 1898 में उन्हें गुरुकुल की स्थापना की धुन सवार हुई और आर्य समाज की आग उगलने वाली एक मात्र पत्रिका सद्धर्म प्रचारक में घोषणा कर दी कि जब तक गुरुकुल के लिये 30 हजार रुपये इकटठे न कर लेंगे तब तक घर में पैर नहीं रखेंगे। गुरुकुल की स्थापना के लिये उन्होंने वकालत का परित्याग कर दिया। सवत 1959 में अपना पुस्तकालय गुरुकल के लिय अर्पित कर दिया। सवत 1968 में सद्धर्म प्रचारक प्रेस एव 30 हजार रुपये की जालधर की कोठी गुरुकुल को अर्पित कर दी। हरिद्वार के पास घने जगलों के बीच चौधरी मुशी अमर सिह नामक एक दानवीर ने बारह सौ बीघा जमीन गुरुकुल के लिये दान में दीं। 24 मार्च 1902 को गुरुकुल का उद्घाटनोत्सव हुआ और 45 ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ सस्कार हुआ।

यह गुरुकुल मानवता की शिक्षा देने वाला विश्व केन्द्र बन गया और विश्व के समस्त शिक्षा शास्त्री सामाजिक एव राजनीतिक नेता इस क्रांतिकारी प्रयोग को देखने के लिये आए। स्वाधीनता सग्राम के नेताओं की तो यह प्रेरणा स्थली थी। इस गुरुकुल में स्नातक स्तर तक विज्ञान की शिक्षा को हिन्दी में देने का सकल्प लिया गया। गुरुकुल का उद्देश्य ऐसे नवयुवक तैयार करना था जो वेदाध्ययन करके सारे ससार को आर्य बनायें और देश की स्वाधीनता के लिये अपना जीवन समर्पित कर दें। महात्मा गाधी तो अनेक बार गुरुकुल में आचार्य मुशीराम का आशीर्वाद लेने आया करते थे। इग्लैण्ड के प्रधानमत्री रैम्जे मेकडोनल्ड आचार्य मुशीराम का दर्शन करने शेर–चीतों से भरे भयकर जगल में आए। इग्लैण्ड वापिस जाने पर अपने सस्मरण सुनाते हुए रैम्जे मेकडोनल्ड ने कहा–

"एक महान भव्य और शानदार मूर्ति जिसको देखते ही उसके प्रति आदर का भाव पैदा होता है हमारे आगे हमसे मिलने आती है। आधुनिक चित्रकार ईसामसीह का चित्र तैयार करने के लिये उसको अपने सामने रख सकता है और मध्य–कालीन चित्रकार उसको देखकर सेन्ट पीटर का चित्र तैयार कर सकता है यद्यपि उस मछियारे की मूर्ति की अपेक्षा यह मूर्ति अधिक भव्य और प्रभावोत्पादक है।'

इग्लैण्ड के प्रसिद्ध पत्र डेलीक्रॉनिकल में उनके सस्मरण प्रकाशित हुए जिसमें उन्होंने उद्गार प्रकट करते हुए कहा–"सन् 1835 के प्रसिद्ध लेख में भारत की शिक्षा के सबध में यह पहला प्रशस्त यत्न किया गया है। उस लेख के परिणामों से प्रायः सभी भारतवासी असन्तुष्ट है किन्तु जहा तक मुझको मालूम है गुरुकुल के सस्थापकों के सिवा किसी और ने उस असन्तोष को कार्य में परिणत करते हुए शिक्षा के क्षेत्र में नया परीक्षण नहीं किया है। ब्रिटिश सरकार गुरुकुल को अग्रेजी सरकार के

शेष अंतिम पृष्ट पर

उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित पुनर्मिलन(शुद्धि) कार्यक्रम विषयक भ्रम का निराकरण

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द एव प लेखराम जी ने महर्षि दयानन्द जी द्वारा प्रारम्भ किये हुए शुद्धि आन्दोलन को नई गति दी और उसे विशाल रूप से चलाया। इन दिनों विभूतियों के बलिदान के पीछे यह आन्दोलन मन्द सा पड़ गया है। कहीं–कहीं छिट–पुट रूप में ही होता रहा। फिर स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने इस कार्य को गति दी। उन्होंने कुछ वर्ष इस आन्दोलन को चलाया परन्तु इसी शुद्धि कार्य को निमित्त बनाकर उड़ीसा गये स्वामी धर्मानन्द जी ने सन् 1980 से इस आन्दोलन की बागडोर सम्भाली और इसे सारे देश का आन्दोलन बना दिया।

आर्य समाज के कई सगठन इस कार्य मे रूचि लेने लगे। पूज्य स्वामी जी ने 1983 में ग्राम कुमुण्डे में प पृथ्वीराज शास्त्री उपमत्री सा आ प्र सभा फिर 1986 88 90 और 92 में भी शुद्धि के बड़े–बडे आयोजन पूज्य स्वामी आनन्दबोध जी की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुए।

स्वामी आनन्दबोध जी को वर्तमान श्रद्धानन्द कहते थे। अब भी यह कार्यक्रम लगातार चल रहा है। उडीसा एव छत्तीसगढ के अलग–अलग स्थानों मे पुनर्मिलन के कार्यक्रम होते रहते हैं। इनकी सूचनायें आर्य जगत् के समाचार पत्रो में छपती रहती है परन्तु अनेक आर्यजन इस शुद्धि कार्यक्रम को महत्व नहीं देते हैं न ही इतने–इतने ईसाई शुद्ध होते हैं ऐसा मानते हैं। वे नगरो की चार–दीवारी के बाहर नही जाते न ही ऐसे आयोजनों में उपस्थित होते हैं।

अत उनके मन मे अनेक भ्रम बने हुए हैं। पूज्य स्वामी जी ने भी कई वर्ष तक इन क्षेत्रों में भ्रमण करके विभिन्न स्थान के लोगो से सम्पर्क करके प्रचारको की टीम तैयार की है। सभी स्थानों पर सगठन बनाये हैं। वे इस व्यवस्था मे विशाल राशि खर्च करते हैं तभी यह आन्दोलन चल रहा है। सभी शुद्ध होने वाले सज्जनों के फार्म हमारे कार्यालय में है। हम समाचार पत्रों में सख्या कम दिखाते हैं। यह समाचार भी लोगो मे उत्साह और भावना भरने के लिये छपाते हैं। जिनको इन कार्यक्रम के विषय मे शका है वे कभी हमारे किसी कार्यक्रम में आकर देख लें।

नवम्बर महीने के 'टकारा समाचार' में आर्य समाज के कार्यक्रमों में सेवा का स्थान' के नाम से नाम से एक लेख श्री दत्तात्रेय तिवारी का छपा है इसमें उन्होंने लिखा है–उड़ीसा में धर्मान्तर रोकने के समाचार जरूर छपते हैं पर जो सख्या दी जाती है उनकी मान्यता पर विश्वास करना कठिन है। श्री तिवारी जी से मेरा निवेदन है कि हमारे कार्यक्रम नकली नही होते न सख्या गलत होती है। बड़े–बड़े आयोजनो मे आर्य समाज के अनेक नेता उपस्थित रहे हैं। अब भीइन कार्यक्रमो में बाहर के किसी विद्वान को बुलाया जाता है। श्री तिवारी जी से भी आग्रह है कि वे किसी कार्यक्रम मे उपस्थित होकर देख ले परन्तु बिना पूर्ण जानकारी के झूठा भ्रम न फैलायें।

स्वामी व्रतानन्द सरस्वती प्रधान

धर्मरक्षा महाभियान के बढ़ते कदम

सुन्दरगढ पचरा पचायत के कटगझरिया एव कसारडिही गाव के 158 ईसाई परिवारों ने पुन वैदिक धर्म को यज्ञ में आहुति देकर अत्यन्त श्रद्धा से स्वीकार किया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता सभा प्रधान स्वामी व्रतानन्द सरस्वती कर रहे थे एव यज्ञ का सचालन उपप्रधान प विशिकेसन शास्त्री जी ने किया। शुद्धि हो रही उपस्थित जनता को आशीर्वाद देने श्री सुनील सिघल जी मत्री गुरूकुल वेदव्यास राऊलकेला प ओमप्रकाश जी प शिवप्रसाद जी होता प धनेश्वर जी प डिलेश्वर पटेल गुरूकुल भस्मा तथा प रामजीवन जी उपस्थत थे। इस पुनर्मिलन समारोह को सम्पन्न कराने में श्री द्वितीया एव श्री परमानन्द जी(कटगझरिया)ने अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

ब्र सुदर्शनदेवार्य उपमत्री
उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा
गुरूकुल आश्रम आमसेना नवापारा उड़ीसा–766109

हमारे परिवार आर्य कैसे बने?

आज कल अधिकाश आर्य सत्सगों के परिवार अर्थात पत्नी पुत्र तथा पुत्रिया आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सगों तथा अन्य उत्सवों में नही आते–जाते। देखने में यह आया है कि पत्निया पौराणिक पाखड और अधविश्वास में फसी हुई है अथवा राधा स्वामी ब्रह्माकुमारी मतों के गुरूओं को मानती हैं तथा पुत्र–पुत्रिया पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण कर रही है। इसलिये आर्य समाजों में बहुत कम आती है। वास्तव में हमने महर्षि दयानन्द के कहने के अनुकूल आचरण नहीं किया। उन्होंने 31 दिसम्बर 1880 को आर्य समाज पुलवान के मत्री मास्टर दयाराम वर्मा को एक पत्र में यह लिखा था कि जनगणना मे धर्म के खाने मे वैदिक धर्म और जाति के खाने मे आर्य लिखाया जाए आर पजाब मे सब आर्य समाजो को यह बता दिया जाए परन्तु अधिकाश आर्य समाजियों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया और अब तक धर्म के खाने में हिन्दू ही लिखाते जा रहे हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभाओं ने भी इस ओर ध्यान नही दिया जबकि इस बारे में तो खूब प्रचार होना चाहिये था। आर्य लोग वैदिक धर्म की जय के नारे तो खूब लगाते हैं परन्तु इसका अस्तित्व कागज पत्रों में नही है। अगर वैदिक धर्म लिखाते तो हमारे परिवार अपने आपको वेदिक धर्मी ही कहते और उन पर वैदिक सिद्धान्तो का पूछ तो प्रभाव पडता। जिस तरह एक ईसाई मुसलमान की सन्तान भी ईसाई मुसलमान ही होती है ऐसे ही वैदिक धर्मी की सन्तान भी अपने पिता के अनुकूल ही होती है। यह ठीक है कि हम हिन्दुओं से अलग नही है। इस लिये कोष्ठक में वैदिक धर्म के साथ हिन्दू भी लिख–लिखा सकते हैं। यह प्रचार सार्वदेशिक सभा तथा प्रादेशीय प्रतिनिधि सभाओ द्वारा होना चाहिये कि सभी आर्य सदस्य सरकारी तथा अन्य सभी फर्मों मे धर्म के खाने मे वैदिक धर्म लिखाये। दूसरी बात महर्षि दयानन्द ने सस्कार विधि के गृहस्थाश्रम सस्कार में यह लिखी है कि अपने घरो मे प्रात व साय सध्या तथा हवन किया करे।

उपरोक्त दो बातो के अतिरिक्त सभी आर्य जन अपनी सन्तानों के विवाह गुण–कर्मानुसार जन्म जाति का विचार किये बिना आर्य विचारधारा के लोगों के साथ किया करे। तभी हमारे परिवार आर्य बन सकते हैं। चौथी बात यह करें कि अपने पुत्रो की आयु 18 वर्ष से ऊपर हो चुकी है आर्य समाज के सदस्य बनायें तथा सब की पत्निया आर्य स्त्री समाज की सदस्य बने तथा उनके सत्सग में जाया करे।

आजकल हमारी पुत्रिया विवाह के पश्चात पौराणिक घरा मे जा रही है और हमारे पुत्रों के विवाह भी पौराणिक विचारधारा के घरों में हो रहे हैं इसलिये परिवार आर्य नहीं बन रहे और आर्य समाज की उन्नति नही हो रही। मेरा विश्वास है कि उपरोक्त चार बातो के अनुकूल आचरण करने से हमारे परिवार आर्य समाजों में आने लगेंगे और वैदिक धर्म अस्तित्व में आ जाएगा।

अश्विनी कुमार पाठक
केशव पुरम दिल्ली

प्रान्तीय आर्यवीर दल प्रशिक्षण शिविर,गुरुकुल आश्रम,आमसेना 25 से 31 दिसम्बर,02 तक प्रशिक्षण आर्यवीर एवं शाखानायक

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी गुरुकुल आश्रम आमसेना उड़ीसा में उत्कल प्रान्तीय आर्यवीर दल प्रशिक्षण शिविर का आयोजन विशाल स्तर पर किया जा रहा है। जो नवयुवक चरित्रवान बलवान स्वस्थ व सुखी रहना चाहते हैं जिनके हृदय में देश धर्म समाज की सेवा के लिए कुछ तडप है वे इस शिविर मे भाग लेकर इस प्रशिक्षण शिविर का लाभ उठा सकते हैं।

शिविर प्रवेश शुल्क – 30 रु मात्र
आयु – 12 से 25 वर्ष

इस शिविर में 500 के लगभग शिविरार्थियो के भाग लेंगे।

अत जो नवयुवक अपना सर्वविध कल्याण चाहते हैं वे इस शिविर का लाभ उठायें एव आने की सूचना से (15DEC तक) अवगत करायें।

– निवेदक –

कुजदेव मनीषी आनन्दकुमार शास्त्री स्वामी धर्मानन्द सरस्वती
प्रान्तीय सचालक महामत्री सचालक/सस्थापक

वेदोक्त धर्म उत्थान चाहिये या धृति–ध्वंसक विज्ञान चाहिये

लेखक–देवनारायण भारद्वाज वरेण्यम एम आई जी 45 पी अवन्तिका कालोनी ए डी एम रामघाट मार्ग अलीगढ–202001

एक राजा बड़ा लोक प्रिय था। नित्य यज्ञ अर्थात देवजनो का सम्मान योग्यजनो का सम्मेलन और पात्रजनो को दान देता रहता था। रात्रिकाल मे विश्राम करते हुए उसने देखा कि सजी सवरी स्त्री उनके समाने आकर खडी हुई। राजा ने पूछा देवि! आप कौन हैं? उसने कहा–मै लक्ष्मी हू। अब में आपके पास नही रह सकती हू क्योकि आपने अति दान करके मुझे क्षीण कर दिया है। मैं जा रही हू। राजा ने प्रणाम करते हुए कहा–देवि! जैसी आपकी इच्छा। इसके पश्चात एक और स्त्री निकली। राजा ने उससे भी पूछा–आप कौन हैं? उसने कहा–मैं कीर्ति ह। जहा लक्ष्मी रहती है वहा रहने मे मुझे सुविधा होती है। मैं उसी के साथ जा रही हू। राजा ने कहा–एवमस्तु। बाद मे एक भयकर स्त्री राजा के सम्मुख आकर खडी हो गयी। राजा बोल आप कौन हैं? क्या आप भी जाने के लिए आयी हैं? स्त्री बोली मैं मृत्यु हू। जाने के लिए नही तुम्हें लेकर जाने के लिए आई हू। जहा लक्ष्मी और कीर्ति नही रहती वहीं मैं आ जाती हू। राजा ने कहा तथास्तु। वह स्त्री डरके मारे लौट गयी। उसने देखा राजा तो मौत से डरते ही नहीं। जो मौत से नही डरता मौत उससे डरती है। राजा लेटे रहे। लो एक नारी और निकल आयी। राजा ने पूछा माँ आप कौन हैं? उसने कहा में धृति हू। राजा बोले–आप कैसे बाहर निकलीं। वह बोली–जहा से श्री कीर्ति जाती है और मृत्यु आने लगती है वहा मैं टिक नही सकती क्योकि धैर्य की भी कोई सीमा है। अत अब मैं चली। राज न मनुहार पूर्वक उसक पर पकड लिए। बोले मा! ऐसा मत करो। तेरी ही कृपा से तो मैंने आज तक इन सबको ठुकराये रक्खा है। तू चली गयी तो मेरे पास और क्या बचेगा? तुझे मै नही छोड सकता। धृति पुन राजभवन मे लौट आयी। देखते क्या हैं कि कुछ पलोमें श्री एव कीर्ति भी वापस लौटने लगी। राजा ने पूछा माँ! आप चली गयी थी। पुन वापिस कैसे आ गयी। दानो एक स्वर म बोल पडी– क्या बताये राजन! जहा धृति (धैर्य) हाता है वहा रहना हमारी बाध्यता ह।

1 धर्म का मूल धृति – नीतिज्ञ महर्षि भर्तृहरि ने भी कहा कि चाहे कोई निन्दा करे या स्तुति अपयश फैले या येश लक्ष्मी रहे या दूर चली जाये मृत्यु आज आये या युगो बाद। धैर्यशील पुरूष न्याय धर्म पथ से कभी विचलित नहीं होते। महाराज मनु ने धर्म के जो दस लक्षण निरूपित किये हे उनमे धृति सर्वप्रथम ह। दोनों मे धृ धारण करने का सकेत प्रदान करता है। 1 जिसमे धैर्य करते हुए सहन करने की क्षमता होगी। 2 वही किसी को क्षमा करने की उदारता दिखा सकता है। 3 सहन शक्ति क्षमाधनी व्यक्ति ही दम–मन की वृत्तियों का निग्रह कर सकता है। 4 मन की वृत्तियो पर नियत्रण करने वाला व्यक्ति लोभ त्याग कर अस्तेय(अचौर्य) चोरी न करने के व्रत का पालन कर सकता है। 5 चोरी न करने वाला व्यक्ति सर्व प्रकारेण भ्रष्टाचरण से बचकर शौच शारीरिक एव मानसिक शुद्धता का अधिकारी व्यक्ति ही। 6 इन्द्रिय–निग्रह अपनी इन्द्रियों को वश मे रख सकता है। 7 जिसने अपनी इन्द्रियो को वश में कर लिया तो समझों इन्द्र बन गया। ऐश्वर्यमता बुद्धि का अधिष्ठाता बन गया। 8 बुद्धिमान व्यक्ति विद्या को पाकर स्वावलम्बी व समर्थ हो जाता है। 9 वह शक्ति सत्य– सत्यभाष सत्यवान सत्य क्रिया का स्रोत बन जाता है। 10 सत्य सम्पन्न व्यक्ति सभी ओर से दृढ व सशक्त हो जाता है और अक्रोध का अभ्यासी हो जाता है। क्रोध उसके आसपास भी फटकने नही पाता है। धर्म के ये लक्षण धैर्य से प्रारम्भ होते हैं। एक धैर्य को साधने से सभी दस लक्षण मनुष्य मे झलकने लगते है। अन्तिम लक्षण है क्रोध पर नियत्रण एक क्रोध के आने पर सभी दस लक्षण तिरोहित हो जाते हैं।

महर्षि दयानन्द ने अपने पूजा प्रवचन मे धर्म का एक और लक्षण अहिंसा भी बताया जो क्रोध के नियत्रण से ही प्राप्त होता है। गीता में कहा गया है कि क्रोध से विवेक नष्ट हो जाता है। विवेक न रहने पर स्मृति नष्ट हो जाती है स्मृति नष्ट होने से बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धि नष्ट होने से मनुष्य समूल नष्ट हो जाता है। (क्रमश)

चिट्ठी आई है

मान्यवर श्री सत्यव्रत जी सामवेदी
नमस्ते।

आर्य नीति में स्वामी अग्निवेश जी के बारे में स्वामी धर्मानन्द और श्री राजेन्द्र जिज्ञासु का विषवमन पढकर बडा दुख हुआ।

स्वामी अग्निवेश ससार के एक महान व्यक्तित्व हैं स्वामी विवेकानन्द से स्वामी अग्निवेश की तुलना करना बड़ी भूल है। स्वामी अग्निवेश जी ने हजारों बेसहारा लोगों को सहारा दिया हजारों उजड़े हुए घरों को बसाया है। स्वामी जीने इगलैंड जर्मनी मारिशस थाईलैंड चीन अमेरिका आदि न जाने कितने देशों मे आर्य समाज का प्रचार किया है जो कि साधारण काम नही है। किसी व्यक्ति को गालिया देना और बुरा-भला कहना बडा सरल है परन्तु स्वामी जी जैसा त्याग उनकी तपस्या उनकी तेजस्वी वाणी की बराबरी आज भी कोई नहीं कर सकता।

श्री राजेन्द जिज्ञासु को चाहिये कि पहले घरबार छोड़कर तो दिखाओं फिर उनको बुरा-भला कहना। स्वामी जी ने भरी जवानी में घरबार ऐशोआराम को लात मर कर आर्य समाज की सेवा की है यदि जिज्ञासु जैसे व्यक्ति उनके रास्ते में रोडा न बनते तो स्वाजी जी तो सारे देश मे आर्य समाज को फैला देते अपितु विदेशो मे भी आर्य समाज छाया हुआ होता। आर्य समाजियो मे यह एक बडी भारी कमी है कि वे किसी को बढता नही देख सकते। इसी प्रकार के लोगों के कारण आर्य समाज बढ नहीं रहा जैसे फसलों में काटे फल को बढने नहीं देते। श्री जिज्ञासु की अपनी व्यक्तिगत दुश्मनी स्वामी अग्निवेश जी से होगी तो हो परन्तु व्यक्तिगत दुश्मनी को समाज मे लाने से समाज की कितनी हानि होती है यह उनको पता नहीं। सन्यासियों को विरोध समाचार पत्रों मे या व्याख्यानो में करना कितना गलत है इससे उनकी मनोवृत्ति का भी पता चलता है कि उनके मन में आर्य सन्यासियों के लिये कितना कपट भरा पडा है जबकि प्रति दिन प्रार्थना में कहते हैं-छोड देवे छल कपट को ये मन ढोग ही करते है। यदि जिज्ञासु जी विद्वान हैं तो विद्वानो का तो यह काम नहीं होता इससे उनकी अन्दर की भावना का पता चला गया है।

स्वामी अग्निवेश जी पर हमें बडा फख है। ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति बार-बार पैदा नहीं होते। स्वामी अग्निवेश जी ही क्यों स्वामी श्रद्धानन्द स्वतत्रतानन्द महात्मा हसराज स्वामी दशनानन्द आदि सभी कस विरोध हुआ तभी ता आर्य समाज सबसे अधिक पिछड गया है जो सस्था अपने सन्यासियों, विद्वानों का सम्मान नहीं करती उसकी यही हालत होती है।

स्वामी अग्निवेश जी एक महान क्रातिकारी सन्यासी हैं जो आज भी आर्य समाज का काया-कल्प कर सकते हैं। यह विवेकानन्द से कहीं योग्य व्यक्ति हैं। बल्कि आर्य समाज को गर्व होना चाहिये था कि इसके पास स्वामी अग्निवेश वश जैसा महान सन्यासी है और किसी सस्था के पास ऐसा सन्यासी नहीं है। पाकिस्तान की असमत जहागरी ने कहा था कि भारत के पास अग्निवेश है काश! पाकिस्तान के पास भी अग्निवेश होता।

ऐसा यदि चलता रहा तो आर्य समाज कभी तरक्की नही करेगा। आर्य समाज ने स्वामी सत्यानन्द विद्यानन्द विदेह प भीमसेन स्वामी अखिलानन्द को प्राथमिक सदस्यता से निकाला। यहा तक की त्यागी तपस्वी स्वामी ओमानन्द स्वामी धियानन्द सरस्वती को निकाला जिससे आर्य समाज को धक्का लगा। स्वामी अग्निवेश स्वामी इन्द्रवेश को भी निकाला परन्तु इन महान सन्यासियों ने आर्य समाज को नही छोडा। आज आर्य समाजो में कई पार्टिया बनी हुई है सभाए भी लड रही है। जिज्ञासु की किस्म के लोगों के कारण ही आर्य समाज कभी आगे नही बढेगा। आज दोष दर्शन का समय नहीं है मिलने मिलाने का समय है। सगठन सूक्त का पाठ क्यो करते हैं। यदि समाज को बढाना है तो यह छोड़ना होगा। दूसरी सस्थाओं ने गौ मास खाने वाले सन्यासियों का भी सम्मान किया और आर्य समाज में चरित्रवानो का भी आदर नहीं है। बल्कि जिल्लत का सर्टीफिकेट दे दिया जाता है। ऐसी सस्था में कौन काम करेगा। अगर ऐसा रहा तो आर्य समाज को तबाही से कोई नहीं रोक सकता। आर्यों को चाहिय प्रेम करना सीखे।

श्यामलालार्य मत्री
आर्य समाज पटियाला पजाब

आदरणीय सामवेदी जी सादर नमस्ते।

8 दिसम्बर 2002 का आर्य नीति का विचारोत्तेजक अक मिला। पढ़कर आज की कानून व्यवस्था मनुष्य के कर्तव्य मानवता और वर्तमान राजनीति सभी पर प्रश्न चिन्ह लग गये हैं। आज की बन रही इस भयावह स्थिति में कौन कहा सुरक्षित है। जिस देश के राजनेता सविधान प्रदत्त अधिकारो का उपयोग अगर उन आतककारियों को रिहा करने के लिए करेंगे जिन्होने हजारों लोगों की जान ली हजारों महिलाओं की अस्मत लूटी और देश द्रोह कर भारत के टुकड़े-टुकड़े करने का बीडा उठा रखा है। भारत की ससद तक पहुचकर जिन्होंने अपने मसूबे जता दिये। आज ससद को सुरक्षित रखने आतककारी हमले से सासदो मत्रियो की जान और देश की इज्जत बचाने में शहीद हुए सुरक्षा कर्मियों को पहली बरसी पर ही श्रद्धाजलि देते वक्त आधे से कम सासदों की उपस्थिति देश को क्या सदेश देती है। अनुपस्थित सासदो को मुशायरों शादियों चुनाव चर्चाओं और सम्मेलनों मे जाना ज्यादा जरूरी लगा बजाए कि उनकी जान बचाने में शहीद हुए सुरक्षा कर्मियो को श्रद्धाजलि देने के।

वीरप्पन जैसे आतककारी को तीन राज्यों की सरकारें समाप्त करने मे अपने आपको निरीह समझ रही है और वह एक के बाद एक अपहरण कर पैसे भी बटोर रहा है और हत्याए भी कर रहा है। तो देश में सरे राह एक कॉलेज छात्रा को उठा कर ले जाना बलात्कार करना तो मामूली बात है।

इस सबका क्या कारण है? आम जन अपनी आखो के सामने सब कुछ देखकर खामोश क्यो है? उनकी रगों मे बह रहे खून में उबाल क्यों नही आता? उनकी वैचारिक शक्ति मर क्यो गई है? इन सबका जवाब आर्य समाज के पास है। इसका तोड भी आर्य समाज के पास है। पर आर्य समाज भी शायद सो रहा है जिसे जगाने के आपके प्रयास सराहनीय है। आप साधुवाद के पात्र है जो आवाज तो उठा रहे हैं। सतही और फौरी चर्चाओ से हटकर गम्भीर मामलो पर आवाज बुलन्द करना वर्तमान हालात की लीक से हटकर किया जा रहा सुप्रयास है।

एक कहावत है- सोये हुए को जगाना आसान है लेकिन जागते को जगाना मुश्किल है। आप अपने प्रयासों से जागरण की अलख जगाते रहिये। जागृति जरूर आएगी और आपके विचारों से मेल खाते लोग भी आपसे जुडेंगे। हार्दिक शुभकामनाओं सहित।

आपका शुभेच्छु
गणपतसिंह पवार
अध्यक्ष आर्य वीर दल
महामदिर रेलवे के सामने मण्डोर रोड जोधपुर

आर्यसमाज को कलकितो से बचाओ

आदरणीय श्रीयुत् सामवेदी जी
सादर नमस्ते। अत्र कुशल तत्रास्तु।

आप द्वारा सम्पादित एव प्रेषित आर्य नीति पाक्षिक पत्र निरन्तर प्राप्त हो रहा है। एतदर्थ धन्यवाद। वस्तुतः आर्यसमाज जैसे महनीय सगठन में परिष्कार और शक्तिसचार लाने के लिए जो गिने चुने ऋषिभक्त वेदप्रेमी कर्मठ एव लगन के पक्के महानुभाव सम्प्रति देश-विदेश में कार्य कर रहे हैं उनमें आप अन्यतम है परन्तु हमारे समाज में प्रान्तीय एव सार्वदेशिक स्तर के अधिकारियों में कुछ दुर्बलतायें हैं जिनके कारण आर्यसमाज जो कि कभी एक सबल समाज सुधारक राष्ट्र प्रेमी तथा विश्वकल्याणकारी वैदिक धर्म एव वैदिक सस्कृति का सवाहक एव प्रचारक के रूप में जाना जाता था।

आज अपने कर्तव्य के परिपालन में अक्षम तथा समाज राष्ट्र एव विश्व में जागरूकता पैदा करने में बौना सा हो गया है। इतना ही नहीं अपितु इस सगठन में तथाकथित प्रविष्ट हुए कतिपय स्वार्थी अयोग्य और भ्रष्ट व आर्यसमाज की मान्यताओं एव आदर्शो से अनभिज्ञ लोगों ने जिन्होंने आर्य समाज को दूषित और कलकित किया है उनसे समाज/ समाजों को बचाने में भी हमारे तथाकथित सभायें असमर्थ दिखाई देती है। कारण उनमें अन्तकलह (प्राय दो-दो सभाओं) ने जन्म ले लिया है जो कि इस महान सगठन के लिए बड़ी लज्जा की बात है। इसमें समय रहते सुधार होना आवश्यक है। सुधार का कोई सर्वमान्य अथवा बहुमान्य मार्ग ढूढ़ा जाना चाहिए। जो भी उचित हो किसी भी दशा में कलकित लोगों से आर्य समाज को बचाना आवश्यक है।

डॉ जयदत्त उप्रेती
आचार्य मदआर्ष गुरूकुल, सौले,
पत्रालय ज्योसी जनपद अल्मोडा उत्तराचल

माननीय संपादक महोदय
सादर सप्रेम नमस्ते।

कुशलोपरान्त निवेदन है कि आपका आर्य नीति पत्र पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और पढ़कर बहुत ही अच्छा लगा आर्य नीति में नवीन सामग्री का समावेश कर अधिक से अधिक पाठकों को जोड़ने का प्रयास शुभ सकल्प है। आशा है कि यह न सिर्फ समाज में व्याप्त कुरीतियों को उल्लेखित करेगा बल्कि मार्ग दर्शन का सवाहक बनकर सम्पूर्ण जगत को नई दिशा दृष्टि प्रदान करेगा। पढ़कर लगा कि यह पत्र बच्चों को भी प्रेरणा प्रदान करेगा। आपसे निवेदन है कि आप नियमित प्रति भिजवाने की व्यवस्था करेंगे जिससे गुरूकुल वाचनालय में बच्चों को जहा अन्य पत्र-पत्रिकायें पढ़ने को मिलती है साथ ही आपके पत्र के बहुमूल्य मोतियों को ग्रहण कर जीवन मे धारण कर सकें। अन्त में सभी कुलवासियों की शुभकामनाओ के साथ।

आपको अपना ही
सोमशास्त्री 'सोमेन्द' गुरूकुल महाविद्यालय
पूठ(पुष्पावती) डॅा बहादुरगढ़ गाजियाबाद उ प्र

भजन

तू दया का सागर है तेरी एक बून्द के प्यासे हम।
हो जाय कृपा दृष्टि बन जाये ये जीवन सुगम।।
महिमा तेरी भगवन अजब निराली है
कहीं सूख रहे उपवन कहीं छाई हरियाली है।
चहु ओर तेरा दृश्य देख रहे हैं हम।।
तू दया का सागर है
आकाश से धरती पर अमृत बरसाता है
अपने भक्तों के लिये फल-फूल उगाता है।
तेरी शरण में जो आया मिट गये उसके सब गम।।
तू दया का सागर है
विषयों के भोगों में फसे हुये हैं हम
हमे ज्ञान का छींटा दो कहीं डूब न जायें हम।
गुण गान करें तेरा और ध्यान करें हर दम।।
तू दया का सागर है

ले देवराज आर्य मित्र
आर्य समाज कृष्णानगर,
दिल्ली-51

हिमालय की पुकार

अडिग खड़ा हिमालय है बता रहा
सहिष्णुता का पाठ है पढा रहा।
भूकप तूफा बाढ को सहना है सिखा रहा
आफतों से नहीं घबराना मुर्दो मे जान डाल रहा।
मत डरना धैर्य न खोना अडिग रहना है जगा रहा
कष्ट सहे बिना भी कैसा जीना? हिम्मत है बढ़ा रहा।
तप बिना भी कैसा तपस्वी? हमें तपस्क बना रहा
प्रहरी बन देखों भोगों को प्रेरक बनता जा रहा।
अडिग खडा हिमालय
सुख दुख का आत्मा ही है कर्ता भोक्ता
अविवेकी है काम भोगों का विचार किया करता
वह भोक्ता है बना रहता शुद्धि नहीं अपनाना चाहता।
सुख भोग के साथ जो मोक्ष का है रास्ता मिलता
थोड़ी सी आपत्ति आ पड़ने पर वह है छोड़ा जाता।
अडिग खड़ा हिमालय
हिमालय सा तप करने से जो मोक्ष मार्ग प्राप्त होता है
कितने भी कष्ट आए वह विनष्ट नहीं होता है।
विवेकी वही जो सदा अविकल व सम रहता है
खुद को है सदा अविचल निर्भीक बनाता रहता है
कितनी भी आपदाए आए वह कभी नहीं घबराता है
ओले बरसें या लू लगे सब को अनित्य मानता है
हमला हो या सयोग वियोग सदा समता में रहता है
परिस्थिति के परिवर्तन को द्रष्टा बन देखता रहता है
तभी तो सुख दुख के भोगों का अन्त कर पाता है।
यही बात अडिग खडा हिमालय हमें है सिखा रहा
अडिग खड़ा हिमाचल है बता रहा
सहिष्णुता का पाठ है पढा रहा।

– सुमन कुमार आर्य –
594 चेतन निवास जवाहर कॉलोनी
सरदारनगर अहमदाबाद-382475

आर्य वीर दल, जालोर

आर्य वीरम् व्यायामशाला, पुरानी सब्जी मण्डी के पास, जालोर

अन्तर महाविद्यालय मुक्केबाजी प्रतियोगिता में एक स्वर्ण सहित चार पदक जीते

जालोर 21 नवम्बर। राजकीय महाविद्यालय जालोर के मुक्केबाजों ने भीलवाड़ा में सम्पन्न अन्तर महाविद्यालय मुक्केबाजी प्रतियोगिता में एक स्वर्ण सहित चार पदक जीत कर उल्लेखनीय प्रदर्शन किया है।

महाविद्यालय के खेल अधिकारी डा सत्यनारायण आर्य ने बताया कि भीलवाड़ा के माणक्यलाल वर्मा महाविद्यालय मे 20 नवम्बर को सम्पन्न हुई महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय की अन्तर महाविद्यालय मुक्केबाजी प्रतियोगिता के लाईट वेट वर्ग में वरूण शर्मा ने मेजबान भीलवाड़ा के सत्य नारायण कोली को हराकर स्वर्ण पदक जीता। मुक्केबाज प्रवीण ने फेदर वेट में रजत पदक तथा ओमप्रकाश गर्ग ने फलाई वेट में व ईश्वरलाल ने बैंटम वेट में कास्य पदक जीते। यह सभी मुक्केबाज आर्य वीर दल के सचालक दलपतसिह आर्य के प्रशिक्षणार्थी है।

उन्होंने बताया कि वरूण शर्मा ने गत वर्ष जोधपुर मे राज्य स्तरीय प्रतियोगिता में भी स्वर्ण पदक जीता था। वे अन्य कई प्रतियोगिताओं मे भी पदक जीत चुके हैं। मुक्केबाज प्रवीण कुमार भी कई पदक जीत चुका है। ओमप्रकाश ने भी दूसरी बार पदक प्राप्त किया है।

डॅा आर्य ने बताया कि आर्य वीर दल की शाखाओ में नियमित अभ्यास करने वाले मुक्केबाजों ने विगत कई वर्षों से पदक जीतकर महाविद्यालय का नाम रोशन किया है। मुक्केबाज पुष्पेन्द्र परमार ने सन् 1999 मे तथा शिवपाल सिहने सन् 1994 में अन्तर महाविद्यालय मुक्केबाजी प्रतियोगिता मे स्वर्ण पदक जीतकर गौरव बढ़ाया था। इनके प्रशिक्षक भी दलपतसिह आर्य हैं।

हैदराबाद में होने वाले राष्ट्रीय खेलों में जालोर के आर्य वीरों को निर्णायक चुना

जालोर 02 दिसम्बर। जिला मुक्केबाजी सघ के अध्यक्ष एव आर्यवीर दल के सचालक दलपत सिह आर्य को हैदराबाद में होने वाले राष्ट्रीय खेलों मे निर्णायक नियुक्त किया गया है। वे 9 दिसम्बर को जोधपुर चैन्नई एक्सप्रेस से हैदराबाद के लिए रवाना होंगे।

जिला मुक्केबाजी सघ के सचिव ओम प्रकाश आर्य ने बताया कि भारतीय मुक्केबाजी फेडरेशन के कार्यकारी अध्यक्ष आर एस दलाल ने एक आदेश जारी कर इस माह के 13 से 22 दिसम्बर तक हैदराबाद में होने वाले 32 वें राष्ट्रीय खेलो में मुक्केबाजी स्पर्द्धा के लिए जालोर के दलपतसिह आर्य को तकनीकी अधिकारी नियुक्त किया है। उनके साथ राजस्थान मुक्केबाजी सघ अध्यक्ष नारायण सिह खीची व महासचिव प्रकाश सिह को भी अधिकारी नियुक्त किया है।

उन्होंने बताया कि आर्य सन् 1993 मे पुणे व मुम्बई तथा 1997 में बगलौर-मैसूर में आयोजि राष्ट्रीय खेलों में राजस्थान कुश्ती टीम के मैनेजर के रूप में हिस्सा ले चुके हैं। वे कुश्ती एव मुक्केबाजी के राष्ट्रीय स्तर के अधिकारी है तथा कई प्रतियोगिताओं का सफल सचालक कर चुके हैं। आर्य वीर दल द्वारा प्रशिक्षित कई मुक्केबाजो ने राज्य एव राष्ट्रीय स्तर पर पदक जीतकर उल्लेखनीय प्रदर्शन किया है।

राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय शिवाजी नगर, जालोर में शारीरिक शिक्षक पद पर कार्यरत दलतपसिह सन् 2000 में ईरान में आयोजित एशियाई कैडेट कुश्ती प्रतियोगिता में भारतीय कुश्ती टीम के मैनेजर थे। वे पहले ऐसे जिले के व्यक्ति हैं जिन्हें राष्ट्रीय खेलों में निर्णायक नियुक्त किया गया है। आर्य को निर्णायक नियुक्त किए जाने पर कई सगठनों ने बधाईया दी।

बालाराम आर्य
आर्यवीर दल जालोर

आर्य समाज को जन-जन तक पहुंचाने में सहायक, एक क्रांतिकारी पुस्तक

'नये युग की ओर आर्य समाज'

प्रा डॅा चन्द्रशेखर लोखडे लिखित और विजय कुमार गोविन्दाराम हसानन्द प्रकाशन दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'नये युग की ओर आर्य समाज' पुस्तक पढने को मिली।

इस पुस्तक में उन्होंने आर्य समाज के पिछले 125 वर्ष के गौरवमय इतिहास में वर्णन और वर्तमान में आयी शिथिलता और निराशा को दूर करने का जिक्र किया है। इस रचना के द्वारा उन्होने आर्यो से आत्म केन्द्रित वृत्ति को त्यागकर समष्टिगत कल्याण के लिए आह्वान किया है।

समय के अनुसार हर क्षेत्र मे जिस तरह परिवर्तन होते हैं वही परिवर्तन आर्य समाज के प्रचार के क्षेत्र मे भी आने चाहिये। नये साधनो नये तरीको तथा कई नई शैलियो का इस्तेमाल आर्य समाज को समय के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने मे सहायक सिद्ध हो सकता है।

'जहा जवानी मचलती नही है वहा बुढापा टहलता है क्या इस परिदृष्य को आज के आर्य समाजी प्रकट नहीं कर रहे हैं? ऐसे सवाल कभी कभी सामने उपस्थित होने लगते हैं क्योंकि आर्य समाज में युवकों का जैसे अकाल सा पड गया है। इस दृष्टि से इस कमी को दूर करने में यह पुस्तक अक्सीर दवा सिद्ध होगी। नवयवको साधारण सदस्यों से लेकर अधिकारियों और प्रचारको के लिए यह पुस्तक दीपस्तम का कार्य करेगी। नयी-नयी योजनाए अद्यतन प्रचार यन्त्रणाए नये साधनों का प्रयोग कुशल सगठन के लिए आवश्यक उपाय आदि के साथ गाव-गाव में आर्य समाजों की स्थापना कर देश को आर्यावर्त की ओर कैसे अग्रसर किया जा सकता है इस पर अधिक बल दिया गया है।

आर्यों के दिलों से निराशा दूर कर प्रचार के लिए नौजवानो के दिल मे उमगो को जागृत करने हेतु यथास्थान कवित्यों मुक्तकों और शायरी प्रयोग किया गया है। साथ ही महापुरुषों की टिप्पणियों को भी स्थान-स्थान पर प्रस्तुत किया गया है।

डॅा चन्द्रशेखर लोखडे की इस रचना से तडप और प्रेरणा पाकर अभिनव आर्य समाज के नव निर्माण मे आप भी लग जायें इसी भावना से उनकी इस कृति को साधुवाद।

अत आपसे अनुरोध है कि आप अपने आर्य समाज में इस पुस्तक की अधिक से अधिक प्रतियां को मगवा कर आर्यों मे नव चेतना का सचार करें।

पुस्तक का मूल्य 80रु डाक व्यय अलग 10रु

पुस्तक प्राप्ति	प्रस्तुति
प्रा डॅा चन्द्रशेखर लोखडे	डॅा रामावतार शर्मा
सीताराम नगर लातूर	अध्यक्ष
पिन-413431	स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
दूरभाष-02382-26029	डी ए वी कॉलेज
	जालधर पजाब

यह कैसी आजादी है?

1 आज आजाद भारत में विदेशी भाषा अग्रेजी का बच्चा-बच्चा दास बना हुआ है। बच्चे को पैदा होते ही माँ-बाप अग्रेजी सिखा रहे हैं। हिन्दी की गिनती नहीं आती वन-टु-थ्री रट रहा है। नमस्ते करना भूल गया है बाय-टाटा बोल रहा है। ऐसे लक्षण बता रहे हैं कि भारत अब भी गुलाम है।

2 जिस देश में विदेशी कम्पनियाँ सिर उठा रही हों और उद्योग उत्पाद को ठप्प कर रही हों उस देश की आजादी को सुरक्षित समझना भूल है।

3 जिस देश मे प्रतिदिन सैंकडो गायें काटी जाती हैं और जगह-जगह शराब की दुकाने खुलवाकर जनता को पथ भ्रष्ट किया जाता है वहा आजादी नहीं बरबादी है।

4 आज चारों ओर आतकवाद छाया हुआ है। कब किस समय कहा बम विस्फोट हो जाये कुछ पता नहीं। जन जीवन सुरक्षित नहीं है।

5 जिस देश में भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता पनप रहा है गरीब आदमी बेरोजगारी और भूख से मर रहा है वहा आजादी के गीत गाना सार्थक नहीं है। एक कवि ने लिखा है- वतन की फिक्र कर नादा मुसीबत आने वाली है तेरी बरबादियों का जिक्र है आसमानों में।

ले देवराज आर्य मित्र
आर्य समाज कृष्णानगर
दिल्ली-51

आर्य समाज, महाराजपुर

जिला-छतरपुर मध्यप्रदेश

निर्वाण दिवस सम्पन्न

महाराजपुर। आर्य समाज के तत्वावधान मे महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस एव दीपावली का पर्व धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर विभिन्न वक्ताओं कु ऋतम्भरा दास कु महाश्वेतादास कु चन्द्रा एव निधि आर्या ने अपने सुन्दर भजन प्रस्तुत किये। कु ज्योति आर्या श्री दीनदयाल जी आर्य श्री दयाराम जी आर्य प वासुदेव जी व्रती श्री जय नारायण आर्य ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि दीपावली के पर्व के दिन आर्य समाज के सस्थापक महर्षि दयानन्द ने हजारों ज्ञान दीप प्रज्जवलित कर स्वय को इस ससार से 'प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो' कहकर विदा ली इसलिए आज निर्वाण दिवस भी है। हमें महर्षि के जीवन चरित्र से प्रेरणा पाकर दृढ सकल्पित होना चाहिये कि स्वामी जी के त्यागमय भावना के साथ इस आर्यावर्त की डूबती प्राचीन वैदिक सस्कृति की रक्षा के लिए अपने जीवन की आहुति दे दी। वे निर्भीक साहसी एव वेदों के प्रकाण्ड विद्वान थे उन्होने समाज को छुआछूत अधविश्वास एव पाखड से छुटकारा दिलाने के लिए वेद मार्ग पर चलकर सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार किया। उन्होंने समाज को अज्ञान अन्याय और अभाव से मुक्त करने के लिए जो आन्दोलन छेड़ा उससे स्वार्थी पापी पाखडी लोग भयभीत हो उठे। स्वामी जी ने वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार हेतु आर्य समाज की स्थापना की। इस विचारधारा को समाज के बुद्धिजीवी वर्ग ने तेजी से अपनाकर जगह जगह आर्यसमाजों की स्थापना की तथा वैदिक धरोहर के आधार पर कई जगह शोध सस्थान भी खुले हुए हैं।

दीपावली का पावन पर्व हमे यह सदेश देता है कि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय- अधकार से प्रकाश ही ओर चलो' जिस प्रकार से दीपावली की अधकारमय रात्रि को हजारों दीपक एक साथ जलकर प्रकाश में परिवर्तित कर देते हैं ठीक उसी प्रकार स्वामी जी की प्रेरणा पाकर जगह-जगह स्थापित आर्य समाजें वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार से अज्ञान को छिन्न-भिन्न कर रही है जिससे 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' समस्त ससार को श्रेष्ठ बनाओं को घोष सार्थक हो रहा है।

अन्त में सस्था प्रधान श्री जयनारायण आर्य ने सभी उपस्थित आर्यजनों माताओ बहिनो एव बच्चों को दीपावली के पर्व पर सस्था की आर शुभकामनाए देत हुए कहा कि आप सबका जीवन सुमन स श्याम शरद अर्थात पुष्प की भाति खिला रहे दीपों की तरह अज्ञान से दूर रहकर प्रकाश से जगमगाता रहें।

इन्द्रप्रकाश आर्य मत्री

आर्य समाज, टोंक

कसेरा भवन जवाहर बाजार टोंक

मनुष्य को स्वाध्यायशील बनना चाहिये

टोंक। आर्य समाज कसेरा भव पर साप्ताहिक देवयज्ञ प सुखलाल जी आर्य के आचार्यत्व में वेद मन्त्रों अमावस्या की आहुतियो के साथ सम्पन्न हुआ। यज्ञ में मुख्य यजमान श्री ओमप्रकाश जी आजाद शाखा प्रबन्धक हाडोती क्षेत्रिय ग्रामीण बैक शाखा खानपुर रहें। इस अवसर पर श्री सुरेश कुमार शर्मा ने अपने प्रवचन में बताया कि मनुष्य को स्वाध्यायशील बनना चाहिये जो सबको पवित्र करने वाली ईश्वर प्रदत्त और ऋषियों द्वारा सचित ऋचाओं का अध्ययन करता है वह पवित्र आनन्दरस का पान करता है। प्राचन ऋषियों और महर्षियों ने भी स्वाध्याय करने पर बडा बल दिया है उन्होंने इसे बहुत बड़ा तप माना है। जिस प्रकार शारीरिक उन्नति के लिए भोजन आवश्यक है ठीक उसी प्रकार आत्मिक उन्नति के लिए स्वाध्याय भी आवश्यक और अनिवार्य है। स्वाध्याय के अभाव में हमारी मानसिक वृत्तिया कलुषित एव दूषित हो जाती है हमारा ज्ञान सीमित हो जाता है। स्वाध्याय के बल पर एक साधारण व्यक्ति महान बन सकता है।

हमें उत्तम ग्रन्थों का ही स्वाध्याय करना चाहिये। वेद ससार साहित्य का मुकुटमणि है। अत वेदाध्ययन से मनुष्य बडे-बडे पापों से बच सकता है। यदि आप महान बनना चाहते हैं तो एक बात सदा स्मरण रखों 'स्वाध्यायान म प्रमद' स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करो।

जगदीशचन्द आर्य मत्री
आर्यसमाज कसेरा भवन जवाहर बाजार,टोंक

जो शहीद हुए है उनकी ज़रा याद करो कुर्बानी

जोधपुर 19 दिसम्बर। भारत आजाद हुआ आजादी के जश्न हुए आजादी में अपने–अपने योगदान के चर्चे हुए परोक्ष–अपरोक्ष और अनमने मनों से आजादी के लिये फासी के फदे चूमने वाले शहीद युवकों को श्रद्धाजलि दे दी गई। कुछ समय तक उनका तराना शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले वतन पे मिटने वालों का यही बाकी निशा होगा। गुनगुला न लिया गया और कुछ वर्षों बाद ही यह सब भुला दिया गया। हा चन्द फिल्म वालो ने इन सब को भुलाकर अपनी जेबें भरने के बहाने पुन कुछ हद तक दो तीन फिल्मे बनाकर उन्हे याद करवा लिया। वरना उन्हें याद करने की फुर्सत न तो आज राष्ट्र के कर्णधार बने नेताओं को है और न आम आवाम को है। इसी के कारण आज का युवा फिल्मों के अभिनेताओं की तो पूरी जन्म कुण्डली और क्रिया कलाप जानता है पर श्याम जी कृष्ण वर्मा प. राम प्रसाद बिस्मिल या अश्फाक उल्ला खा और अन्य क्रातिकारियों के नाम तक नहीं जानता जिनके लहू से भारत की आजादी का इतिहास लिया गया है।

भारतीय स्वतत्रता सग्राम के इतिहास मे 19 दिसम्बर ऐसे ही युवा क्रातिकारी साथियो की याद दिलाता है। जो भारत मा की गुलामी की बेडियों को काटते हुए फासी के फदे को हसते–हसते चूमकर शहीद हो गये और जो साम्प्रदायिक सद्भाव की एक ऐतिहासिक मिसाल रहे वे थे प रामप्रसाद बिस्मिल और अश्फाकउल्ला खा। भारतीय स्वतत्रता सग्राम के वीर शहीदों में काकोरी काण्ड के प्रणेता 30 वर्षीय प रामप्रसाद बिस्मिल अग्रगण्य थे। अपने बाद होने वाले शहीदों के लिये वे प्रेरणा स्रोत रहे। अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद और अमर शहीद सरदार भगतसिह और अनेक अन्य क्रातिकारियों को बिस्मिल जी ने ही क्राति के पथ पर चलने की प्रेरणा दी थी। अमर शहीद अश्फाकउल्ला खा की रगों मे राष्ट्र की स्वतत्रता के लिये बलिदान होने की भावना बिस्मिल जी ने ही भरी थी–सर फरोशी की तमन्ना जब हमारे दिल मे है इन क्रातिकारी पक्तियों के रचयिता ने अपने लहू से अपनी बात चरितार्थ कर दिखा दी। जिनके विचारों से क्राति का परिचय पाकर हजारों नौजवान क्रातिकारी बन गये। दुर्भाग्य इस देश का कि आज उन्हे भुलाया जा रहा है। उन्होने भारत की स्वतत्रता का एक सपना देखा था जहा शोषण मुक्त समाज होगा हर तरफ खुशहाली होगी राष्ट्र भाषा का अपमान जहा देश द्रोह माना जाएगा। देश द्रोहियो और मक्कारो को गोली से उडा दिया जाएगा। फासी के तख्ते की ओर बढते हुए भी गाते हुए जा रहे थे–

वतन की आबरू का पास देखे कौन करता है सुना है आज मकतल मे हमारा इम्तहा होगा।
जुदा मत हो मेरे पहलू से ऐ दर्दे वतन हरगिज न जाने बो मुर्दन मैं कहा और तू कहा होगा।
शहीदों की चिताओं पर लगेगे हर बरस मेले वतन पे मरने वालो का यही बाकी निशा होगा।
इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे जब अपनी ही जमी होगी जब अपना आसमा होगा।

आज पग–पग पर अमर शहीदो के सपने मकना चूर हो रहे हैं। हमारी आखो के सामने धर्म निरपेक्षता के नाम पर साम्प्रदायिक दगे करवाये जा रहे हैं। राष्ट्रभाषा और राष्ट्रध्वज का अपमान किया जा रहा है। आतकवाद को राजनीति बनाकर देश की ससद तक को असुरक्षित बना दिया गया है। पडौसी देशों के एजेन्ट धन और धर्म का छलावा चलाकर देश द्रोह की शिक्षा दे रहे हैं। देश के राजनेता अपनी कुर्सी बचाने के चक्कर में भ्रष्टाचार में आकठ डूबे हुए हैं। राष्ट्र की अस्मिता मखौल बनकर रह गयी है। क्या अपनी जान कुर्बान कर शहीद हुए उन क्रातिकारियो ने ऐसे आजाद भारत की कल्पना की थी? आइये देखें वो क्या थे क्या बने क्या कर गये हमारे लिये

ब्राह्मण परिवार मे मुरलीधर जी के घर शाहजहापुर (तत्कालीन ग्वालियर) मे जन्मे प रामप्रसाद बिस्मिल बचपन से ही उदण्ड प्रवृति के थे। पढने से ज्यादा वे खेलकूद मे ध्यान देते थे और इसी कारण उनके पिताजी कई बार उनकी जबरदस्त पिटाई भी करते थे पर दादी के बीच बचाव से उन्हें बचने का मौका मिल जाता था। उन्होंने कुमारावस्था में व्यायाम के शौक से मजबूत शरीर बनाकर युवकों की टोली बनाकर बन्दूक चलाने का प्रशिक्षण अपने स्तर पर ही शुरू किया। तत्पश्चात वे एक मुशीजी के सम्पर्क मे आये और कट्टर आर्य समाजी बन गये। वे आर्य समाजो के जलसो में जाते सत महात्माओं के प्रवचन सुनते और आसन और व्यायाम करत। उन्होने कुछ नवयुवकों के साथ मिलकर आर्य समाज मदिर मे आर्य कुमार सभा खोली और यहीं से उनके क्रातिकारी जीवन की शुरूआत हुई। पुलिस ने जिन्हें नामजद किया उनमे प्रमुख–ठा रोशनसिह प रामप्रसा बिस्मिल मन्मथनाथ गुप्त अश्फाक उल्ला खा राजेन्द्र लाहिडी शचीन्द्रनाथ बख्शी केशव चक्रवर्ती चन्द्रशेखर आजाद शामिल थ। इनमे से गिरफ्तारी के पहले दिन मन्मथनाथ गुप्त ठा रोशनसिह प रामप्रसाद बिस्मिल प्रेमकुमार खन्ना हर गोविन्द सिह शाहजहापुर में गिरफ्तार हुए। चन्द्रशेखर आजाद व अश्फाक फरार हो गये लेकिन अश्फाक भी बाद मे गिरफ्तार हो गये। चन्द्रशेखर आजाद अन्त तक गिरफ्तार नहीं किये जा सके और उन्होंने बिस्मिल की क्राति की ज्योति मरते दम तक जलाये रखी।

इन क्रातिकारियों को 19 दिसम्बर की प्रात को एक ही दिन एक ही समय फासी पर चढाया गया। फासी से पूर्व एक शेर द्वारा अपना सदेश देश के नौजवानों को ये क्रातिकारी इन शब्दो मे दे गये और इतिहास की बेमिसाल धरोहर बन गये–

वतन रहे सादकाम और आजाद हमारा क्या है, हम रहे रहे न रहें।
मरते बिस्मिल रोशन लहरी अश्फाक अत्याचार से,
होगे पैदा सैकडो उनके रुधिर की धार से।।

गणपतसिह पवार,अध्यक्ष
आर्यवीर दल जोधपुर

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् (समग्र विश्व को आर्य बनाओ)

आर्यसमाज–गांधीधाम

महर्षि दयानन्दमार्ग झडा चौक के पास, गाधीधाम(कच्छ)–370201–गुजरात

दूरभाष–02836–31223 फैक्स–39674

एक करोड़ रुपये की लागत से बने "वैदिक संस्कार केन्द्र" का उद्घाटन 26 से 30 मार्च,2003

भारत की आदर्श तथा विश्व प्रसिद्ध–आर्यसमाज नवयुवकों द्वारा सचालित है जो अनेकविध वेदप्रचार, मानवसेवा की प्रवृत्तिया कर रही है। कच्छ में आये भूकप में आर्यसमाज द्वारा जो राहतकार्य किया गया उसका मुख्य केन्द्र गाधीधाम में था तथा इस राहत केन्द्र के द्वारा 32 विदेश से आये कन्टेनर, 112 भारत से आये ट्रक सहित करीब 25 करोड़ की राहत सामग्री बाटी गयी। 1000 शवों को मलबे से निकालकर उनकी अत्येष्टि की गयी। भूकप में अनाथ हुए बच्चो का आश्रयस्थल 'जीवन प्रभात' खोला गया है।

365 दिन एव दिनभर सक्रिय इस सस्था के समर्पित नवयुवकों की टीम ने 1 करोड़ की लागत से "वैदिक सस्कार केन्द्र" का निर्माण फरवरी 2000 में भूकप से पूर्व किया था। भूकप तक इस भवन का ढाचा बन चुका था। इस ढाचे में 60 फुट चौडा बिना पिलर का एव 100 फुट लबा हॉल भी बन चुका था परन्तु परम पिता की कृपा से एव मजबूत निर्माण के हाने के कारण भवन गिरा नही। कुल 26000 फुट के निर्माणवाले इस भवन में तल मजिल पर 4 प्रवृत्तियो के खड हैं। प्रथम तल पर एक हजार लोग बैठ सके ऐसा बाल्कनी सहित हॉल है एव द्वितीय तल पर 11 आधुनिक कमरे हैं। भवन में लिफ्ट भी लगी है।

इस भवन को भूकम्प के बाद पूरा किया गया है। तल मजिल पर 8000 फुट की जगह मे प्रवृत्तियों के जो 4 विभाग बने थे उन्हें कमरों में परिवर्तन कर अनाथ हुए बच्चो के निवास हेतु उपयोग किया जा रहा है। इन बच्चों का स्थायी 65000 फुट का आधुनिक विशाल सकुल 'जीवन प्रभात' तीन करोड रुपये के खर्च से 2 एकड परिसर में निर्माणाधीन है। वैदिक सस्कार केन्द्र जो बनकर तैयार है उसका उद्घाटन एव वेदप्रचार कार्यक्रम 26 से 30 मार्च 2003 तक होगा। आर्य समाज गाधीधाम का वेदप्रचार कार्यक्रम भी अनूठा होता है। यहा कार्यक्रम की विशालता भव्यता उपदेश सुचारू प्रबन्धन कार्यकर्ताओ का दीवानापन दिल खुश कर देने वाले होते हैं।

सभी महानुभावों से प्रार्थना है कि आपकी निवास व भोजन की निशुल्क व्यवस्था हम करेंगे। आप अभी से दलबल के साथ आने का मन बना लीलिए। आपको महर्षि दयानन्द का स्वप्न पूरा होता दिखेगा। आपकी सारी शिकायतें आर्य समाज में काम नहीं हो रहा दूर हो जावेंगी। आप प्रेरणा लेकर जावेंगे अनेक चीजें अनुकरणीय मिलेगी।

कार्यक्रम का विस्तार विवरण पत्र पत्रिकाओं द्वारा आपको सूचित हाता रहेगा। आप पत्र लिखेंगे तो मार्च का निमत्रण पते पर भेज दिया जावेगा।

विनीत

पुरुषोत्तम भाई पटेल प्रधान
मोबाईल 9825225191

वाचोनिधि आर्य महामत्री
मोबाईल 9824221332

अच्छे लोगों को बुरा समय क्यों देखना पड़ता है

प्रत्येक क्रिया का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। कारण पहले–क्रिया बाद में म पहले कर्मफल बाद में। सफल वैद्य रोगी के रोगा का कारण जानने के लिए प्रथम जाच करता है। भूमण्डल में जब कोई हलचल होती है भू–गर्भ शास्त्री हलचल के कारणों का अध्ययन करते हैं। हरिद्वार कुम्भ के मेले में ऋषिवर दयानन्द पाखण्ड खडिनी पताका फहराते हुए हुकार लगाते हैं कि ऐ दुनिया के लोगो! यदि सुख शाति और समृद्धि चाहते हो तो 'वेदो की ओर लौटो' वेदोऽखिलो धर्म मूलम। लोग आते है ऋषि का व्याख्यान सुनते हैं और चले जाते हैं। स्वचनो का अपेक्षित प्रभाव लोगो के मानस पर न पडता देख दयानन्द बेचैन है। क्या कारण है? योग साधना के बल से कारण का पता लगाते हैं। आओ विषय के मुख्य बिन्दु पर चर्चा करें। हमारे ऋषियों ने युगों–युगों पूर्व स्वान्वेषण से बताया किजिस प्रकार से यज्ञ कुण्ड में डाली गयी आहुति यज्ञकर्ता के साथ–साथ ससार के प्राणी मात्र का कल्याण करती है ठीक उसी प्रकार काम क्रोध लोभ मोह और अहकार के वशीभूत हाकर जो कार्य सम्पादित किए जाते हैं उन कर्मो का कुप्रभाव कर्ता के साथ–साथ ससार के समस्त जड चेतनादि को प्रभावित करते हैं। उक्त पच विकारों के दुष्परिणाम समय–समय पर विश्व को भुगतने पडे और क्रमश भुगतने पड़ रहे हैं। इतिहास साक्षी है इन्हीं पच विकारों के चलते लकाधिपति रावण का सर्वनाश हुआ इन्हीं पच विकारों ने ही महाभारत जैसे महाविनाशक विश्व युद्ध का सृजन किया, जिसके चलते आर्य जाति आज तक नहीं उबर पायी। इन्हीं विकारों के चलते क्षत–विक्षत जगत जननी भारत माता कराह रही है सूर्योदय से पूर्व गौमाता के साथ–साथ हजारों मूक पशुओं का वध कर दिया जाता है। मातृ शक्ति की दुर्गति हो रही है ससार के तमाम मत–मतान्तरों द्वारा आर्य सस्कृति सभ्यता की हत्या की जा रही है।

उक्त शीर्षक को ग भीरता से लेते हुए मैं स्पष्ट उल्लेख करना चाहता हू कि इन्हीं पच विकारों के चलते 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का जय घोष करने वाले आर्य सस्कृति के पोषक 'इद न मम्' के स्थान पर "इदम मम्' का मत्रपाठ करते हुए वैदिक सिद्धान्तों की अर्थी निकाल रहे हैं। जो आर्य जगत के लिए चिन्तनीय विषय है। साराश इन्हीं पच विकारों के चलते राक्षसी वृत्ति का खूनी पजा सर्वत्र हावी है जिसके चलते मानवता कराह रही है देव वृत्ति त्रस्त है। ध्यान रहे नदिया जब तक अपनी सीमाओं में बंध कर बहती हैं सुखद वातावरण बनाती हुई फसलों को प्राण प्रदान करती हैं लेकिन वही नदिया जब बाढ़ का रूप धारण करती हैं तब चारों ओर दुःख के पहाड़ टूट पड़ते हैं और फसलों की रक्षक भक्षक बन जाती है।

रामगोपाल गुप्ता कोषाध्यक्ष, आर्यसमाज
नि.–सरायें बागरमऊ उन्नाव उ प्र
फोन–05144–51116

आर्य समाज मंदिर

बी ब्लाक जनकपुरी नई दिल्ली–58

वेद प्रचार समारोह सम्पन्न

नई दिल्ली। पितृ यज्ञ वयोवृद्धो की सेवा और तृप्ति (तर्पण) का अवसर प्रदान करना है तथा इसके द्वारा हम अपनी आयु, विद्या यश और बल को बढ़ा सकते हैं। हम मे से प्रत्येक को प्रतिदिन यह यज्ञ करना चाहिए। इस यज्ञ का विधान तीन पीढ़ियों तक है अर्थात यदि किसी परिवार में माता–पिता, दादा–दादी आदि जीवित हैं तो उन सबकी सेवा करना सन्तान का कर्तव्य है। 'श्राद्ध' का अर्थ है सेवा करना और श्राद्ध जीवित पितरो (माता–पिता) का किया जाता है मृतकों का नहीं। पारिवारिक सन्ध्या यज्ञ एव सतसग के द्वारा हम अपने बच्चों में यह भावना विकसित कर सकते हैं तथा उन्हे अच्छे सस्कार दे सकते हैं। ये विचार आर्य समाज जनकपुरी के वेद प्रचार समोराह के समापन के अवसर पर मुम्बई से पधारे आचार्य डॉ सोमदेव जी ने बड़ी सख्या में पधारे श्रोताओं के सामने रखे। साधना–ध्यान कक्ष का उद्घाटन करते हुए स्वामी धर्ममुनि दुग्धहारी जी ने कहा कि आर्य समाज ने बहुत अच्छा कार्य किया है तथा इसका अनुकरण अन्य आर्य समाजो को भी करना चाहिये। ध्यान का जीवन में अत्यधिक महत्व है तथा जीवन का साधारण से साधारण काम भी बिना ध्यान के नहीं किया जा सकता फिर योग साधना में तो इसका और अधिक महत्व है।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए प्रो सुन्दरलाल जी कथूरिया ने कहा कि घर बैठकर आज के पारिवारिक वातावरण में साधना करना और ध्यान लगाना बहुत कठिन है। दूरदर्शन या रेडियों की तेज आवाज बच्चों की चिल्लापों सास–बहू की नोक–झोंक आदि के बीच घर में मन एकाग्र करना सरल नहीं है। ऐसी स्थिति में ध्यान कक्ष का आर्यसमाज के सभासदों एव साधकों के लिए विशेष महत्व है।

योग के सातवे अग ध्यान के अन्य अगो की साधना पहले करके ही साधक अन्तत समाधिकी अवस्था तक पहुच सकता है तथा ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता हैं।

इस अवसर पर आर्य केन्द्रीय "गा के यशस्वी प्रधान आ धर्मपाल जी ने कहा कि हम ऐसा सत्य बोलें जो प्रिय हो अप्रिय सत्य न बोलें और झूठ भी न बोलें। यह मनुस्मृति का आदेश है। उन्होंने 25 दिसम्बर को आयोजित स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर बडी सख्या में पधार कर सफल बनाने का आर्य जनता का आह्वान किया। कार्यक्रम के प्रारम्भ में भजन उपदेशिका श्रीमती सुदेश आर्या ने अपने सुमधुर प्रेरक भजनों से सभी श्रोताओं को मुग्ध कर दिया।

यचन्द्रार्य
प्रचारमत्री

शहीदों का मान बढाने व सच्चे भारतीय कहलाने हेतु इतना तो करें

भारत के राष्ट्रपति श्री अब्दुलकलाम, राष्ट्रपतिभवन दिल्ली को–पहला पत्र

1 भारत की गुलामी के प्रतीक जार्ज पचम की स्तुति में गाया गया 'जन गण मन' हटाकर ब्राह्मण स्वराष्ट्र में हो द्विज ब्रह्म तजेधारी और वन्देमातरम् गाया जाए। तथाकथित स्वतत्रता के 54 वर्ष पश्चात।

2 अर्थव्यवस्था की आधारशिला गोवश की हत्या पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।

3 भारत के सर्वोच्चमान भवन राष्ट्रपतिभवन के केन्द्रीयकक्ष से सलीम आदि को हटाकर स्वराज्य के प्रथम मत्रदाता व क्रातिकारियों के प्रेरणा स्रोत राष्ट्रपिता महर्षि दयानन्द का स्मारक स्थापित किया जाए।

4 गुलामी की निशानी 'इण्डिया गेट' के नाम को बदल कर उसे भारतद्वार किया जाए।

5 राष्ट्रपति महोदय! आपको या किसी अन्य मत्री को यदि राष्ट्रभाषा हिन्दी बोलने का अभ्यास न हो तो गुलामी की निशानी अग्रेजी न बोलकर अपने ग्राम की भारतीय भाषा को ही बोलें।

–आचार्य आर्य नरेश वैदिक गवेषक
उद्गीथ साधना स्थली डोहर(राजगढ़)
हिमाचल–173101

पूर्व मुख्यमंत्री बनारसीदास गुप्ता का 86वां जन्मदिन

वैदिक रीति से मनाया गया

श्री बनारसीदास गुप्ता पूर्व मुख्यमत्री हरियाणा सरकार एव पूर्व राज्यसभा सदस्य दिल्ली का 86 वा जन्मदिन उनके भिवानी आवास में बहुत ही धूम–धाम के साथ मनाया गया।

यज्ञ के ब्रह्मा आर्य जगत के युवा वैदिक विद्वान आचार्य रामसुफल जी शास्त्री वैदिक प्रवक्ता हासी ने बडे ही प्रभावशाली एव रोचक तरीके से यज्ञ कार्य वैदिक रीति से सम्पन्न करवाया।

श्रद्धेय शास्त्री जी के छात्र शिष्य ब्रह्मचारी अमित कुमार आर्य ने मत्रोच्चारण मे अपना सहयोगदिया। यज्ञोपरान्त श्री शास्त्री जी ने एक दृष्टान्त के द्वारा यज्ञ को ससार का सर्वश्रेष्ठ कर्म बताते हुए श्रोताओं को दैनिक यज्ञ साप्ताहिक यज्ञ पाक्षिक यज्ञ मासिक यज्ञ अर्द्धवार्षिक यज्ञ एव कम से कम वार्षिक यज्ञ अवश्य कराने की प्रेरणा दी। पूर्व मुख्यमत्री जी ने शास्त्री जी एव सभी आगन्तुक सज्जनोंका आभार व्यक्त करते हुए राजनीति से सन्यास लेने की घोषणा की और कहा कि वेदानुकूल 'जीवेमशरद शतम के मुताबिक शेष आयु समाज सेवा में लगायेंगे। करतल ध्वनि के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

नरेन्द्र प्रभाकर प्रिसिपल
महर्षि दयानन्द हाईस्कूल भिवानी हरियाणा

आर्य समाज

एन एच–3 एन आई टी फरीदाबाद–121001 हरि

वार्षिकोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज फरीदाबाद के वार्षिकोत्सव पर पूर्णाहुति अभूतपूर्व ढग से सम्पन्न हुई। इस अवसर पर 18 व 19 नवम्बर का नगर के विभिन्न स्थानों पर यज्ञ भजन एव उपदेश होते रहें। पूरे कार्तिक मास में जगह–जगह प्रभात फेरिया निकाली जाती रहीं यज्ञ तथा वेद कथा की जाती रही। श्री कचन कुमार की भजन मण्डली ने श्रोताओं को मत्रमुग्ध कर दिया। ब्रह्मचारी सत्यप्रकाश जी ने भक्ति की भावना से सबके ह्रदय मे जाग्रति कर दी। 19 नवम्बर को इसकी पूर्णाहुति पर 51 कुण्डों पर हजारो श्रद्धालुओ ने आहुतिया देकर स्वर्गिक वातावरण उपस्थित कर दिया। वैदिक पुस्तकालय एव वाचनालय जो सासद निधि से निर्मित हुआ है का उद्घाटन श्री दयानन्द जी के कर कमलों द्वारा किया गया।

इस अवसर पर आर्यसमाज से सम्बन्धित सभी गुरूकुलों तथा शिक्षण सस्थाओं ने भाग लिया। हजारों की उपस्थिति में सर्वसम्मति से हरियाणा में लाटरी तथा कैसिनों खेलने तथा दिल्ली सरकार द्वारा नशीले पदार्थों का सामान्य दुकानों पर भी बिक्री करने जैसे जनहित विरोधी कार्यक्रमो की पुरजोर भर्तसना की गयी तथा इसके विरूद्ध सघर्ष करने का ऐलान किया।

सुरेश गुलाटी मत्री

व्यसनों की विभीषिका

आधुनिक युग के सभी विनाशकारी उपकर्ण करोडों प्राणियों मानवो को नष्ट कर सकते हैं और करते रहे हैं किन्तु शेष बचे लोगो के माध्यम से पुन सृष्टि रची जाती रही है और मानवता का चक्र चलता रहा। अब तो भारत की कुछ सरकारे ऐसे विनाशकारी व्यसनो का प्रचलन करने लगी है जिनमें फसने के बाद तीसरी नहीं तो चौथी पीढी कैसिनों में, लाटरियों में जो कुछ आपने उनके भविष्य के लिए बनाया है सभी को दाव पर लगा देंगे या रहडियों पर बिकने वाली शराब को पी पी कर मानवता का सर्वनाश निश्चित रूप से हो जाएगा। यदि आप जिम्मेदार उत्तराधिकारी पीढी चाहते हैं और मानवता के भविष्य को उज्जवल देखना है तो कुछ रिवैन्यू बटोरने मात्र के लिए उठाए जा रहे से विध्वसक व्यसनों को तत्काल बद कराना होगा। ऐसा न हो कि हमारी मा–बहिनों को भी महाभारत काल की तरह दाव पर लगाया जाने लगे।

सावधान! रामराज्य लाते–लाते दुर्योधन राज्य स्थापित हो जा रहा है। अत विदुर बनकर इन्हें सन्मार्ग दिखाइये अन्यथा न हम रहेंगे और न ही मानवता।

आशा है भारत का प्रत्येक नागरिक विभीषिका की गम्भीरता को समझते हुए इस प्रकार के व्यसनानुमुख कार्यक्रमों को रोकने में अपनी–अपनी सक्रिय रचनात्मक भूमिका निभाएगा।

व्यथित ह्रदय

डॉ सत्यदेव
3–ए/ 124–एन आई टी. फरीदाबद हरि.

आर्य परिवार संस्था,कोटा

4–म–27 विज्ञान नगर कोटा–324005

डॅा रामकृष्ण आर्य वरूणमुनि वानप्रस्थ बने

कोटा 24 नवम्बर/ आर्यसमाज के कार्यकर्ता आर्य लेखक परिषद् के राष्ट्रीय कोषाध्यक्ष तथा आर्य परिवार सस्था के सस्थापक मत्री डॉ रामकृष्ण आर्य अपने 60 वें जन्म दिवस 24 नवम्बर,2002 रविवार को आर्य समाज रावतभाटा के साप्ताहिक सत्सग में वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर 'वरूण मुनि वानप्रस्थी' बने। भविष्य में डॉ आर्य वरूण मुनि के नाम से ही जाने जाएगे।

आर्य परिवार सस्था कोटा के अध्यक्ष प्रेमनाथ कौशल और मत्री कृष्ण गोपाल आर्य ने अपनी विज्ञप्ति में बताया कि डॉ आर्य दिसम्बर 1967 में आर्यसमाज रावतभाटा में दयानन्द प्रतिपादित आर्य विचारधारा के अनुयायी बने थे पश्चात सितम्बर 1968 में सपत्नी सदस्य बनकर गुमानपुरा कोटा स्थित आर्यसमाज में विधिवत् प्रवेश किया। यही कारण है कि उन्होंने वानप्रस्थ का दीक्षा स्थान आर्य समाज रावतभाटा को सुना। दीक्षा का पौरोहित्य कर्म ओमप्रकाश आर्य ने पूर्ण किया। बाद में सभा का आयोजन किया गया। जिसका सचालन आर्य समाज रावतभाटा के मत्री देवेन्द्र कुमार शर्मा ने करते हुए पूर्व प्रधान श्रीमती भागवती मेहता और कृष्णकान्त कुलश्रेष्ठ के कर कमलों से वरूण मुनि का वस्त्र सत्कार कराया।

विज्ञप्ति मे आगे बताया कि सभा में वरूण मुनि ने अपने प्रवचन में कहा कि वह दिन कभी नहीं आ सकता कि जब सभी मुस्लिम और ईसाई आदि भारत छोड कर चले जाए न यह सम्भव है कि उन्हे मार–पीट कर भारत से निकाल दिया जाए न अमर शहीद अशफाक उल्ला खा के शब्दों में यह सम्भव है कि सारे मुस्लिम आदि हिन्दू और सारे हिन्दू मुस्लिम आदि बन जाए।

अत एक ही उपाय शेष रहता है कि ऐसे प्रयास किए जाए कि सभी हिन्दू, मुस्लिम सिक्ख ईसाई आदि सब मिलकर इस देश में रह सके। अपने वानप्रस्थ काल मे उनका मुख्य सेवा कार्य यही रहेगा कि दयानन्द पद्धति से वे ऐसे विचारो का प्रचार–प्रसार करें कि सभी सम्प्रदाय के लोग मिलकर रह सकें।

विज्ञप्ति में आगे बताया गया कि वरूणमुनि का कार्य क्षेत्र आर्य परिवार सस्था के अन्तर्गत हाडोती सम्भाग ही रहेगा अर्थात वे पूर्वकी भाति सस्था को नेतृत्व देते रहेंगे। निकट भविष्य में सस्था उनके नेतृत्व में साम्प्रदायिक सद्भाव और मनुस्मृति के सदर्भ मे जात–पात तोडो पर एक वृहद गोष्ठी का आयोजन करने को जा रही है जिसमें स्वामी अग्निवेश जी आदि को आमत्रित किया जाएगा।

मत्री
कृष्णगोपाल आर्य

भारतीय संस्थाएं

कुछ सस्थाये सामूहिक विवाह करती हैं कुछ सस्थायें घर फोडती हैं कुछ सस्थायें सुलह करवाती हैं कुछ सस्थायें लोगों को फसाकर मारने का काम करती हैं। क्या है इन सस्थाओं का औचित्य? क्या सिर्फ शादी करवाना या शादी करना ही औचित्य है? क्या सभी सस्थाये सत्य शान्ति समृद्धि पथ पर ही चितन कर सतयुग के लिए ही कार्य कर सकती हैं? क्या हमारे समाज मे कालनेमी गुरूओं से बचने का उपाय और सतयुग के लिए ही कार्य में लगना ही उत्तम मार्ग है? हमारे धर्म गुरू वेद पुराण पढकर या किसी के सत्य अनुभव से समाज को जागरूक बनाके कलयुग की बुराई दिखाकर और सतयुग की अच्छाई दिखाकर सतयुग ला सकते हैं? क्या लोगों का खून सस्ता हो गया है या अपनी दुकानदारी ही तेज करना एक मात्र लक्ष्य है?

आधुनिक देवियां

आज घर–समाज को देखें तो आज की आधुनिक देविया घर–समाज को तबाह करने में लगी हुई हैं। क्या घर–समाज को तबाह करने वाली देवियों को देवी कहा जाए या यमदेवी? क्या कोई अपना बेटा या भाई की बलि देने को तैयार है? स्वामी विवेकानन्द जी ने लिखा था नररक्त की प्यासी के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यही कलयुग है? क्या वैज्ञानिक समाज वेद पुराण सतयुग लाने में मदद कर सकते हैं?

यदि आप मनुष्य हैं [illegible] के [illegible]
दयानन्द द्वारा लिखित [illegible]

एक भारतीय [illegible]
मंदिर

स्वामी श्रद्धानन्द का शुद्धि की बलिवेदी पर अमर बलिदान

विरूद्ध विद्रोही नवयुवक उत्पन्न करने का केन्द्र मानती थी और इसीलिए गुरूकुल कागड़ी हमेशा ब्रिटिश सरकार का कोप भाजन बना रहा। गुरूकुल को ब्रिटिश साम्राज्य के कोप से बचाने के लिये दीनबन्धु ऐन्डरूज और भारतवर्ष के स्वतत्रता सग्राम के महान नेता श्री गोपाल कृष्ण गोखले की जो भूमिका रही उसका उल्लेख आगामी अक में किया जाएगा। गुरूकुल में ब्रह्मचर्य और चरित्र निर्माण पर सर्वाधिक बल दिया जाता था। स्वाधीनता के बाद भारत ने आचार्य मुशीराम द्वारा प्रवर्तित शिक्षा प्रणाली को न अपना कर पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का अनुकरण किया जिसने सारे भारत को सस्कारहीन दिशाहीन चरित्र... [illegible] ...है। चारों तरफ [illegible] अपहरण भ्रष्टाचार बेरोजगारी का आलम है। सारा राष्ट्र खूनी क्राति के द्वार पर खडा है। अग्रेजी माध्यम के स्कूल कुकुरमुत्तों की तरह गली–गली में पैदा हो गए हैं जो भारतवर्ष की जड़ों को खोखला कर रहे हैं। आजादी के बाद हम और अधिक गुलाम हो गए हैं और अग्रेजी की माला पहनकर गौरव का अनुभव करते हैं। सारे भारत पर दो प्रतिशत अग्रेजी भक्तो का कब्जा है जो 98 प्रतिशत जनता का शोषण कर रहे हैं।

बागी सन्यासी

आचार्य मुशीराम ने वानप्रस्थ आश्रम छोडकर 9 अप्रेल 1917 को सन्यास ले लिया और उस स्वर्गिक वाटिका को छोड दिया जिसको अपनी सतान की भाति पल्लवित व पुष्पित किया था। गुरूकुल उद्यान का प्रत्येक पुष्प उस दिन फूट–फूट कर रो रहा था जिस दिन उसका माली निर्मोही होकर मनुष्य मात्र की सेवा करने के लिये उसे छोड कर जाने लगा।

देश की आजादी और ससार को 'मनुर्भव' का सदेश देना ही उनका एक मात्र ध्येय बन गया। सन्यासी बनने के बाद राजनीतिक क्षेत्र मे उनकी सिह गर्जना से ब्रिटिश सरकार थर–थर कापने लगी।

गोरखो की सगीनो के सामनें सीना ताना

रोलट एक्ट के विरोध मे सारे राष्ट्र मे तैयारिया चल रही है परन्तु महात्मा गाधी के अस्वस्थ हो जाने के कारण विद्रोह की अग्नि को प्रज्ज्वलित करने का दायित्व स्वामी श्रद्धानन्द पर आ पडा। सारे देश मे रोलट एक्ट के विरूद्ध जब विद्रोह का ज्वालामुखी धधकाते हुए स्वामी जी दिल्ली आए तो देखा कि दिल्ली सोई हुई है और दिल्ली में जिन लोगो को जिम्मेदारी दी गई थी वे चादर ओढ कर आराम फरमा रहे है। केवल तीन दिन शेष रह गये हैं परन्तु दिल्ली में स्वामी के पाव पडते ही मुर्दा दिल्ली जिन्दा हो गई। 30 मार्च को दिल्ली मे पूर्ण हडताल थी और चादनी चौक में जनसमुद्र उमड पडा। 25 हजार लोग महामानव स्वामी श्रद्धानन्द का मत्रमुग्ध होकर भाषण सुन रहे हैं और उसी समय चादनी चौक के घटाघर पर गोली चलने और 10–12 व्यक्तियों के घायल होने का समाचार आया। सेना ने सारी सभा को घेर लिया और चारों तरफ मशीनगने लगा दी गई। स्वामी जी उस स्थान की ओर रवाना हुए जहा गोली चली थी। अब 40 हजार लोग भारत माता की जय के नारे लगाते हुए उनके पीछे चल रहे हैं, जब स्वामी जी गोरखे सिपाहियों की ओर बढे तो उनके सीने पर गोरखो ने किरचे तान दी। स्वामी जी ने कड़कते हुए कहा– 'मैं खडा हू, मारो गोली'। सारी जनता स्वामी जी के सामने खडी होकर कहने लगी–पहले हम मरेंगे पहले हम मरेंगे। स्वामी जी ने उग्र जनता को अपने सामने से हटाया। तीन मिनट तक सीने पर किरचें तानने के बाद गोरखों ने बदूके नीचे कर दी।

उस भीड मे राजस्थान का एक नवयुवक उस शौर्य के दृश्य को देखकर भाव–विभोर हो गया और उसने भी अपना जीवन राष्ट्र के लिये उत्सर्ग करने का व्रत लिया। इस नवयुवक का नाम था जयनारायण व्यास, जो बाद में राजस्थान का सर्वाधिक लोकप्रिय और चरित्रवान मुख्यमत्री बना।

जामा मस्जिद पर अमृत वर्षा

4 अप्रेल सन् 1919 को जगद् विख्यात जामा मस्जिद पर भाषण देने के लिये स्वामी जी को मुस्लिम बधु बुला कर ले गए। स्वामी जी ने निम्नलिखित मत्र से अपना भाषण प्रारम्भ किया–

त्व हि न पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ। अथाते सुम्नमीमहे और अपना भाषण शाति पाठ से समाप्त किया। जामा मस्जिद की दसो दीवारे वेद मत्रो से गूजने लगी। स्वामी श्रद्धानन्द जी के अतिरिक्त अन्य किसी गैर मुस्लिम को आज तक तकरीर के लिये जामा मस्जिद में निमत्रित नहीं किया गया। क्यो न मुस्लिम बधु उस महापुरूष के प्रति अनुरक्त होते, जिसने कभी भी उनके नाखून तक को चोट नही लगने दी और जिसकी आवाज सुनकर साम्प्रदायिकता का भयकर विषधर कुडली मार कर बैठ जाता था। स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में उन दिनों दिल्ली मे सचमुच राम राज्य रहा। एक भी ताला नहीं टूटा कोई मार पीट नहीं हुई एक भी जेब नहीं कतरी गई। यहा तक की जुआ खाना और शराब खाना भी बद रहे और सब ने देवियों को माँ बहन और बेटी समझ कर उनका आदर किया।

महात्मा गाधी द्वारा प्रवर्तित असहयोग आन्दोलन की आग में स्वामी श्रद्धानन्द के भाषणों ने घी का काम किया। ब्रिटिश सरकार को सबसे बडा खतरा महात्मा गाधी से नही स्वामी श्रद्धानन्द से था। पजाब के गवर्नर सर औडवायर ने आदेश दिया– 'स्वामी श्रद्धानन्द को अमृतसर में न पकडा जाए बल्कि लाहौर पहुचने पर पैर में बेडी और हाथ मे हथकडी लगा कर बाजारो में घुमाया जाए। शहर में मशीनगनें लगा दी जायें दो हजार हथियारबद फौज बाजारों में खडी कर दी जायें और स्वामी जी को इस तरह अपमानित किया जाए कि लोग दहल जायें।

दलितो के मसीहा

सन् 1920 मे अमृतसर मे आयोजित काग्रेस की राष्ट्रीय महासभा में स्वागताध्यक्ष के रूप में भाषण देते हुए स्वामी जी ने उद्गार प्रकट किये–"लदन नगर मे ईसाई मुक्ति फौज के बूथटकर साहब ने कहा था कि भारत के 6.50 करोड अछूतों को विशेषाधिकार मिलने चाहियें क्योंकि वे भारत में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट रूपी जहाज के लगर है। मैं आप सब बहिनों और भाइयों से यह याचना करूगा कि इस पवित्र जातीय–मंदिर में बैठे हुए अपने हृदयों को मातृ भूमि के प्रेम जल से शुद्ध कर के प्रतिज्ञा करो कि–आज से वे 6.50 करोड हमारे लिये अछूत नही रहे बल्कि हमारे बहिन और भाई हैं। उनकी पुत्रिया और उनके पुत्र हमारी पाठशालाओं में पढेंगे। हमारे स्वतत्रता प्राप्ति के युद्ध में वे हमारे कधे से कधा जोडेंगे और हम सब एक दूसरे का हाथ पकडे हुए अपने जातीय उद्देश्य को पूरा करेंगे। हे देवियो और सज्जन पुरूषो! मुझे आशीर्वाद दो कि परमेश्वर की कृपा से मेरा यह स्वप्न पूरा हो। इस भाषण के सम्बन्ध मे महात्मा गाधी ने 'यग इण्डिया' में लिखा था– 'स्वामी श्रद्धानन्द जी का भाषण उच्चता पवित्रता गम्भीरता और सच्चाई का नमूना था। मनुष्य मात्र के प्रति उसमे सद्भावना प्रकट की गई थी।

20 मई सन् 1924 को मद्रास के गोखले हाल मे स्वामी जी ने भाषण देते हुए कहा – 'यदि आपने अस्पृश्य कहे जाने वाले भाइयों के उद्धार की ओर विशेष ध्यान न दिया तो मै आपको सचेत करता हू कि वह दिन दूर नहीं जब आपके वे दलित भाई जिन्हें आप पचम कहते हैं आप से सब तरह का सम्बन्ध तोड़ देंगे– या तो सब के सब दूसरे सम्प्रदायों मे चले जायेंगे अथवा अपनी जाति ही अलग बना लेंगे। मैं स्वय कमजोर रोगी और वृद्ध होता हुआ भी सारे देश मे घूम जाऊगा दलित भाइयो का सगठन करूगा और उनको कहूगा कि वे हर एक ब्राह्मण अथवा अब्राह्मण को स्पर्श करके वैसा ही भ्रष्ट कर दे जैसा आप उनको मानते हैं।

अहमदाबाद में जून सन् 1924 मे होने वाले अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के अधिवेशन के अवसर पर उन्होने महात्मा गाधी को लिखा– 'कृपा करके अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के हिन्दू सभासदों को जो नौकर रख सकते हैं, कहा जाए कि वे अपनी व्यक्तिगत सेवाओं के लिये जो नौकर रखें उनमें एक नौकर अवश्य अछूत कहलाने वाले वर्गों मे से ही हो।

जब स्वामी जी ने काग्रेस द्वार[illegible] दलितोद्धार के कार्य को सफल हो[illegible] नहीं देखा तो उन्होने काग्रेस से त्याग पत्र दे दिया और दिल्ली में अखिल भारतीय दलितोद्धार सभा की स्थापन[illegible] की। इसके बाद काग्रेस ने दलितोद्धा[illegible] के कार्य को स्वामी जी की अभिलाष[illegible] के अनुसार काग्रेस के कार्यक्रमों क[illegible] अभिन्न अग बना लिया। भारत की कुत्सित और घृणित जाति व्यवस्थ[illegible] से खिन्न होकर जो हिन्दू मुसलमान हो गए थे उनके शुद्धि अभियान क[illegible] सग्राम प्रारम्भ हो गया। कटटर ए[illegible] धर्मान्ध मुस्लिम वर्ग उनके खून क[illegible] प्यासा हो गया। सन् 1926 में कराची से असगरी बेगम अपने भतीजे के साथ दिल्ली आई और उसनें आर्य धर्म स्वीकार कर लिया। धर्मान्ध मुसलमान उनको जान से मारने की धमकी देने लगे परन्तु अपने सिंहनाद से ब्रिटिश साम्राज्य को प्रकम्पित करने वाले नरकेसरी को इन कायर गीदड़ो की क्या परवाह थी। स्वामी जी श्री घनश्यामदास बिड़ला के अनुरोध पर बनारस गये और वहा से बीमार होकर लौटे तो उन पर ब्राको निमोनिया का आक्रमण हो गया था। वे रोग शैयया पर पडे थे। 26 दिसम्बर को एक धर्मान्ध मुसलमान अब्दुल रशीद धर्मचर्चा के बहाने उनके पास आया और कहा कि मैं आपसे इस्लाम के मुतल्लिक कुछ गुफ्तगू करना चाहता हू। स्वामी जी का सेवक धर्मसिह व[illegible] खड़ा हुआ था। धर्मसिह ने अब्दुल रशीद को बात चीत करने से मना किया पर करूणा के सागर स्वामी जी ने उसे बैठने के लिये कहा। अब्दुल रशीद ने पानी मागा और स्वामी जी ने अपने सेवक धर्मसि[illegible] को पानी लाने के लिये कहा। ज[illegible] धर्मसिह पानी लेने गया तब अब्दुल रशीद ने शैयया पर लेटे हुए उ[illegible] स्वामी जी की छाती पर पिस्तौल [illegible] तीन गोलिया चलाकर मौत की नींद सुला दिया जिसने दिल्ली [illegible] साम्प्रदायिकता भडकने पर मुसलमान के नाखून को भी चोट नहीं लग[illegible] दी।

भारतवर्ष की जनता के हृद[illegible] सम्राट स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या क[illegible] समाचार सुनकर सारा देश शोक साग[illegible] में डूब गया और गोहाटी काग्रे[illegible] अधिवेशन में इस दुखद समाच[illegible] को सुनाते हुए महात्मा गाधी ने रु[illegible] हुए कठ से कहा–"वे एक वीर सैनि[illegible] थे। वीर सैनिक रोग शैयया पर न[illegible] मरा करते किन्तु रणागण में मर[illegible] पसन्द करते हैं। उन तथा उन[illegible] अनुयायियों से मुझे एक प्रकार [illegible] ईर्ष्या होती है। वे वीर के समान जि[illegible] और वीर के समान मरे। प. जवाह[illegible] लाल नेहरू ने श्रद्धासुमन अर्पित कर[illegible] हुए कहा–देश उनके उदाहरण [illegible] सामने रखकर उनके आदर्श जीव[illegible] से प्रेरणा लेगा।

सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक प्रकाशक एव मुद्रक 5च–13 जवाहर नगर द्वारा नीतू प्रिन्टिग प्रेस बाबा हरिश्चन्द्र मार्ग जयपुर से मुद्रित
सम्पादक फोन नि. 2652697 का. 2622055 e-mail Vaishwanaryam@satyam.net.in
आर्य समाज विद्या समिति एव शिक्षा समिति आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

प्रेषक
सत्यव्रत सामवेदी सम्पादक आर्य नीति
आर्य समाज राजापार्क जयपुर–4

प्रेषित 70 श्री जगदीश वेदालकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरूकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार उत्तराचल यू पी

related to effects of the films and an attempt to arrive at generalizations about what kinds of film contents elicit desirable and undesirable comments by the audience.

Analysis of Audience Evaluations of the Orientation Films

In each of the orientation film studies, evaluations by the audience were obtained by questionnaire responses or by group interviews of men who had seen the film. The main purpose of obtaining these audience-evaluation data was to provide the film-makers with information which would assist them in producing films better calculated to win the *approval* of their soldier audience For this purpose, part of the research took the very simple form of getting the significant approval and disapproval responses of the men for a given film, classifying them according to the content of the criticisms and origin in the film, and preparing a report composed mainly of quotations of typical comments, with a rough indication of frequency In addition, an attempt was made to keep track of any categories of criticisms that recurred with successive films, in which case there would be a presumptive basis for making generalizations applying to future production of all such films

Similar audience-evaluation studies were also made of a series of "general interest" films in which the interest and approval of the audience were the main criteria of the success of the films and where there was, consequently, no experimental measurement of effects.

The other phase of the research was an attempt to relate audience evaluations to orientation film effects. For this purpose audience evaluations were obtained at the end of the same questionnaires used for the experimental evaluation of the orientation films. In this way individuals' comments about the films could be related to experimentally determined effects of the films in changing their information and opinions.

In the present chapter, material from both phases of audience-evaluation research on orientation films will be presented. A description will also be given of the evaluation procedure and results for the study of a series of "general interest" films.

Procedures Used to Study Audience Evaluations of Orientation Films

1. *Questionnaires.* Always included in the questionnaires used for the experimental study were several items permitting the mem-

bers of the group who had seen the picture to record their reactions to it These items were introduced by the question: "During the last two weeks did you see any of the movies on the history of the war that were shown to men here in camp?" This was followed by a question asking the men to designate what the film was about This insured that they actually were talking about the film being studied rather than one of a number of training films or commercial features they might have seen. (As part of the experimental design, other orientation films were not shown to any of the men involved during the period of the experiment.) To avoid having the mention of the film affect the men's answers to other questions, these items about the film were put at the very end of the questionnaire. Particularly useful were the men's statements as to whether they liked the film, what they thought its purpose to be, and whether they believed it gave a true picture of the facts. Inclusion of items on these topics in the experimental schedule not only was economical (in that film evaluations and experimental results were obtained from the same samples of men) but also permitted analysis of the relationship between the men's evaluation of the film and its effect upon them.

Another type of questionnaire, used in obtaining audience evaluations in the study of Film 2, was a short questionnaire made up primarily of questions about the film. In this case, of course, the men involved were not used as experimental subjects. They were shown the film and then told that the film-makers wanted to know in some detail what they thought of it. This procedure permitted detailed questioning on many aspects of the film and had the practical advantage of getting extensive comments economically from a large sample, an advantage lacking in the interview procedure to be described next.

2. *Procedure with group interviews.* To supplement written comments by the men, personal interviews were also employed. It was found that for the purpose of getting ideas for improvement of the films and for discovery of some of the detailed reactions to the film, group interviews were fairly successful In addition to the economy of time involved in using group interviews instead of individual ones, the group interviews provided social stimulation in getting men to express their opinions

For this purpose a sample of about 150 men was selected so as to be a roughly representative cross section with respect to age, education, etc. These men were not a part of the experimental group

who saw the film but were given a separate film showing After the film showing, these men were assembled in groups of 10 to 12 men each and questioned about their reactions to the films. It appeared to work out well to have the groups composed of about this size although no comparisons with larger or smaller groups were made Each interview group was fairly homogeneous with respect to intelligence as indicated by the men's educational level and by their scores on the Army General Classification Test Experience indicated that in more heterogeneous groups the tendency was for the better educated and more articulate members of the group to do all of the talking, leaving little indication of the reaction of less intelligent and less articulate men.

The setting for the interviews was usually a camp recreation hall, with the men and the interviewers seated informally around in a circle. Considerable effort was made to keep the situation as informal as possible by encouraging the men to smoke, providing comfortable chairs, etc. The groups were interviewed successively by the same personnel rather than concurrently by different interviewers. Thus it was possible to accumulate experience as the interviews progressed and follow up leads obtained with early groups. The first group was generally started immediately after the film and successive groups were scheduled on the hour Thus the time after seeing the film was variable from group to group but was brief relative to the time interval used in the experimental investigation It was felt that the function of the interviews was best served if the details of the picture were still fairly fresh in the minds of the men

As soon as a group had assembled for an interview, a brief introduction designed to gain as much rapport as possible was given by one of the interviewers, who explained that the purpose of the interview was to get men's criticisms and ideas about the film in order to assist the film producers in making better films in the future. It was found advisable to assure the men that the interviewers were not themselves the producers of the films, and to use other devices to encourage the men to be as uninhibited and critical as possible.

Before the beginning of the interview proper, the men filled out a short questionnaire. This permitted obtaining an independent appraisal by each man before he had heard the evaluation of the other men in the group, and also permitted correlating biographical data asked for on the questionnaire with the statements made in the interview. Once the interviewing was started, all questions

and answers were recorded by a stenographic team seated unobtrusively in the background.

In order to get responses that were as unbiased as possible by the type of questions asked, the interviews were opened with extremely general questions to which men's responses were obtained before proceeding to more specific points These general questions inquired as to whether the men had liked or disliked the film and why; what had impressed them the most about it; what they felt they had learned from the film; how they thought the film could be improved, what particular things about the film they had liked or disliked, and so forth Answers to these general questions usually led into more specific questions The framework for asking the latter was provided by making an advance outline of the points which the interviewer wanted to get at (including probes to get at men's possible negative reactions to specific sequences in the film). Additional questions were asked to get at more details concerning revealing remarks, sometimes of an unexpected character, that men made during the course of the interview, or to get the reaction of the other men in the group to a comment made by one of the men

Results of Audience Evaluations of the Films

The findings presented here are from the questionnaire items dealing with the film and the comments of the men in the group interviews. Data for all four of the orientation films studied are included wherever available. In general, the results are presented topically rather than by source, so that data bearing on a particular question, such as interest or skepticism of the films, are presented together rather than being taken up separately for different films and different interview or questionnaire sources.

1. *Liking for the film.* At the end of the experimental questionnaires, following the previously mentioned questions about whether the men saw a film on the history of the war and what the film was about, was this question· "If you saw one of the camp movies mentioned above, did you like it?" Of those indicating they saw the film, the proportions checking each of the answer categories are shown below for Film 4 and for Films 2 and 3 combined.[2]

[2] Results for "Prelude to War" are omitted because different answer categories—that did not discriminate sufficiently—were used On the basis of the "Prelude to War" results it was found necessary to break the "like" category into "very much" and "fairly well" in order to make the question more discriminating by reducing the proportion choosing the superlative category

Answer categories	DISTRIBUTION OF RESPONSES	
	Film 4 "The Battle of Britain"	*Films 2, 3: "The Nazis Strike" and "Divide and Conquer"*
Yes, very much	77%	64%
Yes, fairly well	16	25
No, not very much	4	5
No, not at all	2	5
No answer	1	1
	100%	100%

Favorable results of this sort are always reassuring to the producers, but difficult to interpret. The frequencies are meaningful only if the same question is asked of comparable audiences for a series of films. Then variations may indicate real differences in preference However, in the present instance only an approximation of the desired conditions was possible Audiences of the different films were not strictly comparable. Furthermore, it is possible that the interest of men shown a series of films might have increased (or decreased) progressively, although their interest in any one of the films (had they not seen the series) might not have been noticeably different from the others. Given the present conditions, we can only say that the results suggest that "The Battle of Britain" was better liked than "The Nazis Strike" and "Divide and Conquer," but the results must be considered in the light of the limitations mentioned.

Since the great majority of the men liked the films, a special analysis was made of the minority who said they did *not* like them. As compared to men who said they liked the films, those who did *not* like them tended on the whole to be less well educated, to have foreign-born parents (particularly from Axis countries), to come from smaller cities and towns, and to have isolationist attitudes In the case of "The Battle of Britain" the men in the "dislike" group were also more likely to feel that they ought to be civilians rather than in the Army and to blame Britain for our entering the war.

In response to a further question "What did you like about the film?" a great many interesting comments were obtained. Most of these merely expressed principal content themes of the picture in the men's own words. The comments were classified and turned over to the makers of the films to give them the men's own ways of expressing ideas and their detailed reactions to various parts of the film, as a guide to possible changes in later films in the series

2 *Fairness of presentation.* To get information as to men's evaluation of the truthfulness of one of the films ("The Battle of Britain"), the following question was asked: "If you saw one of these movies [referred to in a previous question], did you think it gave a fair and accurate picture of events?" The distribution of answers to the three check-list categories among men who reported seeing the film is shown below:

65% checked "Yes, it gave a true picture of what was happening."

33 checked "It was true in most respects but it seemed to give a one-sided point of view at times"

2 checked "No, it did not give a really true and honest picture of the facts"

100% total

This question has some of the same difficulties of interpretation as the question about how well the men liked the film However, if taken at face value it indicates that the great majority of the men accepted the film as either mostly or completely fair and accurate in its presentation of the events. The same general tendency was shown in answers given in supplementary film-evaluation questionnaires concerning Film 2, "The Nazis Strike." The men were asked the question, "Do you feel that the film . . shown here gives a true picture of the facts about the war, or do you think it gives an untrue and one-sided picture?" Of those answering, 81 per cent checked "a true picture of the facts," 18 per cent checked "mostly facts, but a little untrue or one-sided in places," and less than 1 per cent checked "mostly untrue or one-sided."

3. *Manipulative purpose* In the study of "The Battle of Britain," an item was also included asking men "What do you think was the reason for showing this movie to you and the other men?" This question was accompanied by space to write in an answer rather than having a check list of answer categories, and its purpose was to permit those men who suspected the film of being propaganda, or who suspected they were being "guinea pigged," to write in an appropriate comment. It was expected that this question would raise no suspicions in the minds of those men who had none but would be used as a vehicle for expressing suspicions among men who already had them

The majority of answers were classifiable simply as statements that the reason was to teach them the facts of the war A code

category was established which classified all answers that implied a manipulative motive to the film showing exclusive of the attempt to teach historical facts. Such answers as "to raise our morale," "to improve the fighting spirit," "to make us want to kill those sons of bitches," "just for propaganda," etc., were included in this category. With this classification, 27 per cent of the answers suggested that the film had as its purpose some aim of manipulating the attitudes and motives of the men Only a negligible proportion of these answers used the word "propaganda" in their statement of what they thought were the reasons for showing them the film. Evidence of this sort is useful in indicating whether or not a substantial proportion of an audience believes that the film was propagandistic. The evidence in this study indicates that in terms of either the falsification connotation or the manipulative aspect of "propaganda" the film was not regarded as propagandistic by the great majority of the men

4. *Interview comments on propagandistic aspects* Although only a minority of the men criticized the films as partly or wholly propagandistic, this minority might be regarded as a particularly important segment of the total audience. These men were for the most part in the better educated group who are more articulate and perhaps more likely to influence the reactions of their fellows to the film. For this reason, it appeared useful to investigate in the group interviews the particular types of content or aspects of presentation which tended to evoke the reaction that the films were propagandistic in their method or intent. It was felt that to the extent that criticism tends to cluster around particular procedures which may recur from film to film, the already small proportion of individuals making this criticism might be further reduced to a significant degree by correcting the types of things that appear likely to lead to a "propaganda" reaction.

In the interviews, as in the questionnaires, the great majority of opinion was favorable to the films and few of the men volunteered statements that the films were propagandistic. But when such a comment was volunteered, it was fairly intensively followed up with questions directed to all members of the group If the subject was not brought up by one of the men, the question was raised and followed up by the interviewer before the end of a session.

It was observed that the term "propaganda" had several meanings for the men. In general, the two principal interpretations were these. first, *untruthful or biased presentation*—distortion of facts;

and, second, a *manipulative purpose* or motive in showing the films, regardless of whether the attempted manipulation is accomplished by presenting only factually accurate material or also uses false or misleading material. In interview and questionnaire comments, in fact, the word "propaganda" appears to be used relatively infrequently, more often, comments that indicated questioning of either the authenticity or the purpose of the film were made without use of this term. The quotations that follow are representative examples of the kinds of comments made. The reader should be reminded that these comments are not typical of most comments about the films but restricted to those few comments elicited about the propaganda aspects. The majority of the quotations shown are from the stenographic records of the men's spoken comments during the interviews rather than from the preliminary questionnaires filled out by the interview groups. Some of these remarks were spontaneous, some were in response to another man's comments on propaganda aspects of the film, and some were made after a deliberate attempt by the interviewers to lead the discussion around to the subject of propaganda by direct or indirect questions

(a) *"One-sidedness"* A fairly frequent criticism of the films, related to men suspecting them of propagandistic or manipulative intent, was that the films were "one-sided." Films 2 and 3 which showed the Nazi conquest of Western Europe were occasionally criticized as showing "only part of the picture." Some men objected that the film showed only the strength of the enemy, and that *our* military strength should have been portrayed also. Similar criticisms were made of the first film, "Prelude to War":

This picture shows the enemy as being pretty strong, but we have as much or more power than they have.

The fact of our enemy's strength instead of showing theirs—show a little of what we have

Comment suggesting "one-sidedness" in a more general sense appeared less frequently. The following quotation is illustrative:

If all circumstances were laid bare . . . would the picture still convey your meaning?

The criticism of one-sidedness came up quite frequently with respect to the fourth film, "The Battle of Britain," where it took the form that British losses were deliberately underplayed.

It was one-sided. It never showed any English planes being shot down.

I think that it is too much like fiction when it is too one-sided. It does not seem possible . . because it was so lopsided A few planes go up to destroy a large number of planes and the small number return whereas the large number is defeated

There was only one English plane that fell during the picture and mostly German planes went down I believe they should show more of the British losses

(b) *Repetitious shots:* Consistently criticized from film to film in indicating what parts of the film seemed "fake" or "untrue" was repeated use of identical or nearly identical scenes in the visual material. For example, some of the men felt that the action shots of planes in combat, both in "The Battle of Britain" and other films, were padded by using the same shot over and over.

There was too much repetition of scenes that were first filled in to make a picture. It was too noticeable, such as the shattering of a wing section of a plane shown over and over.

Where the British pilots shot down the German planes it looked in the picture like the same picture was used.

The picture itself had too much repetition like a propaganda picture Those parts that were filled in like the four shots just the same of a wing section on the plane being torn away.

(c) *"Exaggeration," "unrealistic" or "overdramatic" presentation:* The theme of the calm, courageous spirit with which the British met the Nazi attack was generally highly effective throughout "The Battle of Britain." But certain of the sequences came in for criticism as being overdone.

Was the spirit of the British people really as light as the picture indicated?

Did the people of England take everything as calm as the movie shows?

In this connection the scenes showing the fortitude of the people as a whole were not questioned. Scenes of the British people in large groups seemed real, but shots involving individual reactions were suspected of having "the Hollywood touch."

The scenes were more like they were acted. The whole groups of English people seemed real, but the old man and woman and a couple of others seemed just a little bit too dramatized.

It looked faked You'd think they had a camera all set up to take it. [Referring to a humorous shot of two men repairing a cable during a London air raid—a shot which was otherwise generally approved.]

Such comments also appeared, less frequently, with respect to the other films of the series.

(d) *Source of film materials:* A consistent and relatively frequent basis for expressed suspicion of the films arose from men's apparent inability to understand where certain pictorial sequences had been obtained. This basis for suspicion appeared with appreciable frequency for every film on which group interviews were conducted. To counteract this reaction some of the later orientation films carried an explicit introductory statement indicating that the source of many of the pictures was "captured enemy film." The effectiveness of such an initial explanation is a matter for speculation, since no tests were made of parallel presentations of any film with and without this description of the source of the material.

Questions as to the source of film material occurred with greatest frequency concerning pictures taken in enemy territory Some men concluded that any pictures showing the enemy in enemy territory must have been faked To such men all captured footage was regarded as unauthentic. Many who did not think of the pictures as actually faked were curious as to how they could have been obtained, and often skeptical.

Those pictures of Hitler and Goering mapping out plans . . how did they get them?

Are the scenes depicting the German Air Force authentic or are they of the Hollywood style?

I do not believe some of these were really pictures of Hitler—just men made to look like Hitler.

I don't think they were real . because if anyone would get that close to him [Hitler] they would shoot him

(e) *Close-up shots in combat* A related form of criticism occurring in the case of "The Battle of Britain" was that when the film portrayed action close-ups some men wondered how a cameraman could get such pictures. Often they concluded these must have been Hollywood production shots. In some cases this conclusion was correct since occasionally the story was tied together with production footage as in a scene showing the reaction of German fliers to the British attack.

Most people know that those planes are so fast that it would be impossible to get those close-up shots of enemy pilots.

How could they film the actual men in a German bomber?

In other instances, however, the men criticized shots merely because they did not know that most fighter planes carried cameras that were synchronized with the machine guns to verify enemy losses and to instruct fighter pilots.

I heard several fellows say they wondered how those pictures were taken when it showed the RAF and the Nazis in dogfights.

(f) *Favorable reactions to "propaganda":* Not infrequently when the question of propaganda was raised a favorable reaction to propaganda in the film was obtained. Some men felt the film contained propaganda but thought this was necessary or desirable.

I think the picture is well presented with the touch of propaganda that every war film needs to keep morale up. Too much propaganda is out, though

I think there is some propaganda mixed in every now and then to help bolster morale It had just enough

5. *Men's suggestions for improving the film* In the preliminary questionnaire of the interview groups, questions were asked concerning the men's suggestions as to what should be taken out or added to the films to improve them. These items were found to have very limited usefulness. The men did not view the picture as critics and asking them afterwards to assume such a role led to sterile replies. Most frequently they merely said the film was "O K." and that nothing should be taken out or added to it.

Product-improvement suggestions dealt mainly with film content, although occasionally comments on the technical aspects of the film were made These two categories of comments are illustrated by material from the group interviews in the study of "Prelude to War."

I would like to have understood more clearly why the Allied nations did not prepare for war too

Some might be added on the rise of the different dictators to power How they achieved such great power

Hard to hear. Speaker voice too mild A poor movie, from a professional standpoint. Good subject matter tho

Of the comments made, many were contradictory: for example, some men suggested in the study of "The Battle of Britain" that more be shown on British planes and equipment and less on civilian participation, others said exactly the opposite.

6 *Attempts to infer effects from audience-evaluation responses* The interest in interview comments was sometimes so great that the producer tended to infer from the comments the nature of the effects of films on attitudes, opinions, and factual information. Obviously, however, such interview data constitute an inadequate method for determining these effects of a film. Group interviews could possibly be used as an alternative to questionnaires as a means of measuring responses, but it would be necessary to have control interview groups that had not seen the film as a baseline against which to determine the film's effects, and direct mention of the film would have to be omitted in both the control and the experimental interviews. This is quite a different situation from the present one in which the film is the topic of discussion and there is no control group.

In some instances, effects suspected on the basis of group interviews were actually found when the results for the experimental measurements were analyzed, but in other cases suspected effects, which some of the interviewers fully expected to materialize on the basis of what men said at interviews, were completely absent in the experimental data.

For example, the frequent comments of the men about the effect of the film on their "fighting spirit" led some interviewers to expect sizable effects of the film on men's willingness to fight. Comments of the following type were very often obtained.

The film was very stirring. I was fighting mad at the brutality of the Nazis.

It made me feel like killing a bunch of those sons-of-bitches

But experimental measurement with questions about combat service showed that no real change had occurred in the percentage expressing willingness to get into combat. It is, of course, possible that the films sometimes had the effect of intensifying already existing attitudes such as the desire to retaliate against the Nazis, without increasing the number of men holding such attitudes. This could not be proved or disproved by the present studies, due to the absence of adequate measures of intensity of feeling

As another example, interview comments suggested that many of the men interviewed after seeing "The Battle of Britain" had an exaggerated idea of the extent of American aid to Britain, and that one or two scenes in the film created or bolstered a conviction that the United States had won the Battle of Britain by providing the material used to defeat the Nazis. Such comments as the following were not infrequent:

I think they can thank the good old States that they are alive Everything in the fight came from this country

The point was brought out in the picture that all these countries that are fighting Germany are fighting with U.S. equipment

Tomahawks and Spitfires are both made in this country In other words we are sending the goods to England to keep them in the war

The inference from interviews that an effect on this belief had been produced by the film was checked experimentally when the study was conducted at the second camp The question used was:

As you remember it, how much lend-lease aid was England getting from the United States when the Nazis started bombing England after the fall of France? (Check one)

	Control	*Film*	*Difference*
______ a great deal	44%	38%	−6%
______ a little	36	40	4
______ none at all	3	4	1
______ haven't any idea	17	18	1

The film produced no increase on this question in estimates of the actual amount of aid we had sent to the British. As in various other instances, the impression gained from the interviews as to the men's ideas about the amount of aid sent by the United States was probably based on expressions of opinion by men who already held this point of view before seeing the film, rather than on effects of the film The incorrect notion that we were giving much aid to Britain at the time of the German attacks was common before the film showing; its high frequency during the interviews was mistakenly interpreted as an effect of the film

Relation of Audience Evaluation to Effects of Films

The foregoing results show degree of liking and disliking of the films, skepticism and lack of it, and indicate some of the contents that are singled out by the men as reasons for suspicion of the au-

thenticity of the presentation. Such data help relate audience evaluations to film contents. However, as mentioned earlier, there is the additional problem of relating audience evaluations to the teaching effectiveness of the films.

On a priori grounds, we would of course expect these factors to be of influence Interest would be expected to bear a relation to effects, whether the purpose of the film was to produce attitude changes or to transmit factual information. An extreme example of the relevance of interest to attention was the situation obtaining with certain Army training subjects which were compulsory and were not "sold" as being important. It was observed that typically a significant number of the soldier trainee audience would sleep through an entire session of training films.

The additional factors of confidence in the integrity of the presentation (as opposed to skepticism of the film's authenticity and purpose) might be expected to be particularly significant where the film had the purpose of obtaining acceptance of interpretation of facts, i.e., of modifying opinion.

The analysis which follows is based on an orientation-film study in which effects were related to audience evaluations. Since there was no external motivation the film's effectiveness should be maximally affected by interest, and since a major concern was with changes in *opinion*, acceptance or skepticism would be expected to be important.

1. METHODOLOGICAL CONSIDERATIONS

The analysis requires the use of an experimental design in which questionnaires are given both before and after the showing of the film. This design is required because men with different evaluations of the film generally have different opinions on the subject presented by the film. The experience in the orientation-film studies was that initial responses on the significant opinions (related to the content of the film) generally differed among men who differed in their evaluations on such topics as whether they liked the film, whether they thought it truthful, whether they thought it was for propaganda purposes, and so forth. Thus it would be necessary to compare the various subgroups with their *counterparts* in the control group rather than with the control group as a whole, and it was not possible to identify in the control group those men who *would have* liked or disliked the film, thought it truthful, etc., if they had seen it. With the before-after procedure the initial attitudes of the

members of each group are known so the men can serve as their own controls

It should be pointed out, however, that even with the before-after design, the control is always partly incomplete in comparing two groups who have different evaluations of the film While each man serves as his own control, there is no control on possible *differential effects due to other causes than the film* among the different evaluation subgroups. If it is found, for example, that men who thought the film was propaganda were less changed than other men in the period between the "before" and "after" measurements, it is nevertheless possible that this difference might reflect the differential effect of some outside cause that operates selectively on these two kinds of men. Complete control on outside causes is not possible for the reason already mentioned, namely, that it is not possible to identify in a control group, which did not see the film, those men who would give the designated evaluations if they had seen the film

A further possible difficulty with using each man as his own control is that obtained shifts in response due to transient mood changes may be correlated with the evaluations of the film, giving rise to a spurious factor in the analysis. Suppose, for example, a respondent filling out the "after" questionnaire in the study of the "Battle of Britain" feels in a generous mood. As a result he gives more pro-British answers than before, and at the same time gives a favorable evaluation of the film. Another respondent with an opposite mood may swell the ranks of those who changed to more anti-British responses and at the same time give the film an unfavorable evaluation. The spurious factor is this correlation of errors in responses to the two kinds of questions, those measuring effects and those measuring evaluations. It seems probable that this spurious factor is small or absent—i e., that absence of correlation in errors of measurement would be the general rule. To the extent that such a factor is present, however, it cannot be separated from correlation of true evaluations and true changes in opinion if one merely uses each man as his own control. This is one of the weaknesses inherent in correlational as contrasted with experimental analysis.

2 EFFECTS FOR SUBGROUPS WHO "LIKED" AND "DISLIKED" THE FILM

All of the data here presented come from the before-after study (one camp) of the effects of "The Battle of Britain." As already noted, the question used in determining overall approval was the

simple one as to whether the individual "liked" the film or not, with the answer categories, "very much," "fairly well," "not very much," or "not at all." For the purposes of analysis, men in the film group who had indicated in answer to a preceding question on the questionnaire that they remembered having seen the film, "The Battle of Britain," were sorted into these four response categories. Changes from before to after for a selection of eleven opinion items were determined for each of these groups. These items were selected on the basis of being judged by the analysts to be definite expressions of pro-British or anti-British attitudes. The effect of the film was measured simply in terms of after-minus-before differences for each subgroup because of the aforementioned lack of control subgroups. On the basis of preliminary examination of the data, the "very much" and "fairly well" groups were combined as being essentially alike in the effect of the film. The "not very much" and "not at all" groups were also combined because of the very small numbers of cases (26 men in all!) The two combined groups thus formed are referred to below as "like" and "dislike" groups. The data for effect of the film in terms of after-minus-before differences for the film subgroups are shown in the tabulation below:

TABLE 1

EFFECT OF FILM ON GROUPS WHO LIKED AND DID NOT LIKE THE FILM

Content of opinion item	PER CENT DIFFERENCE, AFTER-MINUS-BEFORE IN FILM GROUP	
	"Like" Subgroup (N = 288)	"Dislike" Subgroup (N = 26)
1 Best fighting job was done by RAF	15	7
2. British did well at Singapore	0	−20
3 British not taking it easy	4	−4
4 British had done much more fighting than we	−3	−4
5. British kept us from bombing	11	−4
6. British saved U S from fighting on home soil	6	−15
7. British doing all they can	9	−4
8. British will make just peace	7	4
9. British fighting for freedom for all	7	−4
10 Britain deserves most credit for holding off the Axis	9	4
11 RAF gave Nazis their first defeat	23	23
Mean difference	8.0%	−1.5%
		P Diff < 02
Mean index of effect*	17%	−3%

* Average difference expressed as a proportion of the maximum change that could have occurred in the direction indicated by the difference

Giving each person a difference score in number of pro-British responses before and after the film, the mean difference for the "dislike" group (−.16) is reliably smaller (beyond the 1 per cent confidence level) than the mean difference for the "like" group (.88). Also, the result was consistently obtained from item to item, the "dislike" group showing less positive effect for 10 of the 11 items. Thus the expected relation between approval and effect was obtained. It should be remembered, however, that the analysis is subject to the methodological difficulties previously mentioned—a genuine control is not possible.

The significance of the findings hinges in part on the extent to which approval or disapproval depends on agreement with, or disagreement with, the interpretations presented in the film versus the extent to which approval can be obtained without altering the basic interpretations. Thus, can pro-British arguments be presented to anti-British individuals without arousing disapproval for the presentation? If this is possible, then it may be possible to improve the effects of a presentation by procedures that increase the amount of approval it obtains. From the present finding we can only say that effects and approval were positively correlated, which may only mean that those strongly opposed to the interpretations were not influenced to change their opinions because of their opposition and did not like the film for the same reason. The present analysis does not untangle the causal relations between the material presented, the approval or disapproval obtained, and the opinion changes produced. The kind of experimental analysis required will be discussed after the presentation of the relation between opinion changes and evaluations by the audience as to the authenticity or the "propagandistic" nature of the film presentation.

3. EFFECTS AS A FUNCTION OF SKEPTICISM OF THE FILM

The extent to which interpretations such as would be represented by changes in men's opinions are influenced by a film obviously depends not only on *learning* of the material—but also on the *acceptance* of the material presented Men might have learned what the film *said*, but if the film presentation were viewed with skepticism or suspicion they might not accept the interpretation as the correct one.

In orientation material of the type studied in the "Why We Fight" films, suspicion of the material would be related to men's

ideas of *propaganda*. As indicated earlier, this term might mean to them either falsity of the material presented, or the intent to manipulate or influence their beliefs in a particular direction, or both. Disapproval and suspicion related to a conception of the film as propaganda in the manipulative sense might detract from the acceptance of interpretative material based on facts presented, even though the facts themselves were not questioned.

Two questions were included to tap "propaganda" reactions: a check-list question to get at the falsification aspect, and an open-ended question to get at the manipulative aspect of men's possible reactions to the film as propaganda.

a. *Relation of effects to evaluations concerning falsification.* The question aimed at the falsification aspect came at the end of the questionnaire and was worded as follows.

> If you saw one of these movies, did you think it gave a fair and accurate picture of events?
>
> _____ Yes, it gave a true picture of what was happening
>
> _____ It was true in most respects but seemed to give a one-sided point of view at times
>
> _____ No, it did not give a really true and honest picture of the facts

This question was used in only half of the questionnaires as a precautionary measure in case it caused some of the men to divine the real purpose of the questionnaires and go back over their questionnaire and change their answers. It was omitted in half the cases to keep at least half the sample free of this possibility. Thus only a relatively small number of cases was available for analysis. Moreover, the distribution of answers was very unfavorable for analysis. The majority picked the first category, only 50 men (27 per cent) picked the second category and only half a dozen picked the third category. Thus the number of cases for this last group was too small to warrant analysis The mean effect on the 50 men who said the picture's presentation was "true in most respects" did not differ significantly from the effect on the larger number who indicated that the facts presented were entirely true.

It may be that the choice of categories in the question used was unfortunate, preventing the separation of a large enough number of the more extremely suspicious men to detect a correlation between

evaluations of the film's authenticity and changes in opinion. Or it may be that this aspect of the men's evaluations was unrelated to effects. At least no evidence for a relation was obtained even though the men were divided by the question into about the upper three fourths and the lowest one fourth in their confidence in the truth and fairness of the film's presentation.

b. *Relation of effects to evaluations concerning manipulative purpose.* The question asked to get at men's conception of the film as propagandistic in the sense of their conceiving its purpose to be a manipulative one was simply the open-ended question described earlier: "What did you think was the reason for showing this movie to you and the other men?" It was anticipated that an appreciable number of men would characterize the purpose of the film as "propaganda." As it turned out, however, only a very small percentage (around 4 per cent) of the men used the term "propaganda" in their comment. However, a considerably larger proportion gave answers that were classifiable as indicating a *manipulative intent* as the purpose of the film. These men were classified as regarding the film's purpose as "propagandistic," and the film's effects on this group were compared with effects on two other groups: those whose answers either indicated a purely informational or educational function, and those who gave ambiguous answers not so clearly falling in the "propaganda" or "informational" categories.[3]

For convenience, the three major subgroups will be referred to as the "manipulative," "ambiguous," and "informational" subgroups, in terms of the classification assigned to the answers they gave concerning the purpose of the film. The numbers of cases falling in the three major categories above were 103, 147, and 121, respectively.

Effects for these subgroups ascribing different purposes to the film were determined for five opinion items appearing in the before and after questionnaires which showed significant over-all effects of the film. The results are shown below.

Comparison of the effects shown in the next table indicates *less effect* for those who imputed a "propagandistic" or "manipulative" purpose to the film than for those who characterized the reason for showing the film in terms of an "informational" purpose or gave

[3] Illustrative answers classed as *manipulative*: "make us work harder," "build up morale," "make us hate the enemy." Illustrative *informational or educational* answers: "give us information about the cause of the war," "show what was happening," "show us what to expect in the war." Answers classed as *ambiguous*: "show us the nature of the enemy," "show us why we fight."

TABLE 2

Means of Responses to Five Opinion Items for Subgroups Differentiated by Answers on Question Concerning "Purpose" of Film

	"*Manipulative*" *Subgroup* *N = 103*	"*Ambiguous*" *Subgroup* *N = 147*	"*Informational*" *Subgroup* *N = 121*
Final level (% after)	56.0%	63.5%	62.5%
Initial level (% before)	42.0	45.7	42.5
(% After minus % before)	14.0	17.8	20.0
Effectiveness index	24%	33%	35%

answers classified as "ambiguous"; the measured effects for the last two groups did not differ greatly The pattern of effects seen for the overall results is also obtained when the data are tabulated separately for men of high and low educational levels. However, the difference in "effects" between those ascribing a propaganda purpose and those ascribing other purposes to the film was especially marked for the men with less than a complete high school education. The data for separate education groups are shown below.

TABLE 3

Mean Effects on Five Opinion Items Broken Down By Educational Status

	"*Manipulative*" *Subgroup*	"*Ambiguous*" *Subgroup*	"*Informational*" *Subgroup*
Low education men (grade school, some high school)			
Final level (% after)	50.1%	65.8%	64.0%
Initial level (% before)	45.3	53.1	49.0
(% After minus % before)	4.8	12.7	15.0
Effectiveness index	11%	24%	29%
High education men (high school graduate, college)			
Final level (% after)	63.8%	75.0%	73.6%
Initial level (% before)	48.9	55.2	52.9
(% After minus % before)	14.9	19.8	20.7
Effectiveness index	34%	32%	44%

The foregoing results appear to indicate that men who like films learn more from them than those who do not and that men who are skeptical of the film are less influenced than others. The results

do not, however, show that the specific material which is best liked or most accepted is that which is best learned. Such a result could not be analyzed, partly because acceptability is related to demographic variables and partly because the acceptance was not analyzed separately for the specific contents in this study of a single film.

In absence of alternative presentations which can be compared, the process of sorting men on the basis of answers to the questions as to whether they liked or disliked the film cannot be said to furnish an answer to the question, "Is material that is liked learned better than material that is not liked?" Rather, it furnishes only an answer to the question, "Did those men who liked the material learn it better?"

The best analysis to answer the question of whether greater effectiveness will result from making film material in such a way that it will be "liked" or regarded as "authentic" would appear to demand the preparation of alternative versions of film material in which the effectiveness of alternative presentations of the same material, found to differ in terms of these audience evaluation factors, is studied. However, manipulation of the extent to which men express interest or approval in the material necessarily involves making specific changes in the presentation—one cannot manipulate interest or approval directly and as such. Hence there is still a logical difficulty involved in making a clear-cut analysis of the "effect of interest" on material learned. If the problem of the relationship between audience evaluation and effect is conceived to refer to evaluation differences which are created by the manner of presentation of the specific material which it is desired to test, this logical difficulty is apparently insurmountable whatever device or devices are introduced to manipulate degree of interest may also affect directly the effectiveness of the presentation in ways other than through the mediation of increased interest in the material.

It would appear that a rigorous answer to the question of the relation between interest and effectiveness can be obtained only when the question is asked with respect to differences in effectiveness resulting from interest-arousing contextual material that is not in itself a part of the presentation of the material to be tested Thus, one might measure the effect of a humorous introduction to a film in arousing interest and thus facilitating the learning of factual material subsequently presented. But there would be difficulty in

obtaining a rigorous measure of the influence of interest aroused by presenting a fact dramatically, since dramatic presentation of the fact would involve other changes potentially producing differential effectiveness as well as the concomitant change in interest value.

Audience Evaluation Studies of Films with a General Interest Purpose

A number of film studies were undertaken by the Experimental Section in which no experimental evaluations were made, the only measurements being the quantification of the opinions of sample audiences about the film Some of these studies had very specialized purposes—for example, one was carried out to determine if a film explaining the Army educational program was "too Hollywood"—and are of little interest here One series of such studies, however, is of particular interest from the standpoint of audience evaluations because the purpose of the film was stated as being simply to satisfy interests of the soldiers, and therefore for the present purposes audience evaluations were the only criteria used in determining the success of the films With this purpose there was no problem of relating audience evaluations to effects—the audience's "reaction" itself revealed how successfully the films achieved their objectives

The studies referred to dealt with a series of films called "The War." This was a short feature issued twice a month designed to be shown along with entertainment movies in camp theaters. Attendance at these films was voluntary, and the men were free to leave the theater at any point. Each issue was made up of five episodes. Usually four of the episodes were much like newsreel feature stories, each one being accompanied by a running narration and dealing with wartime topics of presumed general interest such as the training of a particular military branch, a well-known naval or military battle, a famous personality in the war, and so forth. Some of these episodes were of a similar kind from issue to issue and had the same title in each successive issue. For example, "Back Home" and "I Was There" were repeated titles, dealing respectively with the contribution of civilians and with individuals who had personally participated in some important action in the war. The fifth episode was generally of a humorous nature, most of these being animated cartoon comedies of the "Silly Symphony" variety, involving a character named "Snafu" These "Snafu"

cartoons related the exploits of the Army's worst soldier, and each contained an implied moral in that the undesirable outcome of Snafu's behavior was portrayed.

Procedures Used

For obtaining men's reactions in terms of immediate interest, it was found useful to supplement the techniques of interviews and questionnaires by use of a polygraphic recording of audience judgments of like and dislike.[4] The technique, long used in radio program testing, involves providing members of the audience, during the showing, with a pair of push-buttons, and having them indicate parts of the film they "like" by pressing one push-button and parts they "dislike" by pushing the other as they view the film.[5] The responses of the audience are electrically recorded and can be cumulated and analyzed Since the continuous record can be related to specific portions of the film, this technique is also used, as described below, in conjunction with subsequent interviews.

The main function of the procedure is to get an appraisal of reaction to specific film content. Hence it is mainly useful when interest or enjoyment is the sole or principal criterion of a film's success. A unique advantage of the method is that it affords a continuous indication of *immediate* response to the film, rather than a retrospective reaction such as is obtained through the use of questionnaires or interviews conducted after the film showing.

1. Methods and Problems in Polygraph Recording of "Like" and "Dislike" Responses

a. *General arrangements and apparatus.* Because it is believed by some motion picture producers and critics that the reaction of an audience depends to a considerable extent on its size and that reactions from small groups might differ materially from those where a large audience is present, it was felt advisable to have a fairly large group present while the reactions were being recorded The equipment used was sufficient to record responses for 20 men at one time. These men were seated at the back of the theater. The remainder of the audience viewed the showing without push-buttons, but filled out a questionnaire about the film afterward.

[4] The equipment used was the Esterline-Angus, model A W portable operation recorder, with 20 ink-writing polygraph units

[5] Cf Hallonquist, T , and E A Suchman "Listening to the Listener," pp 265–334 in *Radio Research, 1943–1945* (Lazarsfeld, P F , and F N. Stanton, editors), New York· Duell, Sloan, and Pearce, 1944

Each pair of push-buttons had a number corresponding to the number of its recording pen. The numbers were later used as a basis for referring to the various members of the audience in the group interviews, the "likes" and "dislikes" of individual men could be used as a basis for focusing questions on specific reasons for an individual's liking or disliking various portions of the film.

b *Synchronization of records.* One of the procedural problems in this use of the "program-analyzer" was that of synchronizing each program-analyzer record with the script of the film. This required using a motion picture projector which ran at a constant speed.

In order to correlate program-analyzer reactions with film contents a timed "script" was prepared for each film. Ordinarily, film scripts do not include the detailed scene sequences, and last-minute improvisations are often introduced in production and cutting, so that for using the program-analyzer a final script must be made from the completed product For this purpose the films were viewed and a detailed list of all sequences and sound effects, together with a word-for-word transcription of the narration, was prepared. This list was then timed and used as a reference in analysis of responses and in questioning the men about their reasons for pressing one or the other button at a particular time

A specimen excerpt from such a timed list is shown below. (The sequences outlined are those from a film subject entitled "Finishing School," which showed the training of Ranger amphibious troops in invasion tactics)

Excerpts from timed script	*Time*
Starting cue first two notes of "Artillery Song"	0′–00″
End of Marine Hymn	0′–20″
Title "Finishing School"	0′–25″
Men climbing on net	0′–30″
Men jumping from platform	0′–37″
Commentator "They're toughening up for a little job ahead"	0′–47″

c. *Standardization of responses and instructions.* It is to be noted that the program-analyzer technique as described here affords no gradation of "likes" or "dislikes" of individual members of the audience, since the "like," "dislike," and "neutral" are recorded in all-or-none fashion for any one subject. It was found that there was considerable variability from subject to subject in the way in which the like and dislike buttons were employed, and that the instructions

given in advance of the showing were an important feature in attempting to standardize this pattern of response. The pattern sought was for the subjects to push the right-hand button when they liked what was being shown, to hold it down as long as they liked it, and release it when they did not especially like the material, similarly, they were to press the dislike button when they disliked what was being shown and to continue to hold it down as long as they disliked the material. They were instructed to depress neither button when they had no particular feeling of liking or disliking the material, but felt neutral or indifferent towards it

Variation in instructions was found to have marked effects both on the general level of response (frequency of pressing either like or dislike button versus neither) and on the type of evaluation made the basis for the "like" or "dislike" response. In the first film studied, in which there were a number of scenes of Japanese soldiers and other shots of the enemy, it was found that the men showed a strong tendency to press the "dislike" button (as it turned out later in interviewing these men) as an expression of disapproval of the enemy and not because they necessarily disliked *seeing the pictures* about the enemy. This necessitated emphasizing in the instructions the meaning of "like" and "dislike," and examples were given of what was *not* meant by disliking. Even with these precautions, there were occasional instances where men were found to have pressed the "dislike" button because of disapproval of the referent even though they were greatly interested in observing the film

Another difficulty that was never completely solved was the tendency for the subjects to become so engrossed in the film when it was particularly interesting that they forgot about their push buttons Still another problem was the tendency always to push one or the other of the two push buttons, the "neutral" category in such cases losing its meaning. No completely satisfactory instructions were worked out in the course of the studies, although it was felt that these tendencies were reduced by including in the instructions humorous examples of what not to do, thereby motivating the subjects to be superior to some of the "horrible examples" the film-testers had found in previous experience

d *Use of program-analyzer records as a basis for group interviews.* As mentioned previously, the program-analyzer records were sometimes used immediately after the showing as a basis for inquiring as to the reason for likes and dislikes of individual men. In doing this

it was found convenient to transfer, during the showing, parts of the individual like and dislike records to a sheet which contained an outline of the timed script, together with columns for recording the responses of each individual. The overall procedure in studying the film was usually to show the film, obtaining the program-analyzer record, and to follow this immediately by a short period in which the men who had used the push buttons filled out questionnaires concerning the film. The interval while the men were filling out the questionnaires afforded time to complete the transferring of the records of individual responses from the polygraph paper to an outline such as that mentioned above. This provided the interviewer with a convenient record for use in asking questions during the group interviews which followed the filling out of the questionnaires.

2. USE OF QUESTIONNAIRES

The questionnaire filled out by men who were tested with the program-analyzer was also filled out by the rest of the audience. The purpose of this questionnaire was three-fold: (1) to get the reactions of the men who had used the program-analyzer before they heard the comments of others in the group interview, (2) to get reactions in retrospect at the end of the film as contrasted with the immediate reactions shown by the program-analyzer, and (3) to get a larger number of cases for quantitative report than was practicable with the push-button equipped groups of only 20 men per showing that was the maximum possible with the available equipment.

The questionnaire was presented as having the purpose of improving the film shown and future films by finding out for the film-makers what the soldiers themselves thought of the films. The film testers emphasized that they did not make the films and their feelings would not be hurt if the men were critical. All questionnaires were anonymous, but the men who had used the push buttons were asked to write their push-button number on their questionnaire.

The questionnaire started with an overall question about whether or not the men liked the movie and then went on to more detailed questions asking them to rank the successive episodes from most interesting to least interesting, and to tell what impressed them most, what they disliked if anything, what they thought should be taken out, how they thought the film could be improved, and so forth.

3. CONDUCT OF THE GROUP INTERVIEWS

All of the audience members filled out the questionnaire after a film showing, but only the 20 men who had used push-buttons were interviewed. All 20 were interviewed as a group, with as informal a setting as it was possible to achieve The usual practice was to begin with nondirective questions such as "What did you think of this movie?" Unsolicited comments generally determined the direction of the questioning at the outset Where relevant, the polygraph record was referred to and either the group was questioned about sequences that were liked or disliked by the majority, or individuals were questioned about their own responses. In addition, certain planned topics for interviewing were prepared, and if these were not spontaneously mentioned by the men, questions about them were specifically raised by the interviewer

During the course of the studies it was found convenient to prepare still pictures of distinctive portions of the films These could be used to make sure the interviewer knew what portion of the film a man was commenting on and similarly to identify for the men the portion the interviewer had in mind when he raised questions about specific contents. It was felt these "stills" also helped to reinstate the film content where the men's memories would otherwise be vague.

All questions asked by the interviewer and the answers and comments by the men were recorded stenographically.

Representative Results

Some detailed results of one of the studies of these films will be presented, followed by a summary of the inductive generalizations about the men's reactions that appear to have possible significance for the series as a whole Actually not a large enough number of studies were carried out for these generalizations to have a great deal of validity as inductive generalizations.[6] The "conclusions" that were stressed in the reports to the film-makers were ones that had considerable plausibility in addition to having been revealed as potential generalizations by the audience's evaluations In other words, the reasonableness of a finding carried considerable weight in determining whether it was incorporated as a guiding principle in future productions However, the procedure, if carried out over a

[6] Four studies were carried out, one on each of the odd-numbered issues of the first eight films produced in the series

large enough number of films, appears to be a highly efficient one for arriving at useful generalizations and is well adapted to product improvement of a series of fairly homogeneous films. Each production principle tentatively adopted and used in succeeding films is automatically checked and modified or discarded depending on its actual degree of generality.

1. RESULTS OF THE STUDY OF ISSUE 5 OF "THE WAR"

Issue 5 serves as a fairly typical example of the series tested. The contents were the following:

Episode a "*Finishing School*" This showed training of amphibious (Ranger) troops in invasion tactics such as embarking and disembarking and advancing under live ammunition

Episode b "*Back Home*" This showed machine tools being produced by a small family shop in Connecticut which was awarded the Navy "E" for its contribution to war production.

Episode c "*I Was There*" This featured an Army Nurse's eye-witness account of the bombing of Manila and the fall of Corregidor, with action shots to illustrate part of her commentary The whole story was told in the nurse's voice and was introduced and concluded by shots of the nurse telling her story

Episode d "*First Birthday*" This documentary reviewed the founding and first year's activities of the Women's Army Corps and depicted the training and duties of Wacs.

Episode e. "*Snafu*" This was an animated cartoon showing the adventures of a comic character called "Private Snafu," whose complaints about Army routine and duties led to his magically being put in charge of the camp, with disastrous consequences.

Figure 1 on page 110 shows the overall questionnaire ratings given by the men in ranking the five episodes as units. Figure 2 on page 111 shows the moment-by-moment record of instantaneous "like" and "dislike" reactions as cumulated from the polygraphic records. In cumulating the data, a "like" reaction was scored if a given individual "like" button was depressed at any time during the recording interval (6 seconds), regardless of whether the pressure was continuous or intermittent.

Some of the results that can be seen in these two charts represent findings that were verified with other issues and therefore have at least some status as inductive generalizations. These are described below

If Figures 1 and 2 are compared, one of the most notable observa-

tions is the discrepancy between the program-analyzer record of the interest shown in the "Snafu" cartoon and the interest in retrospect as revealed by the questionnaire The cartoon was highest in interest in terms of the immediate reactions but ranked only third in terms of the questionnaire responses of the same men. An equivalent result was obtained in the one other film tested which had a "Snafu" cartoon This was not due to any obvious difference in the frame of reference for the questionnaire ratings as compared with the like-dislike responses recorded during the showing, although the wording of instructions was necessarily not the same in the two cases and may actually have stressed different kinds of judgments. The questionnaire item explaining how the rating was to be done was phrased entirely in terms of which episode they thought was "most interesting," "next most interesting," and so forth, whereas the instructions for using the push-buttons, while partly phrased in terms of interest, tended more to use "like" and "dislike" as the key expressions. Perhaps the word "interesting" connotes some measure of utility of the material whereas the "like-dislike" emphasis in the case of the push-buttons suggested enjoyment without regard to utility. Some suggestive comments written in by the men

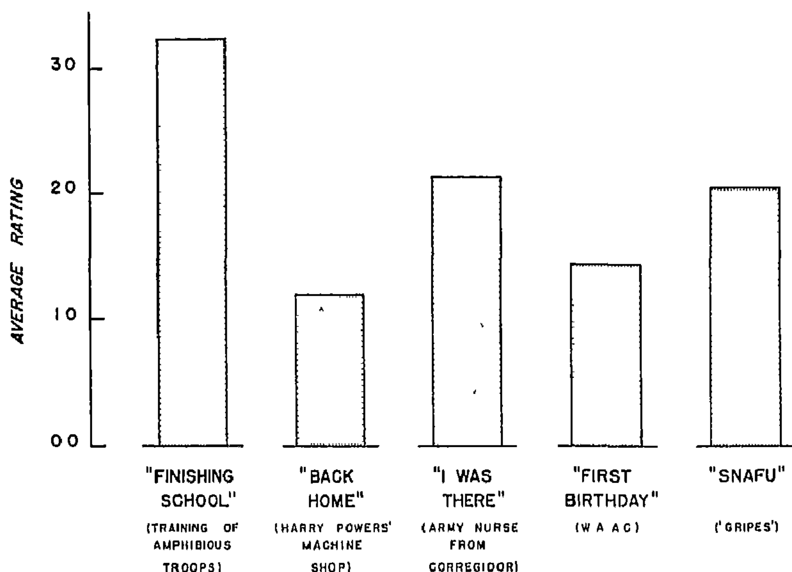


Figure 1. Questionnaire ratings of the five episodes in Issue 5 of "The War" The men were asked to rank the five episodes in the film as "best," "2d best," etc Ratings for each episode were then scored as follows "best," 4 points, "2d best," 3 points, "3d best," 2 points; "4th best," 1 point, "worst," 0 points The values plotted are the average scores for the men whose polygraph records are averaged in Figure 2

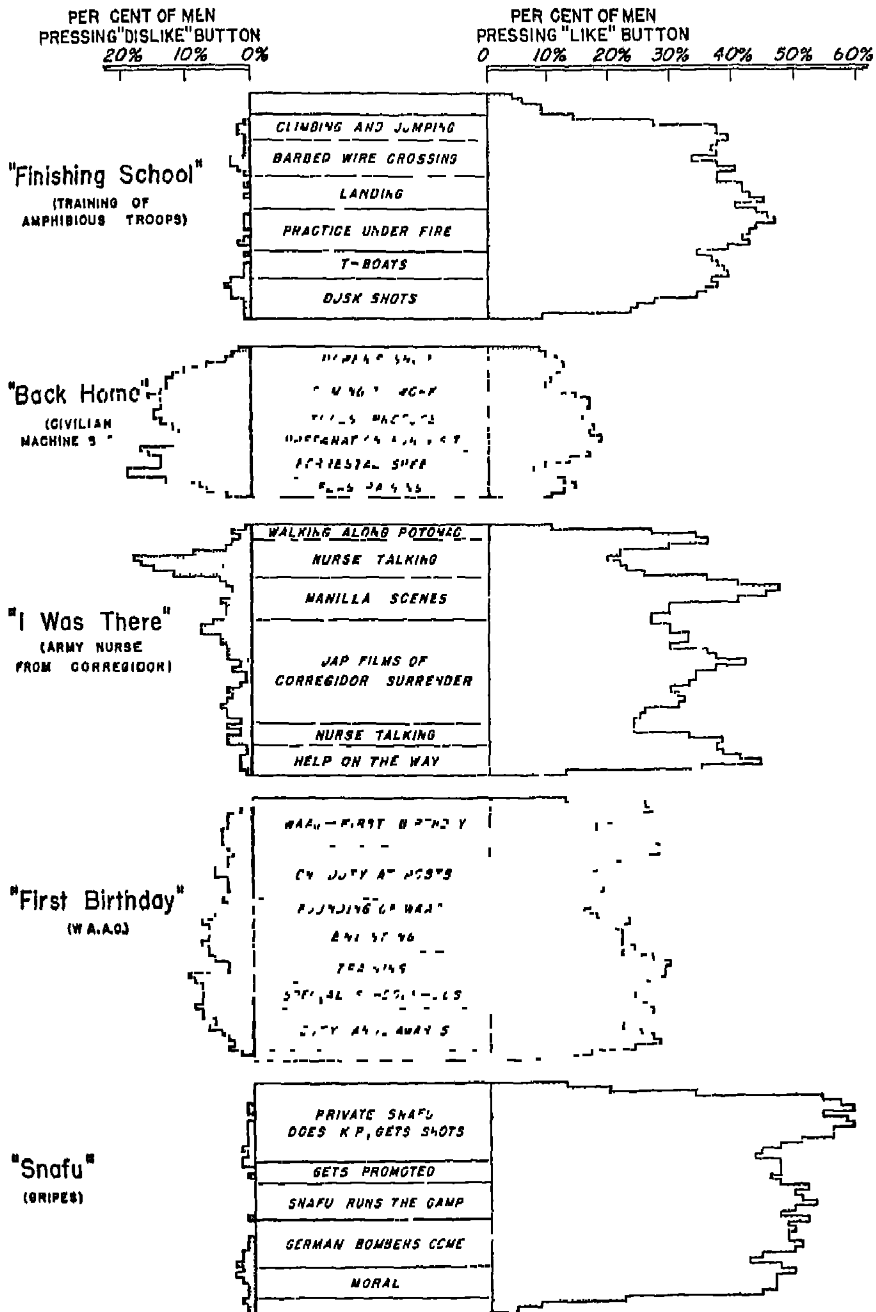


Figure 2 Continuous polygraph records of the group "likes" and "dislikes" during showing of issue 5 of "The War."

indicate a different frame of reference in the retrospective evaluations given on the questionnaire items.

The comedy should be cut out because we should have our minds on the job we have to do

Snafu does not go with the rest of the picture.

Parts of Snafu too much on the comedy side Not realistic enough

These and other comments suggest the possibility that, in retrospect on the film as a whole, a serious instructional value to most of the material was sensed, and to some men Snafu seemed out of place by comparison even though it had been enjoyed while it was being viewed. That this reaction was not unanimous, however, is illustrated by the following comments from the interviews

A cartoon to amuse one with a very necessary Army moral to it

A thing like that is comedy and is a very good lesson and keeps a fellow interested, too You learn something and it's a little different than what he usually sees in training films, and it is also a very good lesson

Further examination of Figure 2 reveals another finding that was typical of results obtained in the other studies—disapproval of close-ups of a person speaking. It can be seen in the figure that the lowest "like" point in the program-analyzer record and the highest "dislike" point came during a sequence of a speech by the Secretary of the Navy, and the low points in the "I Was There" episode came during shots in which the nurse who narrated the episode was merely speaking in front of the camera. During other portions of the episode she was not shown speaking, but instead her voice narrated scenes from Manila, Bataan, and Corregidor. This low level of "like" responses during close-ups of a person speaking—even when the verbal content was much the same as during narration of action—was found in the other films and was revealed in comments by the men in the questionnaires and the interviews as well as in the program-analyzer record.

[There should be] a little bit less of close-up of their talking and more action pictures

. . . these two Army nurses were sitting there and their conversation had no point to it. Mentally I was fidgeting around waiting to see some action

I think we had a majority of speeches since we are in the Army. We don't like to hear speeches [In reference to the shots of Forrestal's talk]

By contrast with the reaction to the close-ups of the nurse telling her story, the portions of "I Was There" where the narration was illustrated with action shots reached relatively high points on the program-analyzer record, and the episode as a whole was ranked second in retrospect on the questionnaires.

The other outstanding results shown in Figure 2 are the popularity of the first episode, especially in retrospect, and the unpopularity of the second episode, which ranked worst both in immediate judgments on the program-analyzer and in retrospect on the questionnaires.

The first episode, while it dealt with training, was concerned with simulated combat, including live ammunition. In all instances the men liked action shots from real combat, especially with reference to the instructive value of seeing the "real thing" The realistic training sequence apparently capitalized on this reaction

It's exciting It gave me a sense of what was coming

We may be doing that ourselves Know what it is all about, get a view of it now, and when the time comes, we will know what to do

The negative reaction to the "Back Home" episode was not one for which opportunity was provided for replication in other films. The consensus of the men's comments seemed to be that there was too much emphasis on what they thought to be pseudo-patriotism in a group - the civilians which was not exposed to the hardships of Army life and at the same time was being well paid for its "patriotic" efforts While no opportunity to check the generality of this interpretation was possible, it appeared to have considerable probability from other sources of information about soldiers' opinions. Illustrative comments on the episode were.

That rubs a soldier the wrong way. They don't like to see civilians getting credit I feel a little prejudiced, as every soldier does

Everybody has a brother that is working in a plant that has an Army "E" flag. It is just done for publicity purposes, and it's purely propaganda.

I think that is Army "hokum" We are at war, and everybody should do his duty, whether in the Army or not They are getting $90 and $100 (per week) for the work they are doing They are getting well paid for it.

2. ATTEMPTED GENERALIZATIONS FROM PARALLEL STUDIES OF SEVERAL ISSUES

The fact that each issue of "The War" was constructed according to a fairly consistent pattern afforded a basis for comparing different presentations of similar types of material, thus providing an opportunity to check on the generality of the conclusions from single studies. As already mentioned, four issues were studied, including the one just described. In each issue, one of the five episodes was always an eye-witness report of actual action with a commentator who had "been there", another was an additional account of military action, another was concerned with the construction, testing, or repair of equipment; and another was a humorous episode, involving either a comic dialogue or an animated cartoon. This similarity in the pattern of episodes was not specific to the four issues studied but was the projected plan of all future issues. Further, the recurrence of various types of action, commentary, visual material, and subject matter *within* various episodes provided somewhat more than the four replications of content obtained from testing four parallel issues.

The following aspects of men's reactions were found to obtain in every episode or issue which was available for analysis The first two points noted below are illustrated by the program-analyzer records in Figure 3.

"On-the-spot" narrator. Audiences of the type studied—enlisted men in training—showed considerable interest in accounts of action as narrated by a commentator who had actually "been there" However, there appeared to be considerable differences, in terms both of the program-analyzer data and of men's retrospective judgments, in the interest shown in eye-witness accounts, depending on whether the narration was accompanied by action scenes or whether it was simply a close-up of the eye-witness telling his story.

Scenes of action vs. scenes of talking· Where the pictures on the screen showed only the narrator speaking, interest tended to be relatively low; when real shots of action were used to illustrate what the commentary was describing, interest tended to be high This was suggested in the study of the first issues by comparison of reactions to episodes in which the only pictures were those of the commentator, as against episodes in which a considerable number of action shots were used to illustrate the story The preference for action shots was even more clearly seen in subsequent issues where com-

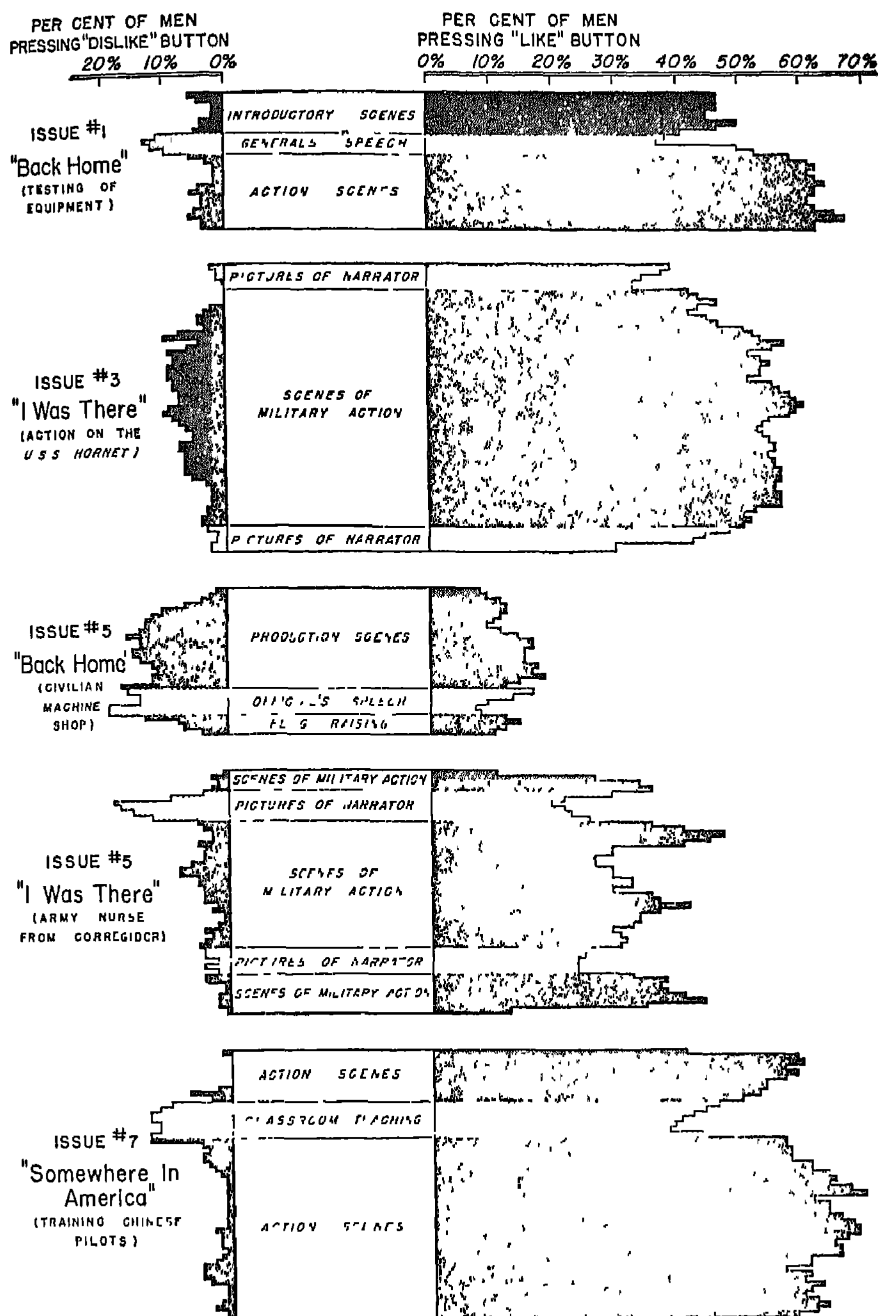


Figure 3. Polygraph records of group "likes" and "dislikes" for five episodes in which comparisons of action and talking scenes could be made within the same episode.

parisons could be made *within* episodes which included both shots of the narrator speaking and illustrative action shots described by the narrator. A related and also recurrent characteristic of men's likes and dislikes found in the studies was the unpopularity of official speakers and of speechmaking generally on the screen. This also was reflected both in the program-analyzer records and in the comments and ratings men gave in their interviews and questionnaire answers. Figure 3 shows the program-analyzer records for five episodes in which internal comparisons of action and talking scenes can be made

The results with respect to speeches and close-ups of the narrator talking may well have applicability for teaching films in general. A not infrequent practice of Army training films was to devote portions of the film to showing an instructor in close-up while he proceeded to explain the points in lecture fashion This might be an effective method if the speaker is a very well-known and prestigeful or relevant personage who could not be presented in person and would be generally available only through the medium of motion picture. But if the speaker is simply an unknown instructor or an actor playing the role of instructor, this device of showing him lecturing in close-up—while it is a very simple and inexpensive expedient in production—probably does not at all capitalize on any of the special characteristics of film presentation.

Other points: Several other characteristics of men's likes and dislikes appeared to be fairly general, at least to the extent that they recurred in different film episodes. One of these was narration by the commentator purporting to parallel what was shown in the film without actually doing so, or otherwise not appearing in keeping with the film. For example, in a picture showing activities of Japanese soldiers, the commentator's remarks noted the "cruelty" of the Japs, while actually the action of the Japanese soldiers as shown did not appear to the men to be more cruel than the behavior of American soldiers under comparable circumstances Also tending to evoke unfavorable criticism from soldier audiences, both in the studies of "The War" and in evaluations of the "Why We Fight" series of orientation films, were scenes which the men regarded as "old stuff." Thus, newsreel shots which they had seen previously, even if relevant to the material currently being shown, were criticized by some men as being a repetition of what they had seen before. (At the same time, other men felt newsreels helped to give the film an air of authenticity.) Any scenes depicting Army life

which the soldiers felt were unrealistic in terms of their own experience were quite consistently disliked by soldier audiences

The most consistently *liked* type of material was that involving action shots either of training or military operations, especially action which appeared to be highly realistic. This popularity seemed to stem from a motivation on the part of the men to find out what to expect their own future experiences to be like.

3. COMPARISON OF AUDIENCE-EVALUATION RESULTS OBTAINED BY PROGRAM-ANALYZER AND QUESTIONNAIRE

It is of methodological interest to compare the results of evaluations as given by the men's immediate reactions on the polygraph record with their retrospective judgment in terms of questionnaire answers or interview comments. This was done for evaluation of complete episodes, which were rated as units in retrospect in addition to the continuous judgments recorded throughout on the program-analyzer Differences in the relative evaluation accorded different episodes by the two methods does not, of course, necessarily mean inconsistency in men's judgments, since the two techniques may measure somewhat different things. In addition to the fact that in one case evaluation is immediate and in the other case retrospective, it is possible that there was a difference in the type of evaluation which men were making. As noted earlier, in giving their reactions with the program-analyzer, emphasis was placed on judgments of "like" or "dislike," whereas in the questionnaire evaluations, the wording of the ranking question was in terms of how "interesting" each episode was. It appeared from men's comments that they often considered such factors as how appropriate or valuable they thought the material was for soldier audiences in general (in spite of the attempt, in giving the instructions, to avoid this type of evaluation) This may account for the fact that in the two film issues containing animated cartoons, the cartoon episodes were rated appreciably lower in terms of questionnaire ratings than in terms of reactions shown by the program-analyzer. The correlation between average program-analyzer rating and questionnaire ratings for the five episodes of each of the four films studied is shown diagrammatically in Figure 4.

EXPLANATION OF FIGURE 4

The percentages plotted for the program-analyzer evaluations are the average net percentages of favorable reactions for each episode,

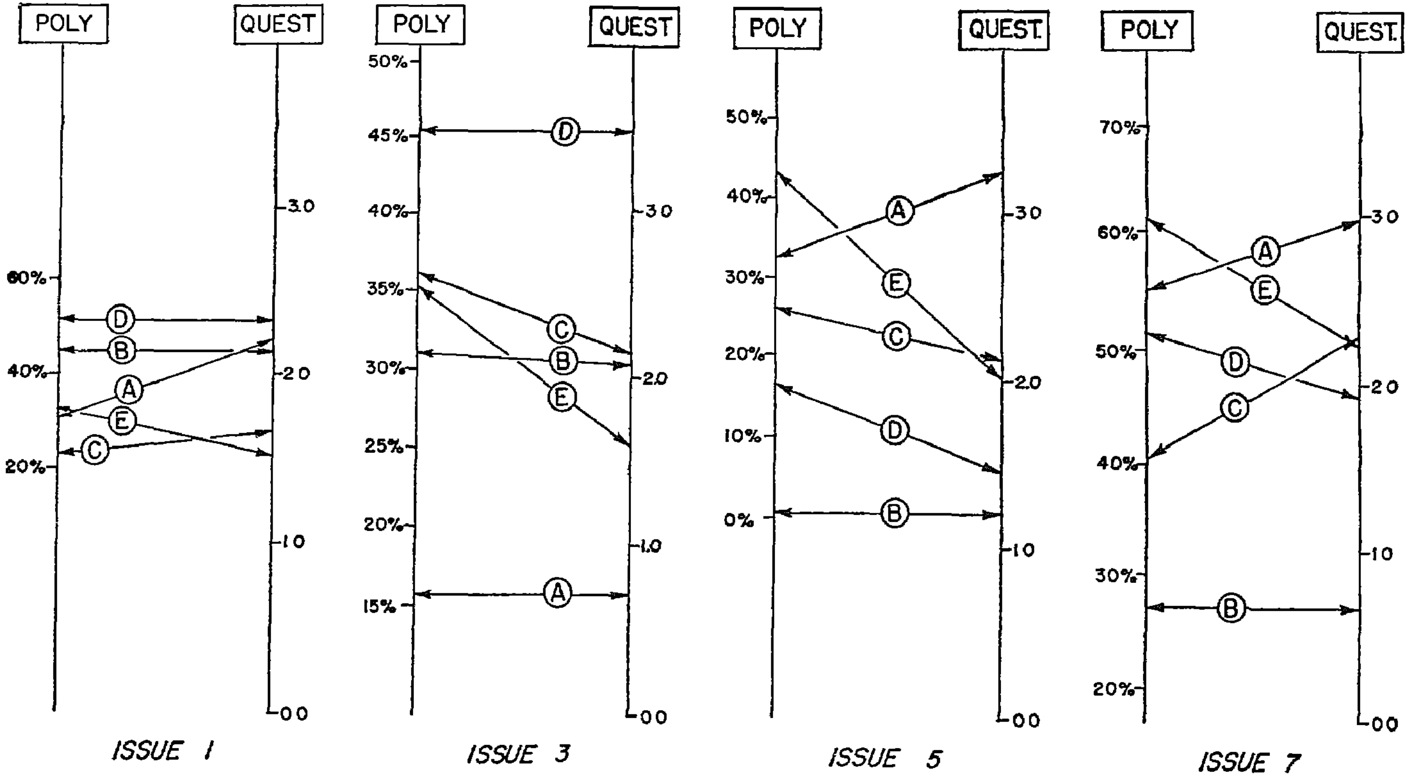


Figure 4 Comparison of "Program-Analyzer" Data and Questionnaire Ratings of various episodes (A-E) in Issues 1, 3, 5, 7 of "The War."

obtained by subtracting "dislike" from "like" averaged over the total time interval for the episode. The questionnaire ratings were those obtained in answer to the question asking the men to rank the five episodes of each issue from best to worst. Ratings for each episode were then scored with four points for first place, three points for second place, two for third, one for fourth, and none for worst. The values plotted are the average scores for the total audience of each film. Exactly comparable results for program-analyzer and questionnaire evaluation would give lines that connected the corresponding measures for the various episodes without crossing.

CHAPTER 5

EXPERIMENTAL COMPARISON OF ALTERNATIVE PRESENTATIONS

IN THE experience of the Experimental Section, one of the most frequent and insistent requests was for research to answer questions as to the relative advantage of one class of products as compared with another. "Which is more effective in presenting orientation materials on the radio, a 'documentary' (dramatic) or a commentator?" "How does a film-strip compare with a sound-scored motion picture?" "Isn't a film always superior to a lecture?" These were the kinds of questions on which film and radio producers wanted research information.

Such questions could have immediate practical significance, as when the best of two or more existing products must be chosen because only one can be used. Here only an empirical answer is needed, there is no problem of generality other than the adequacy of the sample of men studied and the representativeness of the conditions in presenting the products experimentally Such research can serve a very useful function of guiding an organization as to the best of available means for carrying out its program.

However, the questions were rarely asked in the form of an empirical comparison of alternative *existing* products, one of which was to be selected Rather, as can be seen in the examples above, they were phrased in general terms applying to a whole class of products. When thus stated, the questions inherently involve many serious problems concerning the generalizability of specific comparisons of two existing products (no matter how well the comparisons may be conducted in respect to sampling and experimental control) For example, the question, "Which is the better teaching medium, a film or a lecture?" immediately raises further questions such as. "*What* film?" "Who will be giving the lectures—an expert speaker or a novice?" "For what kind of audiences?" "For what kinds of subject matter?" Many other relevant questions could

also be raised, and the research problem—to be properly answered—would have to be expanded into an experimental analysis of many interacting factors involved in lecture presentations and in film presentations. It is unlikely that a definitive answer could be given to the original question in its unqualified form.

Nevertheless, several studies aimed at questions taking this relatively unqualified form were carried out, partly because of the insistence of the requests and partly to get leads that would provide a beginning for an analysis of the factors underlying the effectiveness of various media. Of the studies that were carried out, three seem to have general interest from the standpoint of providing such leads. The first to be reported is a comparison of a motion picture versus a film-strip presentation of the same subject, the second is a comparison of a "commentator" radio program versus a "documentary" or dramatic radio program as a means of changing opinions on an orientation subject; and the third is a comparison of introductory discussion versus review as a means of increasing what is learned from a film.

The scientific status of these studies should be clearly delineated They are carefully controlled experimental studies of two particular alternative products, but as far as generality is concerned, the results are generally restricted to providing a basis for *hypotheses* about the factors that distinguish the two Many instances can be found in the literature of teaching-film research in which two different presentations are compared and where, from the results of this comparison, sweeping generalizations are made about the two classes of communications represented or about the factor alleged by the experimenter to be the distinguishing feature of the two. The risks involved in such overgeneralizations are obvious, and the studies reported in this chapter should be regarded as experimental comparisons of the effectiveness of specific alternative presentations rather than as experiments with controlled variation of the factors that appear to distinguish two alternative classes of presentation.

The Comparative Effectiveness of a Sound Motion Picture and a Film-Strip Presentation

1. GENERAL DESCRIPTION OF THE STUDY

This study was designed to determine the relative effectiveness of a sound motion picture as compared with a "film-strip" presentation as educational devices in a basic training subject. (A "film strip"

is comparable to slides, except that successive "stills" are developed as positives on a strip of film; these are used either in conjunction with a synchronized recording or with explanations by an instructor) The purpose of the study, as conceived by those responsible for the request from the military Training Division, ASF, was to compare the teaching effectiveness of training movies, which are expensive and time-consuming to produce, with that of film strips, which can be quickly produced with a minimum of equipment and cost. Their belief was that film strips were close enough in effectiveness to movies that the time and expense factors were the more important ones to consider. On the other hand, the general feeling in training circles at the time of the study was that sound movies are far superior to film strips.

The instructional topic used in the study was the elementary principles of map reading. This choice of subject was dictated in part by the availability of a standard, widely used Army training film and of a film strip presenting the same topic.[1] The film used is quite typical of a large number of films on technical and semitechnical subjects and was, according to distribution figures, one of the most widely used Army training films.

The choice also involved considerations of feasibility in measuring the effects of instruction for large groups of men. A "paper and pencil" test was considered to afford a sufficiently practical and realistic test of the abilities involved in a subject such as elementary map reading. (In contrast, a practical test of the effects of film instruction on many other subjects, such as rifle marksmanship, would of course have to include shooting records or similar measures of actual performance in the use of equipment.)

The basic plan of the experiment was to show the map-reading film to one group, while at the same time another group was taught the same subject by film-strip presentation. About half a day after seeing the film or film strip, each group was given a pencil and paper test designed to measure knowledge of the subject matter that had been presented. The same test was also given to a control group that had received no instruction The test approximated the types of response involved in utilizing the instruction in actual performance in map reading

The film was tested on a group of trainees at a Quartermaster Replacement Training Center. The men were slightly higher in in-

[1] The sound-film used was the U S Army subject TF 5-12, the film strip was the Army film strip FS 5-1.

telligence and in amount of formal education than the Army as a whole. None of them had received any previous Army instruction on the subject of map reading.

2. EXPERIMENTAL PROCEDURE AND DESIGN

Selection and balancing of the groups to be given each form of instruction. As indicated above, the essential method of comparison was to select groups that were as closely identical as possible with respect to all relevant factors except the type of instruction they had received, and then to compare the scores of these groups on a test of the material covered. The effect of each form of instruction is indicated by the differences between the mean score for each instructional group and the mean scores made by the "control group" which received no instruction on the subject. None of the men in the experimental groups were told in advance that they would be tested on the material covered.

As in studies of orientation films, the sample was selected in company units rather than on an individual basis From company rosters giving the AGCT classification and educational level of each man, two companies to be given each form of instruction were chosen in such a way that the different forms of instruction would be applied to groups of similar composition. The final samples used in analysis were exactly equated for AGCT class and educational level achieved.

The schedule of instruction was arranged so that the groups receiving the two different kinds of instruction would be balanced as closely as possible with respect to average length of time in training, time at which instruction was carried out, and kind of activity preceding and following instruction. Similarly, these factors were balanced as closely as possible between the control group and each of the two instruction groups.

Details of Procedure for the Two Forms of Instruction

Motion picture. The men who received sound-film instruction were shown the standard Army training film on map reading during the course of an hour's session of training-film showings in a post theater. One company of men saw the film in the early afternoon, the other group early in the morning The map-reading film required 43 minutes showing time. In accordance with usual practice at this and other replacement training centers, two additional short films (on a different subject) were also shown to complete the hour's session of films. These two short films preceded the map-reading

film in the morning session and followed it in the afternoon session.

Film-strip The four platoons of one company received instruction in the morning; the platoons of the other company met in the afternoon. Thus half of the men both in the film-strip and movie groups received morning instruction, and half received afternoon instruction. The film-strip instruction was given in recreation buildings to only one platoon at a time, each platoon being taught by a different instructor. This was desirable in order to keep the size of groups below the maximum generally considered to be feasible for film-strip instruction, and to simulate as closely as possible the actual conditions of use in field installations. The film-strip instruction for each platoon covered a period of approximately 50 minutes, or just slightly more than the time required to show the training film to the other groups.

In order to control the way the instruction was given and to obtain greater comparability of the material covered by various instructors, each instructor was given a schedule of the procedure to be followed and an outline of the major points that the film-strip instruction was to cover Each instructor also previewed the film strip, and received copies of the "Notes on Map Reading," issued in connection with the film strip. Since the film and film strip differed somewhat in the emphasis given to various topics, these notes were edited slightly in order to make the film-strip presentation more nearly parallel to that of the motion picture.

These arrangements were desirable to insure some degree of uniformity in the use of the materials by various instructors. They also served to approximate roughly, in the opinions of training officers, the amount of supervision and assistance that instructors would normally be expected to receive in a Replacement Training Center operating on the basis of a centralized training program. All instructors were, however, requested to prepare their instruction independently. The instructors used were selected from a large pool of available officers in such a way as to approximate "average" teaching ability as indicated by ratings made by their immediate superiors.

The instructors were aware of the purpose of the experiment and were assured in good faith that the results of tests would not be used to reflect credit or discredit on the instructors as individuals, but were designed only to test the *method* of instruction. It was made clear to them that, accordingly, they should prepare and carry out their instruction with the same amount of effort and care—no more

and no less—as they would normally apply to regularly scheduled instruction. Finally, the instructors and all other relevant personnel involved in the study were cautioned against revealing the purpose of the experiment to any of the men serving as subjects and they were shown the necessity of treating all of the instruction exactly as if it were part of the regularly scheduled training program.

"Fairness" of the comparison between sound-film and film-strip. It is apparent that various alterations in details of procedure noted above might have altered the relative effectiveness of the two types of presentation. The film-strip presentation could, for example, have been held to exactly the same time limit (43 minutes) as was required to show the film; or the showing of the two additional short subjects to the film group, which might introduce some interference effects, could have been omitted, or more expert instructors could have been used for the film-strip presentations. Choice of the particular conditions used was, however, based not on an attempt to provide ideal or optimal presentations for each medium, but only on an attempt to approximate prevailing conditions under which each type of instruction was likely to be used in typical Army training programs.

3. CONTENT AND ADMINISTRATION OF THE TEST USED

The test used consisted of 39 multiple-choice items, each requiring the men to select the correct answer out of four answers printed on the blank. For example.

The direction in which a compass points is called . (check one)

- ☐ true north
- ☐ grid north
- ☐ azimuth north
- ☐ magnetic north

Since the film instruction was expected to impart, in the main, only the essentials of the subject, the test was composed almost entirely of questions designed to find out how well these *essentials* had been learned. The questions did not therefore, test the extent to which men had learned to make relatively complex applications of the material shown, such as, for instance, the construction of profiles from a contour map. Half of the questions involved verbal knowledge of facts, terms, or principles, the other half required the men to refer to simple maps and diagrams printed on the test blanks.

Since the test covered only factual material, it was not necessary

to camouflage the purpose of the test as in the studies of orientation films, in which opinions as well as facts were involved. In the present case it was administered *as a test*, the men being told it was to find out how well they had learned how to read maps and being asked to sign their names to their test paper. This tended to maximize test motivation. Having the papers signed also permitted the experimenters to obtain AGCT scores from company rosters as an additional item of background information

As mentioned earlier, no prior announcement of the test had been made. Officers were trained to administer the tests in a standardized manner. The testing was conducted in recreation buildings, each test group consisting of two platoons of men. If instruction had been received by a particular pair of platoons in the morning, the testing of that pair of platoons was performed the same afternoon, if instruction was given in the afternoon, the men were tested the following morning.

4. OVERALL EFFECTIVENESS OF THE TWO INSTRUCTIONAL METHODS

Figure 1 summarizes the overall relative effectiveness of the sound-film and film-strip instruction studied by showing the average test score received by the men in each group. The test scores are expressed as the *average percentage* of correct answers

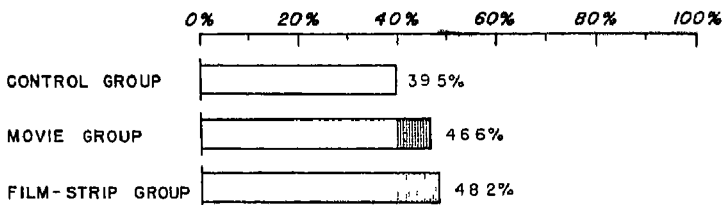


Figure 1 Average test scores received by men in each group (N = 253 in each group)

The data show reliable evidence of learning from both forms of instruction, but there is no reliable evidence that either form was superior to the other.[2]

The comparison shown in Figure 2 indicates that the same results are also obtained when more intelligent men (AGCT Classes I and

[2] The critical ratios of the mean difference between control group and either experimental group are larger than 4 0, indicating less than one chance in a thousand that such differences would be obtained by chance The difference between the film-strip and movie groups, however, is only about 1 3 times its standard error, and differences this large in one direction or the other would be expected to occur by chance about one time in five if the two presentations were actually equally effective

II) and the less intelligent (AGCT Classes III and IV) are considered separately.[3]

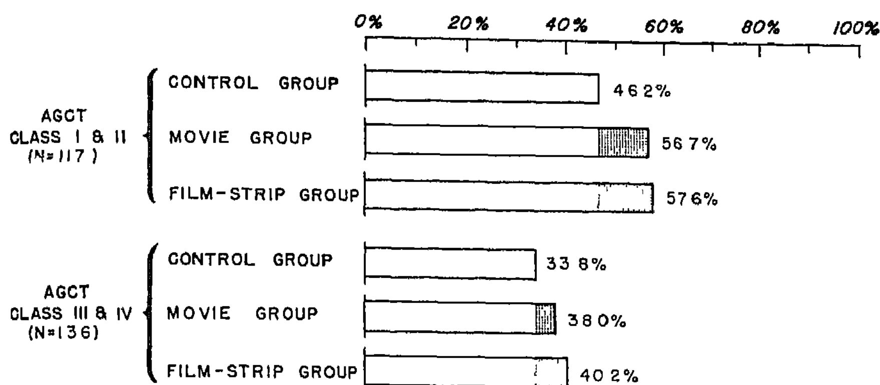


Figure 2. Average test scores received by men in each group (shown separately for men with "higher" and "lower" intelligence scores)

5. COMPARING EFFECTIVENESS FOR DIFFERENT TOPICS

The relative effectiveness of the two presentations in conveying material was compared for each of the main topics covered in the instruction. The bulk of the subject matter fell into three main categories: (1) distance and direction, (2) "azimuths," and (3) contour maps and elevation. Table 1 shows the average test scores on these main subdivisions of the subject matter for men in each instructional group. The test score here is the average percentage answered correctly of those items dealing with each main topic.

TABLE 1

AVERAGE TEST SCORES ON MAIN SUBDIVISIONS OF SUBJECT MATTER

	SUBDIVISION OF SUBJECT MATTER		
	Distance and direction (11 test items)	*Azimuths (11 test items)*	*Contours and elevation (11 test items)*
Control group	46.5%	37 2%	33 5%
Movie group	49 5	41 1	48 5
Film-strip group	53 9	42 5	46 9

[3] The critical ratios of the differences between control group and either experimental group for the high and low intelligence subgroups compared are in all cases larger than 3 0. The critical ratios of the differences between film-strip and movie groups, however, are only about 1 4 for AGCT Class III and IV men and 0 7 for AGCT Class I and II men

These data show no statistically reliable superiority for either experimental group over the other for the second and third of the three main topics considered. The mean difference of 4 4 per cent in favor of the film-strip group on the first topic ("distance and direction") is reliable at about the 01 probability level. Essentially the same picture, as far as direction of differences between film strip and film for various topics is concerned, was found for the low AGCT men as for the Class I and II men

6. COMPARATIVE EFFECTIVENESS FOR SPECIFIC POINTS

A comparison of the effectiveness of the two presentations in getting across *specific points* covered by both presentations revealed few suggestions as to educational advantages or disadvantages inherent in either of the two media. For some specific points in which one presentation or the other was superior in effectiveness, the differential effectiveness appeared to be the result of differences in the particular device that happened to be used to present the point, rather than being a function of any inherent difference in the two media as such For example, in attempting to teach men to use a graphic scale to measure distances on a map, the movie used the rather unrealistic device of showing the distance scale being lifted up out of the corner of the map and applied to the map distance to be measured. The film strip, more realistically, illustrated the use of a strip of paper to transfer map distance to the scale for measuring. It was interesting to observe that the film-strip presentation appeared to be the more effective in increasing the already high proportion of men who were able to measure correctly the distance between two points on a map. This result is shown in Figure 3. (The high initial level of performance shown for this particular point is doubtless due to familiarity with the scaling procedure already gained by many individuals in the course of their schooling.)

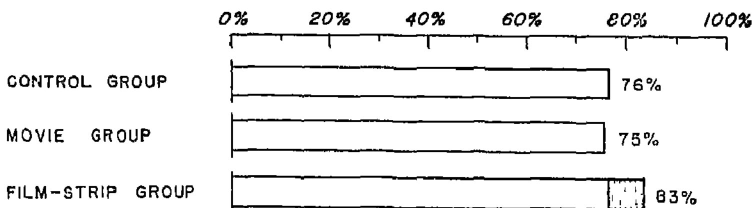


Figure 3 Proportion of men who knew how to use a distance scale to measure distances (average of 2 test items).

This finding suggests that, in either medium, reliance should not be placed on the audience members to make for themselves the transfer from a general explanation to the specific details of performance. Thus in this instance the presentation which showed precisely what to do to measure distance was the more effective one. (The data also suggest that in this instance the superiority of the more explicit method was greater for the less intelligent men, although the second order difference between AGCT groups is not large enough to be reliable.)

Most of the differences found in effectiveness on other specific points appeared, similarly, to be a function of particular presentation devices which could be used in either medium. However, there was one outstanding case of a differential effect which probably illustrates a real difference between the media, and an advantage for motion pictures over projected stills in teaching certain kinds of material.

In showing the measuring of contour interval, the motion picture used a moving viewpoint (from horizontal to vertical) to show how differences in elevation of terrain are projected onto a map in the form of contour lines. Here the movie was more effective than the film strip, which could not use a comparable device. The comparative data are shown in Figure 4.

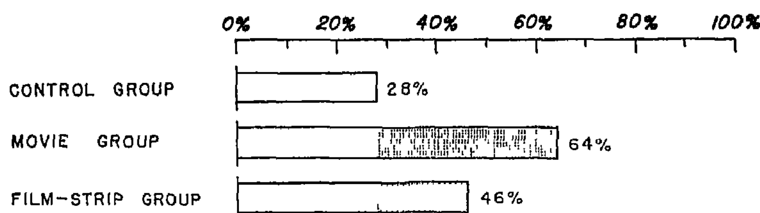


Figure 4 Proportion of men who knew what the space between contour lines represents on a map

Here the large effect of the motion picture appears to be due to the fact that in a movie the object being photographed can remain still while the angle from which it is viewed is progressively altered. Thus we have the hypothesis that where familiarity with three-dimensional spatial relationships is important in learning the material, movies have an inherent advantage that cannot easily be equalled by film strips.

Perhaps the most interesting aspect of the results of this study is

the fact that on the whole the two presentations were about equally effective. But, as has already been stressed, this finding tells us little about the inherent potentialities of the media of still versus moving pictures as components in presenting instruction. Since the study did not employ controlled variation of the factor of motion with other factors held constant, the results merely show that this particular film strip was on the average about as effective as this particular movie. However, this finding does have a practical bearing on the assumption sometimes made that motion pictures *always* provide better instruction than that attainable with the less costly film strip. Obviously, a single exception such as that provided by the present study suffices to disprove such a generalization.

The Comparative Effectiveness of "Documentary" and "Commentator" Radio Presentations

The study reported in this section furnishes an additional example of the kind of research in which specific examples of two media are compared. As in the study just described, the results are strictly applicable only to the specific presentations studied although the data may suggest some hypotheses as to inherent advantages or disadvantages of the media represented by these presentations.

At the time this study was conducted, a topic of debate among technicians and producers of informational radio programs concerned the relative effectiveness of the dramatic "documentary" and the commentator type of program. In the documentary, use is made of actors, sound effects, and background music to present factual material by "acting out" the underlying events In the commentator type of program an "expert" in a position to know and interpret the facts discusses the topic.

The preponderance of opinion among radio personnel appeared to be that the documentary was far superior to the commentator program, but a few believed the latter would be equally or more effective at changing men's opinions. In this controversy the main argument on the side of the documentary program concerned the factor of interest It was alleged that the audience would pay closer attention to a dramatic show because of its greater interest and would therefore learn more from it, whereas they would be likely to pay less attention to a commentator. The argument on the other side of the case was that a dramatic program would not be taken seriously—it would be reacted to much as a "soap opera" or a dramatic show for entertainment purposes. Moreover, it was

alleged that such programs would be regarded as propagandistic, the musical effects being perceived as a means of influencing emotions and the use of actors being treated as evidence of the fictional and unauthentic nature of the material used. A further consideration was that a commentator program could be written and transcribed in one day, with a minimum of expense, whereas a documentary usually took longer to write, rehearse, and produce and involved an expensive cast of actors, some "live" music, technicians to "dub in" recorded music and sound effects, and so forth.

An experimental comparison of the two types of programs was carried out in conjunction with a study using controlled variation of content that is reported in Chapter 8. Four programs were prepared, two each of the commentator and documentary type.[4] The two forms of each type of program differed with respect to a content variable that is not the concern of the present treatment (presentation of arguments on "both sides" vs. just on "one side" of a controversial issue). Only those aspects of the study relevant to the comparison of the commentator and documentary types of presentation will be reported in the present chapter.

1. NATURE OF THE RADIO PROGRAMS

The radio transcriptions used were prepared specifically for experimental purposes by the Armed Forces Radio Service in consultation with Experimental Section personnel The subject of both the "commentator" and "documentary" programs was the same—the difficulty of the job ahead against the Japanese. The "message" of the programs was that there still remained a difficult job against Japan that would probably take at least two years after VE Day to accomplish, a message that turned out to be grossly incorrect but which in absence of knowledge of the atomic bomb appeared reasonable at the time of the study. The factual material in the program was obtained from official War Department and Office of War Information releases, and the message was in line with the informational policy of both agencies at the time of the study

The degree of comparability in the content of the two programs is perhaps best indicated by describing how the content was determined. An outline of the factual documentation was prepared by Experimental Section personnel. The two script writers, one for the commentator programs and one for the documentaries, used

[4] The writer for the commentator programs was Lloyd Shearer, the writer for the dramatic programs was Robert Lee

this outline as the source of their material Because the commentator programs were also being used as part of the material for the controlled-variation study referred to earlier, the writer of these programs adhered closely to the sequence of topics in the outline and was more restricted in his range of improvisation. The writer and producer of the documentary shows had a freer hand in the preparation of his programs, consequently the content of these programs differed from that of the commentator programs in various details However, these differential factors did not greatly influence the preparation of the programs. Both writers took on the job without any advance preparation of their own material, and they both followed fairly closely the outline provided for them.

2. EXPERIMENTAL DESIGN AND ADMINISTRATION

The experiment used the before-after design. One week before the presentation of the radio programs a "survey" was made in the outfits used in the study. This "survey" was ostensibly on the topic of redeployment from the European to the Pacific Theater of Operations and the point system for discharging veterans, but it permitted the introduction of questions about the probable length and difficulty of the war with Japan after VE Day in a very logical context of questions. Men's answers to these questions constituted a "before" measure to be used in ascertaining the effects of the transcriptions. One week after this "before" survey, the transcriptions were presented in orientation meetings as introductory material to be used as a basis for discussion of the topic, "How Long Will the War with Japan Last?" The orientation meetings, held in platoon-size groups, were conducted by second lieutenants selected from the available local personnel on the basis of previous teaching experience and trained as "orientation officers" for the experiment. At the outset of each meeting the officer explained that before the meeting was thrown open for discussion he would play a transcription of a radio program giving some of the facts on the Pacific War. These were the projected conditions for using such programs. A significant feature of these conditions was that the radio programs could not be tuned in or out by the men, rather, attendance was required as with orientation films

After the transcription had been played, the men were given a short questionnaire which constituted the "after" measurement in the experiment. The conditions of administering the "after" survey were made as different as possible from those obtaining in the

"before" survey; they were administered by different personnel, in different buildings, with different groupings of men, and with formally different questionnaire blanks. The officer told the men that the people who made the program wanted to find out the soldier's "own honest opinions" of the transcription and had prepared a brief anonymous questionnaire for the men to fill out. In addition to getting the men's opinion of the program, the questionnaire contained some "incidental" questions concerning opinions about the content of the programs—e.g., opinion concerning whether the program seemed overoptimistic or overpessimistic, and what the men personally thought would be the probable length of the war. These responses were designed to provide information on the effectiveness of the material, obtaining this "additional" information was actually, of course, the main purpose of the study. Men in control platoons who heard no program filled out a similar questionnaire about what they thought of the Army orientation programs in general, a questionnaire which also contained the "incidental" questions significant to the study.

The study was carried out among the personnel of eight Quartermaster Training Companies during the first two weeks of April 1945. Sixteen of the 32 platoons attended orientation meetings at which one or the other of two *commentator* programs was played, eight platoons heard one or the other of two *dramatic* shows, the remaining eight platoons served as a *control* and heard neither of the programs. This allocation of subjects, giving more cases to the commentator program, was in line with the primary purpose of the study reported in Chapter 8, which was the comparison of the controlled content differences between the two commentator programs The platoons were utilized in a manner so that any inter-company differences were controlled. In each of the eight companies one platoon served as control, two platoons heard one each of the two commentator programs, and one platoon heard one or the other of the two dramatic programs.

About half of the men surveyed were new recruits receiving their first military training, and about half were veterans who had been in the Army for some time and who were being trained for reassignment.

As has been noted in the foregoing description of the experimental procedures, two kinds of data were obtained for comparing the programs. the audience's evaluation of the programs and the before-

after measures of opinion for determining experimentally the programs' effects The former will be presented first.

3 AUDIENCE EVALUATIONS OF THE TWO KINDS OF PROGRAMS

Level of general interest. One direct and two indirect measures of general interest were contained in the questionnaire. On the direct measure the vast majority (over 90 per cent) of both groups of men —those who heard the commentator program and those who heard the dramatic program—found the program either *very* or *fairly* interesting. The question and results are shown below for the two types of programs

Question "Was this radio program interesting to you, or was it dull and uninteresting?"

	PROPORTION OF MEN CHECKING EACH ANSWER	
	Commentator programs (*N* = *524*)	*Dramatic programs* (*N* = *245*)
"Very interesting"	69%	71%
"Fairly interesting"	26	25
"Not very interesting"	3	3
"Very dull and uninteresting"	2	1
Total	100%	100%

It is apparent that no significant differences between programs were obtained with respect to this point

One indirect measure of interest was also obtained by asking the men whether in future orientation meetings they would like to hear other radio transcriptions of the same sort

Question "In future orientation-hour meetings would you like to hear recordings of radio programs like this one on other subjects connected with the war?"

	PROPORTION OF MEN CHECKING EACH ANSWER	
	Commentator programs	*Dramatic programs*
"Would like to hear them"	83%	88%
"Would not like to" or "Would not care one way or the other"	15	11
No answer	2	1
Total	100%	100%

As before, the slight difference in favor of the dramatic programs was not statistically significant.

Another indirect measure of interest was obtained by asking the men who heard a program whether they thought it was too long, too short, or about the right length. Very few of the men thought any of the programs were too long, a finding which may be interpreted as indicating a high degree of interest. The results are shown below, subdivided according to the actual length of the programs.

Question "How about the length of the program you heard today—was the program too long, too short, or about the right length?"

	PROPORTION OF MEN CHECKING EACH ANSWER			
	Commentator programs		*Dramatic programs*	
	1	*2*	*3*	*4*
Approximate time in minutes	*15*	*19*	*16½*	*20½*
	(*N = 261*)	(*N = 263*)	(*N = 104*)	(*N = 141*)
"Too long"	2%	1%	2%	3%
"About the right length"	66	76	52	67
"Too short"	31	21	45	28
No answer	1	2	1	2
Total	100%	100%	100%	100%

If the category "too short" implies a high level of interest, these results indicate that both the shorter (3) and the longer (4) versions of the dramatic program were more interesting than the corresponding commentator forms (1 and 2, respectively). On this question the difference between programs 1 and 3 is statistically reliable (at the 1 per cent level of confidence). It can also be seen that "too long" was a very infrequent response to any of the programs, indicating that neither program was boring. (This may be partly due to the fact that the use of radio transcriptions in orientation meetings was a novel experience to the men; under other circumstances the degree of interest expressed in the same programs might have been lower.)

Belief in authenticity of the programs. With any type of information program there were always some of the men who regarded the materials as "misleading" or as "propaganda" despite great care in factual documentation. An important possibility mentioned earlier in connection with the authenticity of radio transcriptions is that a dramatic presentation, with its background music, sound

effects, actors' voices, and dramatizations, might be considered by the men as trying to work on their emotions and as "fictional" rather than "based on facts." However, the findings for these programs show no important differences between the commentator and dramatic shows as far as the men's evaluation of the authenticity of the transcriptions is concerned

Three questions were asked dealing with the authenticity of the programs. one concerning the accuracy of the facts, a second on the fairness of the selection of material, and the third about the presence or absence of "propaganda." The results are shown in Table 2

TABLE 2

THREE MEASURES OF AUDIENCE EVALUATION OF PROGRAM AUTHENTICITY
PROPORTION OF MEN CHECKING THE VARIOUS ANSWERS TO EACH QUESTION

	Commentator programs	*Dramatic programs*
1 *Question* "Did you feel that the information about the Pacific War given in this radio program was true and accurate?"		
"It all seemed accurate"	65%	68%
"Mostly accurate, but partly inaccurate"	20	18
"Often inaccurate"	2	3
"Don't know"	11	10
No answer	2	1
Total	100%	100%
2. *Question.* "Do you feel that the radio program gave a fair and honest picture of the job ahead of us in the Pacific, or did the facts given seem too one-sided?"		
"It gave a fair and honest picture"	72%	75%
"It seemed too one-sided"	26	23
No answer	2	2
Total	100%	100%
3 *Question* "Was there anything about the radio program that seemed like propaganda?"		
"None of it seemed like propaganda"	65%	62%
"Some of it seemed like propaganda"	29	29
"All of it seemed like propaganda"	4	6
No answer	2	3
Total	100%	100%

On each of the three questions above, the differences between the two types of programs are too small to be outside the range of sampling error The frequent allegation that documentaries would seem propagandistic certainly received no support from these data

For both types of program the results seem to indicate a relatively high degree of confidence in the authenticity of the material, especially in view of the fact that the majority of the men were initially opposed to the "message" (over 70 per cent believed at the outset that the Pacific War would end in less than 2 years after VE Day).

4. EXPERIMENTAL EVALUATION OF TRANSCRIPTIONS

Effectiveness of the transcriptions in getting across the main orientation "message." The main question used to evaluate the effectiveness of the transcriptions in getting across the "message" of the programs was one asking the men for their best guess as to the probable length of the war with Japan after Germany's defeat As mentioned earlier, the content of the programs aimed directly at counteracting "overoptimism" about a quick end of the Pacific war.

The effects of the programs in this area were obtained by determining the net proportion of men who revised their estimate *upward* as a result of hearing the transcription The "net proportion" is the proportion who revised their estimates upward by at least one-half year minus the proportion who revised their estimates downward by one-half a year or more [5] The results are shown below [6]

TABLE 3

PROPORTION OF MEN WHO REVISED ESTIMATE OF PROBABLE LENGTH OF WAR WITH JAPAN AFTER GERMANY'S DEFEAT (REVISION = AT LEAST ONE-HALF YEAR)

	No program (control group) (N = 181)	*Commentator programs (N = 401)*	*Dramatic programs (N = 179)*
No change	63%	45%	42%
Revised estimate *upward*	18	47	50
Revised estimate *downward*	19	8	8
Net per cent revising upward (Per cent revising upward minus per cent revising downward)	−1%	39%	42%

It can be seen in the above table that there was virtually no over-all change in the control group during the period of about a week that intervened between the two surveys. Among those men who

[5] A discussion of this statistic is presented in Appendix B

[6] The numbers of cases given in this table are smaller than those for preceding tabulations because individuals who failed to give an estimate in either of the questionnaires could not obviously, be used in this analysis of change in response.

heard no program, about as many made a shorter estimate as made a longer estimate. However, among the men who heard either kind of transcription there was a marked change during the same period in the direction of revising estimates upward. The overall effect for the two programs is seen to be about the same; the slight difference favoring the dramatic program is not reliable statistically. Analysis of the data for high and low educational groups separately also showed no reliable differences between the two programs.

In addition to the general question as to the probable time required to defeat the Japanese, three other questions bearing on the difficulty of the job of finishing the war were included in the schedule given before and after the playing of the transcriptions. These related to Japanese resources, the possibility of Japanese surrender, and the extent of damage to Japanese industry by American air forces.

Effectiveness of the transcriptions in modifying men's estimation of Japanese resources. Past opinion surveys showed that one of the common beliefs of men who expected Japan to be a "pushover" was that Japan had insufficient resources and supplies to stay in the war for more than a short time. One of the points made in the radio programs was that Japan was estimated to have sufficient quantities of most war materials for at least two years of fighting. The natural resources in Japan's conquered empire and the stockpiles built up in the home islands since Pearl Harbor were both stressed

The effectiveness of the two types of programs in getting across this idea was tested by a question asking the men whether or not they thought the Japanese had sufficient supplies of oil, steel, and other raw materials to last them through a long war. The results are shown below.

Question "Do you think the Japs will have enough oil, steel, and other war materials to last them through a long war? (Check one)"

	PROPORTION OF MEN CHECKING KEY ANSWER; I E , "THE JAPS WILL SOON RUN OUT OF MATERIALS."		
	No program (control group) (N = 197)	*Commentator programs (N = 428)*	*Dramatic programs (N = 188)*
Earlier survey	60%	56%	53%
Later survey	54	35	32
Difference	6%	21%	21%

The results show no difference in the effects of the two kinds of programs. Both program groups showed about 21 per cent decrease in the number of men expecting that Japan would soon run out of supplies. This change was considerably greater than the 6 per cent change in the control platoons that heard no program.

Effectiveness of transcriptions on men's expectations of Japanese surrender. Another point made in the transcriptions was that Japan would not give up. According to the programs, the Japanese were expected to fight on to the very end in the hope that our casualties would become so large that we would seek a compromise.

Neither of the two kinds of programs effected a very great change in opinion on this subject, and no significant differences were obtained between the commentator and the dramatic program. The results are shown below:

Question "Do you think Japan will give up and surrender on our terms before they lose everything, or do you think they will keep right on fighting to the very end? (Check one)"

	PER CENT SAYING THE JAPANESE WOULD GIVE UP AND SURRENDER BEFORE THEY LOSE EVERYTHING		
	No program (control group) (N = 197)	*Commentator programs (N = 428)*	*Dramatic programs (N = 188)*
Earlier survey	40%	48%	44%
Later survey	43	40	33
Difference	−3%	8%	11%

Effectiveness of transcriptions on men's evaluation of the damage done by our Air Force. Another argument for a short war with Japan frequently encountered in earlier opinion surveys was the belief that our bombing of Japan was doing so much damage to the Japanese war effort that they would soon be out of the war. Both types of programs attempted to counteract overoptimism about the damage that had been done by our air raids up to that time (April 1945). Each kind of program produced a fairly strong effect in reducing the men's estimation of the damage that had already been done to the Japanese war effort by our bombings, but the dramatic programs produced a significantly greater effect than the commentator programs. The results are as follows:

Question "What is your idea of how much damage our air raids in Japan are doing to the Jap war effort? (Check one)"

	PER CENT SAYING OUR AIR RAIDS HAD ALREADY GREATLY DAMAGED JAPANESE WAR EFFORT		
	No program (control group) (N = 197)	*Commentator programs (N = 428)*	*Dramatic programs (N = 188)*
Earlier survey	46%	45%	50%
Later survey	49	29	20
Difference	−3%	16%	30%

It should be pointed out that the programs did not all devote equal time to this subject. The two commentator programs used about 3/4 minute and 1-1/2 minutes respectively on America's air war, and the two dramatic programs used about 1-1/2 minutes and 1-3/4 minutes respectively on this topic. However, almost identical results were obtained when only the two programs devoting about 1-1/2 minutes each are compared. It seems likely, therefore, that the greater effectiveness of the documentary on this point was due to a superior procedure used by the dramatic programs. The tonnage of bombs dropped on Germany was compared with that dropped on Japan by means of a bombing sound-effect, the noise was maintained for about 15 seconds to represent the tonnage that had been dropped on Germany up to that time, and for about a second to represent the tonnage dropped on Japan. This device, which was termed "sound graphing" by the writer of the documentaries, appears to be an advantage of this type of program that is not as applicable to (or at least not characteristic of) the commentator program.

CONCLUSIONS

As far as the initial question is concerned, the outstanding findings of this comparison of alternative presentations lie in the slightness of the difference found between the two kinds of programs. Contrary to some expectations, the commentator programs were just about as interesting as the dramatic programs, and the latter were considered just about as authentic and nonpropagandistic as the commentator programs. Both were about equally effective at changing estimates of the length of the war. The one outstanding difference between the two programs—effects on evaluation of the

damage done by our Air Force—suggests that the variety of methods available to the documentary provides such programs with some more effective procedures of presentation of material

Comparison of Introducing Supplementary Material at the Beginning and the End of a Training Film

A frequently recognized consideration among users of instructional films is that the teaching value of a film may very likely be increased by some form of supplementary material that either focuses attention in advance on the important points to be presented in the film or consolidates after the film showing the material that has been presented. Thus one may either prepare the audience for the most effective reception of the film or one may assist the audience after the film to get the most out of what has been shown.

The locus in time of these two alternative procedures for supplementing the material presented in the film determines to a certain extent the character of the supplementary material used. Supplementary material *before* the film will generally take the form either of motivating the members of the audience or of focusing their attention on the salient points to be presented. On the other hand, after the film showing it is too late either to motivate the learning or to get the audience to pay maximum attention during the parts of the film judged important. Thus supplementation after the film usually concentrates on a review of what has just been seen. In this case the audience members may be motivated to retain selectively what has been shown by focusing attention on important points so that these will be rehearsed.

The present experiment was one in which these two alternative ways of supplementing a film were compared. The general question on which the study was based was more or less as follows: "If we have extra time to use in supplementing the showing of a training film, is it best to use this time before the film to focus attention on significant points or is it better to use the time for a review exercise after the film?" As in the two media comparisons just reported, this question in unqualified form probably cannot be given a definitive answer. The generality of the present findings is thus subject to restrictions of the kind noted earlier as characteristic of such comparisons of alternative procedures.

The experiment was carried out with the same 43-minute film on map-reading and the same test that has previously been described.

The introductory and review procedures used with the film are described below.

1. NATURE OF THE INTRODUCTORY MATERIAL

The introductory exercises consisted of a preliminary description by an instructor of what was to be presented in the training film. It stressed the importance of learning how to read maps and called attention to important points that should be learned from the film. This introductory session was conducted in groups of two platoons each, four platoons in the morning and four in the afternoon. At each session one pair of platoons was given the introductory explanation inside the camp theater where the film was to be shown, while at the same time the other two platoons were receiving the instructions outside the theater. The length of the introductory exercises was from 15 to 20 minutes; showing of the 43-minute film immediately following thus made the total time spent in instruction just slightly over one hour.

2. NATURE OF THE REVIEW EXERCISE

As in the case of the introductory exercise, this was conducted in four groups of two platoons each, one company in the morning and one in the afternoon. The film was shown without introduction. For the review exercise, conducted immediately after each showing, half of the men filed outside to an area in back of the theater, the other half remained seated in the theater. The basis of the review exercise was a quiz composed of 15 true-false questions designed to cover each of the major topics in the film, and was given orally by the instructor After the men had marked answers to the questions on cards provided for the purpose, the instructor gave the correct answer to each question and explained briefly *why* the given answer was correct, thus reviewing the points to which the questions related. The entire exercise took up a little over 20 minutes.

3. SELECTION AND BRIEFING OF THE INSTRUCTORS

The instructors who gave the supplementary exercises were selected from a group of available officers and assigned on the basis of systematic ratings of their ability as classroom instructors made by a number of their superior officers. The assignments were made in such a way that each form of instruction would be represented by four officers as typical as possible in the range and average level of their rated abilities as instructors.

Each instructor was provided with a schedule of procedure and an outline of the major points to be covered by the film. References to manuals were furnished, arrangements were made for previewing the film, and, in the case of the follow-up exercise, a set of quiz questions was provided. In order to preserve a normal range of diversity in the quality and style of presentation, however, each instructor was asked to prepare his presentation independently. As in the case of the film-strip study previously described, the amount of assistance and supervision thus furnished was in the opinions of training officers roughly comparable with what would normally be the case in regularly scheduled instruction under a centralized training program in a Replacement Training Center.

All instructors and other personnel involved were cautioned against telling the trainees about the purpose of instruction and testing, which were carried out in all essential respects as if they were part of the regular training program. None of the trainees were informed in advance that they would be tested on the material covered by the instruction.

4. AVERAGE AMOUNT LEARNED FROM EACH TYPE OF FILM INSTRUCTION

The effectiveness of each type of instruction is shown in the chart below. It can be seen that the control men who had not seen the

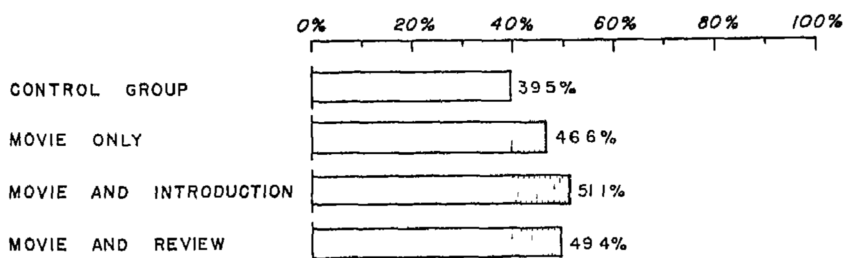


Figure 5. Average test scores for each group (N = 253 in each group)

training film averaged 39.5 per cent correct answers on the multiple-choice questions, whereas men who had seen the training film averaged higher and men who had one or the other of the supplementary exercises averaged still higher. The advantage shown for the film plus a supplementary exercise over the film by itself is statistically

significant, however, the apparent slight advantage of the introductory over the review exercise is not reliable [7]

5. AMOUNTS LEARNED BY MEN OF DIFFERENT INTELLIGENCE LEVELS

A comparison was made of the amount learned when the men were dichotomized into higher and lower intelligence groups. This dichotomy was based on scores on the AGCT; "higher" was defined as Classes I and II on this test and "lower" was defined as Classes III and IV. No Class V men were included in the sample.

In comparing the results for men of different intelligence levels, account must be taken of the differing initial levels of knowledge of the two groups. Since the more intelligent men already knew more of the correct answers, fewer of the correct answers could be learned by them from the film The proper comparison, therefore, must be based on the *decrease in the proportion of initially incorrect* answers—that is, the comparison should be based on the change obtained relative to the maximum change possible. (See also Chapter 3, pages 65–66).

The percentages obtained in the four groups of lower-intelligence men and in the four groups of higher-intelligence men are shown in the top part of Table 4 below. The lower part of this table is a tabulation of the average "effectiveness-index" or magnitude of the effects relative to the magnitude of the effects possible.

The last two lines of Table 4 indicate the gains from the addition of a supplementary exercise to the film showing. It can be seen that the gains were not greatly different for either type of supplementary exercise or for either intelligence group.

6. POSSIBLE MOTIVATING EFFECTS OF THE INTRODUCTORY EXERCISE

An introduction preceding a film may increase the amount men learn about the film's subject matter in at least two ways

a. By explaining and clarifying in advance some of the more difficult points to be presented in the film.

---

[7] There were 253 cases in each group A difference as large as that obtained between the introductory and review exercises would occur by chance 28 times in a hundred in one direction or the other. The chances of obtaining differences as large as those between a supplementary exercise and film alone are about 3 in a hundred for review and less than one in a hundred either for introduction or for combined results on introduction and review

b. Simply by stimulating men's interest, motivating them to attend more closely to the showing and remember what they are shown.

Data indicate that the introduction operated in *both* of these ways in the case of the film studied. These data are derived from an accidental feature of the administration of the experiment. None of the instructors got all the way through their outlines of their talk in the time allowed for the introduction. Thus certain topics in the films were covered in the talks and others were omitted This

TABLE 4

A Average Percentage of Correct Answers

	Less intelligent men (AGCT Classes III, IV)	*More intelligent men (AGCT Classes I, II)*
Control group	33 8%	46 2%
Movie only	38.0	56 7
Movie and introduction	43 0	60 4
Movie and review	41 4	58 6

B. Average Effectiveness Index

(Difference from control group, divided by per cent wrong in control group)

	Less intelligent men (AGCT Classes III, IV)	*More intelligent men (AGCT Classes I, II)*
Movie only	6 3%	19.5%
Movie and introduction	13.9	26.4
Movie and review	11.5	23.0
Differences from movie only		
Movie and introduction	7.6	5 2
Movie and review	6 7	3 5

accidental "experimental variable" provided the interesting finding that effects of the introductory talk were obtained on topics not covered in the introduction, as well as on topics covered. In the table below, the values at the left show the average effect of the introduction on a series of questions covering topics which instructors outlined and explained in some detail just before the film was shown. The figures at the right show the corresponding average effect on questions concerning film topics which were *not* given attention in the introduction.

Average effectiveness indices on two sets of material

	Topics covered in introduction	*Topics not covered in introduction*
Movie and introduction	16.0%	29.5%
Movie only	5.8	22.7
Difference	10.2%	6 8%

As seen by the difference at the right, inclusion of the introductory exercise produced an appreciable gain in the amount subsequently learned about topics which were not given attention in the introduction itself. It is unlikely that this result is due to interaction with effects on the material that was covered; the two topics were sufficiently distinct in content so that better understanding of the material covered would have contributed little to the understanding of parts not covered. A likely interpretation is that the introduction had a motivating effect that made all parts of the material better learned

Aside from the foregoing hypothesis, which forms an interesting by-product of the study, the principal result of the present experiment was that supplementing the film by either a short introduction or a short review increased the effect of the film presentation but that, with the introduction and review procedures used, neither had a significant advantage over the other. It is evident that the relative effectiveness of the two supplementation methods compared is a function of the particular procedures used in each. This restriction on generality well illustrates the limitations of the kind of research represented by the three studies reported in the present chapter, in which alternative procedures "representative" of different media or instructional methods are compared but without controlled variation of specified factors governing the effectiveness of the alternatives.

CHAPTER 6

EFFECTS OF FILMS ON MEN OF DIFFERENT INTELLECTUAL ABILITY

THE primary function of evaluative studies described in the preceding chapters was to determine the effectiveness of particular completed film products. Data thus obtained, however, can also be of value in formulating and testing general hypotheses concerning the effects of the films on subgroups of the total audience differentiated in terms of various demographic characteristics. As a basis for such differentiation, the questionnaires used in evaluating orientation films usually contained a number of items concerning such characteristics as age, education, religious affiliation, and marital status. In studies of training films, the characteristics usually obtained were years of schooling completed and scores on the Army General Classification Test (AGCT).

At the outset of the orientation film studies, analyses of the possible influence of a number of demographic factors were routinely made. These analyses were undertaken in the expectation that men's knowledge and opinions would be significantly related to characteristics of their personal history. But the studies showed the surprising result that region of birth, religious affiliation, marital status, Army rank or grade, length of Army service, age (within the adult range represented by the Army population), and several other personal-history items introduced in special studies showed few consistent or significant relationships to initial knowledge and opinion, and were almost uniformly unrelated to the effects of the films.

The one relationship which emerged clearly and consistently was the relationship of both information and opinion to intellectual ability, as indicated by AGCT score or years of schooling completed. Accordingly, this relationship will be our primary interest in the present chapter.

Special interest attaches to the analysis of the effects of films as a function of intellectual ability because of theoretical considerations.

The effects of a film presumably depend on the *learning* of material presented to members of the audience, and intelligence is intimately related to learning proficiency. Not only is intelligence related to ability to learn, but also it is related to other factors determining the effects of a film. For example, the more intelligent would be expected to be better able to see the general implications of the material presented even where conclusions are not explicitly drawn by the film. Similarly, intellectual ability would be expected to affect individuals' ability to evaluate critically the validity of implications and generalizations made in the film.

In order to relate intelligence to the effects of the films, it was necessary to adopt a suitable *index* of intellectual ability. Intelligence test scores would have had many advantages as such an index. However, it was not feasible to administer comprehensive tests of intelligence to the men who served in the present experiments In the case of studies of training films it was possible to utilize the already available scores on the Army's standard test of general intellectual ability (Army General Classification Test or "AGCT").[1] But in studying orientation films, men did not put their names on their questionnaires because it was considered important to preserve anonymity, and it was therefore not possible to ascertain the AGCT scores of individual respondents. However, in these latter studies, respondents were always asked to indicate the number of years of schooling they had completed; and it was found that in the Army population there was a high correlation between years of schooling and AGCT scores. Accordingly, in the orientation film studies, educational level (years of schooling completed) was used as the index of intellectual ability The use of this index was further supported by the finding in training film studies, when both educational level and AGCT score were available, that the two showed a closely similar relationship to the effects of the films.

Data supporting the use of level of schooling attained as an index of intelligence are furnished in a study by Lorge,[2] which reports a correlation of .66 between Otis intelligence test scores and highest grade completed. Correcting for the unreliability of the test and for the restriction of range of his subjects would of course be ex-

---

[1] For a general account of the development and characteristics of the AGCT, see "The Army General Classification Test," reported by the Staff of the Personnel Research Section, Classification and Replacement Branch, AGO, in the December 1945 issue of the *Psychological Bulletin* (Vol 42, No 10, pp 760–68)

[2] Lorge, I "The 'Last School Grade Completed' as an Index of Intellectual Level" *Sch. and Soc.*, 1942, *56*, 529–32.

pected to increase this value materially Results obtained in the present studies and in more extensive tabulations made by the Personnel Research Section, AGO,[3] confirm the existence of a substantial degree of relationship between level of schooling attained and scores on mental ability tests. In Figure 1, distributions of test scores on the Army General Classification Test for individuals with differing amounts of schooling are presented for a sample of 644 men used in one of the training film studies The distributions are plotted in percentage measures, so that the area of each distribution totals 100 per cent.

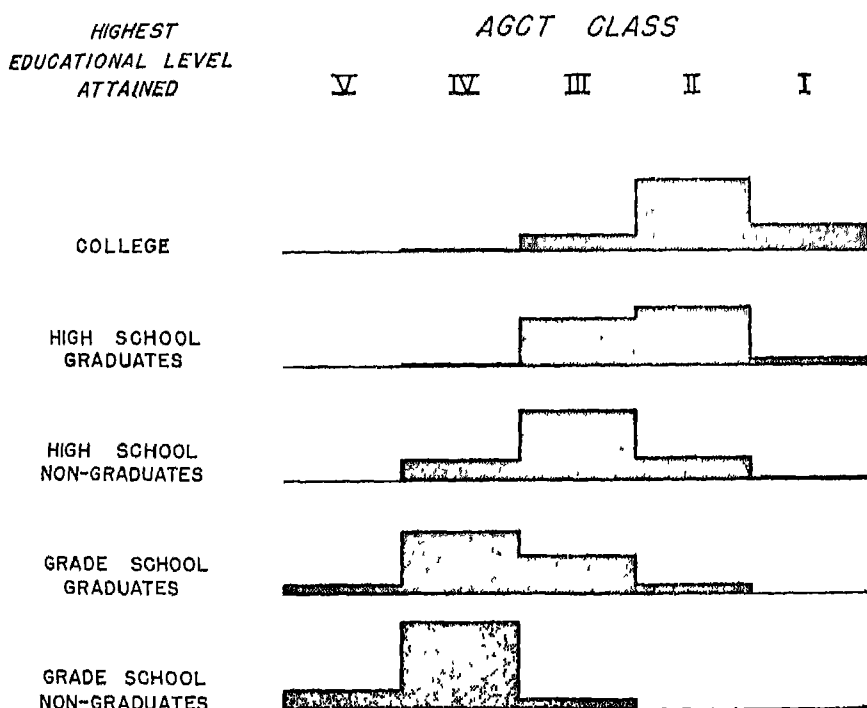


Figure 1 Relation between AGCT Class and educational level attained, for a sample of inductees (N = 644).

A correlation coefficient of slightly over .7 is indicated for the relationship shown when the AGCT classes and educational categories available are treated as equally spaced units. For other samples used in connection with the film research studies, the correlations ranged from about .50 to .80. The AGO studies report a correlation

[3] *Op. cit.*, p. 765

of .73 between AGCT score and highest grade of school completed, for a sample of 4,330 soldiers.

The relatively high degree of relationship obtained is attributable in part to the fact that an adult population is involved, members of which have stopped their schooling at various points. The factors which cause individuals to drop out or continue in the educational system are closely correlated with intelligence. It is only because of this selective process that years of schooling may be used as an index of intellectual ability in an adult population. In a population still attending school, on the other hand, the correlation between intelligence and current grade level would undoubtedly be quite small.

The research design for studies of differential effects on various educational subgroups is relatively simple. Since the population characteristic used in analysis is not affected by the showing of the film, it is sufficient to have a control and experimental group tested after the showing of the film and to determine the differential effects of the film on groups of different intellectual ability by a comparison of film and control results among these different subgroups This research design establishes only the nature of the correlation between intellectual ability and effects of the film. It obviously cannot establish the definitive causal relationships obtainable from controlled experiments. The correlational analysis can reveal the extent to which people of different levels of intellectual ability are affected by seeing a film, but it will not establish to what extent the relationship is due to native capacity per se and how much is due to other factors which vary concomitantly with intellectual capacity—for example, such factors as socio-economic status, and opportunity for schooling However, in studying the effects of a variable like intellectual ability use of the experimental method is precluded since an experimenter cannot directly manipulate an individual's intellectual capacity.

Factual Information Learned by Groups of Differing Ability

1 INFORMATION LEARNED PRIOR TO THE FILM PRESENTATION

Even before the film showings, there existed wide differences in the amount of factual knowledge possessed by men of different educational attainments. Many of the points of factual information tested could be answered on the basis of sources other than the film

The superior initial performance of men of greater ability would reflect not only greater exposure to opportunities to acquire general information, but also greater ability to *learn and retain* the material to which they had been exposed. The relationship between information and intellectual ability (as inferred from educational attainment) is presented below for men in control groups who did not see the orientation films.

TABLE 1

PERCENTAGES OF MEN IN DIFFERENT EDUCATIONAL GROUPS KNOWING ANSWERS TO INFORMATION ITEMS BEFORE FILM SHOWINGS

	Grade school men	*High school men*	*College men*
Average for all items significantly affected by orientation films studied	21.1%	28 6%	41.8%
Examples on specific items.			
Identity of Quisling. "Norwegian Traitor"	23	52	69
German Tactic for Blocking Allied Advance "herding refugees into the roads"	18	31	52
Reason Hitler wanted Norway: "bases for bombers and U-boats"	31	51	60

For material covered in *training films* a similar relationship was found between education and initial level of knowledge expressed on information tests.

TABLE 2

AVERAGE PROPORTION OF MEN AT THREE EDUCATION LEVELS KNOWING ANSWERS TO ITEMS OF INFORMATION

	Grade school men	*Men with some high school education*	*High school graduates and college men*
Map reading film	26 1%	28 9%	37 1%
Two first aid films (Av.)	50 7	57.9	64 8

The pattern of responses for the majority of individual items asked of the men is fairly consistent with the average results shown above. A similar picture was found for the relation of AGCT score to knowledge of material covered in training films. Mean scores for men in three AGCT categories for the same film subjects are shown below.

TABLE 3

AVERAGE PROPORTIONS OF MEN IN EACH AGCT CATEGORY CHECKING CORRECT ANSWERS TO FACT-QUIZ ITEMS IN TRAINING FILM STUDIES

	AGCT Class		
	IV and V	*III*	*I and II*
Map reading film	25 1%	30 5%	38 4%
Two first aid films (Av.)	50 2	57 9	65 7

2. AMOUNT LEARNED FROM FILMS

As would be expected, men of superior ability not only had better information at the outset but also acquired more from the film presentation Illustrative of the general results on this point are those for the following item from the study used to evaluate the film "Prelude to War"

TABLE 4

PROPORTION OF MEN AT EACH EDUCATIONAL LEVEL WHOSE ANSWERS TO A FACT-QUIZ QUESTION INDICATED THEY KNEW THE EXCUSE THE JAPS GAVE FOR INVADING MANCHURIA

	Control group	*Film group*	*Difference*
Grade school men	13%	35%	+22%
High school men	18	60	+42
College men	25	73	+48

The positive correlation between educational attainment and film effects on information items was a consistent phenomenon throughout the studies The illustrative item also shows the previously noted relation of educational attainment and initial amount of information To take account of the differential room for improvement occasioned by differing initial levels, the correction introduced by the "Effectiveness Index," referred to in Chapter 3, is employed.

Average results for all orientation films combined are expressed in these units in the table below.[4]

AVERAGE EFFECTIVENESS INDEX FOR FACTUAL INFORMATION IMPARTED BY ORIENTATION FILMS (AVERAGE FOR 29 INFORMATION ITEMS SIGNIFICANTLY AFFECTED OVERALL BY ORIENTATION FILMS STUDIED)

Grade school men	16.3%
High school men	36 6
College men	54 2

Closely parallel results were obtained in studies of training films, in which AGCT scores were available for analysis.

Probably the most significant factor accounting for the obtained results is the superior proficiency in learning which is associated with greater intellectual ability. But it is also well to bear in mind that the effects of superior intelligence will also be manifest in a number of indirect ways. More intelligent men, as a function of both selection and training, probably have a *higher degree of interest* in the material presented and *more motivation* to learn it. For another thing, individuals with more intelligence and more schooling will have acquired a *better context of related information* which would facilitate the acquisition of new facts. Also, the more intelligent and better educated men will probably have learned *better techniques of learning and remembering* facts presented to them.

3. DIFFERENCES IN THE LEARNING OF EASY AND DIFFICULT MATERIAL

The results just presented show that on the average the men of greater intellectual ability show more proficient learning of the correct answers to fact-quiz items covered by a film than do those of less ability A factor that would be expected to affect this relationship is the difficulty of the material to be learned. Variation in difficulty would certainly be expected to raise or lower the overall level of amount learned Thus the curve relating amount learned to intellectual level would be raised or lowered as a whole depending on the difficulty of the material In addition, however, it might be expected that difficulty would change the shape of the curve This would be expected on the presumption that the most proficient

[4] Values for "average effectiveness index" given in this chapter are computed individually for each item and then averaged for the series of items

learners would tend to learn virtually *all* of the material, whether easy or difficult, whereas the amount of learning by the least proficient learners, regardless of difficulty of the material, would always be close to zero. At any intermediate level of learning proficiency, men would tend to show the greatest amount of learning for easy material, an average amount for average material, and the smallest amount for the most difficult material. Consequently, if separate curves are plotted to show the amount of learning of easy, average, and difficult material—with units of learning proficiency arbitrarily selected so as to give a linear relationship for "average" material—the curve for easy material would be expected to be negatively accelerated and the curve for difficult material positively accelerated, as illustrated in the hypothetical curves below.

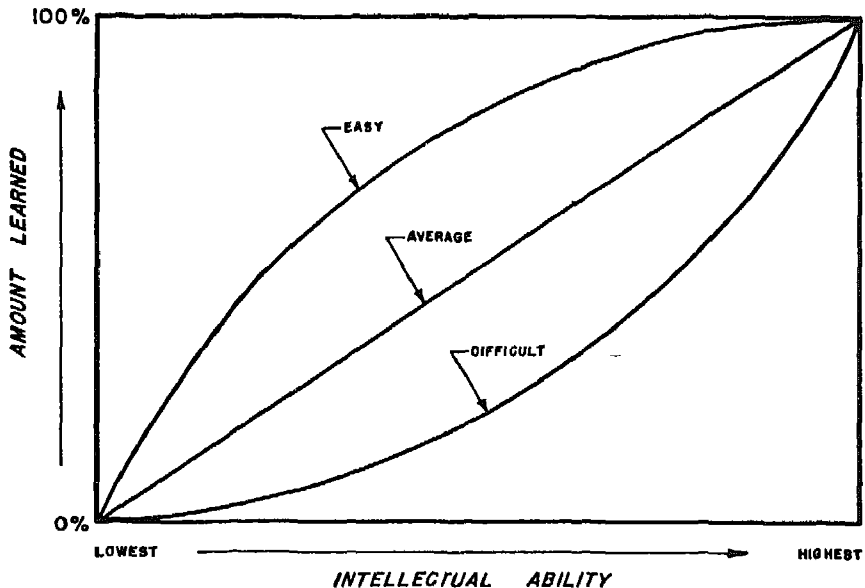


Figure 2. Hypothetical relationship between intellectual ability and amount learned, for easy, "average," and difficult items

The question arises as to how important a factor difficulty of material is as a determiner of the form of the relation between amount learned and intellectual ability. In investigating data with reference to these relationships it becomes necessary to specify first how "difficulty of material" and "amount of material learned" are to be measured. In many situations involving tests, where one is dealing

with a test as a general measure of aptitude or proficiency, the "difficulty" of a test item is ordinarily thought of as inversely related to the proportion of men who can answer the question correctly. That is, the higher the proportion of initially correct responses, the "easier" the item would be considered. But in the present situation, where we are concerned with *changes* in information, or amount of learning, the more appropriate measure of "difficulty" is not *initial level* of correct response but difficulty of *learning* the material.

In order to determine the effect of difficulty on the shape of the relation between intellectual ability and amount learned, the effects of the orientation films on fact-quiz items of varying difficulty were analyzed separately for each educational level. A total of 42 fact-items were used to measure information changes for the four films studied. Of these, twelve were discarded because they showed no significant effects of the film. The remaining thirty items then were divided according to level of difficulty, as defined in terms of *overall effectiveness index* for all education groups combined. The total set of thirty items was subdivided into three groups: an "easiest" group (7 items), a "middle" group (16 items), and a "hardest" group (7 items). The composition of these groups of items in terms of overall level of difficulty is shown below

RANGE OF EFFECTIVENESS INDEX FOR ITEMS OF VARYING DIFFICULTY

	Range of effectiveness indices (for all men tested)
7 "easiest" items	51% to 72%
16 "medium difficulty" items	17 to 45
7 "hardest" items	4 to 16

The amount of material learned by each of three education groups is shown in the table below for the easiest, middle, and hardest groups of items. The first three lines of figures show the amount learned by each education group, in terms of the average effectiveness index for each level of difficulty. The second three lines of the table show the differences between successive education groups obtained from the three preceding lines of figures.

A slight degree of curvilinearity in the relationship is indicated by the fact that the difference between the lower and middle educational categories is larger than that between the middle and upper categories in the case of the *easiest* material, whereas the larger difference is between the two higher educational categories in the case of the *most difficult* material (In the lower part of the table it is

seen that the difference in learning between the grade school and high school groups is 26 per cent for the *easiest* material and only 12 per cent for the hardest material, whereas the difference between high school and college men is about 17 per cent for the *hardest* material and 15 per cent for the easiest material.) This pattern of differences is in line with the expectation that positively and negatively accelerated curves, respectively, would be found for easy and difficult material. However, the degree of curvilinearity obtained is very slight—the three curves relating amount learned to intellectual ability are nearly linear despite the fairly large differences in overall level of difficulty of learning the material. Apparently difficulty of material does not greatly alter the shape of the relation of amount learned to intellectual ability, even though the range of intellectual ability is fairly large in the present results. It seems likely that if the range of intellectual ability could be extended the curves would converge at both ends. However such convergence as might be obtained would represent effects on only the very small proportions making up the most intelligent and the most unintelligent members of the population as a whole. For the great majority of the population it would appear from the present results that the relation between intellectual ability and amount learned is essentially linear regardless of difficulty.

TABLE 5

RELATION BETWEEN EDUCATIONAL LEVEL AND LEARNING OF FACT-ITEMS FROM ORIENTATION FILMS, AS A FUNCTION OF DIFFICULTY OF ITEMS (AMOUNTS LEARNED BY EACH EDUCATION GROUP, IN TERMS OF AVERAGE EFFECTIVENESS INDEX)

	EFFECTIVENESS INDICES		
	Grade school men	*High school men*	*College men*
Material:			
Easiest	35 1%	60.7%	75 3%
Middle	11 6	30 3	49 9
Hardest	2 6	14.3	31 7
Differences.			
Easiest	25.6%	14.6%	
Middle	18.7	19.6	
Hardest	11 7	17 4	

Similar results were obtained in studies of training films where both educational level and AGCT scores were available. Analysis

by both indices of intelligence showed the same relationship as the results previously presented for the orientation films These results based on all the significantly affected items from tests covering the effects of two training films on first aid are shown in the accompanying figure.

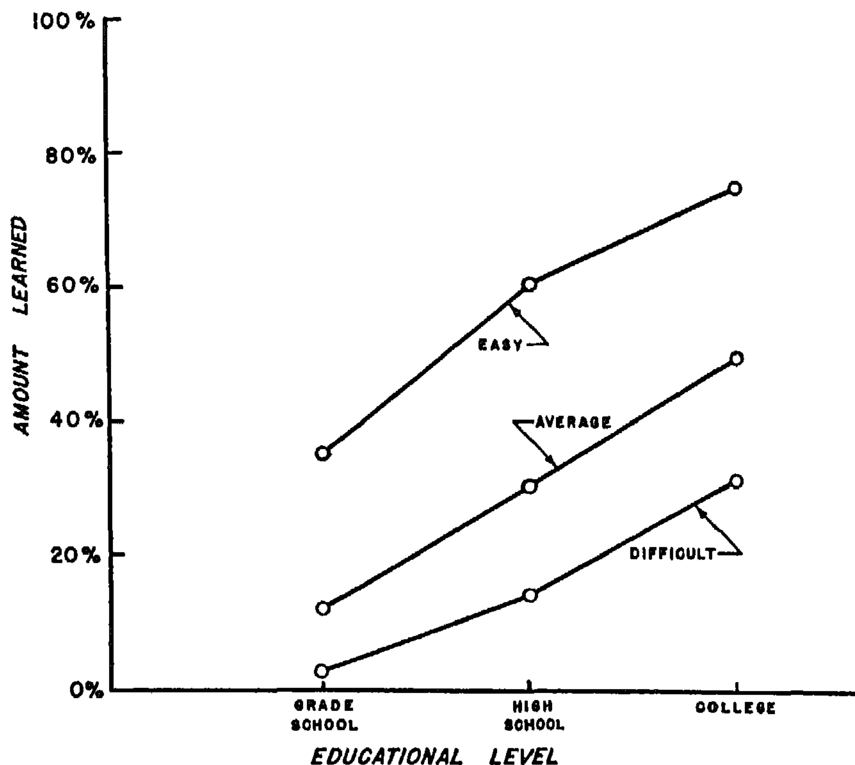


Figure 3 Obtained relationship between educational level and average per cent of fact-quiz items learned

In the foregoing discussion of the shapes of the "curves" relating intellectual ability to amount learned, it should be borne in mind that the problem of equivalence of units along either the vertical or the horizontal axis is critical to the shape of the curve obtained. In plotting results in the present studies, AGCT classes (I through V) were treated as if equally far apart. Presumably they are separated by equal distances in standard deviation units, since this was the basis used for designating the five classes. Also the educational categories of grade school, high school nongraduate, high school graduate, and college have been dealt with as if equally spaced.

The latter is obviously an inexact and arbitrary treatment. Using the number of years of schooling attained would have provided at least a superficially more equivalent set of units, but in the present studies the exact number of years of schooling was generally not recorded. However, while the effect of nonequivalence of units of intellectual ability is to make the absolute shape of a particular curve an arbitrary matter, it does not affect the direction of trends in the shape of the family of curves as a function of difficulty of material.

The same considerations apply to the units used to measure amount learned. In the present studies the effect of difficulty of material was investigated by using "effectiveness index" units—that is, amount learned was measured as the per cent change obtained divided by maximum change possible. Use of these units at least compensated for nonequivalence due to differing initial levels of knowledge (and consequent statistical ceiling effects) among the different intellectual groups, but the units used cannot be regarded as equivalent on other counts. However, the nonequivalence of these units (as in the case of units of intellectual ability) presumably does not prevent appropriate description of the *direction of changes* in shape as a function of the difficulty of the material

"A Little Knowledge"

An interesting exception was found to the otherwise uniformly obtained positive correlation between intellectual level and the amount of change produced by a film on fact-quiz items. A *negative* correlation between effect and intellectual level was found in the few cases in which the film produced appreciable increases in the percentage choosing an *incorrect* answer.

An example illustrating this kind of result was observed in studying the cumulative effects of the second and third orientation films, "The Nazis Strike" and "Divide and Conquer." The films had shown that by the terms of the Munich Pact, Britain and France agreed to let Hitler take over part of Czechoslovakia, and also presented repeated instances in which the Nazis proceeded to occupy territory to which they had earlier disclaimed any interest. A question designed to get at the former point—terms of the Munich Pact—was worded as follows:

By the terms of the Munich Pact in 1938

______ The Nazis promised to stay out of Austria

______ Britain and France allowed Hitler to take over part of Czechoslovakia

______ The Nazis were permitted to remilitarize the Rhineland

______ Hitler and Mussolini agreed to support each other in case of war

It will be observed that the second choice is the correct answer but that the first choice, which is incorrect, alludes to a "Nazi promise" which was contradicted by subsequent events. The film increased the percentage of men checking this incorrect answer, and this increase was most marked in the case of the less intelligent men (Figure 4)

On the other hand, the *correct* answer was learned by progressively larger percentages of men as educational level increased, the low

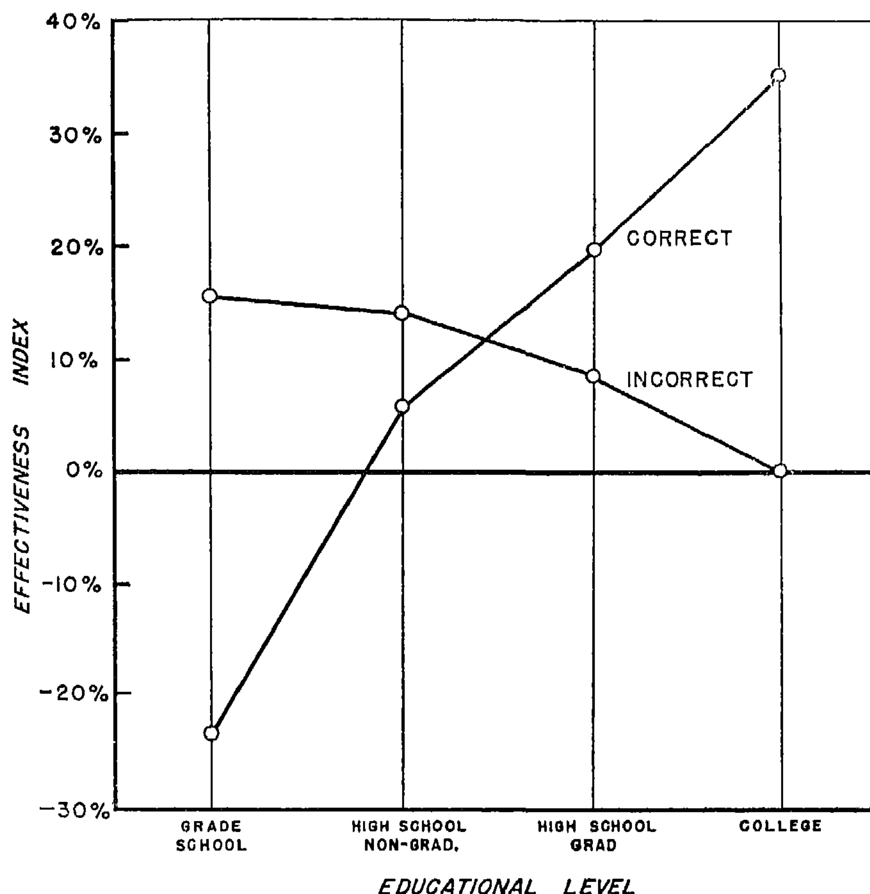


Figure 4. Effectiveness of film in changing answers to a fact-quiz item

point in this progression being represented by the grade school men, who actually showed a decrease in the proportion giving the correct answer after seeing the film.

Apparently the men of less intellectual ability were strongly impressed by the false promises of the Nazis and did not learn the significant details of the Munich Pact. Consequently they checked the answer which seemed most reasonable in terms of what they remembered best.

Several analogous examples were found in the study of these films and of "The Battle of Britain." As already implied, an explanation for this phenomenon can be given in terms of the fact that in any film presentation some points will inevitably be more impressively presented and hence better learned and remembered than others, and some of the less impressively presented facts will be well remembered only by the more proficient learners. If a test question then presents as alternative answers one choice which is an incorrect answer to the question but which is related to a point *well remembered* by many of the men, and a correct answer which refers to a point remembered only by the better learners, it would be expected that the better learners who remember both points can choose the one which correctly answers the question, whereas the less proficient learners, remembering only one associated point (which happens to be the wrong answer), will have an increased tendency to check it because it is the answer that strikes a familiar note

If this hypothesis is correct an implication would be the necessity of making extremely explicit distinctions in a film on points which are judged to be important, rather than relying on the men themselves to distinguish between two closely similar implications It is also suggested that the spectacular and impressive presentation techniques should be appropriately chosen in relation to the importance of the point to be made, when used on a minor point the men may generalize in ways which are clearly incorrect. This hypothesis is closely related to one presented later in the chapter on the problem of valid and invalid generalizations made by members of the audience, which applies with particular force in the case of opinions

Opinion Changes Among Groups of Different Ability

In the studies of orientation films it was possible to relate intellectual ability not only to the effects of films on factual knowledge but also to effects on men's opinions. Analysis of the effect of films on men's opinions raises the difficult problem of distinguishing between

statements which represent "opinion" and those which represent "fact." There is often a considerable amount of arbitrariness involved in classifying statements as representing "fact" or as representing "opinion."

Perhaps the chief distinction implicit in classifying certain statements as "opinion" is that such statements are generally regarded as more difficult to verify than statements of simple fact. Thus, usually classed as opinion are statements making inferences as to intentions, motives, or reasons, or predictions as to what will happen in the future or what might have happened under certain circumstances. For example "The Germans bombed Rotterdam [for purely sadistic reasons]," "Britain will not make a separate peace with the Germans," or "The Nazis would force us to work as slaves if they were victorious."

A related characteristic often differentiating "opinions" from "facts" is the degree of generality of the statements. Statements representing syntheses or interpretation of a number of interrelated facts are generally regarded as "opinions." Statements representing summaries, conclusions, or generalizations from sets of specific facts are difficult to substantiate fully because of the large number of facts ordinarily required to prove or disprove them. For example, an evaluative statement of opinion corresponding to the comparatively specific and simple factual point that the RAF pilots were greatly outnumbered during the Battle of Britain is the following, "The RAF has done about the best job of fighting so far in this war." In order to establish the validity of the latter statement, a large number of facts, concerning the performance of the RAF and other fighting organizations with which an implied comparison is made, would have to be established and evaluated. In addition to assembling all the relevant facts in such a case, there would be the added difficulty of determining the proper way in which these facts should be weighted or integrated so as to arrive at the "correct" interpretation.

The distinction between statements of opinion and statements of fact obviously involves a continuum between those most clearly factual and those most clearly matters of opinion. For example, the statement that "The head of the German Air Force is named Goering" would be a "fact," whereas the statement, "The British are doing their fair share in helping to win the war," is clearly a matter of "opinion." Between such fairly clear-cut extremes of facts and opinions will obviously be a number of statements which

are more difficult to classify. Thus, whether the statement that "The German bombing attacks were part of a plan to invade and conquer Britain" would be regarded as "fact" or as "opinion" would depend on the amount of evidence available as to the actual plans of the German leaders.

It is to be expected, therefore, that what is regarded by one individual as a "fact" may be regarded by another as an "opinion" This factor had to be recognized in the conduct of the experimental evaluations of the film. Some items would probably be reacted to by all individuals in the audience as questions of fact; others would probably be uniformly reacted to as questions of opinion. Items that were clearly matters of opinion, or those which it was anticipated that some men would regard as "opinion" and others as "fact," were grouped together and labeled opinions to encourage a uniform set to perceive them as opinions This was particularly important where an individual would be hesitant to express himself because he felt he lacked the necessary information or where he would be prone to give what he considered the "correct" answer (from the Army's point of view) instead of his own personal opinion.

"Fact" items were grouped together at the end of the questionnaire, and men were instructed to check the "true" answer, guessing if they did not "know" the answer The instructions for the questions classed as "opinion," on the other hand, stressed the idea that men's "own personal opinion" was wanted—that frank opinions could be given freely because of the anonymity of the responses, that there was no "right" or "wrong" answer, etc.

ANALYSIS OF RESULTS

As in the case of factual information, an analysis was made of the magnitude of change in opinion among men in the various educational groups. Included in this analysis were data from each of the four films in the "Why We Fight" series on any opinion item which was reliably affected by the film. A total of 31 opinion items (6 for the first film in the series, 12 for the joint effects of the second and third films, and 13 for the fourth film) met this requirement The results for these items are averaged in the table below.

A trend is seen for the effects of the films on opinion to increase with higher intellectual ability However, inspection of the individual items shows this trend to be the result of averaging some items where the greater effects are among the men of higher intellectual ability and others where the greater effects were among those

of lesser ability Consequently, the positive and negative correlations will partially offset each other in determining the average trend This is in contrast to the situation existing in the case of items of factual information where almost invariably the effects showed a positive correlation with intellectual ability Opinion

TABLE 6

AVERAGE INITIAL LEVEL, FINAL LEVEL AND EFFECTS OF FILM ON OPINION ITEMS FOR MEN OF VARIOUS EDUCATIONAL LEVELS

Per cent giving favorable answers	*Grade school*	*Some high school*	*High school grad*	*College*
Before seeing film	45 3%	47 6%	49 4%	50 8%
After seeing film	55 2	58 1	60 3	62 8
Difference	*9 9%*	*10 5%*	*10 9%*	*12 0%*
Average effectiveness index	*18 1%*	*20 1%*	*21 5%*	*24 4%*

items illustrating both the positive and the negative pattern of relationship to intellectual ability are given below. The first example is based on an item used in the evaluation of the second and third orientation films and concerns men's opinions that "appeasement" of Germany by Britain and France "only made things worse in the long run." The effect of the films in this case is shown below in terms of a comparison between film and control groups in the percentages checking this answer (rather than checking an alternative answer indicating that the appeasement policy was the best thing to do at that time).

TABLE 7

PERCENTAGES INDICATING BELIEF THAT "APPEASEMENT MADE THINGS WORSE"

	Grade school men	*High school men*	*College men*
Per cent in film group	56%	73%	82%
Per cent in control group	53	61	67
Difference	*3%*	*12%*	*15%*
"Effectiveness Index".	*6%*	*31%*	*45%*

An opposite correlation is illustrated in the effect of the same films on the number of men who thought the Germans would, if victorious, "try to control our country completely and force Americans to work as slaves." In this case a distinct negative correlation between education and effect is observed: the film materially increased the proportion of grade school men expressing this point of view, but had much less effect on men with a high school education and no significant effect on college men.

TABLE 8

PERCENTAGES INDICATING BELIEF THAT GERMANS WOULD ENSLAVE AMERICANS IF VICTORIOUS

	Grade school men	*High school men*	*College men*
Per cent for film group	74%	66%	48%
Per cent for control group	54	61	46
Difference (change)	*20%*	*5%*	*2%*
"Effectiveness Index"	*43%*	*13%*	*4%*

The diversity among different opinion items in the relationship between effects and ability requires some exploration. In the discussion that follows several factors which may contribute to the relationship will be analyzed. Some of these factors would tend to produce a positive correlation between effects and intellectual ability; others would produce negative correlations As a consequence the overall relationship for an item would be expected to depend on the relative weights of the various factors.

(1) *Learning ability* As in the case of information items so also in the case of opinions we should expect that the men with higher intellectual ability should be able to learn the content of the films more readily than men of lower ability. This should be responsible in part for the positive relationship shown in Table 6 However, if learning ability were the only factor in operation this positive relation would be even more pronounced and none of the individual items would show negative correlation between effects and intellectual ability.

(2) *Acceptance of the material:* Regardless of a man's ability to learn a new interpretation, he will not adopt it as his own unless he believes in it. He may learn what the film *said* but may nevertheless consider what the film said to be incorrect Hence his own opinion may be unchanged by what he has learned If some of the

interpretations made by the films were not acceptable to intelligent men but were acceptable to those of lesser intelligence, the factor of learning ability might be sufficiently offset by the factor of acceptance that a negative correlation would be obtained between intellectual ability and particular opinion changes produced by the films.

Nonacceptance by more intelligent men of some of the interpretations provided by the orientation films studied would seem quite likely since the films did not always involve a purely dispassionate presentation of a series of facts but instead were often "slanted" in the direction of particular points of view and particular interpretations of the facts. These interpretations were sometimes very explicitly made by the narrator and sometimes only implied. In either case the complete documentation necessary to establish the validity of an interpretation was not always included, and anyone who recognized this fact and was conscious of the "slant" of the films would be less prone to accept the interpretations uncritically. Hence, there was a priori reason to expect that some opinion changes might be negatively correlated with intellectual ability despite the greater learning ability of the more intelligent.

In order to obtain evidence for or against the operation of the "acceptance" factor in the present data it was desired to utilize a measure of acceptance that was independent of the opinion changes produced by the films. The acceptability of an interpretation would be expected in general to be a function both of motivational factors such as emotional biases or predispositions and of rational analysis of the validity of the interpretation on the basis of available factual information. Of these two factors, the motivational and the rational, we would expect the heaviest weighting of motivational factors among the less intelligent and the heaviest weighting of the rational factors among the more intelligent. Less intelligent individuals would be more apt to accept a new interpretation because it fitted in with their own preconception and wishes regardless of any rational consideration, or they would be more apt to cling with bull-headed stubbornness to their own emotionally determined opinion despite overwhelming rational evidence that is presented against their opinion. The more intelligent on the other hand, with their superior learning ability, their superior ability to draw valid conclusions, their initial access to a greater number of relevant facts, would be more apt to accept or reject an interpretation on the basis of evidence and rational argument.

Ideally, for a complete analysis of the "acceptance factor" as it applies to the present data, one would seek separate measures both

of the motivational factors and of those rational factors that determine the actual validity of a given interpretation on the basis of the available evidence. Conceivably, the motivational, irrational factors determining an opinion might be correlated with intellectual ability such that the less intelligent have an irrational bias in one direction while the more intelligent have an irrational bias in a different direction. No such independent measure of the motivational factor was available in the orientation film studies. However, it seems likely that in the typical case the motivational factors would be much the same throughout the population and the critical correlation would be that between intellectual ability and the extent to which the motivational factors affected an individual's opinion. That is, the more intelligent would be expected to have *fewer* irrational determinants of opinion rather than having *different* irrational determinants as compared with the less intelligent Emphasis was therefore placed on getting a measure of the rational validity of an interpretation.

It should be noted that if the expected relationship between intelligence, opinion change, and rational validity can be established it would have greater generality than relationships to particular motivational factors. That is, we *always* expect those of greater intellectual ability to be more likely to accept an interpretation if it has greater rational validity, whereas to utilize any possible irrational biases that are held only by the more intelligent we must determine the nature of their bias in each case.

Probably the best way to rate statements as to soundness of opinion or acceptability of the interpretation would be to determine the extent to which adherence to the opinion is correlated with a joint measure of intelligence and amount of knowledge of the relevant facts. Opinions that are positively correlated with such a measure represent "informed" opinions. They are interpretations that are held only for chance or motivational reasons among those who cannot make proper interpretations, but they are progressively more likely to be the view adopted by those in progressively better positions to make the correct inference or the inference most likely correct on the available evidence. The validity of interpretations showing a zero correlation with the joint measure on the other hand is somewhat indeterminant In such a case it is ambiguous whether there is insufficient evidence for even the more intelligent to make a decision, whether emotional and rational determinants are acting in combinations that cancel or supplement each other's effects, or

exactly what are the determinants of the opinion. Opinions negatively correlated with intelligence and relevant knowledge, however, are definitely "misinformed" opinions. They are opinions that are more likely to be held the less the person is in a position to make a valid inference from factual knowledge.

In the analysis of the orientation film data it was not possible to use a joint measure of intelligence and initial access to relevant facts since repetition of the fact-quiz items was avoided by restricting their inclusion to the "after" questionnaires. In absence of a good joint measure of intelligence and relevant knowledge, a way of approximating this criterion for differentiating acceptable and non-acceptable interpretations is to differentiate the interpretive statements in terms of the correlations between *educational level* and the proportion endorsing each statement. In doing this we assume that the better educated men will on the average both be better informed and be better able, in view of their higher average intelligence, to draw correct conclusions from the information they have available.

Specifically, the assumption is that opinions expressed with increasing frequency by successively higher education groups will on the average be more likely to be correct than interpretations showing a zero or negative correlation with education. In line with this assumption, opinions may be classified according to their initial correlation with education in the control groups and the relationship between education and effects of the film determined separately for each class of opinions. If the opinion is a "valid" interpretation—i.e., if its initial correlation with education is positive—the brighter men should show greater effects because of their superior learning ability. If, on the other hand, the opinion is "invalid"—negatively correlated with education—the better educated men will be less affected than will men with less schooling.

It is apparent that the suggested procedure does not segregate the opinions according to their "validity" independently of motivational factors. Where an opinion is held in the great majority among those of little schooling and held only infrequently among the better educated, we can be fairly sure that some motivational factor is influencing the beliefs of those of little schooling Similarly, if endorsement of a particular interpretation is positively correlated with education we cannot be sure that this merely reflects the greater validity of the opinion and the greater ability of those who get further in school to arrive at valid interpretations It could be that such a correlation merely reflects a particular irrational bias among

the better educated which is not shared by the lower intelligence groups.

By itself, differences in the direction of the correlation between opinion and years of schooling achieved indicate differences in over-all predisposition—motivational and rational—to accept the interpretation represented by the opinion statement. However, the presumption is that the critical predisposing factor among those of higher education is the tendency to be guided by rational rather than by irrational factors.

In carrying out the "acceptance" analysis, only those opinion questions significantly affected by the films were used in order not to dilute the analysis with chance results. It was not feasible in this analysis to segregate the items according to whether the interpretations had been specifically made in the films or whether they had only been unstated implications of the film material (cf. p. 171f). However, it should be clear that the same factors that apply in the case of film-made interpretations also apply to interpretations not specifically mentioned in the films but which might possibly be made by the audience members as implications of the material presented. In such cases it would still be expected that the acquisition of a new interpretation would be a function of initial access to relevant facts, ability to make valid inferences, relative contribution of emotional and rational considerations, and so forth

All opinion questions significantly affected by the "Why We Fight" films studied were sorted into three sets on the basis of their correlation between education and initial level of response in the control group. The effect of the film for each of these three sets of items, selected on the basis of *initial* correlation with education, was then computed. The *initial* correlation with education for the three sets of items is shown below in terms of the average frequency of endorsement in the control group at each of four educational levels. The opinion was considered positively correlated if there was a significantly higher endorsement among college men than among grade school men; it was considered negatively correlated if the difference was significant in the opposite direction.

OPINION ITEM SET (*Initial correlation with education*)	INITIAL RESPONSE (PER CENT "FAVORABLE" ANSWERS) AT EACH EDUCATION LEVEL			
	Grade school	*Some H S*	*H S grad*	*College*
Positive (11 items)	36.3	47.4	53 5	63 3
Zero (14 items)	48.1	48 9	50 0	48 6
Negative (6 items)	55 5	45.2	40 7	34.0

When effects of the films in terms of the *effectiveness index* at each educational level were averaged separately for the opinion items in the three sets defined above according to the correlations between education and initial response, the results shown in the following table were obtained.

TABLE 9

AVERAGE EFFECTS OF FILM AT FOUR EDUCATIONAL LEVELS FOR OPINION ITEMS WITH POSITIVE, ZERO, AND NEGATIVE CORRELATIONS BETWEEN EDUCATION AND INITIAL LEVEL OF RESPONSE

OPINION ITEM GROUPS	AVERAGE EFFECTS OF FILM FOR EDUCATIONAL SUBGROUPS (IN TERMS OF EFFECTIVENESS INDEX)			
(Correlation of education and initial level)	*Grade School*	*Some H. S*	*H S Grad*	*College*
	%	%	%	%
11 items with *positive correlation*	19.8	21.7	24.5	34.9
14 items with *zero correlation*	17.4	22.1	24.4	27.4
6 items with *negative correlation*	17.7	18.7	17.2	23.2

It can be seen in the table above that there is a definite trend for the effects to increase with education for those items which showed an initial positive correlation with education. Thus, the effectiveness index rises from a value of about 20 per cent for grade school men to a value of about 35 per cent for college men in the case of the eleven positively correlated opinion items. This relationship is similar to but less marked than that shown for information items (cf. p. 153) On the other hand, no consistent rise is found for the six items with negative initial correlation

More striking results on this point were obtained from the study of the delayed effects (nine weeks after the film showing) of "The Battle of Britain" The analysis is based on items which showed significant effects at this time interval. The results are shown in Figure 5 (A detailed presentation of the results of this study will be found in Chapter 7.)

(3) *Audience-made interpretations from film content* A distinction was noted earlier between interpretations provided within the film content and interpretations or generalizations made by audience members themselves on the basis of material presented. Therefore, changes in audience opinions as a result of seeing a film involve a third factor in addition to those of learning and acceptance: namely, men's tendency to make interpretations or generalizations not made

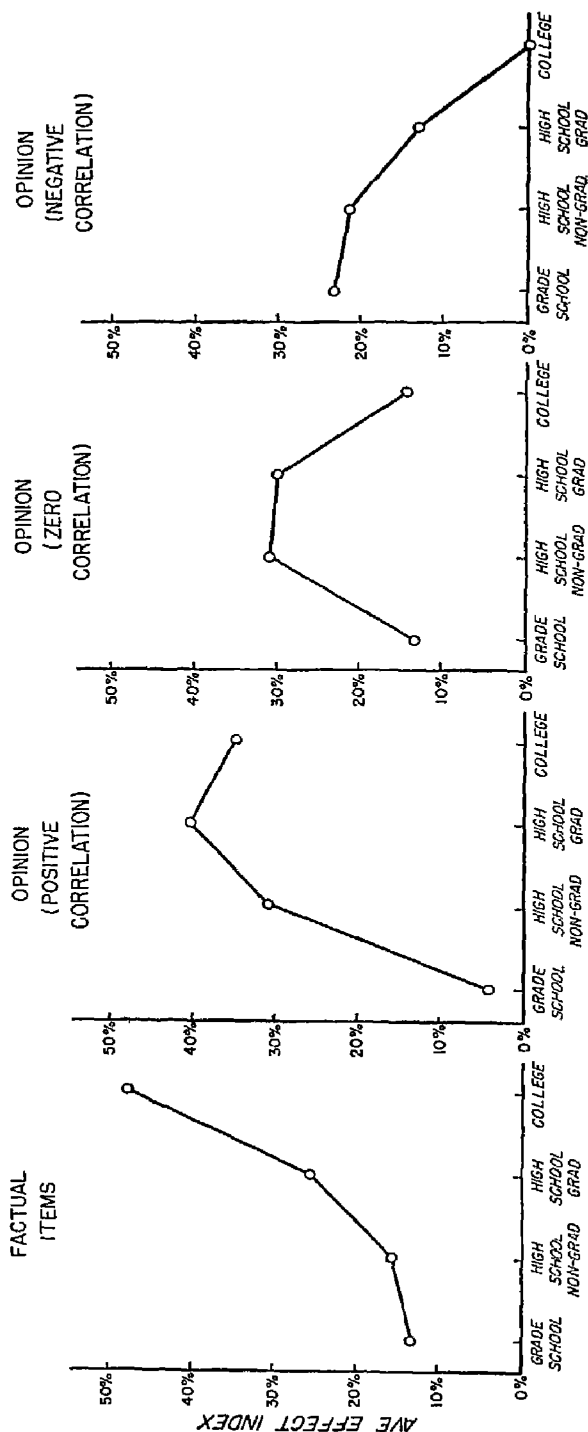


Figure 5 Relationship between educational level and amount of change produced by film for factual items and for opinion items with positive, zero and negative initial correlation with education

explicitly in the film but inferred by the men from material presented by the film

The relation of intelligence to this tendency of audience members to make their own interpretation would depend on the type of interpretation specified. The ability to make *valid* interpretations would in general be an increasing function of increasing intelligence. Thus, for valid interpretations made by the audience, the resultant of the factors of learning and acceptance would be given an additional influence in the direction of a positive correlation with intelligence. This tendency would probably be accentuated in case of valid applications to highly dissimilar areas, where presumably it would be only the men in the higher intelligence levels who would be able to make the application. In a purely factual presentation, the making of valid interpretations by audience members would presumably be the only way in which desired opinion changes would be produced If acceptance were not a factor in determining such effects, the average correlation between intellectual ability and effects would be *greater* for opinions than for information because of the added influence of greater generalizing ability for the more intelligent. Thus, the average curves given above for opinion changes in the case of the "Why We Fight" films might not be typical of results that would be obtained from films employing a purely factual presentation of such a character that any opinion changes effected would depend entirely on interpretations made by members of the audience.

Invalid applications or generalizations from film material presented would, on the other hand, be expected to be *less* frequently made by the more intelligent men than by the unintelligent, and this tendency might also be accentuated for the areas most dissimilar to those covered by the film. However, with a wide range of intelligence, invalid interpretations might in some cases be made more frequently by those of intermediate intelligence than by the least intelligent group, who might in some instances be unable to make any generalizations whatever, even if they assimilated the relevant facts For this reason, a reversal might be observed for the curve of intelligence versus effect of film on opinion statements representing invalid applications of the material presented

It was not feasible in the present film studies to carry out a systematic investigation of the kinds of effects just hypothesized because it was found impossible to obtain consistent judgments for differentiating opinion items as to whether the interpretations they

represented were made by the film or had to be inferred by the audience. Thus there was no clear-cut set of opinion items that could be used for the analysis of "audience-made" interpretations. However, one opinion item on which significant effects were obtained had been deliberately designed by the experimenters for the purpose of testing the extent to which men generalized invalidly beyond the film content in their interpretations. This was the agree-disagree statement, "The English did as good a job as possible of holding out against the Japs at Singapore," included in the questionnaires used to test effects of "The Battle of Britain." Nothing was mentioned in the film about British resistance at Singapore, and although the determined resistance of the British in defending England during the Blitz was played up, there was no direct interpretation by the film to suggest that such behavior was an invariable characteristic of the British. The effects of the film (combined results for the two camps where it was studied) are shown in the table below

TABLE 10

PERCENTAGES AT EACH EDUCATIONAL LEVEL WHO AGREED WITH STATEMENT, "THE ENGLISH DID AS GOOD A JOB AS POSSIBLE OF HOLDING OUT AGAINST THE JAPS AT SINGAPORE."

	Grade School	*Some H. S.*	*H. S. Grad*	*College*
Control group:	68%	52%	43%	28%
Film group.	68	62	48	32
Difference	*0%*	*10%*	*5%*	*4%*
"Effectiveness index"	*0%*	*21%*	*9%*	*6%*

It is seen that the effects of the film on this audience-made interpretation are less for the higher education groups than for the "some high school" group. But the effect is also absent in the case of the *lowest* education group, suggesting the "curvilinear" type of relationship mentioned above as a possibility with a wide range of intellectual ability.

(4) *Stability of opinion.* A fourth factor to consider in analyzing the relationship between intellectual ability and magnitude of change in opinion is the relative stability of opinions in the various educational subgroups. For example, the fact that brighter men showed little superiority to the less bright in terms of opinion change but were considerably superior in learning factual material may be

due in part to a greater stability of opinion among the brighter men Greater stability might be expected among brighter men on the assumption that they already have considered relevant facts and have a definite opinion on the subject. The less intelligent men, on the other hand, might be more likely never to have considered the subject and to have no real opinion one way or the other. Thus the film might not alter the well crystallized opinions of the brighter men, but would provide the less bright with an opinion for the first time.

The simplest method of analysis is to compare the per cent of men in each educational group who give the same answers on successive administrations of the questionnaire. Data were available from the "Battle of Britain" study to determine consistency at two time intervals—one for a period of two weeks and the other of nine weeks. To determine stability of opinion independent of the effect of the films the control groups were used in the analysis. The percentages of the men in each educational group who gave the same answer to the opinion items after a short (2 week) and a long (9 week) time interval are depicted in Figure 6.

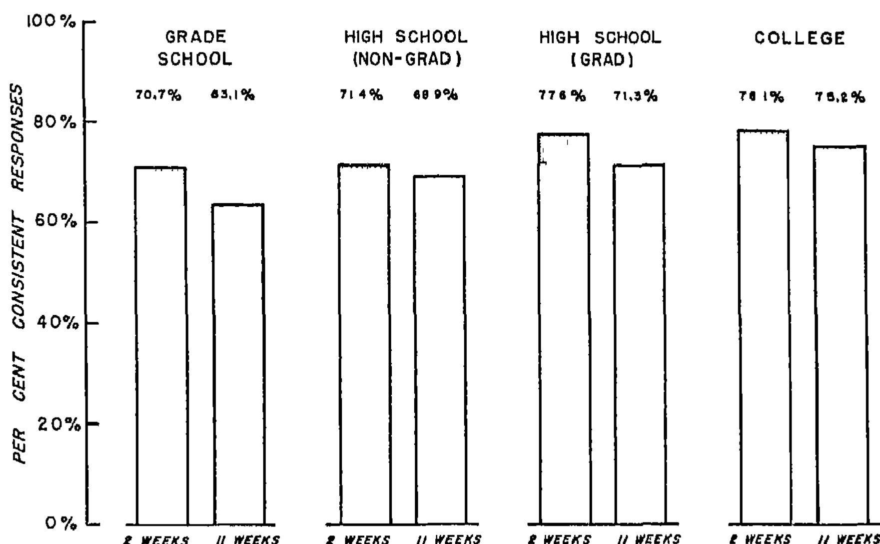


Figure 6 Stability of opinion among men of various educational levels.

These results indicate that at both the two-week and the nine-week interval there is a slight positive correlation between educa-

tional level and amount of consistency.[5] This trend held for 16 of the 21 opinion items used in the questionnaire. The correlation is primarily noteworthy however because of the fact that it is not more marked, as compared with the consistency shown by the more intelligent men, the degree of consistency for those of lower ability is surprisingly good

The other interesting point brought out by the chart is the comparative stability of opinion during the nine-week as compared with that during the two-week interval. Obtained changes in responses are due not only to real changes in opinion but also due to the unreliability of the measuring instrument It seems reasonable to assume that this unreliability is the same for the two time intervals and consequently that the decrease in consistency at the long-time interval as compared with that at the short-time interval is indicative of real change in opinion. The results indicate however that these variations in consistency are small and not substantially different for the various educational groups.

The present results then show surprisingly little difference between the high and low intelligence groups in the consistency with which they hold their opinions over time intervals varying from two weeks to over two months

Several factors have been discussed as bearing on the relationship of intellectual ability to opinion changes. The factor emerging most clearly from the present data is that of "acceptance." It is apparent from the results obtained that in the opinion areas studied some items of opinion are initially subscribed to more frequently by the brighter men than by the less intelligent, and that for these items film effects also tend to be greater among the more intelligent men. But other opinions show the reverse correlation with intellectual ability, and for such items the positive correlation between intelligence and amount of change produced by the film is not found. These findings may be interpreted by describing the initial correlation between intelligence and opinion held as a measure of "validity" of opinion and advancing the proposition that valid interpretations

[5] The amount of consistency is of course affected by initial level of opinion (i e., opinions which are held by a high proportion of the men are more limited in the amount of change than those held by a smaller proportion of the men) In the case of the present study, however, the initial level of opinion was substantially the same for the different educational groups Furthermore, an analysis of consistency for the high and low education groups on items of varying initial frequency showed that at each frequency level there was a constant superiority of the high education group in consistency.

will be accepted more readily by the intelligent but invalid ones more readily by the less intelligent than by the more intelligent.

Of the other two factors considered, that of the presumed greater ability of the more intelligent to draw conclusions from evidence presented does not emerge as clearly differentiable in the present data from the factor of acceptance. Analysis in terms of the third factor, stability of opinion, suggests that groups of differing ability are not sufficiently different in amount of stability exhibited to account for the tendency of some items to show a zero or negative correlation with education.

PART II

STUDIES EMPLOYING CONTROLLED VARIATION

INTRODUCTION TO PART II

IN THE general introduction to this volume a distinction was made between two major classes of film research. The distinction was between purely evaluative studies on the one hand, and studies employing controlled variation on the other The studies reported thus far in this volume were designed primarily for evaluative purposes. In such studies the generality of results is limited because they are tied to specific film content, so that statements of effects are in terms of the effect of a complex presentation in which many factors help determine the result but the contribution of any one factor is not singled out. A partial exception to this lies in the analyses, reported in Chapter 6, of the relation of intellectual ability to the effects of films.

In the studies reported in the three following chapters an attempt is made to obtain findings having a greater degree of generalizability. The method used is that of systematically varying certain specified factors while other factors are controlled. This makes it possible to determine the effectiveness of the particular factors varied. As pointed out in Chapter 1, one's confidence in the probable validity of generalized findings about the effect of a factor is increased by having selected for study factors which are critical in terms of theoretical formulation. The reason for this lies in part in the fact that the underlying theoretical basis is usually already grounded in a series of observations in varied contexts so that there is reason in advance to expect that the factor studied will be important in a variety of situations rather than specific to the particular conditions studied.

The studies to be reported in Chapters 7, 8, and 9 furnish examples of studies in which the method of controlled variation was used and where, in addition, the factors varied were selected partly in terms of theoretical considerations. They thus approach more nearly than do the evaluative studies previously described the kind of re-

search that is required as a basis for developing a body of principles which will permit valid generalizations concerning the influence of various factors in determining film effectiveness which are more independent of specific content.

The desirable property of generalizability of findings does not, of course, follow automatically simply because the effects of varying a specific factor of theoretical interest have been carefully studied in a particular context. As suggested in Chapter 1, it is unlikely that with the complexity of factors operating in film communication there would be many empirical generalizations which would hold without qualification for all educational films, all audiences, and all conditions of utilization. Rather, variables would be expected to interact in such a way that the most exact and most useful empirical generalizations would emerge as a series of principles rather than a single principle. Such a series of principles would designate how the effects of one variable are modified by other important variables operating in the situation. For this reason in the studies reported in the following chapters several important variable factors are studied in combination instead of confining the experimental observations to the effect of a single factor. Three studies are described:

Chapter 7 deals with the *effects of a film presentation as a function of lapse of time*. The film used was "The Battle of Britain," which was used also in a purely evaluative study of the film's immediate effects, described in Chapter 2. The analysis described in Chapter 7 represents an extension of the evaluation to include effects of the film after a lapse of time. But the new data, comparing effects obtained at two time intervals, also have general scientific rather than merely evaluative implications. Thus conclusions as to the relative magnitude of effects of a film after a long as compared with a short interval of time would be expected to have some intrinsic generalizability. The factor of lapse of time can in a sense be considered an external variable, "manipulated" experimentally by controlling lapse of time before application of the measuring instrument.

In the experiment reported in Chapter 8, the principal variables analyzed were "content" variables. In such studies, where the effects of *different kinds of presentations* are studied, it is usually necessary to have two or more controlled versions of the presentation with the same general objective. In the study reported in Chapter 8, alternative ways of presenting a particular orientation "message" were compared in effectiveness. Transcriptions instead of films were used to present the material, mainly because of the

greater ease of preparing alternative versions. The experimental analysis reported in Chapter 8 deals with variations in the kind of argument presented, and studies the effect of presenting "both sides" versus presenting only "one side" in changing opinions on a controversial subject. The analysis is made in relation to the population variable of initial opinion on the topic presented by the transcription.

Chapter 9 reports a study of the effect on factual learning of variations in the content of a film strip. The difference involved the inclusion or noninclusion of a section of the film strip during which the audience rehearsed the material presented. In terms of the classification of kinds of variables as given in Chapter 1, this difference in the construction of the film strip, allowing for rehearsal, is a "content" or "film" variable from the standpoint of the film producer. However, it could also be considered as an "external" or procedural variable by the utilizer of film products. An additional aspect of this experiment was an analysis in terms of a second "external" variable—motivation in relation to the variation in the film strip's content. The motivational factor is classified as an additional "external" variable in this instance because the variation was explicitly introduced by manipulation of the procedures used.

In each of these three studies the results are analyzed as a function of the additional population variable of general intelligence, as measured either by the level of schooling that the men in the audience had attained, or by their AGCT scores. Thus in these studies the joint effects of experimentally manipulated variables and a statistically controlled variable are studied in combination.

CHAPTER 7

SHORT-TIME AND LONG-TIME EFFECTS OF AN ORIENTATION FILM

In connection with the use of the orientation films, the question arose as to how well the effects of the films were retained over a long period of time. The practical significance of this question lay in judging the need for later supplementary material covering the same ground as the films. In the experiments with orientation films presented earlier, the effects were determined at time intervals ranging from four to seven days after the film showings. In the present study, effects were determined at two time intervals after the film showing, one at five days and another at nine weeks The primary objective of the study was to discover the extent to which the "short-time" (five-day) effects endure, as evidenced by the extent to which they were still present after a nine-week interval had elapsed.

The phrasing of the practical question to be answered by the study carries the implication that a decrement in effects is to be expected after a lapse of time. A more general question is to ask what is the influence of passage of time on the effects produced by the film. From this standpoint one need not anticipate only decrements with time; rather, in some cases the effect of time may be to enhance the initial effects of the film. Thus, some of the effects of the film may be "sleepers" that do not occur immediately but require a lapse of time before the full effect is evidenced. It should be realized, of course, that in making a controlled-variation study of the influence of time, it is not time per se that is the variable under study but rather the events which occur during the lapse of time

The film used in this study was "The Battle of Britain" This film was chosen partly because its initial effects, as determined from a previous study, were relatively large, providing a better base for measuring retention than would be the case with a film having small initial effects. The sample used in this study to determine the short-term effects of the film has already been included as part of

the total sample in the presentation of the main effects of "The Battle of Britain" in Chapter 2.

The before-after experimental design was used. The "before" questionnaire was given to ten Infantry Replacement Training companies during the first week of the study (April 1943). During the second week, the film was shown to five of the ten companies. The other five companies were controls and did not see the film during the study. Five days after the film showings, three of the film companies and three of the control companies were given the "after" questionnaire. These six companies were used to determine the *short-time* effects of the film The remaining four companies (two controls and two experimental) were used nine weeks after the film showings to determine the *long-time* effects of the film A nine-week interval was used because it was the longest period during which the companies would retain the same personnel. The experimental design is outlined below·

WEEK OF STUDY	SHORT-TIME GROUPS		LONG-TIME GROUPS	
	Experimental (3 companies)	*Control (3 companies)*	*Experimental (2 companies)*	*Control (2 companies)*
First week	"Before" questionnaire	"Before" questionnaire	"Before" questionnaire	"Before" questionnaire
Second week	Film showing	———	Film showing	———
Third week	"After" questionnaire	"After" questionnaire	———	———
Eleventh week	———	———	"After" questionnaire	"After" questionnaire

It will be observed in the experimental design that the same sample of men was not used at the two different times after the film A design involving a short-time and long-time measure on the same men was avoided on the grounds that the first "after" measure might affect the results obtained on the second It will also be observed that more men were used in the short-time measurement of effects than the long-time measurement. The reason for this was that an incidental purpose of the study was to make a more detailed analysis of the short-time effects of the film than was possible with the after-only procedure that had been used at the first camp at which "The Battle of Britain" had been studied. To get a sizable number of cases for this analysis, the greater number of men were concentrated in the short-time measurement.

After the equating of the film and control groups, the resultant samples were 900 for the short-time effects (450 film and 450 control) and 500 for the long-time effects (250 film and 250 control).

Results with Fact-Quiz Items

The results for the ten fact-quiz items (which were included only in the "after" questionnaire) are shown in Table 1. The items in the table are arranged in descending order of magnitude of *short-time* effect.

It can be seen in Table 1 that all of the items showed a decrement with passage of time except some of the items with very small short-time effects. The long-time mean score on the fact quiz was slightly less than half as great as that obtained in the short-time measurement. Thus retention was about 50 per cent after nine weeks If the results in Table 1 are recomputed excluding the last three items, where the obtained "effects" are of questionable reliability, the means are 29.7 per cent and 12.9 per cent for short-time and long-time effects, respectively, giving a retention value of 12.9 divided by 29.7 or 43 per cent.

Results with Opinion Items

In contrast with the foregoing findings for fact-quiz items, the results for opinion items did not show an overall decrement during the interval of nine weeks. Instead, some items showed the expected decrement while others showed reliable increments, with a mean effect that was slightly greater for the long-time measurement than for the short-time. For the entire group of opinion items used in the after questionnaire, the range was from a decrement of -17% to an increment of $+14\%$, with a mean of $+1.9\%$.[1] The variance of the differences between the short-time and the long-time "effects" was 40.3%. By contrast, when the groups were compared before the film showing, the range of the second-order differences was only from -7% to $+7\%$, with a variance of 14.6%

Comparison of Short-Time and Long-Time Effects on Individual Opinion Items Showing a Reliable Effect at Either Time Interval

The foregoing comparisons were based upon all opinion items included in the questionnaire and therefore included many items for which no reliable effect of the film was demonstrated. Of special

[1] This included all opinion items except those involving ranking of enemy and allied strength and two questions about branch of service that could not be scored individually.

TABLE 1

SHORT-TIME AND LONG-TIME EFFECTS OF "THE BATTLE OF BRITAIN" ON FACT-QUIZ QUESTIONS

FACT-QUIZ ITEM	SHORT-TIME			LONG-TIME			DIFFERENCE (*Long-time minus short-time*)
	Control	*Film*	*Diff*	*Control*	*Film*	*Diff.*	
1. RAF not destroyed on ground because kept planes at edge of fields	23%	80%	*57%*	21%	53%	*32%*	−25%
2 First targets of Luftwaffe were ports and ships	13	58	*45*	13	20	*7*	−38
3. Luftwaffe ten times as large as the RAF	24	56	*32*	19	33	*14*	−18
4 Nazi plan was to destroy RAF, then invade England	30	58	*28*	26	40	*14*	−14
5 British Navy could not operate in channel because of danger of air attacks	41	60	*19*	37	44	*7*	−12
6. After fall of France British could equip only one modern division	5	21	*16*	3	8	*5*	−11
7 Famous statement, "Never . . . was so much owed by so many to so few" referred to the RAF	23	34	*11*	17	28	*11*	0
8. Goering the head of the German Air Force	58	65	*7*	51	58	*7*	0
9. "Luftwaffe" the name of the German Air Force	66	72	*6*	65	70	*5*	−1
10. Germans lost about 2000 planes in the Battle of Britain	49	54	*5*	49	58	*9*	+4
Mean	33 2%	55.8%	*22.6%*	30 1%	41.2%	*11 1%*	−11 5%

TABLE 2

SHORT-TIME AND LONG-TIME EFFECTS OF "THE BATTLE OF BRITAIN" ON SIGNIFICANTLY AFFECTED OPINION QUESTIONS

	SHORT-TIME			LONG-TIME			DIFFERENCE (*Long-time minus short-time*)
Content of opinion item	*Control*	*Film*	*Diff*	*Control*	*Film*	*Diff*	
1. RAF gave Nazis first real defeat	21%	45%	*24%*	20%	27%	*7%*	—17%
2. RAF most important in preventing German conquest of England	54	78	*24*	46	69	*23*	−1
3 Nazi invasion attempt failed because of determined resistance of British	51	71	*20*	54	68	*14*	−6
4 Battle of Britain was a real invasion attempt	32	46	*14*	30	40	*10*	−4
5 England's refusal to surrender saved U S. cities from bombing	62	74	*12*	67	74	*7*	−5
6 RAF has done about the best job of fighting in the war	49	60	*11*	42	45	*3*	−8
7 British more democratic than before Battle of Britain	55	65	*10*	59	62	*3*	−7
8 American workers in war plants should not work longer hours	48	52	*4*	42	54	*12*	8
9. America and Allies can still lose the war (disagree)	34	37	*3*	35	48	*13*	10
10 We would be fighting on American soil if Britain had not held off Nazis	52	55	*3*	50	62	*12*	9
11 British are doing their fair share of the fighting	71	73	*2*	61	77	*16*	14
12. Better just to defend U S rather than going overseas to fight	83	84	*1*	79	90	*11*	10

TABLE 2 (Continued)

Content of opinion item	SHORT-TIME Control	SHORT-TIME Film	SHORT-TIME Diff	LONG-TIME Control	LONG-TIME Film	LONG-TIME Diff	DIFFERENCE (Long-time minus short-time)
13 If England had been conquered the U.S. would have been attacked next	23%	24%	*1%*	22%	32%	*10%*	9%
14. The war will probably end in less than one year	11	10	*−1*	12	22	*10*	11
15. The British not to blame for America's having to get into the war	56	54	*−2*	44	55	*11*	13
Mean	46 8%	55 2%	*8 4%*	44 2%	55 0%	*10 8%*	2 4%

interest are the items which individually exhibited reliable effects of the film. In Table 2 the results at the two time intervals are shown for the 15 opinion items for which a reliable effect was obtained at either or both of the two time intervals

The criterion of reliability used for the selection of items in Table 2 required a 10 per cent difference between film and control after the film showing. In terms of the empirical distributions of film-minus-control differences before the film, a difference of 10 per cent was beyond the 1 per cent level of confidence at either time interval (The standard deviation of the distributions of "before" differences between film and control were 2.7 per cent and 3.5 per cent, respectively, for the short-time and long-time groups.) In the table the content is indicated for each of the 15 items, as well as the film and control percentages for each item at each time interval. The items are arranged in descending order of magnitude of *short-time* effect.

As can be seen from Table 2 the average for the 15 items was about the same for short-time and long-time effects, with a slight advantage (2.4 per cent) in favor of the long-time effects. However, Table 2 brings out clearly the fact that the near equality of the averages is a balance of some effects that were larger in the short-time measurement and others that were larger in the long-time measurement rather than approximate equality of individual effects

at the two time intervals. This trend is perhaps somewhat exaggerated in Table 2 owing to the selection of effects that met the criterion of 10 per cent at either time interval. Thus borderline instances that just barely met the criterion at only one of the time intervals would be expected to regress somewhat in a replication of the experiment.

These findings are of considerable significance both from the standpoint of methodology of research on educational films and from the standpoint of theory as to the effects of educational programs on attitudes Methodologically, they raise the problem as to the point in time at which effects of a film or other educational device are to be measured From the standpoint of theory they raise the possibility of "sleeper" effects in the case of opinions and the implications of such effects for theory of attitude or opinion changes. From the standpoint either of educational film research or of the use of educational films it would be very desirable to know how generally this finding holds for documentary films of this type and also to know what factors determine whether the effects will show a loss or a gain with time. Unfortunately, studies of long-time effects were not made on any of the other orientation films, so no evidence can be given as to the generality of the results

An analogy may be drawn between the findings reported here and the finding in studies of retention that "substance" is better retained than verbatim learning [2] Thus the general ideas in a passage of verbal material are retained with little loss over periods in which memory for the actual wording has dropped markedly. In the present study retention for opinions—which correspond to the substance—averaged better than 100 per cent whereas memory for detailed facts dropped to only half of its initial value.

However, this analogy is somewhat superficial in view of the fact that the average for opinions was a mixture of some gains and some losses on particular items of "substance" (if opinions can be regarded as "substance"). In this connection it may be pointed out that another familiar phenomenon in learning studies—the phenomenon of "reminiscence," in which more rather than less of the original content is recalled after a lapse of time—is more frequently found in the case of substance material than in the case of detailed verbal

[2] Cofer, C N "A Comparison of Logical and Verbatim Learning of Prose Passages of Different Lengths" *Amer. J. Psychol.*, 1941, *54*, 1–20

content.[3] Thus the present results may be regarded as a mixture of the greater retention of general ideas plus "reminiscence" for part of the material.

One hypothesis as to the source of the "sleeper" effects involving a purely methodological artifact was checked but was not supported by the data. This hypothesis was that the before-after procedure may cause a "consistency reaction" which would occur when the two questionnaires are close together in time but which would not be present for two questionnaires separated by an interval as long as eleven weeks. The possibility of a "consistency reaction" is discussed in Appendix C along with other methodological aspects of the before-after procedure The effect of the "consistency reaction," if present, would be a tendency for the respondent, having given a particular answer to a question on one occasion, to give the same answer when questioned in a similar context a short time later. Hence the true magnitude of the change effected by the film would not be revealed at the short-time interval. Since some of the questions in the present study were asked only in the "after" questionnaire and others both before and after, it was possible to check whether after-only questions show the normal forgetting decrement with time and only the before-after questions show an increment This finding would be expected if the "consistency reaction" were reduced where an 11-week interval is allowed between before and after tests.

However, no significant relation was found between whether the question was an after-only or a before-after question and whether it showed a decrement or an increment with time. In Table 2 the after-only questions were numbers 2, 7, 8, 11, 14, and 15. Of these six after-only items, it can be seen that two showed a decrement and four showed an increment in effects as a function of time Of the remaining nine questions, asked both before and after, five showed a decrement and four showed an increment. Thus while the hypothetical "consistency reaction" may have functioned to some extent to reduce the size of the decrement, the data do not at all support it as the factor responsible for the delayed or augmented effects As can be seen in Table 3 the results are in the opposite direction from the prediction of the consistency hypothesis. (The apparent difference in retention of the after-only items is not significant.)

[3] English, H B, Wellborn, E L, and Killian, C D "Studies in Substance Memorization" *J gen. Psychol*, 1934, *11*, 233-60 See also Buxton, C. E "'Reminiscence' in the Studies of Professor English and His Associates" *Psychol Rev*, 1942, *49*, 494-504

TABLE 3

MEAN EFFECT (FILM % MINUS CONTROL %)

	Short-time	Long-time
For six after-only items	6 2%	12 5%
For nine before-after items	9 9	9 7

Relation of the Effects to Educational Level

Further information about the nature of the effects is obtained from the analysis of short-time and long-time changes among men of differing education. Analysis by education is particularly significant for the reason given in Chapter 6—namely, that opinions positively correlated with education may be considered as "informed" opinions—as "more valid" interpretations of the available facts

Using the correlation of initial responses with education as the criterion of "validity" of opinion three sets of opinion items may be distinguished: (1) those with *positive* correlation, (2) those with *no* correlation, (3) those with *negative* correlation A fourth kind of item may also be considered: the factual items—on which positive correlation is also generally present

For purposes of the separate analysis of these different kinds of items the decision as to whether positive or negative correlation with education was present was based on whether the lowest and highest education groups differed significantly in a positive or negative direction. If this difference was not significant the correlation was considered "zero." In Figure 1, results are presented for the four sets of items, showing the average *initial level* of opinion in different education groups, i e., the correlation of the opinion with education, and showing the *changes* in opinion as a function of education in both the short-time group and the long-time group The changes due to the film are presented in terms of the "effectiveness index" to take account of differences in initial level among the different educational groups.

Two interesting relationships are revealed in Figure 1 The first is that responses initially positively correlated with education show effects of the film that are positively correlated with education, whereas responses with no significant initial correlation or with negative correlation tend to show effects that are either poorly correlated or negatively correlated with education This is in accord

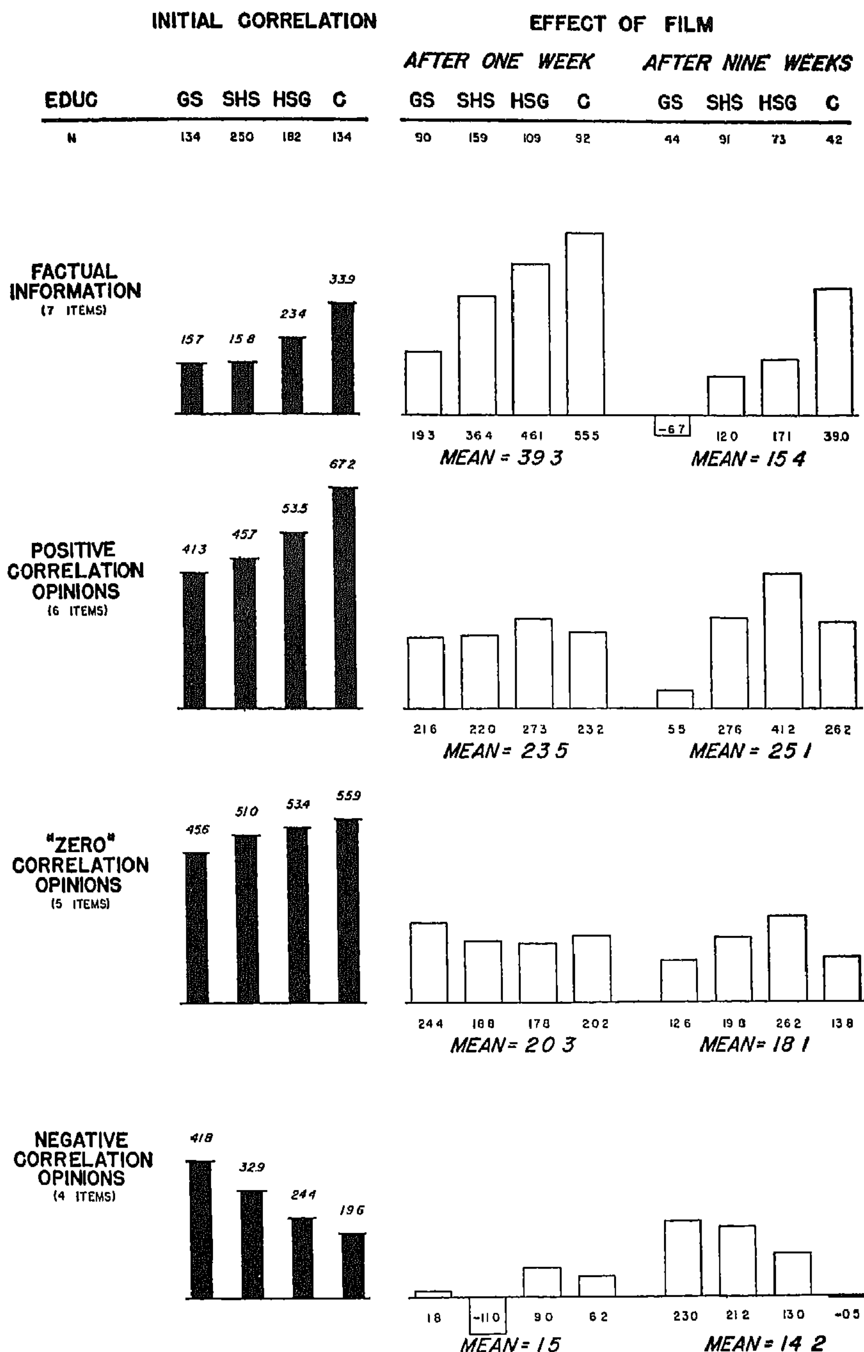


Figure 1 Mean initial levels and effectiveness indices for four sets of items for each of four education groups

with the findings reported in Chapter 6, and it will be noted that the relationship is present at both time intervals The second relationship revealed by the figure is that the more negatively correlated the response with education initially the more likely it is to show a "sleeper" effect (a gain with lapse of time) This is most easily seen in the mean effects for the group as a whole, in which a marked decrement with time is obtained for fact-quiz items, while a definite gain with time is found for opinion items having a significant negative correlation initially The increments for initially negatively correlated items are particularly notable among men with less education

These observations suggest that perhaps the "sleeper" effects are found only for "uninformed" opinions and mainly among the less well educated. But a separate analysis of those items showing gains with time—i.e , items 8 through 15 in Table 2—reveals that some are positively and some negatively correlated with education initially and that the distribution of gains with time among the different educational groups depends on the sign of this initial correlation This analysis is shown in Table 4 in which the eight items are subdivided into two groups of four each in which the curve of initial level with education was ascending (positively correlated) for one set of four and descending (negatively correlated) for the other set of four. These correspond to "informed" and "uninformed" opinions, respectively, in terms of the initial opinions of the different educational groups.

Here it is apparent that the "sleeper" effects were confined neither to uninformed opinions nor to the less well educated. Gains were obtained among all educational groups, but the magnitude of the gains with time was larger among the better educated for items initially positively correlated with education and larger for the less well educated for items initially negatively correlated with education. In other words, for all items on which increments were found, the "valid" interpretations or "informed" opinions showed greatest increments with time among the better educated, whereas the "invalid" interpretations or "uninformed opinions" showed greater increments with time among the less well educated

These results suggest the hypothesis that "sleeper" effects are obtained among individuals already *predisposed* to accept an opinion but who have not yet accepted it. According to this hypothesis, a person soon "forgets" the ideas he has learned which are not consonant with his predispositions, but that he retains without loss or

even with an increment those ideas consonant with his predispositions. Thus if an opinion is positively correlated with education, we can surmise that the better educated are predisposed to accept it—the factors leading to most better educated men's accepting the opinion should also be at work as predisposing factors affecting those better educated men who do not yet accept it. Conversely, an opinion that is negatively correlated with education indicates that the less well educated are predisposed to accept the opinion.

TABLE 4

SHORT-TIME AND LONG-TIME MEAN EFFECTIVENESS INDEX OF ITEMS SHOWING GAINS WITH TIME, BY EDUCATION, FOR THE FOUR "INFORMED" AND THE FOUR "UNINFORMED" OPINIONS

		SHORT-TIME		LONG-TIME		DIFFERENCE
	Education	*Av initial level (Percentage)*	*Av effectiveness index*	*Av initial level (Percentage)*	*Av effectiveness index*	*Long-time minus short-time effectiveness index*
"Informed" Opinions	GS	52.5	*17.9*	51.2	*16.0*	−1.9
	SHS	63.0	*3.2*	51.8	*33.6*	30.4
	HS	68.5	*0.0*	60.5	*31.2*	31.2
	Coll	73.8	*−5.8*	64.2	*38.6*	44.4
"Uninformed" Opinions	GS	43.0	*0.9*	40.5	*24.8*	23.9
	SHS	34.0	*−8.2*	31.8	*20.5*	28.7
	HS	23.5	*8.8*	25.2	*12.8*	4.0
	Coll.	17.8	*5.1*	21.5	*7.0*	1.9

Of course in most cases an opinion positively correlated with education will have its counterpart that is negatively correlated. Thus, since belief that Britain was to blame for our entering the war was negatively correlated with education, belief that Britain was *not* to blame was positively correlated with education. In most cases, therefore, of a sizable correlation of opinion with education, we can say that the better educated are predisposed in one direction and the less well educated are predisposed in the other.

It is worth pointing out that education is only one of the possible indices of predisposition. Ideally one would get a multiple regression based on all the important factors associated with a particular opinion On the basis of a *combination* of predisposing factors one could then more exactly segregate the total population into fairly homogeneous subgroups that should be predisposed to think alike because of the common influences that mold opinion Such a segregation was not feasible in the present instance but an analysis to test the implication of the predisposition hypothesis was made using education as the basis for subdividing the sample into subsamples which were homogeneous with respect to this one variable and all of its associated predisposing factors. In view of the findings reported at the outset of Chapter 6, it seems likely that education would be the best *single* variable to use in analyzing the present data.

The logic of the analysis to test the predisposition hypothesis was as follows: the initial trend of opinion was examined for each of the four educational subgroups on each of the 15 opinion items that were significantly affected (shown in Table 2) Where an opinion is positively correlated with education we expect the opinion generally to be in the minority among the less well educated and in the majority among the well educated, and conversely for negatively correlated opinions. In line with this, the degree of predisposition of a particular educational subgroup with respect to a particular opinion was regarded as being a function of the degree to which that opinion was held by the members of that subgroup Effects were therefore analyzed for each subgroup, on each of the 15 opinions, as a function of the initial degree of acceptance indicated by the control findings.

Specifically, the analysis consisted of breaking down the control-group results into sixty (15 × 4) subpercentages, one each for the responses of each of the four educational groups on each of the 15 items in Table 2 The effects of the film, short-time and long-time, were then analyzed as a function of the degree of initial acceptance —defined as percentage choosing the response in each of the 60 initial-acceptance levels in the total array. According to the hypothesis, an opinion which is very infrequent in a particular educational subgroup is one which that group is predisposed *against* whereas an opinion held by the great majority of the subgroup is one *toward* which they are predisposed. Accordingly, opinions should show decrements or increments corresponding to the direction of the pre-

disposition during the lapsed time after seeing the film. The total array of 60 initial percentages, derived from the control findings of the four educational groups' responses to the 15 items, can be ranked from the highest percentages—indicating the opinions initially most strongly held by a subgroup—to the lowest percentages—indicating the opinion initially most strongly opposed by any of the subgroups. According to the hypothesis there should be, corresponding to this ranking of "predisposition," a trend in effects such that increments in effects with lapse of time are found associated with items ranking high in initial acceptance and decrements are found associated with items ranking low in initial acceptance.

The results in general confirmed the hypothesis A trend toward being affected by the film if predisposed did not show up clearly in the short-time results, but it was quite apparent in the long-time results. However, even this latter trend was accompanied by a great deal of variability. The results are shown in Table 5 with some of the variability smoothed out to show the trend by combining the 60 separate effects to make six class intervals of differing initial acceptance. The method of combination was to arrange in rank order the 60 separate initial-acceptance levels for combined short-time and long-time control groups The ranks therefore ranged from 1 to 60, with the rank of 1 indicating the highest initial per cent obtained for the two controls combined and 60 indicating the lowest. The data were then simply combined in successive sixths. The ten combinations in each sixth are the same for both the short-time and long-time samples although the mean acceptance-level was necessarily somewhat different in each sixth for short-time versus long-time control. The results were as follows:

TABLE 5

SHORT-TIME VERSUS LONG-TIME MEAN EFFECTIVENESS INDEX FOR 60 PREDISPOSITION CATEGORIES

	SHORT-TIME DATA		LONG-TIME DATA	
Rank order of initial acceptance	*Av level of initial acceptance*	*Effectiveness index*	*Av level of initial acceptance*	*Effectiveness index*
(most) 1–10	77.1%	*17 4%*	74 7%	*30 8%*
11–20	59 2	*23 5*	58 0	*28 6*
21–30	53 1	*10 0*	46 0	*25 7*
31–40	45 7	*23 8*	44 2	*19 0*
41–50	33 2	*16 6*	31.8	*14 7*
(least) 51–60	12 4	*10 0*	14 6	*9 6*

While the results show some unexplained variations, it will be observed that with a high level of initial acceptance the mean long-time effects are larger than the mean short-time effects—indicating an increment with passage of time—whereas with low initial level of acceptance the mean short-time effects are the larger—indicating decrements.[4] Also a clear trend of greater effect with greater initial acceptance is seen for the long-time results. In the short-time results no clear-cut trend is visible. It is interesting that the dividing point between the effects that increase and those that decrease after a long interval is at about the 50-50 point of initial division of opinion.

While the above results are very indirect as evidence, they support the idea that degree of retention of opinion changes and the extent to which effects increase with lapse of time is in part a function of initial predisposition to accept the opinion affected.

However, it seems likely that this "predisposition hypothesis" is not sufficient by itself to account for the "sleeper" effects observed. For one thing, while the expected trend does appear in Table 5, the closeness of the relationship is not striking. The rank order correlation of effects and initial level even for long-time is only .41 and for short-time is .09. This general lack of relationship with short-time effects—apparent in Table 5 as well as in the low rank-order correlation—is difficult to reconcile with the hypothesis. If a man is predisposed to believe an idea, he should *immediately* accept it more readily than ideas against which he is predisposed. We should therefore expect that the items that show increments over time would also show immediate effects at the short-time which might be as large or larger than the nonsleeper items. But this expectation is not confirmed in a single instance. Inspection of the data presented in Table 2 for items that showed an increment (items 8 through 15) shows that none of these "sleeper" or increment items showed a significant overall effect at the short-time interval. This failure to obtain any significant short-time effects for items where the long-time effects were greater than the short-time effects appears quite contrary to the expectations of the hypothesis. Thus while the results summarized in Table 5 are in line with the hypothesis of a predisposition factor, the operation of this factor

---

[4] In computing mean effects, the sign given to each effect is positive for the direction of change found significant in the overall results shown in Table 5, and effects have been measured in terms of the "effectiveness index" to take account of the varying initial levels.

would not by itself account for all of the findings. What is needed is some mechanism to account for *delayed* effects that do not show up at all immediately after the film. It is interesting in this connection that while a "selection ceiling," as described in Chapter 3, is suggested by the results for the short-time men, no such result is obtained among the long-time men. An elaboration of the present hypothesis might be that "sleeper" effects are likely in the "die-hards" who resist the message at first but eventually change their opinion in conformity with the predisposing factors of their subgroup of the population.

Other Hypotheses

A number of other hypotheses may be advanced suggesting possible factors contributing to the increments on some of the opinion items. These hypotheses could not be checked in the present experiment but they are presented below because they may provide useful areas for future study.

1. *Forgetting of an initially discounted source* One hypothesis that could explain the results would be that some of the themes of the presentation were initially accepted and others were initially discounted as having a biased source. According to this hypothesis, forgetting is the rule but the *source* of an item of information is more quickly forgotten than the material presented. Thus the men might have retained a feeling that the British did well in the war long after they have forgotten about seeing the film, "The Battle of Britain." The factors involved in this hypothesis would be maximized in situations where the content was very well presented but where the source was suspect, so that the main factor preventing an attitude change is nonacceptance of the trustworthiness of the source. In this case, what is remembered and what is believed may be kept separate at first, but if the content "sticks" after the source is forgotten, it may no longer be discounted. Content would of course be subject to some forgetting, so that the net result would be a decrement of effect with passage of time for those contents which are *immediately* accepted contents, but an increment of effect for those contents for which forgetting of the suspected source proceeded more rapidly than forgetting of the content.

2. *Delayed interpretation in a relevant context.* Another hypothesis is that while forgetting of content is the rule, the implications of the initially learned content may not be apparent to the audience at the outset but may become more clear later when the material

learned in the film becomes relevant to some new experience. Thus the film, "The Battle of Britain" showed the defeat of the Luftwaffe by the much smaller RAF and the frustration of the Nazi plans for the capitulation of Britain Initial effects on fact-quiz and attitude items indicated that this content was learned. However, the film in no way presented the idea that the Nazi military machine was weak or that their strategy and tactics were inferior, and nothing in the initial effects indicated that this was a conclusion immediately drawn by the men as a result of seeing the film. However, if the men were later forced to consider the implications of these facts as to the likelihood that the Nazis could defeat the Allies, they might conclude that if the Germans could not defeat little Britain they have little chance of winning the war, as in the delayed effect on item number 14 in Table 2

An expectation from this second hypothesis is that material directly related to the content of the film would tend to show a decrement with time in correspondence with the forgetting curve, whereas increments would occur only for indirect implications of the content that could be initiated at a later time while a fair amount of the content was still retained. However, as already noted (Chapter 6, p. 171f), a differentiation between direct and indirect implications is one which it was not feasible to make clearly with these films

3. *Conversion of details into attitudes.* A third hypothesis to account for the results involved a possible factor that would, if it actually functions, be of more general significance for theory concerning attitude formation. According to this hypothesis, forgetting is accompanied by loss of specificity of content—the details drop out and only the "general idea" or "substance" of the material remains. This "general idea" that is retained is in a more generalizable form, so that the individual has a greater tendency to go beyond the facts initially learned. In this sense attitudes are to a certain extent "general ideas" that lack specificity and generalize more broadly than is justified by the evidence

An example of the interpretation from this hypothesis in the case of the film, "The Battle of Britain," would be that initially the men learned specific facts about the performance of the British, particularly the RAF, during the Battle of Britain, but as the specific facts were forgotten all that was remembered was that the British had performed well in the war. In this form the "general idea" applies to all British rather than just the RAF and to the entire war rather than just the Luftwaffe attack on England. Any opinions that

dealt with specific contents would show a decrement with time, whereas those dealing with generalizations beyond the evidence would show an increment with time.

Delayed Effects on Orientation Objectives

One final question raised by the findings in this comparison of long-time and short-time effects of an orientation film is the extent to which delayed effects were found in the orientation objectives of the film. This is a question of methodological importance in the evaluation of an educational program designed to affect attitudes, because the evaluation may provide a different answer depending on the point in time at which the program is evaluated. The findings in the present study indicate a real possibility that at least in the case of the film, "The Battle of Britain," greater effects on orientation attitudes were obtained after a nine-week lapse of time than after only five days. The relevant findings are presented below.

The orientation objective most relevant to the film was that of increasing confidence in our ally, Britain. While many items about Britain were included to test the effects of the film, only six items were used for the specific purpose of determining general orientation attitudes toward Britain. The short-time and long-time effects for these items are shown in Table 6. The effects are measured as differences between before-after changes for all questions used in both questionnaires.

Results on other standard orientation items not specific to opin-

TABLE 6

EFFECTS ON THE ORIENTATION OBJECTIVE OF INCREASING MEN'S CONFIDENCE IN THE BRITISH

	EFFECT OF FILM	
Content of item	*Short-time effect*	*Long-time effect*
British are doing all they can to help in the war	7%	3%
British will try to work out a just peace after the war	9	7
British are taking it easy in hope that U S will win the war for them (disagree)	2	9
British are doing their fair share of the fighting	2	16
British will fight on to the end (rather than seek a separate peace)	1	4
British are to blame for America's entry into war (disagree)	−2	11
Mean	3 2%	8 3%

ions of the British are shown in Table 7. These items are of lesser relevance to the film than the above items concerning Britain as an ally. Specific contents of individual items are not shown; only the general area of the items is given. In the case of each area, however, the results given are the averages for all of the standard items used in that area.

TABLE 7

EFFECTS ON GENERALIZED ORIENTATION OBJECTIVES

Content of area	Average effect of film: Short-time	Average effect of film: Long-time
The U S had to fight—war was unavoidable (3 items)	0 3%	6.0%
Resentment against the enemy (2 items)	−2 0	5.0
Confidence in home support (4 items)	−1.0	2 0
Willingness to serve (2 items)	1 5	0 5
Mean	0 5%	3 4%

In both Table 6 and Table 7 the mean effect is larger at the long-time interval. This indicates that a greater effect of the film in achieving its orientation objectives was present after nine weeks than after one week. However, the results are not highly consistent from item to item in Table 6 nor from area to area in Table 7 In neither case is the result reliable at the 5 per cent level if we treat the questions used as a sample from the population of relevant items.

While inconclusive, the results have a bearing on two important problems: (1) they support the hypothesis that changes in opinions of a general rather than specific nature may show increasing effects with lapse of time, and (2) they focus attention on the methodological problem of selecting the point in time at which measurements should be made after a presentation in order to detect its full effects. At the outset of the present studies it was more or less assumed that deterioration of effects with time would be the rule; it now appears that this assumption is not warranted in the case of opinions of a general nature

CHAPTER 8

THE EFFECTS OF PRESENTING "ONE SIDE" VERSUS "BOTH SIDES" IN CHANGING OPINIONS ON A CONTROVERSIAL SUBJECT

IN DESIGNING Army orientation programs an issue which was frequently debated was this question. When the weight of evidence supports the main thesis being presented, is it more effective to present only the materials supporting the point being made, or is it better to introduce also the arguments of those opposed to the point being made?

The procedure of presenting only the arguments supporting a thesis is often employed on the grounds that when the preponderance of the evidence supports the point being made, the presentation of opposing arguments and misconceptions merely raises doubts in the minds of the audience On the other hand, the procedure of presenting the arguments for both sides was defended on the grounds of "fairness"—the right of members of the audience to have access to all relevant materials in making up their minds. Furthermore, there is reason to expect that those audience members who are already opposed to the point of view being presented may be distracted by "rehearsing" their own arguments while the topic is being presented and will be antagonized by the omission of the arguments on their side. Thus, presentation of the audience's arguments at the outset possibly would produce better reception of the arguments which it is desired to convey.

The present experiment was set up to provide information on the relative effectiveness of these two types of program content in changing the opinions of individuals initially opposing as compared with those favoring the position advocated in the program. Controlled variation of treatment was introduced by preparing two transcrip-

tions with the same orientation message in alternative forms. In one form arguments were presented on only one side of the issue; in the other both sides were presented.

Methods of Study

1. THE TWO PROGRAMS USED

At the time the experiment was being planned (early 1945) the war in Europe was drawing to a close and it was reported that Army morale was being adversely affected by overoptimism about an early end to the war in the Pacific A directive was issued by the Army to impress upon troops a conception of the magnitude of the job remaining to be done in defeating Japan. This furnished a controversial topic on which arguments were available on both sides but where the majority of experts in military affairs believed the preponderance of evidence supported one side It was therefore chosen as a suitable subject for experimentation

Radio transcriptions rather than films were used, primarily because of the simplicity with which they could be prepared in alternative forms. The basic outline of the programs' content was prepared by the Experimental Section. All materials used were official releases from the Office of War Information and the War Department. The final writing and production of the programs were carried out by the Armed Forces Radio Service.

The two programs compared in this chapter were in the form of a commentator's analysis of the Pacific War. The commentator's conclusion was that the job of finishing the war would be tough and that it would take at least two years after VE Day. A brief description of the two programs follows.

Program I ("one side"): The major topics included in the program which presented *only* the arguments indicating that the war would be long were: distance problems and other logistical difficulties in the Pacific; the resources and stockpiles in the Japanese Empire; the size and quality of the main bulk of the Japanese Army that we had not yet met in battle, and the determination of the Japanese people. The program ran for about fifteen minutes.

Program II ("both sides"): The other program ran for about nineteen minutes and presented all of these same difficulties in exactly the same way. The difference of four minutes between this and the "one-sided" program was the time devoted to considering arguments for the other side of the picture—U.S. advantages and Japanese

weaknesses such as our naval victories and superiority, our previous progress despite a two-front war, our ability to concentrate all our forces on Japan after VE Day, Japan's shipping losses, Japan's manufacturing inferiority, and the future damage to be expected from our expanding air war. These additional points were woven into the context of the rest of the program.

Before the preparation of these programs, pretests had been conducted in which men were individually interviewed on questions relating to the length of the war with Japan The purpose of this was to discover what arguments were actually used by the soldiers who took the position that the war would soon be over At the same time, the phrasing of questions for the final questionnaire to be used in the study was worked out. This qualitative pretest was followed by a quantitative pretest on 200 men to discover the approximate distribution of men's estimates of probable length of the war and the approximate frequency of the various arguments for and against a short or long war. The information thus gained was then used as a basis for preparing an outline of the factual material to be used in the program, greatest weight being given to the material relevant to countering the arguments most frequently offered by the men as a basis for expecting an early end to the war in the Pacific after VE Day.

In preparing the programs, the sequence and manner of presenting the various arguments was guided, in so far as possible, by principles thought to be those which would most effectively utilize the arguments on both sides so as to convince the men initially opposed to the orientation message The major hypothesis governing the preparation of the presentation giving "both sides" was that those who were opposed would be stimulated by a one-sided argument to rehearse their own position and seek new ways of supporting it. A further aspect of this hypothesis was that those opposed to the position taken would discount a one-sided presentation as coming from a biased source that had failed to consider the arguments on the other side. The introduction of the arguments "on the other side" was designed to minimize such tendencies among those opposed. In line with these considerations, the following provisional rules or principles of presentation were formulated

(1) *All of the main arguments on the other side should be mentioned at the very outset.* This was designed to have the effect of indicating to the opposed members of the audience from the very beginning that their point of view and supporting arguments would not be

neglected. As a consequence it was expected that they would be less likely to start rehearsing their own arguments to themselves, more likely to credit the presentation as having the authenticity that usually goes with unbiased interpretations, and less likely to have their own emotional motivations aroused against accepting the conclusion of the communication.

(2) *Any appeals to the motives of the opposed audience members should be presented early.* On the assumption that appeals to motives are the most important determiners of opinion change, it seems likely that with opposed audience members the rational arguments would be more influential if the emotional appeal had already been made as far as possible. This timing would be less important with individuals already emotionally predisposed to accept the conclusion —the latter group would be highly receptive to the rational arguments that backed up their position.

(3) *Opposed arguments that cannot be refuted should be presented relatively early.* Such arguments actually tend to weaken the conclusion, but they serve to satisfy the opposition and thus reduce antagonism. By high-lighting them fairly early in the communication, the maximal advantage in reducing aggressive tendencies is obtained, but they should also be expected to be remembered less at the conclusion of the communication.

(4) *An attempt to refute arguments on the other side should be made only when an obviously compelling and strictly factual refutation is available.* Here the expectation is that any attempted refutation will have a tendency to antagonize the opposed members of the audience, and may motivate them to seek new arguments to support their position. Therefore, direct refutation should be considered only when it is based on factual evidence so strong that it will be accepted even by those who are opposed.

(5) *An unrefuted opposed argument should be followed by an uncontroversial positive argument* The inference here is that a negative argument can be offset by an equally strong or even stronger positive argument. It may even be true that the effect will often be greater if a refutable negative argument is left unrefuted in order not to arouse any antagonistic motivation—in order to avoid getting the opposed listener's "ego" involved—and is instead offset by a positive argument that is accepted as valid by the opposition. The order of negative, then positive, should serve to indicate that the negative point is being considered, but that despite this important point on the negative side, the positive point swings the balance in

the direction of the conclusion endorsed. This sequence should take advantage of the appearance of impartiality and satisfy the opposition as to the correctness and relevance of their own considerations, but still leave the weight of evidence against their position.

(6) *The timing in presenting counter arguments of the opposition should be: positive argument leading, objection raised by an opposed counter argument, and then positive argument offsetting the objection.* One purpose of this sequence is to state the negative argument exactly at the time that it is most likely to be aroused implicitly in the opposition group. They therefore should not be so likely to rehearse the argument in an antagonistic frame of mind, but instead be gratified to hear their own position voiced. At the same time their argument is presented in a context of doubt, and the argument that is favored by both primacy and recency is the positive argument that is used to refute or offset the negative counter argument.

(7) *Any refutations, and those positive arguments which are potentially most antagonizing, should come late in the presentation.* This follows from the expectation that a potentially antagonizing refutation will elicit less antagonism if the opposition has already been changed in a positive direction by the preceding portions of the communications. If they have already been partly "won over" to the position of the communication, they may not be at all antagonized by an idea that would have aroused aggression at the outset.

(8) *Members of the opposition should not be given a choice to identify themselves as such.* This principle is perhaps more difficult to utilize than the others. The basis for the principle is that a person is easier to change if he does not have his "ego" involved in supporting a particular point of view. If he feels that he belongs to a group that is being attacked by the communication, he is more likely to respond with aggressive resistance. Anything that can be done to present the communication as if it represented the views of each member of the audience, or to prevent the listeners from taking sides on the issue, should make those initially opposed more susceptible to change.

Not all of these "rules" could be adhered to strictly in the preparation of the actual scripts. However, an outline of the factual material to be presented was organized in such a way as to follow rather closely the implications of the first five rules, and in general to introduce the negative arguments at those points where, as determined by pretests, they seemed most likely to occur spontaneously to the opposed members of the audience. In these pretests, interviewers

had actually presented the case for a long war in a face-to-face situation and had attempted to elicit counter arguments from interviewees who felt that the war would be short. In the final scripts used, refutations of the opposed arguments were in general avoided. Counter arguments rarely took the form of trying to *disprove* or *deny* the truth of an important argument, rather, the truth of the argument was admitted but its force was weakened by immediately bringing in additional relevant facts.

The outline of factual material thus organized was used by the script writers as the basis for preparing the program that used arguments on "both sides" of the question. The script for the "one-side" version was identical with that for "both sides" except for the omission of all facts or arguments supporting a short war, plus a very few wording changes necessary for transitional purposes.

At the time of preparing the scripts, the writer knew the purpose of the experiment and the actual wording of the main question to be used in measuring the effects of the transcriptions.

It should be pointed out that while Program II gave facts on *both sides* of the question, it did not give equal space to both sides, nor did it attempt to compare the case for thinking it would be a long war with the *strongest possible case* for believing it would be an easy victory and a short war. It took exactly the same stand as that taken by Program I—namely, that the war would be difficult and would require at least two years. The difference was that Program II mentioned the opposite arguments (e g., U.S. advantages). In effect it argued that the job would be difficult, even when our advantages and the Japanese weaknesses were taken into account.

2. CONDUCT OF THE EXPERIMENT

The general plan of the experiment has been discussed in another connection in Chapter 5. The procedure was to give a preliminary "opinion survey" to determine the men's initial opinions about the Pacific War and then to remeasure their opinions at a later time, after the transcriptions had been played to them in the course of their orientation meetings. In this way the *changes* in their opinions from "before" to "after" could be determined. A control group, which heard *no* transcription, was also surveyed as a means of determining any changes in response that might occur during the time interval due to causes other than the transcriptions—such as the impact of war news from the Pacific

Since the purpose of the study was to analyze differential effects

of two kinds of content on individuals with differing initial opinions, it was desirable to obtain for analysis the maximum overall effects possible. For this reason the effects were measured immediately after the presentation of the programs. It is, of course, conceivable that the effects might have been even greater after a longer time interval, and further that with the longer time interval the pattern of effects might have been different from the immediate effects observed

The preliminary survey was administered during the first week of April 1945 to eight Quartermaster training companies. One week later eight platoons, one chosen at random from each of the eight companies, heard Program I (which presented only one side) during their individual orientation meetings. Another group of eight platoons, similarly chosen, heard Program II (which presented both arguments). Immediately after the program the men filled out the second questionnaire, ostensibly for the purpose of letting the people who made the program know what the men thought of it. Included in this second questionnaire, with appropriate transitional questions, were some of the same questions that had been included in the earlier survey, asking the men how they personally sized up the Pacific War. A third group of eight platoons served as the control with no program. They filled out a similar questionnaire, during their orientation meeting, which, in addition to asking the same questions on the Pacific War, asked preliminary questions about what they thought of their orientation meetings and what they would like in future orientation meetings. For the control group, the latter questions—in lieu of the questions about the transcriptions—were represented to the men as the main purpose of the questionnaire.

While 24 platoons were used for this experiment, the units were at only about 70 per cent of full strength at the preliminary survey and at the orientation meetings. The "shrinkage" was therefore quite large as to number of men present *both* times, and the sample available for "before-after" analysis was consequently small (a total of 625 men, with 214 in each experimental group and the remaining 197 men in the control group) In view of the rapidly changing picture in the Pacific, however, it was considered inadvisable to repeat the experiment at another camp.

3. ADMINISTRATION

For proper administration of the experiment there were three major requirements: presentation of the transcriptions under realistic conditions, preventing the men in the sample from realizing that the experiment was in progress, and getting honest answers in the questionnaires. For realism in presentation, the transcriptions for the experimental groups were incorporated into the training program and scheduled as part of the weekly orientation hour. This not only insured realistic presentation but also helped to avoid indicating that effects of the transcriptions were being tested.

The preliminary "survey." The preliminary "survey" had been presented as being part of a War Department survey "to find out how a cross section of soldiers felt about various subjects connected with the war," with examples being given of previous Research Branch surveys and how the findings had been used. Questionnaires were administered to all the men in a company at once, the men being assembled in mess halls for the purpose The questionnaires were administered by "class leaders" selected and trained for the job from among the enlisted personnel working at the camp. In an introductory explanation of the survey the class leader stressed the importance of the survey and the anonymity of the answers. No camp officers were present at these meetings and the men were assured that the surveys went directly to Washington and that no one at the camp would get a chance to see what they had written The questionnaire used in this preliminary "survey" consisted mainly of check-list questions plus a few questions in which the men were asked to write their own answers. The content of most of the questions was the point system for demobilization and the Army's plans for redeployment. This was a convenient context for the questions that formed the measuring instrument per se which dealt with the difficulty of defeating Japan. The questions about the point system and redeployment were not necessary for the actual experimental measurements but were used to give scope to the "survey" and to prevent a concentration of items dealing with material to be covered by the transcription. This was done partly to help make the survey seem realistic to the men but mainly to avoid "sensitizing" them to questions about the topic of the subsequently presented orientation material through placing too much emphasis on it in the survey.

The second questionnaire. To prevent the men from suspecting that an "experiment" was in progress because of the administration of two questionnaires within a short space of time, the second questionnaire differed from the first one both in its form and its announced purpose. Thus the first questionnaire was given as a general War Department "survey" while the second one was given during the orientation meetings to "find out what men thought of the transcriptions" (or, in the control group, "what they thought of their orientation meetings").

An additional difference in the administration of the two questionnaires, which was also designed to reduce the appearance of similarity, was that while the first had been given by company in mess halls the second was administered by platoon in the men's barracks where the orientation meetings were held.

While the ostensible purpose in giving the men the second questionnaire was to get their opinion of the program, appropriate "tie-in" questions, such as whether or not they thought the commentator too optimistic or too pessimistic, were used to lead to the questions as to how long they thought the war would last and on the other topics concerning the difficulty of the job

As in studies of opinion changes described in earlier chapters, it was considered necessary in the case of the present study to obtain opinions anonymously, and also to measure the effects of the program without awareness on the part of the men that an experiment was in progress. These precautions were dictated by the type of effect being studied—it was felt that if the men either thought their questionnaires were identified by name or if they knew they were being "tested," some men might give "proper" or otherwise distorted answers rather than answers expressing their true opinions in the matter.

Analysis of Results

The results to be presented are based on an analysis of the responses of men whose preliminary survey could be matched with the "after" questionnaire given in the orientation meetings. Although all of the questionnaires were anonymous, the "before" and "after" questionnaires of the same individual could be matched on the basis of answers to such personal-history questions as years of schooling, date of birth, etc., with handwriting serving as an additional factor among men whose personal history was similar.

1. *Overall Effects of the Two Programs on the Marginal Distribution of Estimates of the Length of the War*

As previously stated, the main question used to evaluate the effectiveness of the two programs was a question asking men for their estimates of the probable length of the war with Japan after VE Day. The wording of this question was the same in both the "before" and the "after" questionnaire and was as follows:

> What is your guess as to how long it will probably take us to beat Japan after Germany's defeat? (Write your best guess below.)
>
> About ____________________ from the day of Germany's defeat.

The men's answers to this question tended to be in half-year intervals and were accordingly coded by steps of one-half year each.

A marked overall shift in an upward direction in the distribution of estimates was obtained. The results are shown below with the answers dichotomized into those estimating one-and-one-half years or less versus those estimating more than one-and-one-half years.

TABLE 1

OVERALL EFFECTS OF THE TWO PROGRAMS ON DISTRIBUTION OF ESTIMATED LENGTH OF WAR

	PERCENTAGE ESTIMATING A WAR OF MORE THAN ONE-AND-ONE-HALF YEARS		
	Experimental groups		
	Program I "One side"	Program II "Both sides"	*Control group*
Before	37%	38%	36%
After	59	59	34
Difference	22%	21%	−2%
Probability	<.01	<.01	

The effectiveness of both programs is revealed by the marked change shown for both experimental groups (with practically no change for the control group). However, no advantage for one program over the other for the audience as a whole is revealed.

While changes in overall frequencies of response, such as those shown above, are often useful in evaluating the effectiveness of a

program at achieving its educational objective, they are not usually the most sensitive measure of effects. In the present case if the orientation objectives were specifically to prepare the men to expect a war of at least one-and-one-half years after VE Day, the above analysis does reveal the increase in the number of men holding this desired point of view. However, an analysis of this form often conceals other effects important for a more complete description of the changes that occur Thus shifts occurring within the region below the point of dichotomy (e g., from an estimate of six months to an estimate of one year) or within the region above this point (e.g., from two-and-one-half years to three years) are not revealed. A more sensitive analysis of the overall effects is described in the next section.

2 *Analysis in Terms of Net Proportion Who Change*

Since measurements on the same men were made both before and after the programs it was possible to get each man's individual change in estimating the length of the war. As already stated, the answers tended to be in terms of half-year units, so the minimum change occurring with a sizable frequency was a change of one-half year Accordingly, the results were analyzed in terms of whether a man increased or decreased his estimate—from "before" to "after" —by one-half year or more This analysis gets at individual shifts all along the time continuum, irrespective of whether they cross a particular cutting point along the marginal distribution

Using this analysis procedure it was found that in all groups some men increased their estimates and others decreased their estimates This is to be expected merely from the knowledge that most opinion questions are not perfectly reliable In addition, a certain amount of "turnover" of opinion is expected because of various individual experiences during the interval between the two measurements.

The results showed, however, that in the control group the positive shifts (increased estimates) were about equal in number to the negative shifts, but that in both experimental groups the positive shifts greatly exceeded the negative shifts. These results are shown in Table 2.

Here the programs are seen to have resulted in a net proportion of *two-fifths* of the men increasing their estimates. On the basis of the analysis procedure used in Table 1 we could only have been sure that a net of around *one-fifth* was affected.

TABLE 2

EFFECTS OF THE PROGRAMS IN TERMS OF NET PROPORTION CHANGING THEIR ESTIMATES

	PERCENTAGE WHO CHANGED THEIR ESTIMATE BY ONE-HALF YEAR OR MORE		
	Experimental groups		
Kind of change	Program I "One side"	Program II "Both sides"	*Control group*
No change	46%	45%	63%
Increased estimate	47	47	18
Decreased estimate	7	8	19
Net change (increase minus decrease)	40	39	−1
Net effect (experimental change minus control change)	41	40	
*Probability**	<.01	<.01	

* The method for determining the significance level of the "net effect" utilizes the fact that the net *change* for each group is the difference between two mutually exclusive proportions in the same sample—namely, the proportion P_1 who gave an increased estimate and the proportion P_2 who gave a decreased estimate. The net *effect*, is the difference between two such differences—i.e., the difference between the net change for an experimental group and that for the control group. Its standard error is given by the formula

$$\text{Est } \sigma_{\text{diff} - \text{diff}} = \sqrt{[P_1 + P_2 - (P_1 - P_2)^2]\left[\frac{1}{N_E} + \frac{1}{N_C}\right]}$$

where P_1 and P_2 are the above stated proportions computed for the experimental and control groups *combined*, and N_E and N_C are the N's for the experimental and control groups. (See Appendix, B, pp 303-304.)

3. *Effects of the Programs on Men Initially Opposing and Initially Favoring the Commentator's Conclusion*

The results already reported indicate no greater effectiveness of either program on the audience *as a whole.* However, as mentioned earlier, a critical feature in the theory underlying the experiment was the expectation of adverse effects of the "one-sided" program on men initially opposing the commentator's view that the war would take at least two years after VE Day. In line with the theory, therefore, the results were analyzed separately for men who initially opposed and those who initially favored the stand taken by the programs. The basis for distinguishing these two groups was whether their initial estimate of the length of the war in the "before" questionnaire was, respectively, less than two years, or was two years or more. The measure used in the analysis was the "net effect" described in the previous section for changes of one-half year or more.

The net effects of the two ways of presenting the orientation material are shown below for these two subgroups of men, those initially estimating a war of less than two years (the "opposed" group) and those initially estimating a war of two or more years (the "favorable" group). Control results are omitted for simplicity since the present concern is with comparing the two programs, both of which had the same control.

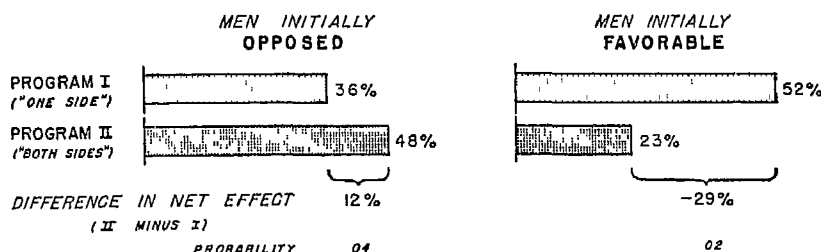


Figure 1 Differential effects of the two programs on men initially opposing and men initially favoring the commentator's position
See supplementary Table A, p 226, for subgroup N's and control results

The above chart shows that the *net effects* were different for the two ways of presenting the orientation material, depending on the initial stand of the listener. The program giving some of the U.S. advantages in addition to the difficulties was more effective for men initially opposed, that is, for men who, contrary to the programs, expected a war of less than two years. On the other hand, the program giving the one-sided picture was more effective for men initially favoring the stand taken, that is, for the men who agreed with the point of view of the programs that the war would take at least two years The initial division of opinion was roughly three men opposing to every man favoring the stand taken, but since the differential effect was greater in the latter group the overall net effects on the men as a whole were almost equal for the two programs.[1]

4 *Effects on Men with Different Amounts of Education*

In line with theoretical considerations and data presented in Chapters 4 and 6, it would be expected that the better educated men would be less affected by a conspicuously one-sided presentation and would conversely be more likely to accept the arguments of a pres-

[1] The statistical test used to assess the reliability of the differential effects is exactly analogous to that used in the previous section In the above case, however, the control is not involved since the experimental subgroups can be directly compared

entation that appears to take all factors into account in arriving at a conclusion. On the other hand, the consideration of both sides of an issue could weaken the immediate force of the argument for the less well educated insofar as they are less critical and more likely to be impressed by the strength of the one-sided argument without thinking of objections.

When the results were broken down according to educational level, it was found that the program which presented both sides was more effective with better educated men and that the program which presented one side was more effective with less educated men. Figure 2 shows results comparing the effects on men who did not graduate from high school with the effects on high school graduates. This breakdown by education divides the sample into approximately equal halves.

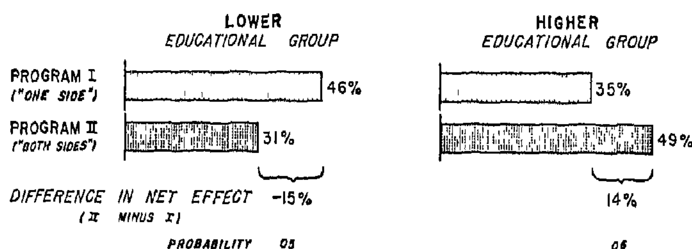


Figure 2 Differential effects of the two programs on men of different educational backgrounds

See supplementary Table B, p 226, for detailed computations

The above results show that the program giving both sides had *less* effect on the nongraduates but *more* effect on the high school graduates.

5. *Effects When Both Education and Initial Estimates Are Considered*

The interesting question arises as to how initial position on the issue presented by the transcription is related to effects among men in each educational group. Definitive results on this point could not be obtained because of the small number of cases involved when the sample is broken into the eight subgroups required for this analysis. The data available are presented, however, to indicate the trends and to suggest a hypothesis deserving further study. that the argument giving both sides is more effective among the better educated regardless of initial position whereas the one-sided presen-

tation is primarily effective with those who are already convinced among the less well educated group (Figure 3).

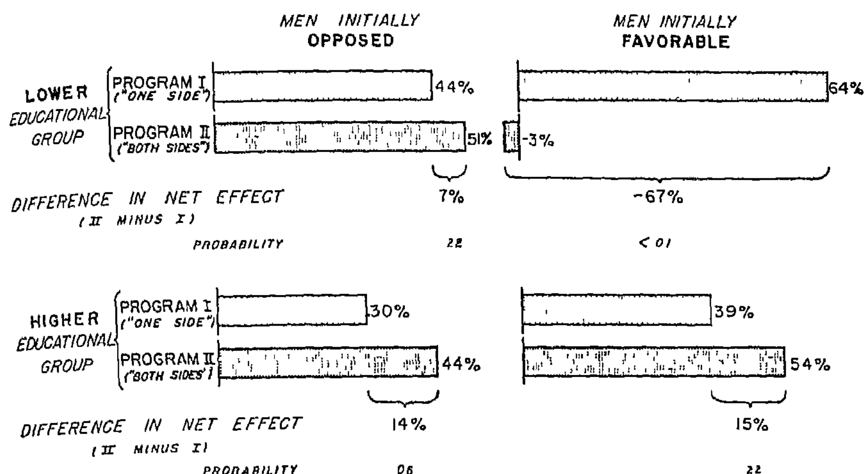


Figure 3 Differential effects of the two programs on men initially opposing and men initially favoring the commentator's position, shown separately for men with different education
See supplementary Table C, p 227, for detailed computations

The conclusions suggested by the pattern of results presented thus far may be summarized as follows. Giving the strong points for the "other side" can make a presentation more effective at getting across its message, at least for the better educated men and for those who are already opposed to the stand taken This difference in effectiveness, however, may be reversed for the less educated men and, in the extreme case, the material giving both sides may have a negative effect on poorly educated men already convinced of the major position taken by a program From these results it would be expected that the total effect of either kind of program on the group as a whole would depend on the group's educational composition and on the initial division of opinion in the group. Thus, ascertaining this information about the composition of an audience might be of considerable value in choosing the most effective type of presentation.

6. *Men's Evaluation of the Factual Coverage*

One factor that should tend to make a presentation taking into account both sides of an issue more effective than a presentation

covering only one side is that the men might believe the former treatment to be more impartial and authoritative.

In the present study, however, the group as a whole did not consider the factual coverage more complete in the program giving U.S. advantages in addition to the difficulties faced. This is illustrated below.[2]

Per cent of men saying that the program did a good job of giving the facts on the Pacific War

Program I ("one side")	61%
Program II ("both sides")	54

Per cent of men saying that the program took all of the important facts into account

Program I ("one side")	48%
Program II ("both sides")	42

It can be seen above that the factual coverage was not considered better in the program giving U S. advantages as well as the difficulties. The difference obtained was in the opposite direction, although not reliably so. Essentially the same results were obtained for each of the two educational subgroups analyzed

The explanation of this unexpected result apparently lies in the fact that both programs omitted any mention of Russia as a factor in the Pacific War, and *this omission seemed more glaring in the presentation that committed itself to covering both sides of the question.* This somewhat paradoxical conclusion is well supported by results to be shown shortly and while it was not anticipated it is quite understandable in retrospect.

At the time that the Pacific War was chosen as the orientation subject for the experiment it was recognized that a weakness of this topic was that under existing informational policy no stand could be taken on the help to be expected from Russia. Thus maximum content difference between the two presentations could not be achieved because they *both* had to omit mention of an important argument on the "other side," namely, that Russia might enter the war against the Japanese. It was not anticipated, however, that

[2] The N's on which these percentages are based are 214 for Program I and 214 for Program II

this omission would be more noticeable in the program that otherwise covered both sides. That this actually happened was indicated by the men's answers to the "write-in" question· "What facts or topics that you think are important in the war with Japan are not mentioned in the program?" The percentages writing in that aid or possible aid from Russia was not mentioned are shown below.

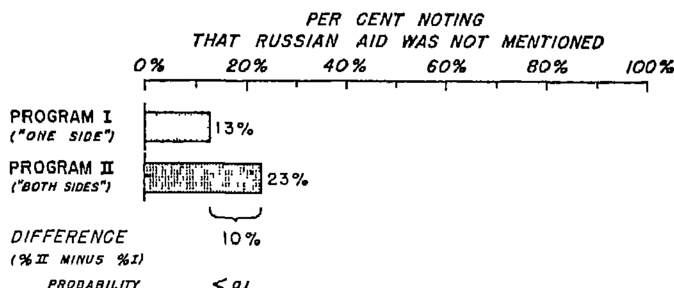


Figure 4 Frequency with which the omission of the topic of Russian aid was noted by the men

As shown above, almost twice as many men mentioned the omission of Russia in the program covering "both sides." The difference was even more pronounced among *groups that would be expected to be especially sensitive to this omission*, such as men who were initially optimistic about the length of the war, men with more education, and men who had indicated in the "before" questionnaire that they expected a great deal of help from Russia in the job against Japan.

7. *Relative Effectiveness of the Two Programs on Men Most Likely to Note the Omission of the Topic of Russian Aid*

In the preceding section it was shown that the program giving "both sides" was *not* considered more adequate than the one-sided program in its factual coverage and that it caused more men to note that Russia was not mentioned. The question now to be considered is whether this actually detracted from the effectiveness of this program that otherwise took all factors into consideration. A direct answer to this question cannot be given, but indirect evidence indicates that the omission did detract from this program's effectiveness.

The indirect evidence comes from a separate analysis of the results among men who initially opposed the point of view of the commentator. These were the men for whom the program giving both sides

was more effective, even with the omission of the topic of Russian aid. The question is, would it have been still more effective if this topic could have been included? To get evidence on this question this subgroup of opposed men was further subdivided according to whether or not they were predisposed to note the omission of Russia. The logic of the analysis was that men especially sensitive to the omission (because they were opposed and thought Russia might help) would not accept the commentator's argument, whereas those men who were opposed to his position but did *not* have Russian aid as one of their own important arguments for a short war would show less detrimental effect of the omission. The following question in the "before" questionnaire was used to subdivide the initially opposed men into those anticipating and those not anticipating substantial aid from Russia.

> "How much help do you think America will get from other countries when it comes to the job of defeating the Japs?" (Check one)
>
> ______ very little
> ______ some, but not a great deal
> ______ a great deal (Which countries? ____________________)

The breakdown on this question among "opposed" men put about two-fifths of the men in the "sensitive" subgroup, that is, about two-fifths of the "opposed" men said they expected a great deal of help and *wrote in Russia* as one of the countries from which they expected a great deal of help.

When these subgroups of the "opposed" men were compared it was found that the men who counted on a great deal of help from Russia gave a relatively poorer evaluation of the factual coverage in the program giving "both sides" and were relatively less influenced in the direction of increasing their estimates of the probable length of the war.

The results for the men's evaluation of the factual coverage, based on two items, are shown in Figure 5.

The implication of the results in Figure 5 is that the authenticity of the program which presented both sides suffered from the omission of the subject of Russia. Men who counted on Russian aid had a lower evaluation of the factual coverage of this program than of the one-sided program.

The presumption from this indirect evidence is that if the program covering both sides had dealt with the subject of Russia, it might have been considered more complete in its factual coverage, particu-

larly among men who expected Russian aid. This inference receives corroboration from the fact that in a fairly large-scale pretest of the two programs, conducted at a time when possible aid from Russia was a less important news topic, the program covering "both sides" had been found to be *reliably more accepted* in its factual cov-

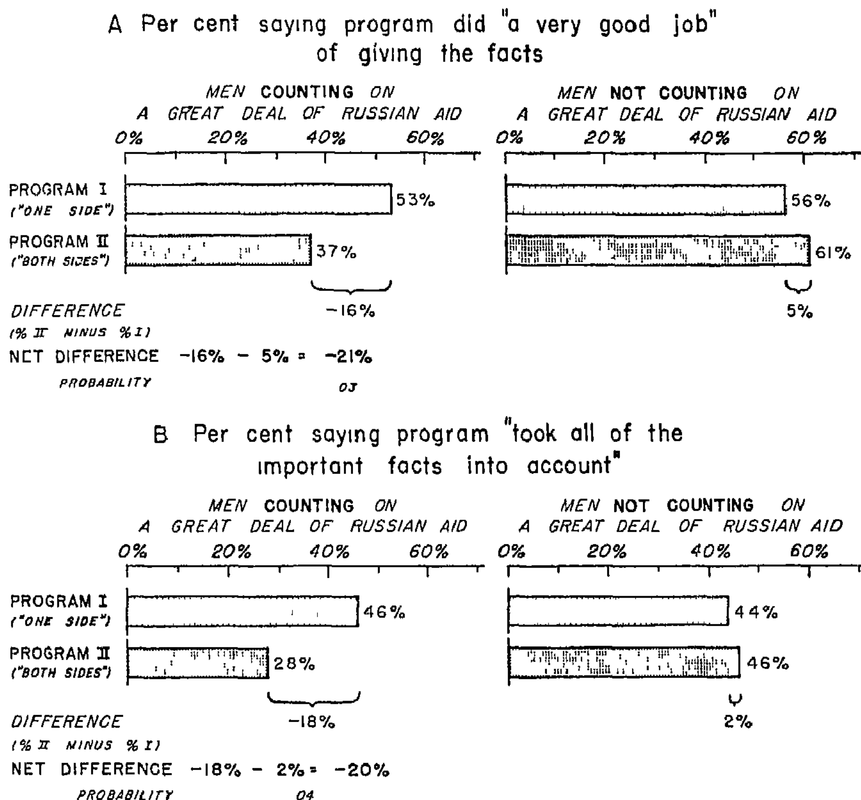


Figure 5 Differences in evaluation of factual coverage in the two programs, *among men opposed to the commentator's position*, comparing those who did and those who did not count on Russian aid

For subgroup N's, see supplementary Table D, p. 227.

erage, just the reverse of the results shown on page 216 This pretest was conducted with a sample of 347 Infantry reinforcements in March 1945 and practically no difference was obtained between the two programs in the percentages of men noting the omission of Russian aid In the present study, however, the programs were played during the second week of April, about a week after the Russians announced that they would not renew their nonaggression pact with Japan.

Not only did the omission of the topic of Russia affect men's evaluation of the factual coverage in Program II in the subgroups above, but it may have reduced the effect of the program on the men's estimates of the length of the war. This is suggested by an analysis of the net effects of the programs on opinions of the men in the same subgroups as those used in Figure 5. The results of this analysis are shown in Figure 6.

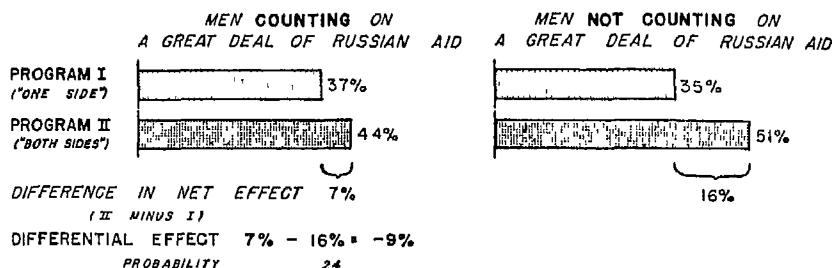


Figure 6 Differential relative effect of the two programs among men initially opposed but differing as to whether they had counted on a great deal of help from Russia See supplementary Table D, p 227, for N's and control group results

These results are in line with the expectation that among the men for whom the presentation with both sides is most effective (i.e., the men initially opposing the idea of a two-year war) the advantage of the "both-sides" presentation was less among those counting on a great deal of help from Russia than among those not expecting much help The differential effect is too small to be reliable with the small number of cases involved in the above subgroups, but they are consonant with the interpretation that the effects of the program giving some of the "other side" would have been even greater on those opposed to the stand taken if *all* of the other side could have been covered.

All of the results dealing with the omission of the topic of Russian aid seem to support one important conclusion, namely, that if a presentation supporting a particular conclusion attempts to take both sides of the issue into account, it must include *all* of the important negative arguments; otherwise the presentation may "boomerang" by failing to live up to the expectation of impartiality and completeness.

Apparently the fact that the commentator in giving "both sides" indicated that he was trying to take *all* factors into consideration in drawing his conclusion prepared the men to expect the inclusion of possible Russian aid as one of the factors to be considered. Thus the omission in the context of considering all factors stood out more

than in the context of the one-sided program where only the difficulties were being considered. The general conclusion seems to be that a one-sided presentation in which the conclusion is stated in advance and the reasons for this conclusion are then given will be accepted as the argument for a given point of view without much loss of authenticity resulting from failure to cover the other side. However, if a presentation commits itself to taking everything into account, either by announcing this in advance or by actually covering parts of each side of the issue, it will seem less authentic than a single-sided presentation if any important facts known to the audience are not included in the discussion, and its effectiveness at changing opinions will be reduced among those who are most aware of the point omitted.

8. *Relation of the Results to the Contention That the Initially Opposed Will Be Negatively Affected*

The results of this experiment have an obvious bearing on the frequently made assertion that "propaganda" merely reinforces the opinions already held, i.e., that those initially favoring a point of view tend to be made more favorable, whereas those initially opposed may tend to become even more opposed than at the outset.[3] This would be predicted on the grounds that a person is receptive to arguments having the conclusion he himself has already reached, but that arguments counter to a strongly held opinion serve as the occasion for an individual to rehearse the arguments favoring his side, to think up new arguments to combat the ones presented, to "get his ego involved" in his position, and so forth.

In all of the results shown comparing the net effects of the programs on men "initially opposing" the point of view presented by the commentator, it will be observed that "opposed" men were influenced in the direction of the "message" presented rather than against it. Thus regardless of educational level or expectation of aid from Russia the "opposed" men were influenced to accept the point of view of the commentator with either program. This is definitely contrary to the contention that "propaganda" merely reinforces existing beliefs [4]

[3] Cf e g., Murphy, G , L B Murphy and T. M Newcomb, *Experimental Social Psychology* (rev ed) New York Harper, 1937 , p 874f and 963f

[4] A word should also be said concerning the interpretations here placed on such expressions as "more opposed " The frequently stressed distinction between "intensity" of opinion and "content" or "direction" of opinion is relevant to this interpretation. Thus, changes in the direction of "more favorable" or "more opposed" might refer either to changes in the direction of a more extreme position on a content continuum, or to greater intensity of feeling on a given position, or both However, the present discussion is limited to the former kind of change because of the absence of adequate meas-

It might be contended that in the results shown so far the men in the "opposed" group were not sufficiently opposed for the alleged phenomenon to be revealed. Thus the opposed group contained a sizable proportion who were close to the borderline of two years in their estimate of the length of the war and these could not be said to be very strongly opposed. But a finer breakdown of initial estimate reveals the same general result. This is shown below in Table 3 which shows net effects as a function of initial position for less broad categories than those used so far. The most opposed group possible with the coding used—that is, the group estimating a war of less than six months—is not shown because the number of cases was so small, only about one man in twenty fell in this category. However, even in this tiny group the results come out in the same direction. The results presented are for both programs combined.

TABLE 3

THE EFFECTS OF RADIO TRANSCRIPTIONS ON OPINIONS ABOUT DURATION OF WAR, FOR THOSE WITH VARIOUS INITIAL OPINIONS

	NET PERCENTAGE CHANGING ESTIMATE BY ONE-HALF YEAR OR MORE AMONG MEN WHOSE INITIAL ESTIMATE WAS			
	Less than 1 year	*1 year up to 1½ years*	*1½ years up to 2 years*	*2 years or more*
Net change in experimental groups	58%	53%	26%	2%
Net change in the control group	20	6	−12	−34
Net effects	38	47	38	36

It will be seen that the familiar "regression" phenomenon occurs in the control group, that is, because of the imperfect reliability of the question on length of the war the men who initially made long estimates tend to make shorter ones and the men who initially made short estimates tend to make longer ones.[5] The changes due to regression as indicated by the changes in the control group must be subtracted from the changes in the experimental group to obtain the net effect of the program, shown in the third line of figures in Table 3.

It can be seen from the net effects shown in Table 3 that even with the finer breakdown of initial estimate, all of the subgroups

[5] This regression phenomenon, which may be unfamiliar to some readers, is discussed in Appendix D, p 329ff

were influenced in the direction of revising their estimates upward This was true even of the men with the most extreme opposition—that is, men whose initial estimate was only one year or less.

These results are consistent with the results of analyses of data obtained in other studies reported in this volume. Several analyses were made in connection with the orientation film studies to see how opinion change was related to initial opinion. In all cases it was found that men initially opposed to a particular opinion were nevertheless influenced in the same direction as the men as a whole rather than being driven further in the direction of their original position. An example of such an analysis is adduced here to illustrate the general conclusion.

A scale of five opinion items was used to measure confidence in the "British War Effort" in the before-after study of "The Battle of Britain." This gave six categories of initial response according to whether the individual accepted none of the opinions expressed, one of them, and so on up to accepting *all five.* For the analysis, all men in the film group were sorted into these six categories as determined from their responses on the questionnaire administered *before* the film. The mean scale value for the "after" responses of each of these six subgroups was then determined, and these values compared with similar values for the control group. The mean changes for film and control groups are shown in the tabulation below.

Again we see the phenomenon of regression toward the mean in the control group. Thus men whose initial scale position was 0 re-

TABLE 4

MEAN CHANGE IN SCALE VALUES FOR FILM AND CONTROL SUBGROUPS GETTING EACH SCALE SCORE BEFORE THE FILM

(SCALE OF 5 OPINION-ITEMS CONCERNING "BRITISH WAR EFFORT")

	INITIAL SCALE POSITION					
Mean after-minus-before differences for those with each initial position:	0 (*opposing*)	1	2	3	4	5 (*favoring*)
Film group	1.14	0.93	0.35	0.17	−0.10	−0.44
Control group	0.70	0.34	0.15	−0.45	−0.84	−0.91
Film-control difference	.44	.59	.20	.62	.74	.45

gressed *up* to an average of .70 and men whose initial scale position was 5 regressed *down* to an average value of 4.09. But just as in the study of the radio programs *all* groups were affected in the direction of accepting the "message" of the communication, even the most extreme subgroup that had initially been so anti-British that they did not check a single response favorable to the British in the five items making up the British war effort scale.

It may be further argued that the contention that opposed men would be made more opposed applies not to the extremeness of their content position but rather to the intensity with which they hold their opinion or the extent of emotional involvement in supporting their point of view. No answer is available from the present studies on this interpretation of degree of opposition because measurements of intensity of feeling independent of content were not feasible. To the extent, however, that intensity and content are correlated, the present study and all other analyses that were made show negative results regardless of how "opposition" is defined for the type of communication investigated.

This qualification concerning the type of communications investigated is made because it seems theoretically possible that opposition would be fostered with some kinds of "propaganda." This seems especially likely for face-to-face situations in which the communicator and the communicatee become involved in a give-and-take argument. In such a case the individual who constitutes the "audience" himself takes a stand and is likely to have more "ego involvement," actively to seek new arguments in support of his position, and so forth. A similar situation would be the debate form of communication in which there is a protagonist for each side of the issue. If the audience is initially divided in opinion on the issue individual audience members would be expected to identify with the protagonist representing their own initial stand, and a situation similar to the face-to-face argument is created.[6]

9. *Summary of Results*

(1) Presenting the arguments on both sides of an issue was found to be more effective than giving only the arguments supporting the

[6] Exposure to debates has been shown to strengthen the initial opinions of those audience members initially expressing an opinion and to reduce the neutral, no-opinion category by shifting some people in one direction and others in the opposite direction (Cf Millson, W A D, "Problems in Measuring Audience Reaction," *Quart J Speech*, 1932, *18*, 621-37)

point being made, in the case of individuals who were *initially opposed* to the point of view being presented.

(2) For men who were *already convinced* of the point of view being presented, however, the inclusion of arguments on both sides was less effective, for the group as a whole, than presenting only the arguments favoring the general position being advocated.

(3) Better educated men were more favorably affected by presentation of both sides, less well educated men were more affected by the communication which used only supporting arguments.

(4) The group for which the presentation giving both sides was least effective was the group of poorly educated men who were already convinced of the point of view being advocated.

(5) An important incidental finding was that the absence of one relevant argument against the stand taken by the programs was more noticeable in the presentation using arguments on both sides than in the presentation in which only one side was discussed. Furthermore, advantage of the program giving both sides among men initially opposed was less for those who regarded the omitted argument as an important one.

(6) Men who were initially very opposed to the point of view being presented—as measured by their deviation in *content* from the position taken by the communication—were nevertheless influenced to alter their opinion in the direction of the "message" rather than being shifted further in the direction of their initial opinion.

SUPPLEMENTARY TABLE A

Breakdown of Changes in Estimates Among Men Initially Favoring and Men Initially Opposing the Stand Taken

	PER CENT OF MEN					
	PROGRAM I "one side" *initial estimate*		*PROGRAM II* "both sides" *initial estimate*		*CONTROL* no program *initial estimate*	
	Less than 2	2 or more	Less than 2	2 or more	Less than 2	2 or more
No change	45	46	41	56	65	56
Revised estimate upward	50	36	58	16	22	5
Revised estimate downward	5	18	1	27	13	39
Net change (% up minus % down)	45	18	57	−11	9*	−34*
Control net change*	9	−34	9	−34		
Net effect (program net minus control)	36	52	48	23		
Number of cases in each subgroup**	152	45	150	55	140	41

* The net changes in the two subgroups of the *control* represent the familiar "regression" phenomenon due to unreliable test answers (See p 329ff, Appendix D) The greater degree of regression in the subgroups estimating a war of 2 or more years is accounted for by the extent of their deviation from the average estimate of less than 1½ years

** The numbers of cases given here add to 583 instead of the total of 625 men studied because the analysis could not include the 42 individuals who failed to write legible estimates of the length of the war in either the "before" or the "after" survey. The omission of such individuals applies also to the three following tables

SUPPLEMENTARY TABLE B

Breakdown of Changes in Estimates Among Men with Differing Education

	PER CENT OF MEN					
EDUCATION	*Non-graduates*			*High school graduates*		
PROGRAM	I ("One side")	II ("Both sides")	Control	I ("One side")	II ("Both sides")	Control
No change	40	45	64	51	45	62
Revised estimate upward	54	44	19	40	50	17
Revised estimate downward	6	11	17	9	5	21
Net change	48	33	2	31	45	−4
Control net change	2	2		−4	−4	
Net effect (program net minus control)	46	31		35	49	
Number of cases in each subgroup*	93	105	104	104	100	77

* See second footnote to Table A

SUPPLEMENTARY TABLE C

BREAKDOWN OF CHANGES IN ESTIMATES IN THE SUBGROUPS SEPARATED BOTH ACCORDING TO INITIAL ESTIMATE AND ACCORDING TO EDUCATION

	PER CENT OF MEN							
EDUCATION:	*Non-graduates*				*High school graduates*			
INITIAL ESTIMATE.	Less than 2 years		2 or more years		Less than 2 years		2 or more years	
PROGRAM	I "One side"	II "Both sides"	I "One side"	II "Both sides"	I "One side"	II "Both sides"	I "One side"	II "Both sides"
No change	35	40	52	57	53	41	41	56
Revised estimate upward	59	60	39	3	43	56	32	32
Revised estimate downward	6	—	9	40	4	3	27	12
Net change	53	−60	30	−37	39	53	5	20
Control net change*	−9	9	−34	−34	9	9	−34	−34
Net effect	44	51	64	−3	30	44	39	54
Number of cases in each subgroup**	70	75	23	30	82	75	22	25

* The control net change used above to eliminate the effects of regression is the same as that used in Table A This procedure assumes that regression was the same at the two educational levels, but it was considered a better estimate than could be obtained from the small separate subgroups of the control In any case, chief interest is attached to the *differences* between the effects of the two programs, these differences are independent of the estimate of regression used

** See second footnote to Table A

SUPPLEMENTARY TABLE D

BREAKDOWN OF CHANGES IN ESTIMATES, AMONG MEN INITIALLY OPPOSED TO THE STAND TAKEN, FOR THOSE WHO HAD AND THOSE WHO HAD NOT COUNTED ON A GREAT DEAL OF HELP FROM RUSSIA

	PER CENT OF MEN					
	Men who had counted on a great deal of help from Russia			*Men who had* not *counted on a great deal of help from Russia*		
	Program I "One side"	Program II "Both sides"	Control	Program I "One side"	Program II "Both sides"	Control
No change	46	48	66	45	34	64
Revised estimate upward	50	52	21	50	63	23
Revised estimate downward	5	0	13	5	2	13
Net change	45	52	8	45	61	10
Control net change	8	8		10	10	
Net effect (program net minus control)	37	44		35	51	
Number of cases in each subgroup	66	71	62	86	79	78

CHAPTER 9

THE EFFECT OF AN AUDIENCE-PARTICIPATION TECHNIQUE IN FILM-STRIP PRESENTATION

In the usual method of presenting motion pictures or film strips, participation by the audience is limited to implicit, symbolic responses. In the experiment here reported, a technique for obtaining greater participation was introduced by requiring the audience to recite aloud during parts of a film strip, thus achieving more active rehearsal of the material by each learner.

Increased participation would be expected to result in greater learning because it guarantees overt practice of the actual responses to be learned rather than merely relying on implicit practice of symbolic responses. Participation also is likely to function as an incentive to learn, since the learner soon finds out that if he has to perform the response himself at the appropriate intervals he must try harder to learn the material as it is being presented. Since it is likely that the effects of procedures for increasing participation are achieved in part through motivational factors, the effectiveness of the participation would be expected to depend on the learner's initial motivation. For this reason in the present study the additional variable of motivation, induced by announcing an exam, was introduced in order to determine its interaction with the effects of audience participation.

Procedure

1. THE FILM STRIPS USED

Two film strips with sound accompaniment were used in the study. The educational objective of the film strips was to teach Signal Corps men the phonetic alphabet and pronunciation of numerals. The film strip presented to the *experimental* group used the afore-

mentioned technique for increasing audience participation, the film strip presented to the *standard* group was exactly like the experimental strip in every respect except that it did not use the recitation procedure for increasing audience participation.

In both film strips, after a few preliminary frames to show the nature and importance of the phonetic alphabet, the phonetic names ("Able" for "A," "Baker" for "B," etc.) corresponding to each letter were shown in a printed list and pronounced by the narrator. Then, successively, each letter and phonetic name was presented in an individual frame showing a picture to illustrate the phonetic name, with accompanying sound effects and narration designed to facilitate the formation of an association between the letter and the name Two illustrative frames are shown below in Figure 1.



Sound effect German band playing "O where, O where, has my little dog gone," with dogs barking
Narrator "Dog"



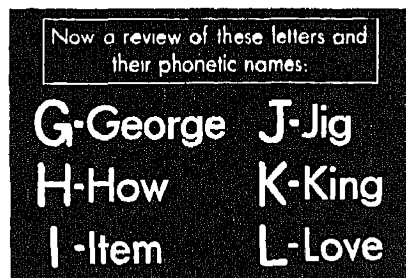
Sound effect Oboe music
Narrator "Oboe—An oboe, it's clearly understood, is an ill wind no one blows good"

Figure 1 Frames excerpted from film strips to illustrate type of presentation used

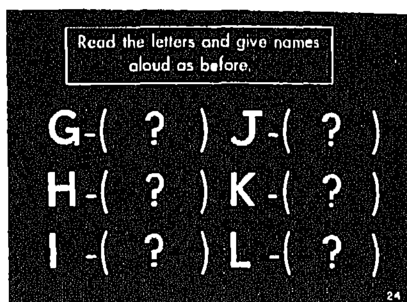
Interspersed after about every six individual frames was a frame showing a review list of the preceding group of phonetic names. When all 26 of the individual frames and the four review lists had been shown, a complete review list of all 26 letters and phonetic names in alphabetical order was shown. After a digression on the pronunciation of numerals, another complete review list, this time in scrambled order, was shown.

In all aspects described thus far the two film strips were identical in both the sound track and the frames shown The only difference between the two was that in the "standard" film strip all *review* lists presented each phonetic name with its corresponding letter and these were pronounced by the narrator, whereas in the experimental strip the letters in the review lists were followed by question marks and

the names were to be recalled and pronounced by the audience. A correlated difference was the additional statement in the introductory narration that from time to time the audience would be asked to recite the names aloud; also, each time a review list was shown, the frame title and the narrator instructed the audience to recite the names aloud. Examples of the standard and experimental review-list frames are shown below.



Review-list frame from *standard* film strip



Review-list frame from *experimental* film strip

Figure 2. Examples of the review-list frames

In the instructions to both the experimental and the standard groups prior to the film, a very brief statement was made describing the content of the film strip they were to see and its importance as a part of a soldier's training This approximated what would normally be said by the training officer or noncom in charge of presenting a sound film strip. The experimental subjects were given the additional instruction that from time to time they would be required to recite the phonetic names out loud, at which times they were not merely to mumble to themselves but should "sing out" so they could be heard.

2. DESIGN OF THE EXPERIMENT

The general plan of the study was to show the film strips to a number of platoon-size audiences of enlisted men, and to administer tests to the men immediately afterward, to find out how well they had learned the phonetic alphabet By comparing the test performance of men who had seen the experimental film strip with the performance of men who had seen the standard film strip, the effects of the procedure for increasing audience participation could be evaluated.

Because motivation was expected to be a variable that would modify the effects of the participation procedure, the men were told in half of the showings that they would be tested after the film strip; the other half were told only that they were going to see a film strip that was part of their training. The purpose of this difference in treatment was to make possible an analysis of the relative value of the increased audience participation under conditions of greater and lesser motivation. Thus in this study two experimentally controlled variables were studied in combination.

For convenience, the individuals who knew in advance that they were going to be tested will be referred to as the "motivated" group, and the individuals who were not informed in advance of the test will be referred to as the "nonmotivated" group This terminology is intended to imply nothing more than a difference in the *relative* amount of motivation expected for the two groups; there would clearly be considerable motivation operative in the "nonmotivated" group, even though they were on the average less well motivated than the other group.

The men used in the study were new recruits at a Reception Center. An important purpose in using a Reception Center was that the men had no previous military experience, "company organization" was purely temporary, and the recruits were moved through the center so fast that their entire stay at the camp was only a few days These properties of a Reception Center were all considered important to the experiment because they insured. (1) little previous experience with the phonetic alphabet; (2) few communication lines along which knowledge of the experiment could spread among the men not yet used—particularly the knowledge that a test was given at the end of the film, which would have eliminated the motivational differences, and (3) little realization that some aspects of the experiment were not typical of the Army.

The aspect of the experiment that was particularly not typical of the Army was the method used for determining whether a man would serve in the experimental or in the standard group. A "company" roster was divided into two halves—about 100 men each—on the basis of alphabetical order, and men in the first half were ordered to assemble at one hour and the remainder to assemble at the next following hour. When each of these halves had assembled, they were lined up in a formation in which they chose their own positions. They were then counted and the half of the group on the left (about 50 men) was sent to one theater and the half on the

right was sent to the other. Since the two theaters followed a balanced pattern of alternate presentation of experimental and standard film strips, the resulting choice of experimental-group and standard-group men was a random selection of individuals rather than the usual company-unit selection used in the other film studies. To reduce any possible concern of the men about the arbitrary division as to who went to what theater, they were told that they would see a training film, but that the theaters would accommodate only 50 men. Since there was no platoon organization, the method used seemed as reasonable as any. By scheduling the two halves of a "company" for successive hours, the communication problem was further controlled. One half was marching to the theaters while the other was marching back to the company area by a different route.

Sixteen audiences of approximately 50 men each were used, the number of men totaling 742 Name and serial number were recorded on each man's test blank so that the number of years of schooling and the AGCT score of each man in the sample could be subsequently obtained from the classification office. This latter information provided a basis for equating the learning ability of the groups used for the final analysis of results and a means of analyzing the relative value of the increased audience participation of men for differing learning ability as indicated by AGCT and education.

3. THE TESTING PROCEDURE

Immediate rather than deferred testing was employed, partly in order to maximize sensitivity of the experiment to effects of the participation procedure Introduction of a delay period between training and testing would presumably have yielded results in the same direction as those obtained with immediate testing, but with differences attenuated through intervening forgetting and possible voluntary rehearsal by individuals in both the experimental and standard groups. This would operate to reduce the effects obtained from the overt rehearsal given the former group during the training session. The rehearsal problem was particularly crucial in view of the communication problem already mentioned, especially since half of the men (the "motivated" group) were told a test would follow. If time were allowed between film and test, these men might have communicated their knowledge about the coming test to "nonmotivated" men.

Another advantage of immediate testing was related to the stated purpose of the film. According to the film-makers the function of the film strip was to give preliminary familiarization with the phonetic alphabet and an opportunity to learn it well enough to be able to carry out further rehearsal. Extensive further drill would of course be required to attain high proficiency in the use of the alphabet in later field situations, but presumably Signal Corps men would have strong motivation to rehearse the material afterward. The purpose of the film was to provide sufficient learning to permit further effective practice.

Five men from each of the sixteen audience groups were given *individual oral tests* of their ability to recall the phonetic names. In these tests each letter was presented singly as a visual stimulus stamped in large type on a card, and the men were required to respond orally with the phonetic name. The correctness of each response was recorded and the time required for a man to give his response was timed by stop watch, with a limit of 15 seconds for each letter.

Space and personnel limitations forced the number of the individual tests to be smaller than might have been desirable Ten individual testers, made available by the camp's classification office, were used for each hour of the experiment. The number of individuals tested was therefore limited to 5 men from each audience, or a total of 80 from the 16 audiences involved The men to be tested individually were selected in such a manner as to give roughly equivalent distributions of education in the four experimental conditions. The rest of the men in each audience group were given a *written test.* In these tests the men received a sheet with a mimeographed list of the letters, with blanks beside each letter for writing in the phonetic names.

Both types of tests presented the twenty-six letters of the alphabet in a random sequence. Varied orders of presentation were used in a balanced fashion in testing different subjects, there being five different test orders in all, used with equal frequency.

Results

The results obtained with the individual oral tests will be presented first, followed by presentation of relevant portions of the data from the written tests. Conclusions from the two sets of data were in all cases in agreement as to direction, but differences were

smaller in the case of the written tests. Use of the oral-test data was considered preferable because of the superior sensitivity and realism of this measure.

The individual tests were more *sensitive* both because the measurement of the exact time taken by each individual to recall each letter is a precise measure of learning and because the individual administration provides better control of the conditions of testing. The individual tests were more *realistic* in that they more closely approximated the conditions under which the phonetic alphabet would actually be used, that is, with men making an oral response to each individual letter. However, since only 20 men were given oral tests for each of the four conditions of the experiment, presentation of the written-test results has been included when recourse to these data was necessary to afford a sufficient number of cases in some of the subgroups used for analysis.

An important difficulty of the written test was the opportunity given the men to divide up the time allowed in such a way that an individual could concentrate much more time on the phonetic names he had difficulty in remembering. Another factor was the possibility that additional cues were provided by being able to see all the letters at once and to see all the names that had been remembered and written in This supposition is supported by the finding that the smaller differences among the experimental groups taking the written tests were accompanied by a considerably higher average performance on the tests

Results for Individual Tests

1. OVERALL EFFECT OF PARTICIPATION

Figure 3 gives a comparison of the individual-test results for men who saw the experimental film strip and for men who saw the standard film strip. The difference in performance represents the effects of the increased audience participation provided by the active nature of the reviews in the experimental strip. The curves in the chart show the average number of phonetic names remembered correctly with various limits on the time interval allowed to remember each phonetic name. These results are for men who did not know in advance that they would be tested after the film strip (the "nonmotivated" group). This was the group which was shown the film strip under conditions typical of use in the Army—that is, with no test announced. Comparison with the motivated group will be made later

The figure shows that there was a marked superiority in the test performance of men who had seen the film strip with the active participation technique. This superiority shows up at each of the various time intervals that could be used as the limit allowed for thinking of the phonetic name after being shown each letter

From the standpoint of actual use of the phonetic alphabet, proficiency should probably be such that every name can be recalled almost immediately when the letter is shown. To approximate these conditions, a two-second time interval was used as one criterion of effectiveness. Within this time limit it is seen from Figure 3 that

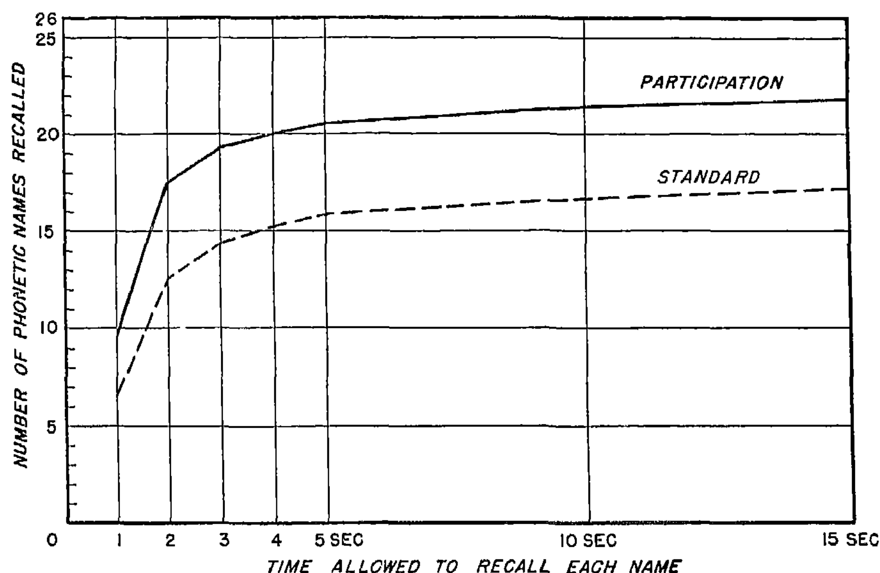


Figure 3 Average number of phonetic names correctly recalled within designated periods of time per name

the men who had active participation recalled an average of 17.6 phonetic names or about 68 per cent of the 26 names, whereas the men who had the standard form of the film strip recalled an average of 12.6 names or only about 48 per cent. Thus the technique for increasing audience participation increased the number of words learned *proficiently* from a level of 48 per cent to a level of 68 per cent

From another standpoint, the training objective of the film strip was to provide sufficient memory of the correct phonetic names to permit their being recalled and practiced later. A single showing

phonetic alphabet to the level of complete proficiency. From this standpoint a longer time limit for remembering each phonetic name would be desirable in evaluating the training value of the increased audience participation. Preliminary oral tests indicated that very few names required more than 15 seconds to be recalled if they could be recalled at all. Therefore in the conduct of the individual tests in the main experiment the men were given a maximum of 15 seconds in which to try to recall the phonetic name after each letter was presented. It can be seen in Figure 3 that there was very little gain during the last 5 seconds of this interval. With the 15-second time limit as a criterion, the data show that men who saw the active-participation strip learned an average of 21 9 out of the 26 names, whereas men who saw the standard form of the film strip learned an average of only 17.2 names. In other words, when a 15-second criterion is used for recall of each name, the active participation procedure increased the amount of learning exhibited from a level of about 66 per cent of the names to a level of about 84 per cent.

TABLE 1

EFFECT OF PARTICIPATION ON NUMBER OF PHONETIC NAMES RECALLED

	WITHIN 2 SECONDS AFTER SEEING LETTER		WITHIN 15 SECONDS AFTER SEEING LETTER	
	Mean number recalled	*Percentage recalled*	*Mean number recalled*	*Percentage recalled*
Participation	17 6	68%	21 9	84%
Standard	12 6	48	17 2	66
Difference	5 0	20%	4.7	18%
	$t = 3\ 5$, $df = 38$		$t = 3.0$, $df = 38$	
	$p < 01$		$p < 01$	

The results showing the effectiveness of the participation procedure from the two points of view are summarized in Table 1. A test for the significance of the effect of audience participation is also shown in Table 1 It can be seen that the mean differences in number of phonetic names given correctly by standard and participation groups are highly reliable at both the 2-second and the 15-second criteria.

2. VALUE OF ACTIVE PARTICIPATION WITH MATERIAL OF VARYING DIFFICULTY

Some of the phonetic names were more easily learned than others. For example, "X-ray" for "X" was remembered by a higher pro-

portion of the men than "Tare" for "T." By dividing the 26 phonetic names into an easier half and a more difficult half on the basis of combined test performance with both film strips, a comparison could be made of the relative gain from increased audience participation with the easier names as compared with the more difficult names Figure 4 shows the results of this comparison for the individual tests, using the 15-second time limit.

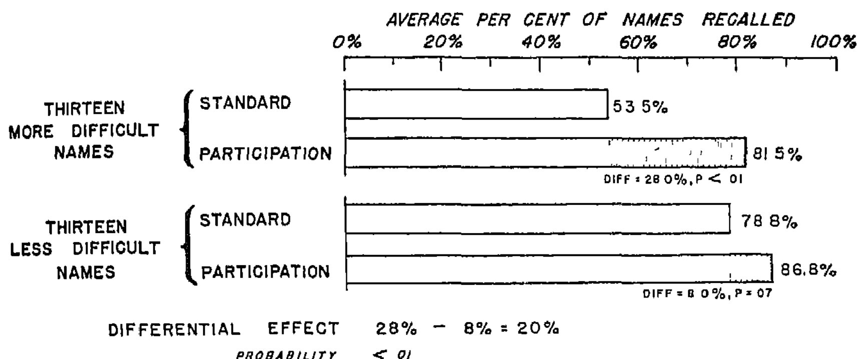


Figure 4 Average per cent of easy and difficult words learned.

In the analysis of the results as a function of ease or difficulty of the material, the problem of equivalence of units arose—is an increment of one phonetic name as a result of audience participation the same for easy as for difficult items? Without participation, the average was about 14 names for difficult items and about 20 names for easy items Since the initial level is different, some ratio (e g., per cent improvement, per cent reduction of wrong answers, etc) might be appropriate. While such proportional measures might be meaningful, the measure used for analysis in the present study was the actual number of words answered correctly.

The above comparison shows that the gain from the increased audience participation procedure was much greater with the more difficult half of the phonetic alphabet The effect attributable to participation was small and not very reliable for the easy material, but it was large and highly reliable for the difficult material. The difference between the effects (differential effect = 20%) was also highly reliable.[1] The results indicate that *active participation is most important when the material to be learned is most difficult.*

[1] The reliability of the mean differential effect was tested from the distributions of differences between each man's score on the 13 "easy" items and his score on the 13 "difficult" items The mean difference was 3.3 words for the standard group and 0.7 words for the participation group The difference between these would have arisen by chance less than one time in a thousand

3. EFFECT OF INCENTIVE ALONE ON AMOUNT LEARNED

As mentioned earlier, the men in half of the audience groups were told in advance that they would be tested subsequently on the material, while half of the audiences were not told. The effect of the added motivation to learn provided by the announcement of the quiz can thus be analyzed without regard to its interaction with the participation procedure. The relevant group for this analysis is the standard group which did not actively participate since the active participation technique was not typical of the Army training films and film strips.

In the instructions the men were told: "During this hour we're going to show you training slides on the phonetic alphabet. The slides will be projected on this screen. There is a recording that plays along with the slides and explains each one. The phonetic alphabet is an important part of military training, so pay close attention."

In half of the audience groups (the "motivated" groups) the following additional announcement was made: "After the training slides have been shown, we will pass out a test paper to each of you. We are going to give each of you a test to see how much you have learned. It's to your own advantage to do as well as possible, so be sure that you pay close attention to the training slides and learn as much of the phonetic alphabet as you can."

The chart below, using the 15-second criterion and the standard group, shows the average amounts learned by the men who were told in advance that they would be tested, compared with the amounts learned by those who were not told in advance about the test.

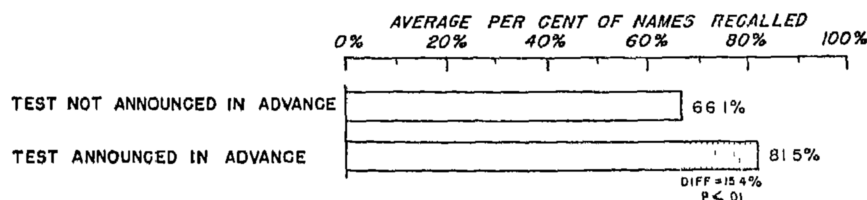


Figure 5 Effect of added motivation on amount learned

It can be seen in the chart that the announcement of a test significantly increased the amount of material learned under standard conditions.

4 VALUE OF ACTIVE PARTICIPATION WITH AND WITHOUT INCENTIVE

Active audience participation is one way of insuring that the task to be learned is actually rehearsed by the audience members However, under conditions of high motivation the audience members may rehearse the material to themselves as it is presented even though overt rehearsal is not formally required Thus, if there is a high level of motivation to learn, relatively little additional benefit from audience participation may be obtained Under these conditions the amount of additional benefit of active participation would depend mainly on the relative advantage of overt practice as contrasted with only implicit or symbolic rehearsal.

Figure 6 compares the percentage of words learned with and without active participation for men who did and who did not have advance announcement of the test. As before, these results are based on the 15-second criterion.

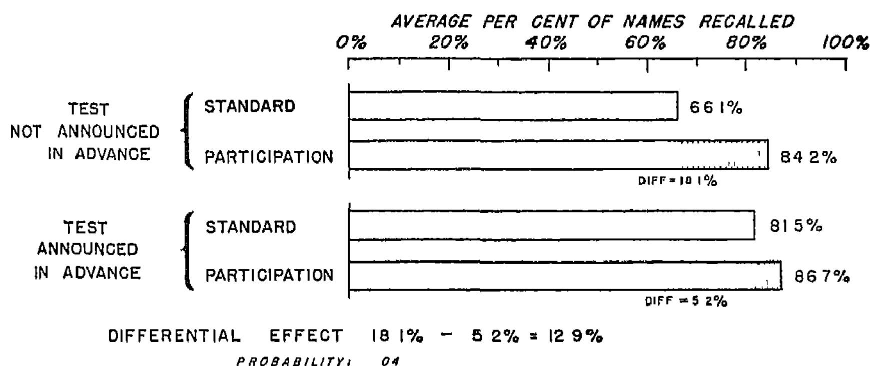


Figure 6 Amount learned by active-participation and control groups, under two conditions of motivation

As anticipated, the difference between the active-participation and standard procedures was less when the men were motivated by knowledge that they would be tested. The difference of 18.1 per cent for the nonmotivated group is considerably larger than the corresponding difference of 5.2 per cent for the motivated group Second-order differences as large as this in the expected direction would occur only about four times in a hundred. These results indicate that *active participation is most important when individuals are least motivated to learn.*

Results of Written Tests

From the 662 men who answered the written tests, four groups—one for each of the four experimental conditions—were selected so as to be exactly matched by education and AGCT category. This stratification resulted in a reduction of the total group from 662 to 504, or 126 men in each of the four groups.

As stated earlier, the results of the written tests conformed in every respect to the findings of the individual tests except that in the written tests the average number of phonetic names answered correctly was higher under all conditions and the differences between active participation and standard forms of the film strip were smaller. Since only two minutes or less are required to write in all of the phonetic names, if they are well learned, the ten minutes allowed for the written test permitted the men to go back and fill in names not initially remembered but recalled at a later point in the series. However, the ten-minute time interval rather than a shorter period was required to minimize any tendency for the men to try only a portion of the letters because of lingering too long trying to think of one they could not remember easily.

1. Value of Active Participation at Different Levels of Ability

The number of men tested individually was too small to permit subdivision according to initial learning ability. However, this analysis was made for the larger sample who took the written tests. As noted earlier, each man wrote on the test sheet the number of years of schooling he had completed. He also signed his name and serial number, so his AGCT score could later be obtained from the personnel records. AGCT scores were used as the best available measures of the men's learning ability.

When test performance was analyzed according to AGCT scores it was found that *the less intelligent groups profited most from the increased audience participation* It was found that AGCT groups I, II, and III all gave fairly similar results, but the results for groups IV and V differed markedly from those for the upper three groups[2] The results for this breakdown into "more intelligent" (classes I, II, and III) and "less intelligent" (classes IV and V) are shown in Figure 7. The results are for the standard conditions in which the

[2] There were very few cases in groups I and V, so the analysis was essentially of groups II, III, and IV

men were not motivated by the knowledge that they would be subsequently tested. The AGCT breakdown subdivides the 126 men in the active-participation group and the 126 men in the standard group into 101 "more intelligent" men and 25 "less intelligent" men per group.

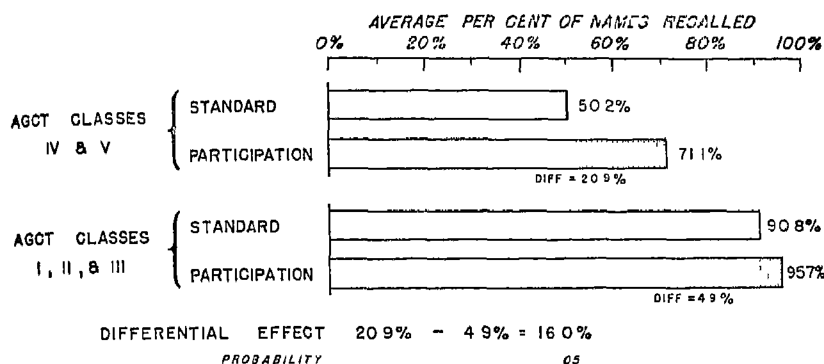


Figure 7. Comparative contributions of active-participation procedure for those of different intelligence levels.

It is seen in Figure 7 that the differential effect on the two intelligence groups is 16 per cent. The critical ratio of this second-order difference was 2.0, indicating a difference that would occur in either direction by chance about five times in 100.

2. EFFECTS WITH DIFFICULTY, MOTIVATION, AND ABILITY OPERATING IN COMBINATION

The preceding results have shown separately the value of the increased audience participation procedure under varying conditions of difficulty of material, motivation to learn, and learning ability. By dividing the results into the appropriate subcategories of all three of these variables, their effects when operating in combination can be seen. Figure 8 shows these effects of participation—that is, the *differences* between amount learned under active participation and under standard conditions—for all the different subcategories.

It can be seen from Figure 8 that the importance of audience participation increased cumulatively as a function of each of the factors analyzed. Active participation was most effective when intelligence and motivation were lower and difficulty was greater At the one extreme, the more intelligent men (regardless of motivation) benefited only 3 per cent from participation on the easy words; at the other extreme, the less intelligent, nonmotivated men

showed an increase due to participation of 23 per cent in the case of the difficult material. Thus the participation procedure tended to bring the amount learned under all conditions up toward the level ordinarily achieved only under the most favorable circumstances. Another way of describing the results is that the participation procedure helps most where it is most needed, that is, where individuals with little ability or motivation are learning difficult material.

It will be noticed that the results presented in Figure 8 are in terms of the gains attributable to participation, and do not show

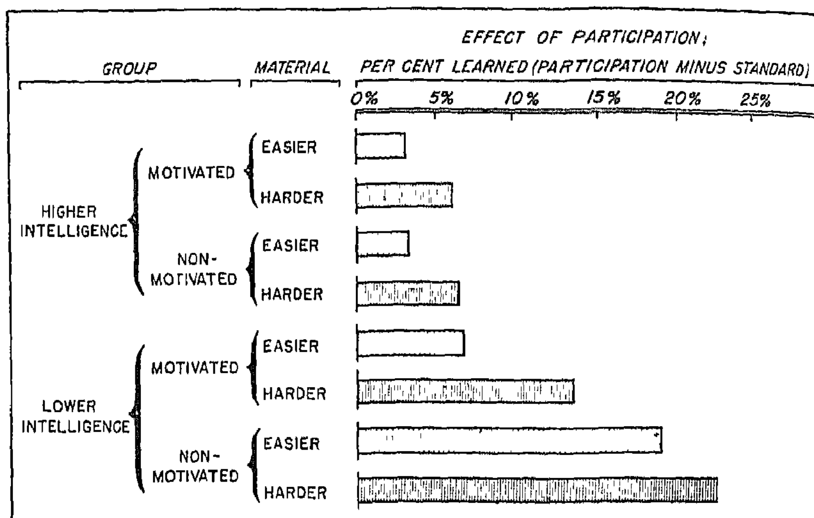


Figure 8. Contribution of audience participation as a function of intelligence, motivation, and difficulty of material

total amounts learned. The total amount learned was, of course, greatest for the intelligent, motivated men in learning easy material, and least for the unmotivated, unintelligent men in learning difficult material. Thus the results, as presented, do not take into account a "ceiling effect" due to the fact that the maximum amount of gain possible from participation varied from condition to condition The reason for presenting the results in this form—without taking the ceiling factor into account—is because the picture as shown seems more meaningful in terms of educational objectives. A gain from 95 per cent without participation to 98 per cent with participation, which was obtained for motivated intelligent men in learning easy material, is a gain of 60 per cent when one divides the

3 per cent increase by the 5 per cent maximum possible gain. But while such a large relative improvement may be of theoretical significance, it would probably be of much less interest to an educator than the increase from 44 per cent without participation to 66 per cent with participation which was obtained for unintelligent, unmotivated men with difficult material.

The question arises as to what extent the findings reported in this chapter are of general applicability. It seems a fair assumption that the device of reciting aloud can probably be used with about equal effectiveness for other films of the same general character as the one studied—i.e., films in which the learning materials are simple paired associates, such as might be used in teaching the vocabulary of a foreign language, a new nomenclature, recognition of aircraft types, and the like. But the recitation procedure as here used would seem less readily applicable to films having other kinds of learning objectives—for example, those involving motor learning or substance learning rather than rote memorization. An important problem is therefore to determine what alternative procedures might be used in such instances to utilize the same basic factors that are responsible for the demonstrated effectiveness of participation. Here the crucial question is: What are the "basic factors" that account for the results obtained with the present procedure of reciting aloud? The answer to this question determines what alternatives to reciting aloud would be suggested where group recitation is not appropriate

In terms of learning theory, several factors can be mentioned as possible contributors to the advantages of active participation. These are discussed in the following paragraphs.

Direct rehearsal. The worst aspect of passive "learning" is that the learner may not actually be practicing any relevant responses. He may be daydreaming or he may be making some irrelevant observations concerning the material presented. Active participation is one way of insuring that the learner actually practices relevant responses that will be needed in later performance.

In the present experiment the response practiced during participation was identical with the response to be learned—that is, saying the correct phonetic name—so that the concept of "direct rehearsal" is entirely appropriate. However, it is apparent that in many cases little could be done to get *direct* rehearsal during actual film instruction where the responses to be learned were nonverbal ones Occasionally such direct participation might be feasible—for example, in a film about the use of the slide rule the audience members might

be given slide rules to manipulate as per instructions during the film showing. But probably in the majority of film subjects the responses to be learned could not be directly rehearsed during the film. Instead, symbolic responses must be learned during the film showing and later translated into the response to be performed. In such cases the problem is inevitably one of "transfer of training"—the symbolic responses learned during passive instruction must subsequently "transfer" to the actual responses which are the object of instruction. In such a case, the "active participation" procedures available are those which insure that relevant symbolic responses are practiced during the film showing. Thus even though active practice of the overt act is not possible, participation procedures that insure rehearsal of appropriate symbolic responses could still be employed.

A relevant consideration in the problem of transfer from symbolic response to overt responses is the ease with which the symbolic responses learned can be translated into the desired performance. Even with active participation in the learning of the symbolic responses, little transfer to actual performance would be expected unless the symbols are readily translated into the desired overt action.

In the study reported in the present chapter these problems of translating symbolic responses into action did not arise. The overt response was in this case itself a symbolic response—a word—and there is little reason to believe that the implicit vocalization of a word differs much in form of response from its overt vocalization. Thus in the present case we probably have an example of nearly perfect transfer of the symbolic response into overt action. This feature of the present subject, however, makes it unrepresentative of many instructional films.

A related aspect of the problem of transfer of training is the advantage of having present during training a stimulus situation closely approximating that in which the response is subsequently to be performed. This is an important advantage in the typical "learning by doing" situation, but it offers real difficulties in the case of film instruction where, aside from what is seen on the screen and heard on the sound track, the stimulus situation is one involving passively sitting still in a darkened room. However, the important factor of connecting the correct response to cues that are later to elicit it might often be taken into account in a movie by use of scenes that duplicate as many elements as possible of the stimulus situation in which it is desired that the response be elicited later. In the

present experiment this was done by using review frames in the film strip which showed the letters of the alphabet without accompanying them by the correct word. Thus, unlike the passive control group, the active learners saw only the stimulus letter and had practice reciting the phonetic name while seeing the letter presented alone—a situation which tends to duplicate the conditions under which performance was to be required later.

Motivation. A perhaps less obvious basis for advantage in the active participation procedure is a motivational factor that appears to be involved. What is the effect on the learner of being required to reproduce the material to be learned? If he has a desire to avoid seeming stupid, the effects of active recitation or active participation should be to make him apply himself more diligently during the passive parts of the presentation. In other words, a likely effect of the participation procedure is to provide a series of "examinations" in which the learner is immediately required to show what he has learned. If his "ego" is involved in his ability to learn —that is, if he is shamed by poor performance—these "examinations" should produce an additional motivation to learn This may be particularly true in the case of the procedure used in the present study, in which audience members recited aloud: each subject would be aware that his immediate neighbor could tell whether or not he had remembered the correct phonetic name. The present findings fit in well with the expectations from the postulated operation of a motivational factor in that when an independent source of motivation was applied the participation procedure had relatively less effect.

Although the factors of direct rehearsal and motivation have been discussed separately, it may be that they actually achieve their effects through the same mechanism In each case the critical factor could be the rehearsal of the response to be learned. In typical human learning situations it seems very likely that the effectiveness of "motivational" procedures is in part brought about by the fact that they provide incentive for practice. Nothing is learned without some practice, and the individual who has no incentive to practice will therefore not be expected to learn The procedure of participation and the procedure of announcing a test may simply be alternative ways of getting the subjects to practice the correct symbolic responses during the film showing. Furthermore, the efficacy of the participation procedure may lie in part in the motivating effects of these recitations on the learner's subsequent implicit prac-

tice as the material is presented in later portions of the film, rather than being entirely due to the practice occasioned during those portions of the film in which the subject is required to recite aloud

The results obtained in the present study and the foregoing theoretical considerations have a number of implications for those engaged in the preparation and use of instructional films. The most obvious implication is that, to the extent possible, the actual response to be learned should be actively practiced during the film showing. If the actual response to be learned cannot feasibly be practiced during the film showing, appropriate symbolic responses should be actively practiced, the most appropriate symbolic responses being those most readily translated into the overt responses the film is attempting to teach. Further, the film should as nearly as possible duplicate, in its visual and auditory presentation, the stimulus situation in which the audience members later will be expected to perform the responses to be learned Finally, since it is theoretically possible that motivational devices achieve all of their effects through providing an incentive to practice, attention should be given to insuring that whatever incentives are provided actually lead to the practice of appropriate responses. The motivation should not just provide a "motive to learn", rather, it should provide an incentive to perform (as voluntary "active practice" during the film showing) implicit or overt responses that will transfer readily to the performance situation that defines the objectives of the film.

At the present stage of knowledge, these implications serve mainly as guiding principles rather than as "rules of thumb" that can readily be applied in the preparation and utilization of instructional films. They leave a considerable need for ingenuity and good intuition in successfully applying them to a particular case. It is expected, however, that as research findings accumulate as to what particular devices are successful in achieving the desired effects, these general principles will break down into subprinciples that can be more directly applied to a particular film.

CHAPTER 10

SUMMARY AND EVALUATION

One of the primary tasks of the Experimental Section of the Research Branch was to provide evaluations of the motion pictures prepared by the Information and Education Division of the Army. These films included the "Why We Fight" series, designed for indoctrination of members of the Armed Forces concerning the events leading up to American participation in the war. In addition, a number of experiments were carried out in cooperation with other divisions of the War Department to study training films.

The experimental studies of the "Why We Fight" films constituted a large-scale attempt to utilize modern socio-psychological research techniques in the evaluation of educational and "indoctrination" films. The methods used in these studies and the results obtained are described in the present volume in the belief that there will be increasing use of such procedures both for determining whether motion pictures and similar media really do succeed in attaining their objectives and for modifying the products in accordance with the results obtained by research.

Research Design

The principal criteria of "effectiveness" used in evaluating these films were whether they succeeded in imparting information, in changing opinions in the direction of the interpretations presented, and in increasing men's motivation to serve. It would have been of considerable interest to use changes in overt behavior as an additional criterion of effectiveness It would have been interesting, for example, to find out whether troops who had seen the "Why We Fight" series would have been more highly motivated in combat than those who had not. But it was not found possible to set up such long-range experiments as would be involved in answering such a question At the same time, no acceptable behavioral index of "morale" or motivation to serve was developed that could be used in determining the relatively immediate effects of films In only

one study was an overt behavioral criterion possible—in a study where the purpose of the film was to teach a verbal response and it was not difficult to use overt verbal responses as the criterion. This was the study reported in Chapter 9 concerning the effects of "audience participation," in which actual performance in using correctly the letter-name associates in the phonetic alphabet was used as the criterion of effectiveness.

While it was not possible to use overt *behavioral* changes as criteria in testing most of the films, the criteria used were nevertheless such as to reveal actual *changes* produced in the audience by the films For example, the "Why We Fight" films were evaluated in terms of the extent to which factual knowledge and opinions concerning the war were altered by seeing the film This criterion contrasts with others commonly used in programs of public information and education. Most frequently no check is available save the fact that a certain quantity of material was prepared and released. In the case of newspaper and radio media, such data are commonly supplemented by market surveys to determine readership or listening indices, since it is realized that unless the material is seen or heard it cannot become effective.

In commercial motion-picture research the most important criterion is usually the "box office," commonly predicted from "previews" in which audience approval is the crucial criterion. This criterion is obviously much less relevant in the case of educational and informational films of the type studied here However, on the grounds that unless interest is aroused close attention is not apt to be achieved in educational films, most studies did obtain information about soldier evaluation of the films both through questionnaires and through interviews Here the purpose was to supplement the findings on the film effects—that is, actual changes produced—with evidence concerning things liked and disliked about the film. In the informal interviews conducted for this purpose an attempt was made to get ideas for product improvement This turned out to be quite unproductive of suggestions. The men readily enough expressed liking or disliking for the films but were quite inarticulate as to their reasons and had few suggestions of ways in which the films could be improved.

In other studies, interest was the only response considered relevant; these studies were concerned with films whose objective was described as that of satisfying the interests of the soldiers. For these studies, more elaborate methods of recording interests were

used, including use of the "program analyzer"—a polygraph record of "likes" and "dislikes" registered during the presentation of the film—which is familiar as a technique for recording audience evaluation of radio programs.

It is clear that the amount of interest or extent of approval provides only supplementary information about a film with an educational purpose and does not constitute a measure of its effectiveness at achieving its educational objective. Even intensive interviewing of sample audiences "to get their reaction" to detailed aspects of the material presented was found to be misleading as an indication of what effects were produced What appeared to be an "effect" of the film often turned out, when the results of the controlled experiments became available, to be a reaction as prevalent among men in general as among those who had seen the film.

It was necessary to develop new techniques for the purpose at hand. Earlier studies had either restricted their measurement to information tests or had used only a few attitude scales to determine overall effects For the present purposes, information tests were necessary but a much more comprehensive analysis of opinion change was fundamental. The objectives of the orientation program encompassed a large number of areas of belief, and considerable effort was devoted to developing measuring instruments and studying the interrelation between the various opinion scales used. In some studies as many as a dozen scales of opinion were necessary in addition to miscellaneous single opinion items and a battery of information test items It was also desirable to investigate the interrelation of opinion changes produced by the films A number of methodological problems were encountered in these attempts to analyze opinion changes as a function of other opinions and other changes

The general procedures used in the investigations are described in Chapter 2. The starting point was a content analysis of the film to be studied, together with intensive discussion with the individuals preparing the script as to their objectives in producing the film. The success of measurement was felt to be directly related to the precision with which the intended objectives were formulated. Unfortunately, in the case of the orientation films precision was sometimes lacking in the definition by the producers of what their films were intended to accomplish. As a result the criteria used in evaluating these films were the overall objectives of the orientation program, combined with inferred objectives based on the content

analysis of the films as an index of what the producers were trying to accomplish.

On the basis of the above information, tentative fact-quiz and opinion items were developed. These were then pretested for interpretation and intelligibility by including them in intensive interviews with typical soldiers. The importance of this step in the process can hardly be overestimated. After any revision necessitated by this procedure, a "dress rehearsal" was employed in which questionnaires containing the revised items were administered as an "opinion survey" to soldier groups. The results from this step, the "quantitative pretest," enable advance analysis of the interrelation of opinions and the discarding of items which would be insensitive to change because either a very large or very small proportion selects the key response.

After revision in the light of the qualitative and quantitative pretests, the questionnaires were employed in the actual film evaluations. The typical procedure involved administration of questionnaires to two comparable groups before and after the presentation of the film to one of the two groups The group shown the film constituted the "experimental" group whose responses reflected the effects of the film. The other constituted the "control" for any changes in knowledge or opinion that might have been occasioned by events external to the film presentation An alternative procedure used in some studies has been termed the "after-only" procedure. In this procedure the administration of the questionnaire before the film showing is omitted. Here the control group reveals the knowledge and opinion of a group which has not yet seen the film and the experimental group reveals the knowledge and opinion of a comparable group after exposure to the film.

Each of these two alternative procedures was found to have its advantages and disadvantages. The "before-after" procedure—with administration of the questionnaire both before and after the film showing—requires special precautions to prevent the first questionnaire from revealing the purpose of the study and from biasing the answers obtained in the second. But it has definite advantages in permitting more detailed analysis of effects and compensation for inequalities between the groups arising from lack of random sampling in selecting control and experimental groups In the present studies, completely random sampling was not possible—instead, to get naturalistic conditions of film showing, it was necessary to sample by company units rather than to use random selections of indi-

viduals. In the early studies it was not known to what extent this would lead to lack of comparability between control and experimental groups. As it turned out, the methods used by the Army in assigning men to companies were in most cases essentially random, that is, company units were found to differ in most cases no more than would be expected in random samples of about 200 men (the typical size of a company). In the earlier studies, both the "before-after" procedure and the "after-only" procedure were used in testing the same films. Because of the apparent comparability of the results obtained with the two procedures and because of the general lack of wide variation from company to company, the "after-only" procedure was considered sufficient in some of the later studies. It is to be remembered, however, that the "after-only" procedure always sacrifices completeness in the description of changes produced because it cannot isolate individual changes in opinion The relative advantages and disadvantages of the two procedures are discussed in Appendix C

In testing the orientation films, an interval of about one week was allowed before administration of the "after" questionnaire. At the outset of the orientation film studies the experimenters more or less implicitly assumed that effects would be maximal immediately after the film showing and that opinion changes as well as learning of factual knowledge would show a forgetting curve as time passed after the film showing. The standard time interval of about one week after the film showing as the interval before testing for effects was adopted simply on the grounds that it was judged a sufficiently long lapse of time to be on the more flat portion of the forgetting curve. It seemed that waiting a week would avoid including any transient immediate effects in the evaluation of the extent to which the film achieved its purpose Eventually a systematic study was set up to test the assumptions involved in the use of the one-week interval. The results, which are described in detail in Chapter 7, indicated that while the expectation of gradual decrement with time appeared justified in the case of factual information, there was a tendency for many opinion items to show increments rather than decrements with the lapse of time. This finding is of considerable theoretical and methodological interest and will be discussed later in the present chapter.

One of the principal methodological problems revolved around the necessity of making measurements of the individual's opinions in such a way that they would be represented without bias and ob-

tained without the individual's knowing that the measurements were connected with the showing of the film or part of an experiment. As discussed more fully in Chapter 2, many precautions were required to insure that this bias was avoided. A procedure that let the men know the effects of the film were being studied might have led to "Army-approved" answers rather than honest answers to opinion questions Therefore, complete anonymity was maintained and the questionnaires were presented as having a purpose very different from the actual one of testing the film. In using the "before-after" procedure, it was particularly important to prevent the first questionnaire from being recalled when the film was subsequently shown and to prevent the repetition of the questionnaire after the film from suggesting to the men that a test of the intervening film was in progress. To prevent this, the second questionnaire was "revised" as much as possible and it was necessary to provide a carefully worked out rationale for the administration of a second questionnaire similar to the earlier one.

Another methodological problem that must be solved for an evaluation experiment to be maximally useful is insuring that the conditions of the experiment closely approximate those under which the product is later to be used. This was rather easily achieved in the Army situation. Attendance at training films and orientation films was compulsory in the Army, so attendance at the films tested was as close to 100 per cent as possible, exceptions being those on sick call, those on leave, and those on various special duties such as KP. The important point here is that self-selection was kept at a minimum without introducing any procedure that seemed out of place. The groups used attended the films as part of their regular training, and while attendance was compulsory it was in this respect no different from any other aspect of Army life. This handled neatly one of the bugaboos of civilian media research in which either those who attend a film showing are self-selected for initial interest in such a way as to make results obtained for them very atypical of the entire population, or in which a certain degree of unusualness is introduced by forcing individuals to attend.

Several problems of method also arose in connection with expressing the amount of change in information or opinion produced by the films. The procedure used in the studies expressed effects in terms of the percentage of individuals affected on each questionnaire item Measurements were not made in terms of changes in the degree of

conviction with which an individual held the particular opinion. A particular statement of opinion was agreed upon for each opinion question as the opinion consonant with the objectives of the orientation program, just as a particular answer was designated as the correct answer to fact-quiz items. Effects were then measured in terms of the difference in the percentage of individuals endorsing this statement before and after the film

In expressing the amount of change produced by a film, a straight percentage difference between film and control groups was found to have certain limitations While the percentage difference in the number knowing a particular fact or endorsing a particular opinion may provide an adequate description of a single effect, it leads to difficulties when different effects are compared. The difficulty arises because of a ceiling that is placed on the size of an effect by the initial percentage picking the key response. Thus if 90 per cent initially chose the key response, only a 10 per cent change is possible, whereas if 10 per cent initially chose the key response, the maximum possible effect is a 90 per cent change. This is particularly important in comparing different groups with differing initial levels or in comparing different effects where the questions used for different effects start at different initial levels Thus the problem arises when one attempts to compare a change from 50 per cent to 60 per cent in those knowing the correct answer on a fact item among the less well educated with a change from 80 per cent to 90 per cent on the same question among the well educated In each case, the change is 10 per cent of the total group, but the less well educated increased only 20 per cent of the total possible change whereas the better educated increased 50 per cent of their total possible change. In other words, 50 out of 100 poorly educated men did not know the correct answer, and of this 50, 20 per cent learned the correct answer from the film. On the other hand, only 20 out of 100 well-educated men did not know the correct answer, and of these 20, 50 per cent learned the answer from the film To permit comparisons of change with differing initial percentages, an index—labeled the "Effectiveness Index"—was developed. This index measures the percentage change occurring as a function of the total possible change In essence, this index is defined by the following formula:

$$\text{Effectiveness index} = 100 \times \frac{\text{Change obtained}}{\text{Maximum change possible}}$$

More specifically, when the "after-only" procedure is used and the effect to be expressed is an increase in the percentage giving a particular response, the effectiveness index is:

$$E.I. = 100 \times \frac{\text{Film \% minus Control \%}}{\text{100 \% minus Control \%}}$$

It can be seen that this index permits comparison of effectiveness for opinions that differ in initial acceptance level, for subgroups that differ in initial acceptance level, and so forth, and the size of the effects calculated is not restricted by the original percentage subscribing to the particular opinions. The chief disadvantage is that so far its sampling distribution has not been satisfactorily worked out. A check on statistical significance of an effect can of course be obtained from the straight percentage difference test for the group as a whole, but this does not permit determining whether two effectiveness indices differ significantly.

It should be noted that the "effectiveness index" takes into account only the statistical ceiling introduced by the approach of the initial level to 100 per cent. Other ceiling effects, which the effectiveness index is not designed to take into account, are produced by psychological factors discussed in Chapter 3, such as the likelihood that when the initial acceptance of an opinion is high (e.g., 90 per cent accept the opinion and only 10 per cent hold a different opinion), the few individuals who differ in their opinion are "die-hards" who would be especially resistant to change. A further psychological factor that is not taken into account by the effectiveness index is the likelihood that an extremely unpopular opinion also reflects special resistance to change. Thus an opinion held by only 10 per cent of the general population will very often be one that the population is predisposed *against* believing, and, therefore, especially resistant to change by a film.

Results of Evaluative Research

Results of the research on one of the orientation films, "The Battle of Britain," are described in considerable detail in Chapter 2, and general conclusions derived from the series as a whole are discussed in Chapter 3. The results may be briefly summarized as follows:

> The films had marked effects on the men's knowledge of factual material concerning the events leading up to the

war. The fact that the upper limit of effects was so large—as for example in the cases where the correct answer was learned and remembered a week later by the majority of the men—indicates that highly effective presentation methods are possible with this type of film.

The films also had some marked effects on opinions where they specifically covered the factors involved in a particular interpretation, that is, where the opinion test item was prepared on the basis of film-content analysis and anticipated opinion change from such analysis. Such opinion changes were, however, less frequent and, in general, less marked than changes in factual knowledge.

The films had only a very few effects on opinion items of a more general nature that had been prepared independently of film content, but which were considered the criteria for determining the effectiveness of the films in achieving their orientation objectives.

The films had no effects on items prepared for the purpose of measuring effects on the men's motivation to serve as soldiers, which was considered the ultimate objective of the orientation program

A number of hypotheses are discussed in Chapter 3 to account for the lack of effects of the films upon general opinions and upon motivation. It may be, for example, simply that a single 50-minute presentation is too small an influence to produce noticeable changes in deep-seated convictions—although this was certainly not out of line with expectations of the film producers. No studies were done in which the entire series of orientation films were studied in combination to check the possibility of sizable cumulative effects A study in which the cumulative effects of two films were studied did not, however, show sizable effects on general opinions or motivation. Certainly it was to be expected that the amount of men's motivation which could be influenced by a film was very small in relation to the other motivational factors present in their immediate and total life situation. It may be that the amount of change which could be influenced by indoctrination had already been achieved through civilian sources even before the men entered the Army. In some cases the lack of effects may have been due to the diffusion of coverage rather than the concentration upon a few well-chosen targets. Finally, it is possible that the lack of effects may be due simply to the fact that the attitudes and motivations investi-

gated in these studies cannot be appreciably affected by an information program which relies primarily upon "letting the facts speak for themselves." It may be that such a program will prove effective with only a small segment of the population whose attitudes are primarily determined by rational considerations. For most other individuals, motivations and attitudes may generally be acquired through nonrational channels and may be highly resistant to rational considerations.

This last hypothesis calls into question the basic assumptions of the Army orientation program The rationale of the orientation program—of which the orientation films were a part—rested primarily upon two basic assumptions concerning mechanisms for affecting motivation by means of "orientation" The first assumption was that giving men more information about the war and its background would produce more favorable opinions and attitudes. The second related assumption was that improvement of opinions, attitudes, or interpretations about the war would lead in some measure to higher motivation or greater willingness to accept the transformation from civilian to Army life and to serve in the role of soldier.

The results just summarized cast considerable doubt on the first of these assumptions. The films produced sizable increments in information but effected almost no significant changes on the more general opinion items designed to measure changes in the orientation program's objectives. This negative conclusion was also supported by data from other studies which indicated only a slight correlation between scores on information tests and orientation opinions In addition, increases in information were only slightly correlated with changes in the opinions designated as subobjectives of the orientation program

No evidence was provided by the experimental studies of films bearing on the second assumption, concerning the relationship between changes in opinions and in motivation, since the films produced almost no increments in the opinions considered significant Even if there had been changes in opinion and motivation, it would be difficult to know whether to attribute the change in motivation to the change in opinion. Indeed, it is difficult to see how the relevant experiments can be performed. The chief difficulty is the attempt to vary independently the causal variables in the hypothetical relations, since here the "independent" variables are themselves *reactions of the individual* and as such require a stimulus

Hence it is difficult or impossible to know whether the dependent variable was affected by this reaction or whether it was directly affected by the stimuli used to bring about the reaction.

Results were also obtained concerning the relation between the audience's evaluation of a film and its effects on their knowledge and beliefs. It was found that men who most liked a film tended to be most affected by it, but it is difficult to rule out the possibility that those who liked the films were different initially in other respects from those who did not like them. The problem raised is one of which is cause and which effect. Did those who were influenced by the film like it, or were those who liked the film more influenced by it? To demonstrate a correlation between liking and amount of effect does not answer the question either way since, as just noted, audience responses or evaluations cannot be treated as independent variables They are responses that can be related to other responses or to changes in response, but there remains the possibility that both responses of the audience are direct effects of the film rather than that one response has a causal effect on the other. Similarly, it was found that men who regarded the film as propagandistic were somewhat less affected, but again the nature of causal relationship is difficult to establish from these results, since the groups compared may have been initially different in resistance to change

Evaluative Research vs Controlled Variation

As a by-product of the testing of a number of films, it was hoped that it would be possible to reach a number of generalizations about the factors governing the effectiveness of films. Particularly it was hoped to obtain generalizations that would specify what kinds of presentation devices would be most effective for various kinds of material As it turned out, the drawing of such generalizations from the data obtained was possible only to a limited extent. There were two reasons for this relative paucity of generalizable conclusions from the studies.

The first reason lay in the nature of the Research Branch's mission and purpose, which was defined as a program of "applied" research intended to find answers to immediate "practical" questions rather than to attack long-range scientific problems. This meant that priorities as to what kind of film studies would be undertaken were usually decided in favor of testing completed products or making experimental comparisons between existing alternative prod-

ucts. The former kind of experimental evaluation of a film's effect, well illustrated by the studies of orientation films in the "Why We Fight" series, is obviously tied to the specific content of the film studied as far as experimentally demonstrated findings are concerned. But it is conceivable that, over a series of studies covering a number of films in which a variety of presentation techniques were repeatedly used, it might be possible to educe generalizations by relating the size of gains produced on specific points to the techniques used to present each point. The number of films experimentally evaluated was actually not large enough to give this possibility a fair test, but as time went on the experimenters became increasingly convinced of the relative inefficiency of such an inductive approach as compared with what might be learned through experimental comparisons specifically set up to test hypotheses about the effectiveness of various presentation methods.

Another reason for the paucity of generalizations obtained from the studies has already been in part implied by the foregoing, and is related also to the applied purpose of most of the studies This is the inherent limitation, as a source of generalizations, that would appear to be characteristic of evaluative studies. The limitation, which is evident in the case of studies seeking to evaluate single films, applies also to those which compare alternative products, examples of which are described in Chapter 5. In each case these studies gave a fairly clear-cut answer as to the superiority of the specific products compared, but in no case did they provide any very widely generalizable conclusions For example, the study on the relative effectiveness of a motion picture on map reading and an alternative series of still slides ("film strip") presenting information on the same subject shows clearly that the particular film strip studied was just as effective as the particular movie used in presenting the material. But this finding does not help much in generalizing about the relative effectiveness of the two media represented by the presentations compared, because these presentations differed in content and manner of presenting the material as well as in the fact that one employed moving pictures and the other employed still pictures

By contrast, the study of the relative effectiveness of presenting "one side" versus "both sides" of an issue, reported in Chapter 8, and the study of the advantage of audience participation, reported in Chapter 9, are of considerable general significance. The advantage of the latter studies is that instead of comparing alternative

existing products they compare presentations specifically designed to exemplify alternative *procedures*. In doing this, an attempt is made to control all factors except the ones under investigation. Consequently, any differences or lack of difference in effectiveness may be clearly interpreted as evidence of the importance of the factor that differentiates the two procedures. With this method of study, particularly if the experimental variable is related to theory, there is afforded a more secure basis for generalizing to other products using the same procedures than can be gained from comparison between available existing alternatives that differ with respect to a number of factors in addition to the one presumably differentiating them.

However, purely evaluative research—despite the above-indicated limitations on generality—does appear to have some merit both in relation to immediate problems of an educational film producer and in terms of its potential contribution to theory Its potential theoretical contribution is primarily as a fruitful source of hypotheses concerning factors affecting film effectiveness Theoretical expansion cannot proceed in a vacuum, and an abundant body of specific results on a number of films may provide the necessary catalyst to development of theory. Thus the obtaining of an unusually large effect or the absence of effects which were expected in an evaluative study requires explanation and provides a suitable occasion to examine possible hypotheses These, in turn, will—since they are merely hypotheses rather than established conclusions—usually require specially designed experimental study for validation.

The contribution of evaluative studies to the immediate practical problems of the film producer appears to lie primarily in their use for improving or checking on the effectiveness of the particular film studied. In the rapid tempo of the war situation, where a completed film could only be changed or withdrawn if it was seriously unsatisfactory, the utilization of evaluative studies was not particularly efficient. Generally the research findings could only indicate the successes and failures of a film without its being possible to remedy any defects as far as the film itself was concerned. The stage at which evaluative research would appear to have its greatest potentiality for product improvement is well prior to the completion of a film, when suggestions derived from the research can readily be incorporated into the final film production.

One kind of research analysis having general application which

can be done as a by-product with the data obtained in an evaluative study is that in which the primary interest is in individual differences That is, as part of the analysis of evaluative experiments, one can provide information as to the differential effect of a presentation upon different segments of the audience, expressing the differences in terms of "population variables" (see Chapter 1). Generalizations concerning the influence of population variables may be possible even from the data obtained from the evaluative studies of a single film. This is partly because the presentation is constant for all population groups and partly because a single film may have a number of specific effects each of which can be related to a particular population variable, so that considerable replication of effect as a function of population variables is possible even within the confines of one film.

From such analysis have come a number of interesting results concerning the relationship between intellectual ability and effects of films on knowledge and opinion. These are summarized in the two remaining sections of the present chapter, together with other more general findings obtained in the few studies where it was possible to employ controlled experimental manipulation of presentation methods. In these latter studies, the factors manipulated experimentally were either "content variables" (characteristics of the content or manner of presentation within a film) or "external variables" (e g , conditions of utilization). The effects of these two kinds of variables, which are more fully characterized in Chapter 1, are generally considered also in relation to the population variable of intellectual ability in the findings discussed in the remainder of the present chapter

Communication of Factual Information

Results bearing on factors affecting the communication of factual material were derived from two types of investigation. studies of the learning of factual material presented in the orientation films, and studies of the learning of material presented in training films. These will be discussed under three headings: (1) relation of learning to intellectual ability, (2) relation of learning to motivation, and (3) relation of learning to participation by the learner

1 Relation to Intellectual Ability

In the learning of factual material it was uniformly found that those with greater intellectual ability learned more, on the average,

from a given exposure than those with less ability. This was true whether the index of intellectual ability was educational level attained or performance on the Army General Classification Test (AGCT).

In investigating this problem, an analysis was made of the relationship between intellectual ability and the amount of learning for varying degrees of difficulty of material as indicated by the amount learned by the group as a whole Variations in difficulty tended simply to raise or lower the per cent learning a particular fact, without greatly altering the slope of the relation between intellectual ability and amount learned It was anticipated on theoretical grounds that the relationship for easy material would show a negatively accelerated function and that for difficult material positive acceleration (see Chapter 6, p 154) This expectation was borne out only to a slight degree The curves are more impressive for their approximate linearity at all levels than for the slight differential curvilinearity of the curves of easy and difficult material The differences in curvilinearity might have been greater if a wider range of intellectual ability had been available, but it is difficult to see how this could have been of general significance in view of the very wide range of ability actually represented in the Army population studied.

2. RELATION TO MOTIVATION OF THE AUDIENCE MEMBERS

It is well known that the amount that an individual learns from a given exposure is a function of the degree of motivation present It is even possible that part of the relationship just described between intellectual ability and degree of learning is attributable to differences between the more able and less able individuals in their motivation to learn, produced by differential reward during schooling in learning new material. Thus motivation often tends to be a matter of individual difference based on lengthy past experience and not an easily manipulated variable in a teaching situation. All educators know that motivation is important, the difficult problem is to do something about it.

An opportunity to study the role of motivation was available in connection with a study of an audience-participation procedure (Chapter 9). It was found that by simply announcing in advance that a test of amount learned was to be given immediately after the showing of the film strip, the amount learned increased under standard conditions (no audience participation) from 66 per cent to 81

per cent This seems a very large increase for such a simple device —in some schools it would correspond to a change from a D grade to a B grade The results furnish a demonstration of the importance of motivation, as well as showing the possibility of actually manipulating motivation in an instructional situation However, the specific effects just described may well exaggerate the amount of improvement likely to be obtained in the usual school situation by merely announcing a quiz Quizzes following a film were not a routine aspect of Army instruction, and special importance may have been attached by some of the men to the film because of the quiz announcement in this case In a school situation where pupils generally assume that some form of examination will be given on all instruction, considerable habitual motivation to learn is likely to be present even without a specific announcement of a test preceding the instructional film. In this case less effect would be expected from the pre-film announcement of the quiz.

The device of announcing a quiz is, of course, well known to educators. One of its limitations is the additional time that must be devoted to testing and to the grading of the quizzes in order to maintain their motivational value. However, as a motivational device to be used in conjunction with instructional films, the announcement of a quiz seems to offer some promise at the present time, particularly when the burden of testing can be lessened by use of easily scored objective tests supplied as a standard accompaniment to film distribution

Some incidental results in connection with a study of training films are also relevant to the discussion of motivation. In this study, reported in Chapter 5, an introductory discussion of what the film was about, what to look for, and so forth, was presented just prior to showing the film. The result that emerged in the analysis of the data was that the introduction improved learning of items of information in the film that were *not* covered in these introductory comments as well as items specifically mentioned as things to look for. The implication seemed to be that an important effect of the introduction was to give *significance* to the film—heightening the motivation of the audience members to feel that it was worth paying attention to and to try to learn the contents. These incidental results make it appear desirable to study this aspect in greater detail by controlled experimentation.

3. RELATION TO PARTICIPATION BY THE AUDIENCE MEMBERS

Almost as well known in educational circles as the importance of motivation to learning is the importance of participation by the learners "Learning by doing" has been a widely recognized educational principle ever since E L Thorndike found that little was learned from imitation or passive exposure. The role of participation has also been emphasized by numerous studies which have found that recall of verbal material is greatly facilitated by dividing the time spent in studying between reading the material and attempting to recall it The active participation principle is intuitively utilized by most individuals engaged in practical training problems and has been a standard precept in Army training doctrine for many years. A problem is posed, however, in applying this principle to film instruction, which is characteristically carried on by presenting material to members of an audience who sit back and receive the instruction passively.

The device that was tested in the experiment reported in Chapter 9 was a simple one to utilize for the kind of material being taught by the film strip. The topic of instruction was the phonetic alphabet ("Able for A," "Baker for B," etc.), making the learning task comparable to the simple paired-associates learning problem that has been widely used in psychological experimentation. To such a task an active recitation method was readily applied At the end of every half dozen letters, the film strip presented a review list of the letters without the names, and the audience members practiced aloud the correct names. As was seen in Chapter 9, this participation procedure increased markedly the amount learned as compared with a standard presentation that was identical except for the instructions to recite aloud.

The effect of participation was found to be greater for the more difficult phonetic names than for the easier names. The results also showed that the individuals with lower mental test scores profited more from the audience participation procedure than those at the higher levels of mental ability. Finally, more improvement in learning was attributable to the participation when men were not given special motivation to learn, and less when motivation was increased by announcing that they would be tested on the material covered These various factors appeared to operate cumulatively in modifying the contribution brought about by the active participation procedure. at the one extreme, the participation procedure

added little in the case of the bright, motivated men learning easy words, and at the other extreme considerable benefit from active participation was obtained among the less intelligent, nonmotivated men learning difficult words. Since high intelligence, strong motivation, and easy material are all factors favoring rapid learning, these results suggest the generalization that active participation will contribute relatively more as other conditions of learning become progressively less favorable.

The specific device of reciting aloud as a means of providing participation cannot, of course, be used in connection with all types of material. It seems a fair assumption that the device of reciting aloud can probably be used with about equal effectiveness for other films of the same general character as the one studied—i.e., films in which the learning materials are simple paired associates, such as might be used in teaching a foreign language vocabulary, nomenclature, recognition of aircraft types, and the like But the recitation procedure as here used would seem less readily applicable to films having other kinds of learning objectives—for example, those involving motor learning or substance learning rather than rote memorization An important problem is, therefore, to determine what alternative procedures might be used in such instances in order to utilize the same basic factors responsible for the demonstrated effectiveness of active recitation in rote verbal learning.

The factors responsible for the improvement produced by participation are discussed in Chapter 9. The most obvious advantage of active participation is that it insures rehearsal of responses which are to be learned The present experiment involved learning by doing directly the very thing that was to be learned. With other subject matters (for example, teaching an athletic skill) such direct practice during the presentation of a film is generally not feasible, so that during a film the learner can at best be practicing verbal or other symbolic responses which can later be translated into the kind of action to be learned Even in these cases, however, a participation procedure requiring *overt* performance of such mediating symbolic responses has the advantage of insuring that some relevant response is being practiced—and insuring at least that the audience is not merely day-dreaming

A second factor of potential advantage introduced by the participation procedure is that it may motivate the learner to try to do well by providing, in effect, periodic examination on each segment of the material that has just been presented With the procedure

used in the study described in Chapter 9 this motivational factor may be particularly effective, since with oral recitation each member of the audience would realize that his immediate neighbors are aware of how well he is performing

A third factor of probable importance in contributing to the superior effectiveness of the participation procedure is that practice is required under stimulus conditions very similar to those obtaining at the time when the response is subsequently to be performed. Thus, the learners' practicing of the proper phonetic word was done during the presentation with much the same visual stimulus as was later presented to test their knowledge of the material—i.e., the letters were presented without being accompanied by the visual presentation of the word which was present in the control strip.

Factors Affecting Opinion Change

The reader will probably have noted in the previous chapters that responses to questions which do not deal with factual subject matter were generally referred to as "opinions" and that the term "attitude" was usually avoided. This usage reflects in part the fact that no satisfactory way was found of distinguishing between attitude questions and questions of opinion. As treated in Chapter 6, the outstanding feature of an "opinion" as distinguished from a statement of fact is that opinions are *interpretations* of available facts, which interpretations are difficult to verify or disprove directly From this point of view it is obvious that whether or not a statement is regarded as a fact or as an opinion is a matter of degree dependent on how convincing is the proof or disproof of the statement It is also clear that what is an opinion for one individual may be a fact for another, depending on the amount of information available to each individual. In the present studies the experimenters usually judged whether a particular item would be regarded by most of the men as a factual question or as a question of opinion, and then reinforced the classification decided upon by separating the two kinds of items in the questionnaire, one group of items being labeled as "factual" and the other group being labeled as "matters of opinion" on which disagreement was to be expected from person to person.

Several generalizations concerning the effects of mass-communication devices on opinions are indicated by the findings reported in the preceding chapters. These fall primarily under three major headings: the relation of changes to intellectual ability, the relation

of changes to initial opinion, and the relation of changes to the amount of time elapsing after exposure to the communication. A further section discusses the nature of "propaganda."

1. RELATION TO INTELLECTUAL ABILITY

A very consistent finding in the present studies was that both the initial opinion held and the changes in opinion obtained were generally related to the men's educational level. Other population variables or demographic characteristics were also investigated, but they were much less often related to the initial opinion held than was educational level and they were almost universally unrelated to the size of opinion changes resulting from exposure to a film or other communication. Educational level on the other hand turned out to be so commonly related to initial opinion and to opinion change that eventually the exceptional instances in which no relation was obtained came to be regarded as meriting special investigation.

As indicated in Chapter 6, the educational level attained by the men was found to be a useful index of general intellectual ability. The availability of this index made it possible to investigate a variety of theoretical relationships between intellectual ability and the effects of communications upon opinions.

The key concepts found useful in a theoretical framework relating intellectual ability to opinion changes may be called learning ability, critical ability, and ability to draw inferences. Learning ability enters in that the more intelligent learn more from a given exposure. Thus if everything else were constant, greater changes in opinion would be expected in the case of the brighter men simply because they learn and remember more of the things presented in the communication. However, because of greater critical ability they are less likely to *accept* an interpretation which is unsound, given the facts at hand. That is, they are better able to judge whether the interpretation goes too far beyond the evidence, whether the conclusions follow logically from the assumptions made, and so forth, so that they may refuse to accept an unsound interpretation no matter how well they have learned the interpretation given. Moreover, their critical ability, by enabling them to recognize prejudice in their own thinking, makes them less likely to resist accepting a sound interpretation.

The third factor postulated—ability to draw inferences—would be expected to affect opinion change by enabling the individual to arrive at an interpretation as a result of a communication despite

the fact that the interpretation was not part of the direct content of the communication. That is, this ability would facilitate an individual's being influenced by the unstated implications of a communication as well as by the statements explicitly made in it. This ability is probably also related to the aforementioned critical ability since if an individual were able to draw his own correct inferences from the factual material presented he would notice any invalid interpretations presented in the communication.

All of the foregoing factors would be expected to affect the relation between intellectual ability and the size of opinion change achieved by a particular communication. The form of relation obtained would be determined by which factor or factors was most relevant in a particular case. For example, an ascending curve similar to the curve for learning of factual information would be expected in relating opinion change to intellectual ability if the interpretation was directly made in the communication, and if in addition it was the most reasonable interpretation of the facts presented. If the interpretation was the most reasonable one but was not directly stated in the presentation, an ascending curve would also be expected but perhaps one which was positively accelerated, showing effects only among the most intelligent If, on the other hand, the interpretation was not reasonable but was clearly presented, a descending curve would be expected—the interpretation would be easy for even the less intelligent to learn but it would not be accepted by the more intelligent. With a large range of intelligence, curves which first rise and then fall would be expected if there were an "inference" of only moderate difficulty to be drawn from the communication but one that was not acceptable on logical grounds. In such a case the least intelligent would not get the inference at all, the most intelligent would get the inference but not accept it, and only those in between would have enough ability in drawing inferences, and little enough critical ability, to accept the interpretation.

All of these different kinds of relationships were obtained in the present studies in comparing opinion changes at different intellectual levels. Because of the heterogeneity of the relationships obtained with different items, an overall "average" relationship between intellectual ability and opinion changes is relatively meaningless since it obscures the separate relations—some positive, some negative, etc —obtained for separate items.

Most of the results obtained for individual items could be interpreted "after-the-fact" in terms of the theoretical framework de-

scribed above Unfortunately, it was not possible to do much experimentation to test "before-the-fact" the utility of this conceptual scheme. One experiment, that comparing a one-sided argument with one that took both sides of the question into account provides an example. The prediction from the factor of "critical ability" was that the more intelligent would be more influenced by the presentation taking both sides into account. This prediction was borne out, as was seen in Chapter 8

Testing of hypotheses that could be derived from such a theoretical framework relating intellectual ability to effects of a communication in changing opinion seems like a promising field for future research. Unlike the relation of intellectual ability to learning of factual information, the relation to opinion change appears to be quite complex. Understanding the relation is important because of the likelihood that very different kinds of communications would be most effective depending on whether the audience members were of high, low, or of mixed intellectual ability

2. RELATION TO INITIAL POSITION HELD

It seems highly probable that the effectiveness of a particular communication at changing opinions will depend in part on the initial opinions of the members of the audience. This consideration suggests two valuable ways of using research in developing effective communication methods. One is the continuing use of research in establishing general principles concerning how initial opinion affects the reaction to communications; the other is the use of opinion research prior to the preparation of a particular communication, as a means of providing information concerning the initial opinions of the intended audience so that the applications of principles to the design of a communication can be made in terms of the opinions actually held.

One of the opportunities to check on general principles about the relation of opinion change to initial opinion was in connection with the assertion sometimes made that the effect of "propaganda" or any attempt to persuade a person to change his beliefs serves primarily to reinforce his initial position—to make him all the more convinced of his belief. Another way in which this point of view is expressed is that "propaganda" has its intended effect only on those individuals whose initial position was already the same as that of the communication—i.e , it has positive effects only on those already positive.

In the present studies intensity of conviction was not measured, so it was not possible to determine whether some individuals were made more firmly convinced of their initial position by a communication designed to change their position. But in terms of whether a communication has positive effects only on those already positive, the present studies failed to confirm the expectation. Instead it was found—wherever an appropriate analysis could be made—that the communication had its intended effects over the entire range of initial position. That is, whether a man was initially for or against the stand taken in the communication, his opinion tended to be influenced in the direction of *more acceptance* of the point of view argued for in the communication. In no case was there found a significant change opposite to the intended effect of the communication among those initially opposed, and in all cases where the audience as a whole showed a positive change, the change was positive among those initially opposed.

However, initial position of the audience members was found to be an important determiner of what kind of communication was most effective in changing opinions In Chapter 8, it is shown that while the members of the audience who were opposed to the communication's point of view showed significant positive changes both for the one-sided communication and the communication giving "both sides," they were more likely to change their opinion if the arguments supporting their own initial stand were included (i e., with the program giving "both sides") than if only the arguments against their position were included. In other words, it was found that a man was more likely to accept a new point of view, opposed to his initial point of view, if the case is made for his previous opinion as well as the case for his adopting the new opinion At the same time it was found that making the case for "both sides" of the issue was less likely to produce a change than a "one-sided" argument among those who initially had the same point of view as that endorsed by the communication. Here again both forms of presentation produced positive effects, but the effect was less if arguments for the other side were mentioned

This experiment was designed to study a common contention that a communication should never mention the other side of the argument The purpose of the experiment was to test the alternative hypothesis that among those initially opposed to the point of view fostered by the communication, and particularly those familiar with important opposing arguments, it would be more effective at least

to mention the arguments on the other side. This hypothesis is somewhat related to the above-noted assertion that propaganda may have negative effects on those initially opposed. If there is any situation in which those initially opposed would be made all the more opposed by a communication, it would probably be one in which a one-sided presentation—which left out all of their own important points—antagonized them and served only to give them further rehearsal of their own position. As it turned out, however, even the one-sided presentation produced positive effects all the way along the scale of preference for, or opposition to, the point of view of the communications used.

The most significant finding, noted earlier, that did emerge from the study was that the presentation giving both sides was—as expected—more effective among those initially opposed. It should be realized that the method of utilizing the arguments on both sides of a question is probably very important in determining the relative effects of the communication on either those initially opposed or those initially favoring a particular point of view. In the experiment reported in Chapter 8, the utilization of arguments on "both sides" was with the specific purpose of producing the maximal positive effect among those initially opposed. The experiment was initiated in the expectation that a one-sided argument would be less effective with this subgroup than would a presentation that used judicious inclusion of the arguments on their side—and a one-sided argument might even have negative effects. On the assumption that not all ways of presenting the arguments for both sides would have the same effect, it is desirable to consider the theoretical basis for the initial expectation, and how the theoretical factors were incorporated in the communications used.

The main theoretical consideration was that those opposed would already be familiar with the chief arguments on their side, so no harm could be done by mentioning these arguments, on the contrary, a favorable effect of such mention seemed likely by preventing the opposed individuals from practicing, in an antagonistic mood, their own arguments as refutations of the validity of the arguments presented in the communication. Thus a communication that omitted their arguments at points where they were relevant would thereby seem unfair, and the audience members would be implicitly rehearsing their own arguments instead of attending to the communication This would be expected to have the effect of making them (1) feel the presentation was invalid because

biased; (2) motivated to reject rather than to accept the conclusion endorsed, (3) practice implicitly their own opposed arguments and conclusions, (4) learn less of the content of the communication because of the distracting effects of their preoccupation with implicit incompatible responses All of these factors, if present, would interfere with the effectiveness of a one-sided communication. The utilization of arguments on the "other side" was aimed at minimizing their negative effects.

The chief implication from these theoretical considerations is that the arguments on the "other side" ought to be explicitly mentioned. Various subsidiary inferences may be drawn with respect to the timing and manner of presenting these arguments on the other side. Such inferences led to a series of "rules" of presentation which appeared likely to maximize the effectiveness of a presentation that commits itself to giving "both sides" of an issue, for the purpose of converting as many as possible of those initially holding the point of view opposing the one advocated. Some of these rules were followed in preparing the transcription covering "both sides," as described in Chapter 8, p. 203f. Two examples of rules followed are: (1) that all of the arguments for "the other side" should be mentioned at the very outset (in order to let the opposed members of the audience know at once that their arguments would not be ignored), and (2) that attempts to refute opposing arguments should be made only when an obviously compelling and purely factual refutation is available (on the grounds that strong positive arguments are likely to be convincing whereas an attack on opposing arguments which have previously been accepted will tend to have mainly the effect of antagonizing those who hold them).

The experiment reported in Chapter 8 also has relevance to the second aspect of research on the role of initial opinion mentioned earlier—that is, the experiment has a bearing on the use of research in determining the nature of the opinions of the intended audience, prior to the preparation of the communication. For example, in preparing the presentations used in the experiment reported in Chapter 8, an advance survey was made to find out which arguments against the conclusion were most common, and a special pretest was made in an attempt to discover the conditions under which these arguments were elicited. In this special pretest, the experimenters sought to engage representative subjects in a controversy —using the main positive arguments as stimuli—in order to determine which positive arguments elicited which negative arguments.

As a result of this pretest, there was an empirical basis for knowing when, in the course of the presentation, the various arguments of the opposition were likely to be elicited. A subsequent quantitative survey provided information as to which of these arguments of the opposition were common enough to be worth taking into account in the communication used Such a sequence of pretests would appear to be a necessary preliminary to the most effective use of the principles utilized in the present study, or of similar principles which depend on taking into account the arguments, prejudices, and motives of persons opposed to the stand being advocated.

It will have been noted that the preceding discussion deals only with a mass-communication situation. It is assumed that the audience members are not themselves allowed to participate, that they are merely passive receivers of whatever is presented A different set of principles might apply in a different situation, although it seems likely that most of the same principles would hold and the difference would be chiefly one of emphasis. For example, in a face-to-face situation it would probably be of paramount importance to apply the last principle discussed on page 205 of Chapter 8 —that is, the avoidance of opportunity for the opposed individual to identify himself as a member of the opposition. In a face-to-face situation we would expect "ego involvement" to become a greater factor and would therefore expect considerable importance to attach to preventing the listener from taking a stand at the outset—otherwise the effect of the communication might only be to strengthen his motivation to accept his initial belief and to find new arguments to rationalize his position. Also, it is not surprising that a common result of the debate form of communication is to make each individual more convinced in adhering to his initial position, especially when the audience members are required to express their initial position

Obviously, the results obtained cannot be regarded as verification of any particular one of the theoretical principles used in preparing the arguments presented, since all of the principles that could be incorporated were used simultaneously in an attempt to maximize the effectiveness of the program giving both sides among the initially opposed view. An important area for future investigation is the experimental determination of the comparative efficacy of presentations which utilize the various specific "rules" derived from the theory here employed. It is in line with the point of view

expressed in Chapter 1 of this volume to expect that progress in the development of a real science of communication will, in fact, stem primarily from experimental study of this kind and from revisions in theoretical formulation such as the accumulation of experimental results is likely to dictate.

3. TEMPORAL COURSE OF EFFECTS FOLLOWING A COMMUNICATION

It has been previously noted that there was, at the outset of the orientation film studies, a more or less implicit assumption on the part of the experimenters that effects of a film would be maximal immediately after the film showing. A related assumption was that opinion changes as well as factual knowledge learned would show a forgetting curve as time passed after the film showing. As mentioned earlier, a standard time interval of about one week after the film showing was adopted as the interval before testing for effects simply on the ground that this was judged a sufficiently long lapse of time to be on a relatively flat portion of the assumed forgetting curve.

The only data obtained to investigate the validity of these assumptions came from a special study of the fourth orientation film, "The Battle of Britain," reported in Chapter 7. In this study two points on the presumed "forgetting" curve were investigated, by measuring the film's effects nine weeks after the showing as well as at the standard interval of about one week. At the outset, the phrasing of this investigation's purpose was in these terms: How much of the one-week effects will still be *retained* nine weeks after the showing?

However, as was seen in Chapter 7, while the word "retention" applied well in the case of factual knowledge, it did not turn out to apply to the results for most opinion changes because, on the average, these were somewhat *larger* after nine weeks than after one week, and in some cases they were very much larger. This result was clearly contrary to the initial expectation, even though it had been anticipated that opinion changes would be somewhat better retained than changes in factual knowledge. This expectation was based on the grounds that opinion changes should correspond to "substance" learning, which is usually well retained, whereas changes in factual knowledge would correspond more nearly to rote learning of details, which ordinarily shows a relatively rapid rate of forgetting. But it was not expected that the opinion changes would tend to show an actual increase with passage of time.

Unfortunately, this finding was discovered too late in the series of orientation film studies to make it possible to check the results in other films. It is unknown, therefore, whether the same general finding would have been obtained with the other films in the series. Consequently, the results for Film 4 and for the film series as a whole have been presented in Chapters 2 and 3 only in terms of the findings at the end of about one week after the film showing, as if these were *the* effects of the films. It should be kept in mind, however, that further long-time studies might have revealed a tendency for some of the opinion changes produced by each film to be greater after a lapse of several weeks following the film showing A further possibility suggested by the data for Film 4 is that some opinion changes might not show up at all until several weeks after the film showing.

As was noted in Chapter 7, the slight average increase in the opinion changes during the nine-week interval did not reflect a general trend for *all* opinion changes to increase with passage of time. Rather, the average trend resulted from a composite of some significant increases and some significant losses, which in the present case resulted in a slight average increase overall. Analysis indicated that the increases in opinion changes with passage of time were more likely to occur in the case of "uninformed" opinions—i e., opinions more prevalent among the less well educated—and that the changes occurred more frequently among the less well educated and among individuals who seemed predisposed to accept a particular opinion prior to the film showing In the actual analysis, these factors are inextricably interrelated and could not be disentangled as entirely separate variables; however, the overall impression is definitely suggested that some "projective" factor is at work—that over a period of time the individual utilizes the material shown to modify his opinion in a direction toward which he is already predisposed.

The results bear out the expectation that forgetting occurs for factual material, but suggest that little forgetting occurs for "reasonable" opinions (interpretations of facts positively correlated with education) and that, in the case of highly "questionable" interpretations, an actual increase with time is found instead of a loss. Since the specific-versus-general continuum is one of the dimensions along which facts are differentiated from opinions or attitudes, it would be interesting to know whether the increases were

primarily obtained in the case of the less specific items. An attempt to rate the items with respect to their specificity was made, and significantly greater increments of effect with passage of time were found in the case of items rated less specific. However, these subjective ratings were not considered sufficiently reliable for the results of the analysis to deserve presentation But the hypothesis is suggested that increments in opinion change with lapse of time are in part a function of predisposition for belief in a certain direction, and that this projective factor is more likely to show up in the case of general statements than in the case of highly specific statements This may be related to the usual finding that immediate projective factors have greater influence when the stimulus is more vague and undefined.

In addition, it may be that the increments with time reflect a change in memory content. To the extent that specific material tends to become more general with lapse of time, the acceptance—after nine weeks—of opinion statements that were not accepted immediately may indicate that the content of what is retained has shifted from specific to general. The operation of a projective factor and a shift from specific to general would work in combination to produce increments on the "more attitudinal" items, and in the direction toward which the individual was already predisposed. These highly speculative suggestions indicate some very interesting areas for future research. As speculations they would appear to fit in well with the findings of Bartlett, as reported in his well-known book, *Remembering*, that after original learning, that which is recalled tends to be progressively modified with lapse of time, the modifications being predominantly in the direction of omission of all but general content and the introduction ("impartation") of new material that is in line with the individual's initial attitudes toward the content.

The Determination of What Constitutes "Propaganda"

In the foregoing discussion and throughout the preceding chapters the notion of "informed" and "uninformed" opinions has been used, and in Chapter 6 this notion is tied in with a proposed method of defining "propaganda" operationally on the basis of its content Working from the definition of opinion as "interpretation of available facts," it was proposed that the valid interpretations are those which can be shown to be positively correlated with an index of

ability to make valid interpretations, and that attempts to foster "invalid" interpretations (i.e., those negatively correlated with this ability) might be classed as "propaganda."

In assessing an individual's "degree of ability to make valid interpretations," it is suggested that account be taken of the following factors: (a) intellectual ability, (b) knowledge of the relevant facts, (c) freedom from emotional bias.

The assumption here is that in order to make valid interpretations an individual would not only need to have the capacity for generalizing from facts and knowledge of all of the relevant facts that were available, but that also the interpretation should as nearly as possible be uninfluenced by nonrational considerations. If people were scaled along these three dimensions, with the scale values weighted appropriately to yield a single index of interpretive ability, plotting the index thus obtained against the frequency with which a given opinion is held would afford a valuable and definitive empirical basis for distinguishing informed interpretations from invalid interpretations ("propaganda").

It is believed that this procedure can generally, however, give a definitive answer concerning an item of opinion if either a positive or negative correlation is obtained between the index and the extent to which the opinion is accepted. It might be argued that an interpretation held by a great majority of the best informed and most capable intellectually would be a valid interpretation, regardless of the opinion held by the less informed and capable. However, unless it is shown that greater knowledge and intelligence makes the opinion *more likely* to be held than in cases of less information and ability, there is no very secure evidence that the interpretation is any more valid than any other. This is because the acceptance of the interpretation may in all groups be based on an irrational bias. But if a positive correlation is shown it would appear to be extremely likely that the interpretation can be supported by an intelligent assessment on the basis of relevant facts.

It is evident that a number of assumptions are implicit in the foregoing proposal for an objective procedure to assess the validity or propaganda character of interpretations classified as opinions. For example, it is assumed that satisfactory agreement can generally be obtained as to what facts are the ones "relevant" to the ability to make a sound interpretation in each instance. In the absence of available data to test such assumptions and their implications, the

procedure proposed still appears to have at least the merit of objectivity and reasonableness; it would seem, at any rate, to offer a criterion superior to the haphazard and unsystematic judgments that are usually the basis for deciding whether statements of opinion are considered as being sound or are labeled as "propaganda." A limitation of the procedure which deserves mention is the possibility that a particular conclusion could be validly drawn only by having available certain facts known by only a very few individuals. In this case the overall correlation between opinion and an index of general intellectual ability might be irrelevant.

An important practical limitation lies in the difficulty of obtaining a satisfactory scaling of the three criteria proposed. The most difficult of the criteria to scale would almost certainly be that of freedom from emotional bias. Presumably, nonrational bases for making interpretations would be less frequent or influential among those better qualified intellectually, but on some questions an emotional bias might be more prevalent among the more intelligent. In lieu of a scale of degree of prejudice on a particular interpretation, it might in some instances be possible to circumvent this difficulty by getting sufficient representation from all subgroups of the population that nonrational considerations would in effect largely be "balanced out."

The procedure proposed here for identifying propaganda is directed at the content of the interpretations fostered by a communication rather than at the methods of persuasion used. The proposal does, however, have implications concerning the aspect of propaganda stressed when attention is being called to the use of unscrupulous and nonrational methods as characteristic of propaganda. Thus, if invalid interpretations are those which do not follow from the relevant facts, attempts to foster such interpretations must almost inevitably resort to nonrational methods such as emotional appeals, concealment of facts, etc. The proposed procedure does not, however, have relevance for the ethical problem involved in the converse, i.e., using nonrational methods to convince others of a valid interpretation.

In the absence of measures of all three factors suggested as criteria of the ability to make valid interpretations, it was found useful to employ educational level attained as a crude index of "ability to make valid interpretations." This use was justified on the grounds that educational level is a rough overall index of general intellectual

ability, access to general factual knowledge of all kinds and, to a lesser extent, freedom from irrational bias It was found that some items were highly positively correlated with this index. For example, the opinion (in 1942) that the German ground forces ranked at the top in strength among the major nations was accepted by only 29 per cent of the grade school men but by 70 per cent of the college men, indicating that the opinion was a "valid interpretation" of available facts. On the other hand, some opinions were negatively correlated. For example, belief that in Germany babies are taken away from parents and raised by the state was found in 63 per cent of grade school men but only in 33 per cent of college men, indicating an "invalid interpretation" which would constitute "propaganda" if fostered by a communication. It was also found that these two kinds of opinions—the positively correlated and the negatively correlated—were differentiated with respect to the effectiveness with which they were communicated among men of different ability. "Valid interpretations" tended to be acquired as a result of seeing a film to a greater extent by those with higher intellectual ability; "invalid interpretations" tended to be more readily acquired by those of lower than by those of higher intellectual ability. A further finding was that the two kinds of opinions behaved differently with passage of time after exposure to the communication: positively correlated items tended to show decrements in time while negatively correlated items, indicative of invalid interpretations, were more likely to show increments with passage of time, the increments in such cases occurring mainly among the men of lower intellectual ability.

Although the use of educational level as a rough index of ability to make valid interpretations appeared justified for the subject matter covered in the present studies, it is recognized that this single index may have more serious limitations with other topics, particularly those dealing with economic issues. Here the positive correlation between educational level and socio-economic status may introduce considerable bias even among the better educated group.

An important area for future research lies in exploring further the relations between the effects of communications and the operationally defined "validity" of the interpretations made Especially to be desired would be replication in a new context of the study in which effects were analyzed as a function of passage of time with use of a more complete index of ability to make valid interpretations.

Practical Value of Systematic Studies

As a final evaluative comment, a word should be said concerning the relative contribution to the solution of practical problems made by the types of research described in the present volume The studies reported in Chapters 8 and 9 were designed primarily to extend our scientific knowledge rather than to provide immediately practical information. But the results were of considerable use in providing practical suggestions concerning effective methods of preparing mass communications. Equally useful suggestions were rare in the studies presented earlier, which aimed at "practical" evaluation of specific film products or comparison of existing products. There thus arises the interesting paradox that the most useful practical conclusions obtained arose from the few studies designed and executed to answer more general scientific and "long-range" questions rather than from studies that were fostered for the purpose of giving answers to "immediate, practical problems."

This apparently greater immediate practical value of the more "scientific" or "long-range studies" is here interpreted as indicating that, at the present stage of research on factors determining the effectiveness of mass communications, studies predicated on theoretical considerations involving the possibility of considerable generality are very likely to have more immediate practical value, as well as greater long-run scientific importance, than are studies aimed solely at solving immediate practical problems In terms of the considerations discussed in Chapter 1, this superiority of studies closely related to theory seems likely to be particularly great where such studies are set up so as to involve not only the controlled manipulation of any single variable but simultaneously its interaction with other relevant factors which are experimentally varied in combination. It is believed that research of this kind, closely related to theory, will have greater practical value until a point is reached at which general principles have been established in the field and there remains only the working out of details of how most effectively to apply these principles to specific content.

APPENDICES

APPENDICES: MEASUREMENT PROBLEMS ENCOUNTERED

Some of the measurement problems that were encountered in the film studies were of minor importance or specific to a particular study. Most of these have been presented in connection with specific studies to which they were relevant. Several recurrent problems of a more general nature were also encountered Some of these are discussed in the appendices that follow. These measurement problems are not specific to film research but would be encountered in practically any experiment that attempts to quantify qualitative data.

APPENDIX A

THE BASELINE FOR MEASUREMENT OF PERCENTAGE CHANGE

A COMMONLY used method of measuring effects of an experimental variable on qualitative responses is to show the percentage making the key response in the control group, the percentage making this response in the experimental group, and the difference between these two percentages. The "effect" is therefore indicated by the difference between the percentages.

However, this measure of effect is a function of the existing level of frequency of the key response prior to the experiment. If nearly all members of the population are unfamiliar with a particular fact prior to a film showing, a very effective film can yield a numerically large change when effects are expressed in this way. But if nearly everyone is already familiar with the fact, the effect is limited in size because only a small proportion did not know the fact initially and therefore only a small "effect" of the film can be obtained.

Thus the measure has serious disadvantages for determining the relative effectiveness of a film in teaching two different facts that are not equally well known initially. A different ceiling is imposed on the magnitude of effect for each different initial level, and the comparison is biased against items that are well known initially. Similarly, the measure introduces a bias if used for comparing the effects of a film on two or more groups that differ in initial level prior to the film. For example, if nearly all of the better educated know a particular fact, they can show little learning if effects are measured as the difference between control and film percentages, whereas the poorly educated, who are in general poorer learners, can show a large effect because they knew so little to begin with that there was considerable room for improvement.

This "ceiling" artifact is even further exaggerated if effects are measured as "percentage improvement," in which the baseline is the initial level and effect is expressed as the proportion of increase in this initial level. Thus a change from an initial level of 10 per cent to a final level of 20 per cent exhibits 100 per cent improvement, whereas a change from 80 per cent to 90 per cent—with the same 10 per cent difference in percentages—is only a 12 per cent improvement. Since the baseline and the ceiling are

inversely correlated, the ceiling effect is exaggerated by the use of per cent improvement

The "Effectiveness Index"

Both of these measures of effects—the difference in percentage and the proportionate increase in the initial level—are inadequate in comparisons in which the baseline varies for the two things being compared In many cases a more appropriate measure is the increase in number checking the correct response divided by the *maximum increase possible* as a baseline Thus if the initial level is 10 per cent correct answers and the film increases the number to 20 per cent, the difference between the percentages is 10 per cent But since the initial level was 10 per cent, the maximum change possible is 90 per cent. Therefore the increase, divided by the maximum increase possible is 10 per cent divided by 90 per cent, or 11 per cent Similarly, if the initial level is 80 per cent and the film increases the level to 90 per cent, the increase is again 10 per cent, but 10 per cent out of a maximum possible increase of 20 per cent (i e , 100 per cent minus 80 per cent), gives a film effect of 50 per cent of the total possible increase

This measure of effect is termed the "effectiveness index" in the present volume It is so named because it is a measure which indicates the extent to which the film achieves maximum effectiveness in the particular area involved and with the particular measuring instrument used If P_1 is used to indicate the initial per cent and P_2 the final per cent, the effectiveness-index is expressed by the following formula [1]

$$\text{Eff index} = \frac{P_2 - P_1}{100 - P_1}$$

This measure of effect may be interpreted as the effect of the film in increasing the frequency of correct responses among those initially having the wrong response The major argument in favor of the effectiveness index is that the relative value of a particular instructional technique is thus ascertained on the basis of those individuals who do not already know the content of the instruction, therefore, any comparisons that are made to determine relative effectiveness should be free of distortion due to lack of effects among those who already know the material

The per cent who check wrong answers initially is of course not actually the per cent who did not *know* the right answer initially An indeterminant number of individuals will check the correct answer initially because they merely guessed, and happened to guess correctly However, the increase

[1] The above formula applies for responses that are increased by the film If the film decreases a particular response and it is desired to express this negative effect, the analogous formula is $\frac{P_2 - P_1}{P_1}$ This will give an effect with a negative sign and which measures the decrease as the proportion of maximum decrease possible

in per cent is also not the actual number who changed as a result of seeing the film, because the increase would be generally accompanied by a reduction in the number who get the answer right by guessing Thus the number who actually learned the material is really greater than the increase in correct responses, depending on the initial amount of guessing. Provided the film does not change the proportion who guess correctly among those who do not know the correct answer, the two factors above exactly balance each other so that the increase in frequency of correct responses divided by the initial frequency of errors gives the proportion who were changed of those who initially did not know the correct answer. This may be shown as follows.

Let k_1 and k_2 represent the percentages of the sample that actually *know* the correct answer before and after the film respectively. Then $100 - k_1$ is the percentage who did not know initially and $100 - k_2$ is the percentage who still do not know after the film Now if X is the proportion of those who do not know who will guess correctly, then the obtained percentages of correct responses before and after the film, P_1 and P_2, respectively, will be as follows.

$$P_1 = k_1 + X(100 - k_1)$$
$$P_2 = k_2 + X(100 - k_2)$$

The effect, as computed from the increase in correct responses divided by the initial number of wrong responses, is equal to $\frac{P_2 - P_1}{100 - P_1}$ Substituting from above,

$$\frac{P_2 - P_1}{100 - P_1} = \frac{[k_2 + X(100 - k_2)] - [k_1 + X(100 - k_1)]}{100 - [k_1 + X(100 - k_1)]}$$
$$= \frac{k_2\,(1 - X) - k_1\,(1 - X)}{100(1 - X) - k_1\,(1 - X)}$$
$$= \frac{k_2 - k_1}{100 - k_1}$$

It can be seen that this final expression is exactly the expression desired, namely, the increase in number *knowing* the correct response divided by the total who did not know it originally In other words, it is the percentage who learned the answer among those who previously had not known it

It will be noted that no assumption was made about the value for X, the proportion of correct guesses among those not knowing the correct answer. It was assumed, however, that X stays the same after the film, that is, that the correct choice is still just as attractive a guess among those who did not learn the correct answer

In any case, the measure of effect obtained is unbiased by statistical

ceiling effects. It always measures the increase as the proportion of the total increase possible

Two illustrations from a study of "The Battle of Britain" are shown below, comparing "effects" as measured in the three different ways discussed above The comparisons are made for the type of situation in which change as a function of maximum change possible appears to be the most appropriate measure The examples illustrate how the conclusion is altered by using less appropriate measures that are biased by ceiling effects In the first example the "effects" are compared for two different fact-quiz items with different initial levels, the second example compares "effects" at four different educational levels

First Example

	PER CENT ANSWERING CORRECTLY	
	Reason British Navy could not be used	*British military equipment after fall of France*
Control	36%	5%
Film	55	18
Effect measured as difference between per cents	19	13
Effect measured as per cent improvement	53	260
Effect measured from base of maximum increase possible (effectiveness index)	30	14

In this example the effects are roughly the same for the second item as for the first if only the differences between per cents are considered, and the effect on the second item is about five times as great if "per cent improvement" is used, whereas the effect on the second item is about half as great as for the first item if the ceiling is equalized for the two groups by using the effectiveness index

Second Example

	PER CENT ANSWERING CORRECTLY THE ITEM ABOUT THE BRITISH NAVY			
	Grade school men	*Men with some high school*	*High school grads*	*College men*
Control	31%	29%	38%	55%
Film	32	57	60	78
Effect measured as difference between per cents	1	28	22	23
Effect measured as per cent improvement	3	97	58	42
Effect measured from base of maximum increase possible (effectiveness index)	1	39	35	51

In the above example the effect of the ceiling is to produce marked curvilinearity in the curve of effects expressed as differences, which is greatly exaggerated by the use of "per cent improvement," whereas the expected positive correlation between magnitude of effects and learning ability is found if the ceiling effect is equalized.

These examples were chosen to illustrate situations in which the appropriate base line is the maximum effect possible. In other types of situations the other base lines might be adequate For example, in a comparison of two alternative presentation methods in teaching the same material, the same questions would be asked of samples from the same population, and the conclusion about relative effects from the comparison of the two presentations would be the same whichever of the three base lines is used. However, a distorted picture of the absolute magnitude of the effects might result from improper interpretation of the measure used This is particularly true of the per cent improvement measure in which huge "improvements" may reflect only a small educational accomplishment merely because the starting level was very low.

The preceding considerations of base lines for measuring effects have been discussed from the standpoint of measuring instructional effects of a film on factual information. The same considerations apply, however, in the measurement of changes on opinion items. In this case the concept of "guessing" is not as appropriate as the more general concept of "unreliability," and the concept of "believe" is more appropriate than the concept of "know." Otherwise, the argument in the case of fact-quiz items may be directly transferred to the case of opinion items

An important limitation to the utility of the effectiveness index as a measure for comparing changes lies in the fact that its sampling distribution has not been satisfactorily worked out, so that at present there is no adequate method available for determining whether two effectiveness indices *differ* reliably. Therefore, to the extent that the use of the index is desirable for this comparison of changes starting from different initial levels, the development of the sampling distribution of the measure becomes a problem for future statistical research.

Special complications arise if it is desired to extend the concept underlying the effectiveness index beyond the case of single qualitative measures such as percentages so as to cover *averages* of several responses. If one wishes to use the effectiveness index in representing a film's effect on the average number of correct or desired responses to a small (or at least finite) number of items, there are two alternative procedures possible Either one may compute an effectiveness index separately for each item and average the obtained separate effectiveness indices, or an "effectiveness index" may be computed in terms of average change divided by "average change possible" The two procedures will in general lead to somewhat different numerical results unless the size of the effectiveness

indices for individual items is uncorrelated with initial level of response over the range of items involved.

With the first procedure, experience indicated that obtained distributions permitted comparisons of means by the *t*-test, treating each effectiveness index as a raw "score" The main difficulty encountered with this procedure was that, with small samples, the value of a mean effectiveness index can be grossly influenced by a single deviant E I. value such as is likely to occur with an initial level that leaves very little room for change and consequently gives a very unstable denominator in the E I. formula.

Possible gross distortion of the average value by an aberrant and unstable component item is much less likely with the second procedure suggested above—i e , computing a single effectiveness index based on the average obtained and "average change possible" for a set of several items. But this alternative introduces special difficulties of its own In the first place, use of single effectiveness indices instead of averages over several observations leaves one without a measure of variability from item to item Second, such an application of the logic of the effectiveness index necessitates defining E I in quite general terms as "obtained change divided by maximum change possible" rather than more specifically as "obtained number of individuals changing divided by maximum number who could change" This makes the unit of measurement a response rather than an individual, and consequently fails to differentiate changes in one or two items for a large number of persons from changes on more items by a small number of persons

Attempts to Correct for Guessing

The foregoing discussion of the use of the "effectiveness index" deals with the problem of measuring changes that can be interpreted as the *per-cent-who-change* out of the group that could change A more difficult problem is posed if it is desired to determine the *per-cent-who-know* the correct response before or after the film It will be remembered that on page 286 an unspecified proportion, X, was used to represent the proportion of correct guesses among those not knowing the correct answer. This proportion does not need to be determined to calculate the per-cent-who-change among those not knowing initially, but it must be determined in order to calculate the per-cent-who-know the correct answer either before or after the film

Assumptions can be made about the distribution of guesses in an attempt to express the effect of the film more accurately in terms of the per-cent-who-know out of the total sample, as a result of seeing the film Thus in a four-choice item about which some individuals know nothing at all and only guess, it might be assumed that each choice is equally likely to be guessed, so that the distribution of guesses would be 25 per cent on the correct choice and on all others. If k is used to designate the percentage who know the correct answer, then $100 - k$ is the per cent who guess and

$1/4\ (100 - k)$ is the per cent who guess correctly. If p is used to designate the total per cent who choose the correct response, then $p = k + 1/4\ (100 - k)$, and k may be solved for, giving $k = 4/3\ (p - 25)$. Thus if 50 per cent check the correct answer on such an item, 33 per cent know the correct answer; or if 80 per cent check the correct answer 73 per cent know the correct answer. With a three-choice item k would be equal to $3/2\ (p - 33)$; with a five-choice item k would be equal to $5/4\ (p - 20)$, and so forth.

The difficulty with this attempt to correct for guessing is that there is usually little confidence in the assumption that guesses are distributed equally over the different choices. Various factors cause the men who really do not know the correct answer to favor particular choices. This sometimes follows from the purpose of the instruction, which may be to correct a popular misconception In this case, a wrong alternative that is highly favored is likely to be included in the choices written for the question. In such a case there may be little actual guessing although none of the group knows the correct answer. Also, the correction leads to a special difficulty when the correct choice initially receives fewer than the "chance" expectancy for guessing—as when only 10 per cent check the correct answer to a four-choice item In this case a negative per cent is obtained for those knowing the correct answer.

In general the necessary assumptions are so infrequently justified that "corrected" results are about as likely to be less representative as they are to be more representative of the actual number who know the correct answer as a result of the film.

It should be pointed out again that this same difficulty is not present when it is only desired to express the per cent who change out of the group who could change initially, as shown earlier The attempt to correct for guessing makes assumptions as to the *amount* of guessing of the correct answer, together with the assumption that this amount is a fixed proportion of those who do not know before and after the film. The interpretation of change divided by the maximal change possible as being the per cent who learn among those who do not know initially, on the other hand, makes only the latter assumption, namely that the same proportion of those who do not know will pick the correct response before and after the film.

Selection Effects

The "ceiling effects" discussed so far are purely statistical effects that influence the obtained measure of the effectiveness of the experimental variable. However, an additional type of ceiling may also be encountered, as the result of the selection of individuals, that may be a function of the initial level. If no one in the sample knows the correct response to a fact question at the outset, there is no selection involved in the group that can learn from the film But if part of the group already knows the correct

answer, there is the likelihood that this portion who already know the correct answer is not a random subsample of the group but rather is a select group in terms of important variables. Conversely, therefore, the remainder who can learn the correct answer because they do not already know it will also be a select group

For example, if half of the population knows a particular fact, it is likely that as many as three fourths of the better learners in the population know the fact whereas as few as only one fourth of the poorer learners may know the fact. Positive correlation of knowledge of well-publicized information with learning proficiency is the rule and was typically found in the fact-quiz items used in the orientation studies But the implication of such positive correlation is that those who do *not* know a well-publicized fact are a select group, likely to be biased in the direction of poorer learning proficiency In the above hypothetical case it would include 75 per cent of the poorer learners and only 25 per cent of the better learners. For relatively little-known material the selection effect would not be great, but for very generally well-known material a *selection ceiling* is imposed in that the small proportion who do not initially know the material—and therefore could learn it from the film—are a selection of the very poorest learners in the population In an extreme case in which, say, 90 per cent of the population already knows the fact, the remaining 10 per cent who can learn it from the film is likely to be a very backward group

When the content of a film or other educational device is purely factual and only effects on factual knowledge are measured, the most important selection variable probably is learning proficiency But in the case of a film designed to affect emotionally toned opinions, well-established opinions, and so forth, other selection factors may loom as of greater importance than learning proficiency Prejudice and emotional involvement, for example, might be important selection variables

In the studies of the orientation films, many of the orientation objectives were points of view held by the great majority of the men Thus it was found that over 80 per cent of the men believed, at the time they came into the Army, that it was desirable to send American troops overseas to fight rather than merely waiting to defend America's shores in case of an enemy attack on the home soil It seems likely that the remaining 20 per cent who could still be changed to this point of view by the orientation films were a very select, recalcitrant group, who would be very hard to "sell" on this point of view Correlations with other variables and responses indicated that this was the case, such men tending to have been isolationists before Pearl Harbor, to have foreign-born parents originating in Axis countries, and so forth

While no definite facts can be mustered in support of the contention, it seems likely that any opinion held by the great majority of the population represents a point of view that has been well publicized in the population

Many of the cultural forces are at work to mold opinion in this particular way, and the majority of the group conforms. In such a case the small remainder that do not conform to the group opinion are likely to be "die hards" who have been exposed to all the usual forces and still will not change their opinion. If true, a selection ceiling would be present in the group who could be affected by an educational program designed further to affect opinions already held by the great majority of the population Such a selection ceiling, if present, would mean that for a film to increase a response from 85 per cent to 95 per cent would, other things being equal, be a more difficult achievement than effecting an increase from an initial level of 55 per cent to a final level of 65 per cent Under these circumstances there would tend to be a negative correlation between the prevalence with which an opinion is initially held and the ease with which a communication can effect an increase in the number holding the opinion

On the other hand, an opinion or belief initially held by only a small minority may frequently be an "unpopular" opinion against the wider acceptance of which there are strong predisposing factors operative In this case the effect of the psychological factors involved would tend to produce a *positive* rather than a negative correlation between initial prevalence of the opinion and its susceptibility to change in the direction of wider acceptance An analysis of opinion changes as a function of initial acceptance level in population subgroups, reported in Chapter 7, shows results which can be interpreted as supporting this supposition

As noted earlier, the use of the effectiveness index is not designed to correct for selection effects of the kind just discussed Such selection effects involve differential susceptibility to change from a psychological standpoint, whereas the purpose of the effectiveness index is restricted to providing a statistical correction for differential possibility of change, or room for improvement.

APPENDIX B

"MARGINAL" VERSUS "INTERNAL" EFFECTS

THE effects discussed so far have all been in terms of a net shift in the proportion answering with a particular response, i e , the "key" response This was the most commonly used way of expressing effects in the evaluative studies carried out by the Experimental Section The measure was usually appropriate because for any item the response desired by the makers of a training film could be specified in advance, and the evaluation of the film in a particular content area was in terms of the extent to which it increased the frequency of this response

However, this way of describing the effects of the film may often be very incomplete in terms of all the changes produced by the film in the particular area In studies with scientific aims it is more likely that the experimenter will seek more complete description of the effects than is provided by the marginal increase for a particular response category.

An additional degree of completeness of description of effects is provided by analysis of the marginal *distribution* of all of the response categories used in the particular content area For example, in a multiple-choice item with several response categories, the complete distribution of responses provides additional information Thus the complete marginal distribution indicates what responses showed a net increase and from what response categories the increase was derived, i e., what responses showed a net decrease in frequency as a result of the film.

"Internal" Changes

The above-mentioned "more complete" degree of description is still limited to a *marginal* distribution—it shows the end product or net effects of a variety of possible shifts in response that could have brought about the end product For some purposes this would be sufficient, but for a detailed analysis of the factors determining the effects of a film it would generally not be A more complete analysis requires a description of the "internal" changes that brought about the net shifts in the marginal distribution This can be done only by determining the response before and the response after the film presentation for each individual in the sample and comparing the distribution of *changes* of response with that of a control group that

was subjected to the same determination of responses "before" and "after" but was not exposed to the experimental variable

In this case the effects may be analyzed in terms of the differences between the cross-tabulation of responses before and after in the experimental group as contrasted with the same cross-tabulation in the control group The distribution of changes of response in the control indicates changes occurring because of unreliability of response and other causes external to the film, and the difference between this distribution and the distribution of changes occurring in the film group indicates changes produced by the film This procedure for determining effects shows the changes in the marginal distributions, which are the algebraic sums of the appropriate individual changes but it also shows all of the individual changes that contribute to the end result of net changes on the marginals

An illustration of this method of measuring effects is shown below from a study of the effectiveness of different kinds of radio programs in achieving orientation objectives The purpose of the programs was to counteract overoptimism about the ease of defeating Japan, and the item used in the illustration below measured the effect of one kind of transcription at reducing overoptimism concerning the damage done by U S air raids The study is described in more detail in Chapters 5 and 8, the programs used for the illustration below are the dramatic programs, which had the greatest effect on the question used in the illustration The responses to the three answer categories given a week prior to the use of the programs are shown cross-tabulated against the responses to the same question after the program, for both experimental and control groups

The wording of the question was:

> What is your idea of how much damage our air raids in Japan are doing to the Jap war effort? (Check one)
>
> —— *Already* have done a great deal of damage
> —— Not doing much damage so far but will do a great deal *soon*
> —— Not doing much damage so far and *will not* do a great deal *for quite a while* yet

The breakdown of before and after responses is shown below with these responses paraphrased as "already," "soon," and "will not," respectively.

The cells comprising the descending diagonal in the cross-tabulation of the control group give the proportions who did not change their responses, they reflect the stability of responses during the time interval between before and after measurements The sum of the three cells in this diagonal is the total percentage who did not change, and the remaining six cells give the "turnover" that reflects the instability of the responses to the question The differences between control and experimental cells, shown in the last three-by-three table, show the effects of the transcription, that is, the

changes of response in the experimental group with the values to be expected from chance and other causes subtracted out From this table the net effects of the transcription on any particular response category can be determined from the appropriate marginal total, as well as the net effects on the marginal distribution of the three responses At the same time, however, the net changes can be broken down into the various individual effects whose algebraic sum determines the net marginal change

PER CENT CHECKING EACH RESPONSE COMBINATION
BEFORE AND AFTER PROGRAM

ANSWERS BEFORE

ANSWERS AFTER	*Control—did not hear program* Already	Soon	Will not		*Experimental—heard program* Already	Soon	Will not		*Effects—exp minus cont* Already	Soon	Will not	
ALREADY	40	9	–	49	19	1	–	20	−21	−8	–	−29
SOON	4	38	5	47	28	35	1	64	+24	−3	−4	+17
WILL NOT	1	1	2	4	2	10	4	16	+ 1	+9	+2	+12
	45	48	7	100%	49	46	5	100%	+ 4	−2	−2	0%

The findings in the above example show, first of all, an increase in the total proportion changing their response as a result of the radio programs This is seen by summing the descending diagonal in the "effects" table. Thus 22 per cent fewer in the experimental sample gave the same response before and after If individual cell changes of 5 per cent or more are assumed to be statistically significant, four significant specific effects can be stated·

1 A decrease of 21 per cent in the number adhering to the most optimistic opinion of "already have done a great deal of damage"

2 An increase of 24 per cent in the number shifting from the most optimistic to the more moderate "soon" response.

3 A decrease of 8 per cent in the number going from the "soon" interpretation to the most optimistic "already" response

4 An increase of 9 per cent in the number changing from the "soon" response to the most pessimistic idea that damage could not be expected for quite a while

Finally, by summing the horizontal rows in the "effects" table we see that there was an overall decrease of 29 per cent in the most optimistic response and increases of 17 per cent and 12 per cent in the moderate and pessimistic responses, respectively

Significance Test for Distribution of "Internal" Changes

The question may be raised as to the method of calculating the statistical significance of an "effect" of the film as determined in this manner. The meaning of an "effect" in this case is a *difference between the distributions* of before-after changes in the experimental group as contrasted with the control group If the two cross-tabulations (experimental cross-tabulation versus control cross-tabulation) differ as a whole, an "effect" is demonstrated. An appropriate test is a Chi-square test of the significance of the differences between the two distributions, taken as a whole If a significant difference is found for the distribution as a whole, the appropriate Chi-square or percentage tests of significance may be applied to the differences obtained in the sub-portions of the distribution, which differences serve to describe the nature of the "effect" obtained.

With this Chi-square test any differences at all between the two distributions contribute to the value for the total χ^2, even including such effects as an increase in the number *keeping the same opinion* as they had before. A short-cut procedure that is sometimes useful for locating items significantly affected by the film is simply to sum the changes of response and compare the per cent who change their response in the experimental group with that in the control group Thus in the preceding example it can be seen that 42 per cent of the experimental group and only 20 per cent of the control group changed their responses. Thus the cross-tabulation can be used to dichotomize the samples into "changed" and "did not change," and the significance of a difference between the experimental and control percentages changing is a simple test of whether the experimental variable caused significant amounts of opinion change. This test may prove particularly useful if a question has a large number of categories so that many of the cells have expected frequencies too small properly to use χ^2 (e.g., expected values less than 5) with the size of samples used Also with a large number of categories the amount of computation in using χ^2 is much greater, so the simpler test of percentage who change is a useful short-cut if it detects the effect

In general, however, the Chi-square test is more sensitive in determining an effect than is the per-cent-who-change test described above. This is mainly because one possible type of effect is to *prevent changes* of response, which effects add to χ^2 but subtract from the per cent who change When samples are small but the number of response categories is large, it is usually possible to make combinations of answer categories that are meaningful and at the same time sufficiently increase the expected frequencies that the χ^2 test may be used.

In applying the Chi-square test, the simpler procedure is to combine the frequencies in the experimental and control cells and use the combined distribution as the basis for obtaining the predicted frequencies, the predicted value being obtained by multiplying the experimental or control N by the ratio of the combined cell-frequency to the combined N. In this case the number of degrees of freedom of Chi-square is one less than the number of cells in the cross-tabulation.

However, this procedure is strictly applicable only with random sampling of subjects. If there are significant differences in the marginal proportions of the cross-tabulation because the experimental and control groups are not a random selection of individuals, a significant Chi-square may be obtained simply because the marginals differ significantly before the application of the experimental variable. In such a case the expected values should be computed from the ratio of combined cell frequencies to combined *marginal* N's in the "before" data rather than the ratio to total N. The ratios should correspondingly be applied to the separate "before" marginal N's, and the number of degrees of freedom is reduced accordingly to $r(r - 1)$ where r is the number of "before" marginal totals (i.e., the number of response categories).

As stated earlier, if the Chi-square test reveals a significant overall deviation in the control and experimental distributions, the distributions may then be examined for the nature of these effects. In general in this type of analysis it would be required that a reliable effect be obtained for the total Chi-square before it would be permissible to examine the reliability of separate subgroups of response combinations before and after. This would be particularly important where the response categories are numerous. For example, if a question has four response categories, the total number of cells in the before-after cross-tabulation would be 16. This multiplies considerably the number of comparisons that would meet the significance test even though chance were the only factor operating, and therefore it increases the probability of finding a false "effect" of the experimental variable on the question. The probability of "detecting" a false "effect" is greatly reduced if it is first shown that a significant difference exists in the total array of comparisons.

"Internal" Effects That Cancel in the Marginal Frequency

When a change (e.g., an effect of film) is described in terms of the marginal shift in the distribution of responses, the change so described is the *net change* as a consequence of the various shifts from category to category that might have occurred. As already pointed out, the "internal" changes more completely describe the net effect on the marginal by showing the individual effects that sum algebraically to produce the net effect. In some cases, however, the net effects may be zero because of opposite "internal" effects that cancel each other in their effects on the marginal distribution. Examples of such cancelling effects were very rare in the

present film studies, but they are a theoretically possible type of effect that can be measured only in terms of the internal changes

Marginal Versus "Internal" Effects When Responses Form a Scale of Content

In the illustration used in the preceding section comparing marginal changes with internal changes, it will be observed that the differences in the three responses provided are a mixture of qualitative and quantitative differences. The three ideas expressed are qualitatively different, but at the same time they are along a time continuum as to *when* a great deal of damage would result from air raids on Japan This is often the case in opinion questions; while in some instances the different responses may represent discrete categories, they frequently represent a *content continuum* along which responses can be graded in degree to which a response differs from one or the other end of the continuum

A good example of the latter type of question is provided in the same study from which the preceding illustration was borrowed In this study the main question used to determine the overall effect of the radio program on optimism about the war with Japan was a question asking the men how long they thought the war with Japan would last. The question was of the "open-ended" or "free-answer" type, that is, the men were asked to write in their own best guess as to how much longer they thought the war would last The answers were coded in six-month intervals—less than six months; six months or more, but less than one year; one year or more, but less than one-and-one-half years, and so forth. Thus the responses can be graded from short to long along the content continuum of estimated length of war, and an individual's change in response, from before to after, can be quantified in terms of the number of steps by which he changed along the content continuum.

In such a case the cross-tabulation of before and after responses, from which "internal" changes can be determined, does not consist merely of *discrete qualitative combinations* of before and after responses Instead, each individual's change may be completely described in terms of initial level, direction of change (positive or negative), and size of change (number of steps along the single content continuum). This permits several different ways of summarizing the effects obtained, in addition to those already discussed. Thus in the preceding discussion "effects" were describable as net change in the marginal of a particular response, net changes in the marginal distribution of all of the responses, and individual qualitative changes from one category to another In an item with scaled content, the effect may be described, in addition, in terms of the net per cent who changed by given amounts in a given direction, or in terms of a mean change in number of steps along the content continuum, each of these being expressible as a function of initial level on the continuum

These measures are illustrated below in the above-mentioned example of the length-of-war question from the study of the radio programs The results for the control group and one of the four experimental groups are shown below, the length-of-war estimates in the after questionnaire being cross-tabulated against those in the before questionnaire The numbers in each of the cells below are the numbers of men giving each combination of before and after response

ESTIMATES OF LENGTH OF WAR BEFORE AND AFTER THE TRANSCRIPTION

CONTROL GROUP

		Estimates before, in half-year intervals							
		1	2	3	4	5	6	7+	Total after
Estimates after, in half-year intervals	1	6	5						11
	2	4	37	5	1	2			49
	3	1	12	37	7	2			59
	4		1	7	11	3			22
	5			1	4	17	6	3	31
	6				1		5		6
	7+						2	1	3
Total before		11	55	50	24	24	13	4	181

EXPERIMENTAL GROUP*

		Estimates before, in half-year intervals							
		1	2	3	4	5	6	7+	Total after
Estimates after, in half-year intervals	1	1							1
	2	8	27						35
	3	1	20	23	2	2	1		49
	4		11	26	10	4	1	1	53
	5		1	7	6	23	4		41
	6		1		3	5	4		13
	7+			2	1	2	2	6	13
Total before		10	60	58	22	36	12	7	205

* The experimental group used is the one hearing the program giving "both sides" of an issue, as described in Chapter 8

The marginal change may be measured in terms of a "cutting-point" which dichotomizes the responses and expresses the effect as the increase in percentage falling above or below the cutting-point For example, "overoptimism" may be defined as estimates of a war of less than one year and the responses dichotomized according to whether they are less than one year or one year or more. The results are.

	CONTROL			EXPERIMENTAL		
	Bef.	*Aft.*	*Diff.*	*Bef*	*Aft.*	*Diff*
Estimated less than one year	37%	33%	−4%	34%	18%	−16%

Thus, while only a slight change took place in the control marginal from before to after, a decrease in "overoptimists" of 16 per cent was found in the experimental group. This presumably approximates the results that would have been obtained on a dichotomous question asking the men whether they thought the war would be over in less than a year.

The above measure reduces the effect to a single response category This may be expanded to show the effect along the entire marginal distribution, as follows·

Per Cent Checking Each Response

	CONTROL			EXPERIMENTAL		
Response	*Bef*	*Aft.*	*Diff.*	*Bef*	*Aft*	*Diff.*
(1) Under ½ year	6	6	0	5	1	−4
(2) ½ to 1 year	31	27	−4	29	17	−12
(3) 1 to 1 and ½ years	28	33	5	28	24	−4
(4) 1 and ½ to 2 years	13	12	−1	11	26	15
(5) 2 to 2 and ½ years	13	17	4	18	20	2
(6) 2 and ½ to 3 years	7	3	−4	6	6	0
(7+) 3 years or more	2	2	0	3	6	3
	100%	100%		100%	100%	

This shows the changes all along the marginal distribution for the control and experimental group It can be seen that while only small and inconsistent changes occurred in the control group, the changes in the experimental group were in some cases large and were systematically in the direction of a shift of the distribution to larger estimates, the greatest change in an individual response category being the increase in category (4), a war of one-and-one-half to two years

It will also be observed from this distribution that the effects in terms of the "cutting-point" as illustrated previously are different according to the cutting-point chosen. A change of −16% was obtained in the experimental group for estimates of less than one year, as shown above, but it can be seen also that the change is −20% for a war of less than one-and-one-half years, and only −5% if the cutting-point is two years.

The effects on the marginal distribution may also be expressed as mean effect for the distribution as a whole This is illustrated below The response categories are not repeated, but the numbers in the "response" column correspond to the length of the estimate in half-year intervals [1]

NUMBER OF MEN GIVING EACH ESTIMATE

Response	CONTROL		EXPERIMENTAL	
	Bef	*Aft*	*Bef*	*Aft*
(1)	11	11	10	1
(2)	55	49	60	35
(3)	50	59	58	49
(4)	24	22	22	53
(5)	24	31	36	41
(6)	13	6	12	13
(7+)	4	3	7	13
Mean (in half-year units)	3 28	3 24	3 38	3 92
Diff.	−0 04		0 54	

Expressed in this way, the results show practically no change in the control group, but in the experimental group the mean estimate increased 0 54 half-year units, that is, a mean increase of about one-quarter of a year

However, the above expression of the effect in terms of the mean change along the content continuum, and also the other ways of expressing the marginal effects, do not indicate the internal shifts that account for the marginal changes The effects can be more completely described by a distribution of individual shifts from "before" to "after" The individual shifts in the original data presented on page 299 may be described in terms of magnitude and direction of the shifts along the content continuum Thus an individual may shift his estimate by zero, one, two, etc , steps, and the direction of his shift may be positive (larger estimates) or negative (smaller estimates) These individual shifts are shown below.

The mean shift shown below is of course the same as that obtained from the marginal distributions However, the mean and the marginal distributions indicate only the net effect of the individual shifts They do not distinguish, for example, between large changes among a smaller number of individuals and smaller changes among a larger number of individuals The distributions below, on the other hand, show magnitude and direction of individual shifts and permit making the distinction between the *number of individuals* affected, the *size* of the individual effects, and the *direction* of the individual effects. The distribution of "control" changes provides

[1] An exception to this is 7+, which for convenience includes all of the few cases in which the estimate exceeded three years These are treated as though all were from three to three-and-one-half years

DISTRIBUTION OF SIZE OF CHANGE IN ESTIMATE FROM BEFORE TO AFTER, EXPRESSED IN TERMS OF ONE-HALF YEAR INTERVALS

SIZE OF CHANGE IN HALF-YEAR INTERVALS	CONTROL N	CONTROL %	EXPERIMENTAL N	EXPERIMENTAL %
−3	2	1	2	1
−2	6	3	3	1
−1	26	15	10	5
0	114	63	94	46
1	29	16	67	33
2	4	2	24	12
3			2	1
4			3	1
Mean change	−0 04	100%	0 54	100%

a base for the changes to be expected from question unreliability and causes other than the film Significant differences between the control and experimental distributions of changes give the effects of the film on frequency, magnitude, and direction of changes

Net Proportion Who Change

The above distributions provide another way of measuring the effect, namely in terms of the net proportion who change their opinion in a given direction In the distributions just shown, some individuals are seen to have shifted to smaller estimates and some to larger estimates, while others gave the same estimates in both surveys The *net proportion who change* to longer estimates is the proportion shifting to longer estimates minus the proportion shifting to smaller estimates, without regard to size of change. Thus in the distribution of changes in the experimental group it can be seen that 67 men increased their estimate by one half a year, 24 increased theirs by a year, 2 by one-and-one-half years, and 3 by two or more years, making a total of 96 who increased their estimates by at least one half a year Thus 96 of the 205 men, or 47 per cent, increased their estimate Similarly, 15 of the 205 men, or 7 per cent, decreased their estimate by at least one half a year Thus the *net proportion who change* to longer estimates in the experimental group is 47 per cent minus 7 per cent, or 40 per cent This way of expressing the findings is summarized below

NUMBER WHO CHANGE THEIR ESTIMATE BY ONE-HALF YEAR OR MORE

Direction of change	*Control*	%	*Experimental*	%
Decrease estimate	34	19	15	7
No change in estimate	114	63	94	46
Increase estimate	33	18	96	47
Net change (increases minus decreases)		−1%		40%

It can be seen that in the experimental group the net per cent changing to longer estimates was 40 per cent, whereas in the control group during

the same time interval between before and after measurements, there was a net change of only −1%.

It should be clear that the magnitude of the net proportion who change is a function of the fineness of the intervals into which the content continuum is divided If the free-answer responses in the preceding illustration had been coded in one-year intervals rather than the one-half-year intervals used, a much smaller net change would have been obtained. An examination of the data on page 302 reveals that the net proportion increasing their estimates by at least *one year* in the experimental group is only 12 per cent as compared with the 40 per cent obtained for changes of at least one half a year Presumably a value even larger than 40 per cent could have been obtained if the intervals could have been made even smaller than half-year intervals In this particular case, however, a limit was set by the units used by the men in answering the open-ended question —the majority of the men did not answer the question in terms of months but rather in terms of year units and half-year units

An implication of the dependence of the magnitude of the net proportion changing on the magnitude of the content units is that a more sensitive measuring instrument is provided by a question that permits fine units of change With a given size sample it may be found that no statistically significant change was obtained merely because the units of measurement were so coarse that few individuals change by the minimal amount measured

It should be pointed out that the net proportion who change is to some extent independent of the mean change The mean change is a joint function of the *number changing* and the *size of the changes*, whereas the net proportion changing depends only on the number changing (for a given minimal unit of change) The mean change and net proportion changing may even give results opposite in sign if the changes in one direction are of *larger magnitude* and the changes in the other direction are of *greater frequency*

Significance Test for Net Proportion Who Change

The test for the significance of the net proportion who change involves estimating the variance of a difference between *mutually exclusive proportions within the same sample* The before-after results divide each sample into three groups, with the corresponding proportions indicated below:

p_1 = proportion changing positively
p_2 = proportion changing negatively
p_3 = proportion not changing

$p_1 + p_2 + p_3$ = Total = 1

The net proportion who change in each sample is $(p_1 - p_2)$, and the population variance of $P_1 - P_2$ for the experimental and control groups,

on the null hypothesis of no difference, may be estimated from the total sample of experimental and control groups combined, as follows:

$$\text{Est. } \sigma^2_{P_1 - P_2} = p_{1T} + p_{2T} - (p_{1T} - p_{2T})^2$$

where T indicates that the proportions in the estimate are based on the *total* sample of experimental and control[2] The estimated S.E of a difference between the net proportions changing in the experimental and control groups is then

$$\text{Est. } \sigma_{\text{diff - diff}} = \sqrt{\text{Est } \sigma^2_{P_1 - P_2} \left(\frac{1}{N_e} + \frac{1}{N_c}\right)}$$

The application to the present illustrative data is shown below.

	CONTROL DIST		EXPERIMENTAL DIST		TOTAL (POP DIST)	
	N	p_c	N	p_e	N	p_T
Neg. change	34	19	15	07	49	13
No change	114	.63	94	.46	208	.54
Pos change	33	18	96	47	129	.33
Total	181	1 00	205	1 00	386	1 00
Net proportion of change		− 01		+ 40		+.20

The estimated variance of the differences between positive changes and negative changes in the population distribution is:

$$\text{Est } \sigma^2 = .33 + 13 - (33 - 13)^2 = 42$$

The S E of the mean difference between the differences between positive and negative changes in the experimental and control samples is therefore:

$$\text{Est } \sigma_{M \text{ diff - diff}} = \sqrt{\sigma^2_{\text{diff.}} \left(\frac{1}{N_c} + \frac{1}{N_e}\right)}$$

$$= \sqrt{(42)\left(\frac{1}{181} + \frac{1}{205}\right)} = \sqrt{00437}$$

$$= .066$$

$$\text{Difference (exp minus control)} = .40 - (-01)$$

$$= 41$$

$$\text{C.R} = \frac{M_{\text{diff}}}{\sigma_{M \text{diff - diff}}} = \frac{.41}{066} = 6\ 2$$

[2] An equivalent formula for computing the sampling variance of the difference between two percentages within a sample is given by S S Wilks, "Confidence Limits and Critical Differences Between Percentages," *Public Opinion Quarterly*, 1940, *4*, 322–338

Thus the critical ratio is 6 2, leaving no doubt that the radio program had a real effect.

Change as a Function of Initial Response

One further refinement may be introduced in order to describe completely the changes produced by the experimental variable This is the additional information provided by the *initial response* from which the individual changes were made. With this additional information the net effect on the marginal distribution can be completely understood in terms of individual shifts.

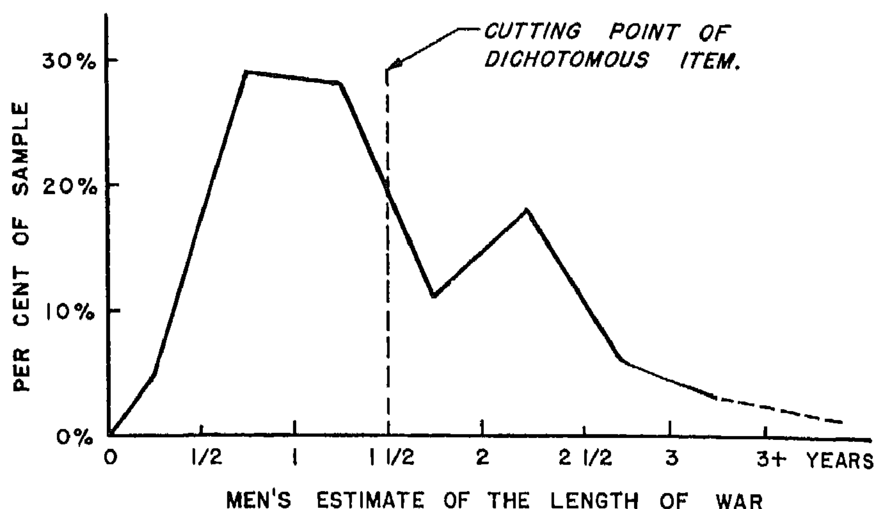
An illustration of this additional aspect of the individual changes produced by the experimental variable will not be presented here This aspect is taken up, however, in the presentation of the findings of the study in Chapter 8, where it can be seen that the initial response was an important factor in the results obtained With two different ways of presenting the material—giving the arguments for only one point of view versus mentioning the arguments on the other side as well—it was found that the results differed according to the initial stand of the individuals in the audience This difference did not show up either in the marginal distributions or in the distribution of individual changes when results were computed without taking into account the initial response.

It is partly a matter of definition whether the initial response is regarded as a base for the description of change from initial to final response or whether it is regarded as a population variable which may be one of the determiners of the effects of the experimental variable In the present research it was generally regarded as a population variable, and a general discussion of effects as a function of initial response is included in Chapter 8. The initial response is introduced as an aspect of the individual change in the present context because of its importance in the interpretation of a *marginal change* when the area represented by the item used is an area with a scaled content continuum This is discussed in the following section

The Meaning of a Marginal Change

The frequency distribution of the population on an opinion for which individuals vary primarily in degree rather than in kind may be conceived as a continuous distribution from one end of a *content continuum* to the other A dichotomous question in this area subdivides the distribution into those falling above and those falling below the "cutting-point" of the dichotomous item This is easy to visualize in the preceding example of probable length of the war. The population could be distributed along a time continuum as far as their best guess was concerned, and a question such as, "Do you think the war will last at least a year-and-a-half from now?" will merely dichotomize the population at a certain point along the

content continuum, as diagrammed below from the before distribution of the experimental sample as shown on page 299. It can also be visualized,



in terms of the results shown previously, that the marginal shift across this cutting-point represents the effects of the experimental variable in only a limited portion of the total sample even though this cutting-point (one-and-one-half years) gave the largest marginal change It can be seen from the original data that the net number who *crossed this line* on the content continuum in an upward direction was only 43, whereas the net number who *moved upward* on the continuum was 81 This is seen by an examination of the data for the marginal distribution on page 301 and for the change of response on page 302 The total above the cutting-point (codes 4 through 7) before the radio program was 77, and this number increased to 120 after the program, an increase of 43, whereas 96 men increased their estimates and 15 decreased their estimates by at least one-half year giving a net number of increases of 81

In general, the shift in marginal per cent will reflect the changes only in those members of the population who are *close to the cutting-point* This would be seen even more clearly if the question had been, "Do you believe the war will last at least two more years?" With a question that dichotomized the content continuum at two years the net number crossing this cutting-point in an upward direction would be only 12 out of the net total of 81 who revised their opinions upward.

It is clear in this example that where an area is scaled in content, the marginal per cent of shift with a dichotomous question is a function of (1) the shape of the initial distribution, (2) the location of the cutting-point on the initial distribution, and (3) the distribution of magnitude of

changes of individuals at different points along the initial distribution, that is, originating from different initial responses. In the preceding example the shift is maximized at the one-and-one-half year point because, before the program was given, a large portion of the population was concentrated just below that point, and because the great majority of the shifts that did occur were limited to a change of only one-half year In general, where the individual changes are small in magnitude the cutting-point giving the maximal marginal change will be slightly above (for positive changes) the mode of the initial distribution Where individual changes tend to be larger, the cutting-point of maximal marginal change will be moved upward (again for positive changes) since the higher the cutting-point the greater the proportion of individuals who can cross it

Use of a Scale of Items

The preceding discussion of ways of dealing with areas that scale in content has been limited to the situation in which the scale consists of the various response categories to a single question, as in the illustration of the length-of-war question However, a scale of content may also be formed by asking a series of questions, all in the same content area, and assigning a scale position to each individual according to his combination of responses to the series. A technique for this procedure that was frequently utilized in the Research Branch is described in Volume IV of the present series

In concluding this topic it should be pointed out that many of the differences in the manner of measuring effects that have been outlined are a function of whether measurements have been made both before and after the experimental variable or whether they are made after only If the study is carried out merely by measuring a film and control group after the film, the manner in which effects can be expressed is limited A discussion of the before-after and the after-only experimental designs, together with associated differences in tests of statistical significance, is taken up in Appendix C.

APPENDIX C

COMPARISON OF THE BEFORE-AFTER AND THE AFTER-ONLY DESIGN OF EXPERIMENTS

In some of the experiments reported in this volume, measurements were obtained both before and after the introduction of the experimental variable. In others measurements were obtained only after the experimental stimulus. A comparison of the uses of the before-after and the after-only design of an experiment on opinion change resolves into three major kinds of considerations: statistical and sampling factors, types of analysis that can be made with the data, and effects of the measuring process on the measurements obtained. The *statistical and sampling* considerations arise primarily from the fact that the before-after procedure permits taking correlation between before and after responses into account in the comparison of differences between control and experimental groups. Also, it permits taking initial lack of equating between control and experimental groups into account when these have not been a random selection from the same population. Considerations of *types of analyses* that can be performed arise from the fact that the before-after procedure permits analysis of individual changes and the comparison of effects among subgroups with differing initial attitudes. The remaining consideration above, the *effects of the measuring process* on the measurements obtained, is necessitated by the possibility that making before measurements in the before-after procedure will bias the results obtained in the after measurement. In designing an experiment to measure film effects, all of these considerations are relevant to the decision as to which design to use.

Effects of the Measuring Process on the Measurement Obtained

In all experimental work there is the possibility that the measuring method will interact with the experimental variable in such a way as to make the results obtained nonrepresentative of the effects of the variable outside of the experiment. This possibility should be distinguished from the possible bias in questions and from nonrepresentativeness of measurements that are present both in experimental and in nonexperimental study. The latter possibility applies equally to control and experimental groups

and is a general problem of scientific measurement rather than a specifically experimental problem. The specifically experimental problem referred to is that the measuring process may conceal or distort the effects of the experimental variable.

1. PROBLEMS COMMON TO BOTH TYPES OF DESIGN

The "guinea-pig" reaction. In the use of the after-only procedure in the studies of orientation films, the chief potential source of distortion that attempts were made to avoid was the possibility that the measuring process would reveal to the men that they were being experimented upon, with the consequence that they might start discounting the film as propaganda or would give self-conscious rather than "true" responses to the questions. To avoid this possibility, considerable effort was expended in the conduct of the studies to prevent the men from knowing that an experiment was in progress, to prevent any unusual circumstances in connection with the film showings, and to give a plausible rationale for the questionnaire which would conceal its actual purpose.

The "test" reaction. A second kind of distortion that had to be avoided was the possibility that the men would react to the questionnaire as a "test" of what they knew or what was desired in them, so that in answering opinion questions they would give the "correct" response rather than their most representative response. In fact-quiz items this consideration does not apply, but if the entire questionnaire were treated as a test the men might check opinions that agreed with the slant presented in the films although these might not be what they personally believed. To avoid this possibility considerable stress was given, in the administration of the questionnaires, to the importance of honest opinions and the anonymity of the answers. Further, the rationale of the questionnaire as explained to the men was such as to emphasize the importance of the men's expressing their own true opinion. Also the fact-quiz items were placed at the end of the questionnaires to prevent giving the men a "test" approach in their answers to the opinion questions.

Suggesting the experimental variable. Another possible source of distortion that had to be avoided in the questionnaires was the possibility that the questions would remind the men of the film or its contents, so that their answers were representative only of their responses while thinking of the film and would not be representative of their feelings the rest of the time. Thus, as indicated in the analysis of consistency of responses (pages 172–174), the response chosen on a particular occasion has a considerable degree of instability which may very well be a function of momentary considerations on the part of the respondent in making his choice. He may therefore have one answer that he would give if he happened to be thinking of the film but a different answer for the majority of the occasions when he is not thinking of the film. For this reason it was desirable to

avoid questions that specifically suggested the film regardless of whether there was any risk of the men's feeling that they were being "guinea-pigged" and giving a "test" set in answering the questions.

2. PROBLEMS SPECIFIC TO THE BEFORE-AFTER DESIGN

All of the above three possible sources of interaction between the experimental variable and the measuring process are applicable to both the before-after and the after-only designs. However, they are especially to be avoided in the *before-after* procedure, in which they not only apply but would if anything be even more likely to distort the results This is particularly true of the possibility that the men will become suspicious that an experiment is in progress The administration of two successive questionnaires on much the same content, with a relevant film shown during the interval, would be expected to arouse more suspicion than a single questionnaire that came after the film

"Sensitization" to the experimental variable. Not only would the before-after procedure be expected to increase, if anything, the difficulties of the sort just described that apply in the case of the after-only procedure, but it also brings new possible difficulties of its own One is that the "before" questionnaire will "sensitize" the men to the topics to be covered in the film so that their immediate reaction to the film is altered. Thus, if the before questionnaire arouses interest in the topics covered, the men may pay more attention to the material presented in the film A related possibility is that the combination of the before questionnaire and the film will suggest to the men that they are being "guinea-pigged" *at the time that they are seeing the film* so that it could be discounted as propaganda at that time as well as later when the after questionnaire is being answered

The "consistency" reaction Another possibility is that the before-after procedure will stimulate the men to give the same response the second time, so that all changes and effects of variables are minimized This would be expected to depend somewhat on the rationale given for the second administration and on the time intervening between the two. Rationales suggesting that the after questionnaire was just a "repeat" of the previous questionnaire and the use of a short time interval would both be expected to increase the tendency toward a "consistency reaction" The consistency could be due either to a conscious motive to be consistent or simply due to the absence of a concrete opinion prior to the before questionnaire, which, however, became "crystalized" or established as the respondent's "own opinion" by his being forced to give an answer the first time Such a tendency toward consistency would be present in both the control and the experimental groups, but its effect would be to minimize the actual degree of change that would otherwise be due to the experimental variable

A similar factor but one which would lead to diametrically opposed

effects would be a tendency to avoid repetition of answers expressed on a previous questionnaire This possibility is much less likely than attempts at consistency, although such a phenomenon has been observed by Dodd[1] who found Syrian respondents felt that it was important to make their replies "interesting" by varying them from one interview to the next.

In addition to the precautions mentioned earlier with the after-only design, a precaution used in the case of the before-after design was the provision of a convincing rationale for the second questionnaire In most cases this was handled by making the second questionnaire as different as possible and presenting it as a revised version The format and paper were different, it was marked "Revised," and additions, omissions and "revisions" were provided by camouflage questions and other questions asked only in one of the two questionnaires In the administration of the questionnaire, the class leader announced incidentally that some of the men might have taken a similar questionnaire previously but that this was a revised form with different questions This rationale was designed to cope simultaneously with tendencies to suspect a test on the film and tendencies to try to give consistent answers

3 COMPARISON OF THE EFFECTS OF MEASUREMENT IN THE TWO DESIGNS

No opportunity was afforded in the studies of orientation films to carry out methodological studies designed to determine the relative effects of the measuring process on the results obtained in the after-only and before-after design The "applied" nature of the studies forced a policy of using all feasible precautions without determining the extent of the need for the precautions Thus, the potential distortions listed are merely theoretical possibilities

A little evidence on the problem was obtained incidentally. The evidence comes from the study of "The Battle of Britain," which was carried out at one camp with the after-only design and at another camp with the before-after design The samples were comparable to the extent that the men at each camp were new inductees in the first few weeks of basic training They were not comparable in that the two studies were carried out at different times (about two months apart), the men were receiving different kinds of training (Armored Force versus Infantry), and the populations of the two camps differed somewhat in composition on various demographic factors

At the end of the "after" questionnaire the men at both camps were asked if they had recently been shown a War Department movie on the history of the war and if so to specify the subject from one of several alternative topics including "the bombing of Britain" They were then asked, "What did you think was the reason for showing this movie to you

[1] In connection with his study *A Controlled Experiment on Rural Hygiene in Syria* (Oxford Univ Press, 1934)

and the other men?" This was a write-in question for the purpose of detecting the presence of the feeling that the film was given for propaganda purposes or the suspicion that the film was shown as part of an experiment to find out its effect on the men The question was designed so as not to suggest either of these ideas to any but those men who had already thought of them. Only a tiny fraction of the men with either design said anything even suggestive of suspicion that an experiment was in progress The total number of such responses at both camps combined was only five, so comparison of the after-only and before-after is relatively meaningless, for all practical purposes the number was negligible with either procedure. As far as this response is an adequate index, over 99 per cent of the men were unaware of the experiment in either procedure. A weakness of this question for this purpose is that it was phrased in the past tense so that some of the men may have suspected an experiment during the administration of the questionnaire but answered only in terms of what they thought at the time of the film showing It seems safe to infer, however, that little suspicion of this sort was aroused with the precautions used.

Another result that bears on the relative effects of the two different measuring processes is the relative size of the effects obtained at the two different camps. The general trend was in the direction to be expected from the "consistency" hypothesis—that is, the results at the camp in which the before-after design was used tended to be less than at the camp using the after-only This is shown below for all opinion items that showed a difference of 8 per cent or more between control and film at either camp.[2]

If the samples at the two different camps could be regarded as equivalent samples from the same population, the above results would show significantly less effect of the film when the before-after procedure is used The difference in the effects obtained is in the direction expected from the hypothesis that in the before-after procedure the men are stimulated to be consistent in their answers to the questions the second time, either because the men remember their former answer and seek to be consistent or because, having once been forced to give an answer, their opinion tends to be crystalized and repeated.

However, in view of the differences in the samples that were associated with the differences in the procedure, the results must be regarded as only tentative. If the two samples compared had been equivalent, a more definitive answer could be given Another approach would be to ask, at the camp where the before-after procedure was used, equivalent questions in some cases in the before and after questionnaires and in others only in the after-questionnaire. Unfortunately for this purpose almost all of the

---

[2] The criterion of 8 per cent sets a statistical significance level of about .01 or better at either camp for most of the items Items with less difference were excluded so the results would not be diluted by comparisons of chance "effects."

Topic of Question	Size of Effect (Film minus Control) Camp 1 (After-only)	Camp 2 (Before-after)	Diff
The RAF gave the Nazis their first real defeat	23%	24%	1%
The Nazis failed to conquer England because of determined resistance of British	24	19	−5
RAF had done about best job of fighting in the war	22	11	−11
By refusing to surrender British saved U S cities from bombings	19	12	−7
America would produce more war material if U S. workers worked as hard as British	15	7	−8
Heavy bombings of England by Luftwaffe part of an invasion attempt	14	14	0
U S was country that Hitler would have attacked after conquest of England	14	1	−13
America had done little fighting compared with the British	10	4	−6
Nazis probably did not treat conquered countries as bad as radio and press said	9	2	−7
Britain deserves most credit for holding off Nazis while we prepared	8	6	−2
British doing all they can to help in war effort	8	6	−2
Average	13 8%	8 8%	−5 0%

questions that were used only in the after questionnaire at this camp were fact-quiz items. On the fact-quiz items that were asked after-only at both camps no difference was found between the two camps. the mean for significantly affected items at the camp where the design was after-only was *26 8%* and the mean at the camp using the before-after design but at which these particular questions were only in the after-questionnaire was *26 4%*. These results in conjunction with those presented above might be interpreted as indicating that the two samples were alike as far as acceptance of the factual material is concerned but that they differed in their acceptance of the interpretations of the facts This explanation receives a certain amount of support from the data, in that two opinion items which were asked only in the after questionnaire at the before-after camp conform to the result for other opinion items at that camp, that is, they showed less effect than at the camp at which the after-only design was used.

No definitive conclusion can be drawn from the evidence available at this time. The data suggest that the before-after procedure does minimize the actual effects, but alternative interpretations of the results are not ruled out.

Comparison of the Types of Analysis Possible with the Before-After and the After-Only Procedures

As stated earlier, the before-after procedure has the advantage of permitting analysis of individual changes and determining effects as a function

of subgroups of differing initial attitude. One of the major drawbacks of the after-only procedure is the limitation it sets on the detail with which opinion changes can be described As shown in the earlier discussion of measurement of effects, complete description of effects depends on measuring "internal" changes. With the after-only procedure the description is limited to marginal changes—that is, net shifts in group proportions. The recording of each individual's initial and subsequent response, provided by the before-after design, has a number of related advantages in analysis of the results

In the after-only procedure the sample may be broken down into subtypes on any variable that cannot be affected by the experimental variable and differential effects can be determined For example, it is unlikely that a film would have any effects on the years of schooling reported by the individuals, so that differential effects of the film on different educational groups can be determined by a comparison of film and control results among the different educational groups The same would be true for age, marital status, and similar background variables that would not be affected by the experimental variable unless it motivated the respondent to misrepresent the facts

However, if the "sorting" variable—that is, the variable according to which the sample is sorted into subgroups—is itself affected by the experimental variable such analyses cannot properly be performed without the before-after design

1 FILM EVALUATION AS A VARIABLE FOR ANALYSIS

One class of sorting variable is furnished by responses of the men in their direct evaluation of the film. For example, at the end of the experimental questionnaires in the orientation film studies, the men were asked how well they liked the War Department film that had been recently shown at the camp In order to know the relative effectiveness of the film in changing opinions among men who liked the film as compared with those who did not, the before-after procedure is required because the men who like the film generally have different attitudes to begin with from those who do not like it. Thus the after-only control cannot be used as the estimate of initial response for the two differing groups, and there is no way of identifying in the control group those men who *would have* disliked the film if they had seen it With the before-after procedure the initial opinions of the members of each group are known so each man serves as his own control In experience, initial responses generally differed on the attitudes related to the content of the film among men who had different evaluations of the film itself, such as whether they thought it truthful, whether they thought it was for propaganda purposes, and so forth

It should be pointed out, however, that even with the before-after design, the control is always partly incomplete for any sorting variable based

on evaluations of the film. While each man serves as his own control, there is no control on possible *differential effects due to other causes than the film* among the different evaluation subgroups If it is found, for example, that men who thought the film was propaganda were less changed from before to after by the film than those who did not, it is nevertheless possible that this difference might reflect the differential effect of some outside cause that operates selectively on these two kinds of men. Complete control on outside causes is not possible for the reason already mentioned, namely, that we cannot identify in a control group, which does not see the film, those men who would give the designated evaluations if they saw the film. (See also Chapter 4, p 96.)

2. INITIAL RESPONSE AS THE SORTING VARIABLE

Another class of sorting variables that require the before-after design is the initial opinion itself in the particular area in which the film has effects. For example, in the analysis of the effects of a film favorable to the British, the question arises as to who was more affected by the film, those already pro-British or those initially anti-British With the before-after procedure this question is readily answered by sorting the men into subgroups according to initial response and determining the proportion of change on the attitude in these subgroups among film men and among control men The difference between film and control changes in these subgroups gives the effects of the film in each subgroup. With the after-only procedure, however, there is no way of analyzing for effects as a function of initial level on the same opinion—the men answering positively after the film are a mixture of those who initially would have given the positive response and those who would have been negative but were positively affected by the film.

It might be thought that this disadvantage of the after-only procedure could be offset by sorting the men on a closely related question that was not affected by the film but that did provide a fair index of what the initial attitude had been Such a procedure, while less precise, could be used except for the fact that well-correlated sorting questions would be the most likely also to be affected by the experimental variable, in which case the subgroups of the sort in the experimental group will not be comparable with those in the control group In general, whenever the sorting variable is affected by the experimental variable no proper after-only analysis can be made of effects according to subtypes of the sorting variable This is necessarily true because men who give a particular response because they were affected by the film (or in spite of the film) constitute different groups from those who give the same response but have not been exposed to the film.

Moreover, the after-only procedure cannot properly be used as a basis for fully determining whether or not the sorting variable has been affected

by the film Since it reveals only those effects which produce changes in the marginal distribution of responses, it cannot detect situations in which a film might have opposite effects on different individuals, which fail to show up in the marginal distribution

3 ANALYSIS TO FIND OUT "WHO CHANGES"

Another advantage provided by being able to identify each individual's change of response lies in the fact that it permits making the analysis of differential effects "in reverse" That is, one can sort into the subgroups according to *change of response* and then examine these subgroups for any related variables that differentiate those affected in one way from those affected in another way or those affected not at all With data in machine-records form this is often a more efficient method of studying the relation of film effects to population variables.

4. CORRELATION BETWEEN CHANGES

Another type of analysis sometimes desired which cannot be performed with the after-only procedure is the analysis of changes on two different variables as a basis for correlating the changes For example, a film may have a completely unexpected effect with no obvious relation to the material covered in the film The presumption is that some interpretation presented or some indirect effect of the material covered accounts for the unexpected result A source of "leads" to the reason for the unexpected effect is to find out what other changes of response are associated with the unexpected changes. Such correlations may provide important hypotheses concerning the particular part of the film's content which was important or what psychological mechanism was responsible for the unexpected result.

The use of this type of analysis raises the problem of correlation versus causation The actual concern in most analyses of correlated changes is the discovery of possible *causal* relations, but the analysis is limited to the discovery of correlated changes, and causation cannot actually be identified However, correlations of changes can be a valuable source of hypotheses and may sometimes serve to narrow the range of possible causal factors. The present concern is that such analyses can be performed with the before-after procedure but cannot be performed with the after-only procedure.

For example, in the after-only film study of the "Battle of Britain," a "boomerang" on men's belief in Russian integrity was found as one of the effects of the film, which did not mention Russia directly or by implication. The hypothesis was formulated that this was due to the release of suspicion of Russia that had been inhibited prior to the film because of a sense of obligation to the Russians for doing all the fighting while America was getting prepared Thus it was postulated that the main source of the

changes in opinions about Russian integrity item would be among men who learned that the British had done a real job of holding off the Axis while we were getting better prepared It might be expected that an after-only analysis could be made in which the men are sorted according to whether or not they said Britain deserves the most credit for holding off the Axis while we were getting prepared, and the effects on the Russian integrity item then determined separately for the two subgroups, with the expectation that the "boomerang" against Russia would disappear among the "men who did not learn" that Britain deserves the most credit—that is, the men who still named a country other than Britain even after seeing the film

Such an analysis would be invalid, however It must be kept in mind that men can have a lessened sense of obligation to Russia as a result of the film *without shifting sufficiently to change their response* from giving the most credit to Russia to giving the most credit to Britain The very men with the initially *strongest* sense of obligation to Russia are the least likely to change from Russia to Britain, yet they are the most susceptible to the "boomerang" in terms of the hypothesis. Thus the after-only analysis may give just the opposite of the correct result, that is, it may indicate that the "men who did not learn" that Britain had helped hold off the Axis showed the greater "boomerang" against Russia

With the before-after procedure, however, the hypothesis demands that if the men are sorted according to *initial* obligation to Russia the "boomerang" will be greater among those showing initial obligation, since according to the hypothesis these are the only men who can change as a result of seeing the film This subgroup cannot be designated in the after-only procedure Furthermore, the hypothesis demands that men who shift on the obligation item from Russia to Britain will show the "boomerang" whereas men who shift from Britain to Russia or choose Britain on both occasions will show less of this effect The prediction for the group that chooses Russia both times is ambiguous because it is a mixture of men who did not learn that Britain did its part and men who had an initially very strong sense of obligation to Russia As it actually turned out, an after-only analysis did give the misleading picture characterized just above, the opposite of that obtained by the before-after finding

Statistical and Sampling Considerations

As stated earlier, the before-after procedure permits the use of correlation of before and after responses in determining the statistical significance of effects of the experimental variable, as well as the determination of any initial lack of equating between control and experimental samples when these have not been drawn at random from the population The various statistical and sampling considerations are taken up one by one in the following portion of this section

1 ADVANTAGE OF CORRELATION BETWEEN BEFORE AND AFTER RESPONSES

When a trend study is being made, the change in response during the time interval can be studied either by use of a "repeat" survey on the same individual or by using two equivalent samples, one for the first and another for the second survey. For a given size of sample, changes in response are generally more reliable with the repeat survey on the same sample because of the correlation of individual responses before and after the time interval. For a given level of statistical significance, smaller changes are significant because of this correlation

In experimental studies, however, a repeat on a single sample is not sufficient. It is necessary to have a control group as well as the experimental group and the use of changes from before to after in the test of statistical significance resolves into a comparison of the *difference between the before-to-after differences* in the two groups Since the S E of the difference between differences is always larger than the S E of the first-order differences, the correlation between before and after responses *may or may not* lead to a statistical advantage for the before-after design, depending on the degree of correlation between before and after responses This will be made clear in the material that follows.

A convenient procedure for computing the S.E of the difference between the correlated before and after proportion choosing a particular response in the before-after procedure is to cross-tabulate the before and after responses into a fourfold table as shown below In the fourfold table below, "positive" is used to signify the particular response category the variance of whose marginal frequency before and after is being determined, and "negative" is used to designate all other responses given to the question

		First Survey		
		Negative	Positive	
Second Survey	Positive	A	B	
	Negative	C	D	
				$N = A + B + C + D$

In the fourfold table the letters A, B, C, and D represent the *numbers* in each of the four subtypes of combination of responses before and after The proportion positive in the "before" survey is $\frac{B + D}{N}$ and the propor-

tion positive in the "after" survey is $\frac{A+B}{N}$. It is obvious, therefore, that the difference between the proportion before and the proportion after is $\frac{A-D}{N}$ The S E of this correlated mean difference estimated from the sample is equal to [3]

$$\text{Est } \sigma_{p_1-p_2} = \frac{1}{\sqrt{N}}\sqrt{\frac{A+D}{N} - \left(\frac{A-D}{N}\right)^2}$$

If one is merely studying trends, the null hypothesis for the significance of a change from before to after in the sample is that in the population $A = D$ so that $A - D = O$ and the best estimate of $\sigma_{p_1-p_2}$ from the sample is that

$$\text{Est } \sigma_{p_1-p_2} = \frac{1}{\sqrt{N}}\sqrt{\frac{A+D}{N}}$$

$$= \frac{\sqrt{A+D}}{N}$$

And since the obtained difference is $\frac{A-D}{N}$, the critical ratio simplifies to:

$$\text{C.R} = \frac{A-D}{\sqrt{A+D}}$$

When the correlation between before and after responses is zero, the population values of A and D from the null hypothesis are both equal to NPQ (where P and Q are the population marginal proportions) [4] There-

[3] This formula may be derived simply by the use of the scores 0 and 1, for negative and positive respectively, and applying the ordinary S E formula for the distribution of differences between correlated measures, that is·

$$\text{S E of meas diff} = \frac{1}{\sqrt{N}}\sqrt{\frac{\Sigma \text{ diff}^2}{N} - M^2_{diff}}$$

It may also be regarded as an application of the Wilks' formula for the difference between mutually exclusive proportions in the same sample (see footnote, page 304) In the present case $\frac{A}{N}$ and $\frac{D}{N}$ are the mutually exclusive proportions whose difference, which is equal to $P_{after} - P_{before}$, is being evaluated Applying Wilks' formula the S E of this difference is

$$\text{S E.}_{\frac{A}{N}-\frac{D}{N}} = \frac{1}{\sqrt{N}}\sqrt{\frac{A}{N} + \frac{D}{N} - \left(\frac{A}{N} - \frac{D}{N}\right)^2}$$

[4] If there is no correlation between responses before and after, the expected value for A/N is (P after) (Q before) and the expected value for D/N is (P before) (Q after) On the null hypothesis, that P after = P before = P, it is obvious that the expected value for either A or D is NPQ

fore, the S E. of the difference is equal to $\frac{\sqrt{NPQ + NPQ}}{N}$, which reduces to $\sqrt{\frac{PQ}{N} + \frac{PQ}{N}}$, the standard form for the S E of a difference between independent samples But to the extent that before and after responses are correlated, $A + D$ will be less than $2NPQ$ and the S E of the difference will be correspondingly smaller. In the limiting case of perfect correlation both A and D will be zero and the S.E. of the difference will be zero Since there is nearly always some positive correlation between before and after responses, and in very reliable questions a fairly high correlation, the before-after procedure on the same sample in trend studies is more efficient in that smaller differences are reliable than in the case of two different samples

However, in an experiment the significance of a before-after change in the experimental group is usually not the important consideration Rather, the important consideration is the *comparison of the changes* in the experimental group and the control group. In a before-after study, events other than the experimental variable which intervene between the first and second measurement can produce changes, so that a change in the experimental group may be accompanied by a corresponding change in the control group, indicating that the change in the experimental group was due to factors other than the experimental variable. Thus the test of significance must demonstrate a reliable difference *between the changes* in the experimental group and in the control group.

It should be pointed out that it is not sufficient merely to show that a reliable change occurred in the experimental group but that a reliable change did not occur in the control group. The invalidity of such a procedure is illustrated by the absurd case in which a change of 10 per cent in the experimental group is found to be significant but a corresponding change of 9 per cent in the control group did not quite meet the criterion of significance. In such a case it would be absurd to conclude that the 10 per cent change in the experimental group was due to the experimental variable rather than a trend caused by other variables Even when a zero change or a difference in the opposite direction is found in the control group, it is not sufficient to demonstrate, by the preceding statistical test, that the change in the experimental group was reliable The reason for this is that a zero difference or a small but unreliable difference in the opposite direction in the control group, while it fails to prove that a change took place in the control, does not prove that no change took place in the control The only way to prove an effect of the experimental variable is to prove either (1) that the experimental and control groups (drawn from the same population prior to the experiment) differed reliably *after* the application of the experimental variable, or (2) that the before-after *changes* differed reliably

In the first form of proof, used in the after-only design or obtained by using only the after measurements in the before-after design, the estimated S.E of the difference between independent samples is used, namely,

$$\sqrt{P_aQ_a\left(\frac{1}{N_c}+\frac{1}{N_e}\right)}$$

where P_a and Q_a are the marginal proportions in the *combined* "after" samples of control and experimental and where N_c and N_e are the numbers of cases in the control and experimental groups respectively.[5] This test of significance determines whether the two groups, *after the application of the experimental variable*, differ reliably in their responses.

The second form of proof—determining the significance of the difference between the experimental and the control *changes* from before to after—is somewhat more complicated. Since with random sampling the two samples, film and control, are uncorrelated, the correct formula for the S E. of the difference between the two before-after differences is

$$\sigma_{\text{diff}\,-\,\text{diff}} = \sqrt{\sigma^2_{M\,\text{diff}\,e} + \sigma^2_{M\,\text{diff}\,c}}$$

On the null hypothesis, the before-after response distributions in the control and experimental groups are samples from the same population, and the best estimate of the S E. of the difference between differences should use the same S.E of a difference for control as for experimental. The estimate is based in each case on the variance of the before-after difference in the four-fold table of *combined* control and experimental response combinations before and after However, in the present case the null hypothesis is not that no change took place, but that whatever change took place was not different for control and experimental; that is, in the present case the null hypothesis is that $(A_e - D_e) = (A_c - D_c) = (A_t - D_t)$. Thus the estimate of the S.E of a difference is

$$\sigma_{p_1-p_2} = \sqrt{\frac{A_t + D_t}{N_t} - \left(\frac{A_t - D_t}{N_t}\right)^2}$$

Thus the S E of the mean difference between the before-after changes in the control and experimental groups is

$$\text{Est } \sigma_{M\,\text{diff}\,-\,\text{diff}} = \sqrt{\left[\frac{A_t + D_t}{N_t} - \left(\frac{A_t - D_t}{N_t}\right)^2\right]\left(\frac{1}{N_c}+\frac{1}{N_e}\right)}$$

---

[5] This formula differs from the more conventional formula, $\sqrt{\frac{p_1q_1}{N_1}+\frac{p_2q_2}{N_2}}$, in which p_1 and q_1 are the marginal proportions in the one sample and p_2 and q_2 are the proportions in the other sample The conventional formula systematically underestimates S E when N's are small, the formula in the text above gives a test exactly equivalent to Chi-square.

While this formula appears complicated, the computation is very simple and in many cases the term $\left(\frac{A_t - D_t}{N_t}\right)^2$ is so small that it can be ignored for all practical purposes. The computation is especially simplified if the N is the same for both control and experimental groups

A consideration of this S.E of the difference between before-after changes as contrasted with that of the difference between the after-responses, shown on page 321, reveals that the question of which of the two is the more sensitive is a function of the amount of correlation between before and after responses. If the correlation is zero, the expected values for $(A_t + D_t)$ and $(A_t - D_t)$ can be expressed in terms of N_t and the marginal proportions, P_a and P_b, where subscripts a and b indicate "after" and "before," respectively Thus

$$\text{Expected } A_t + D_t = N_t(P_a - P_aP_b) + N_t(P_b - P_aP_b) = N_t(P_a + P_b - 2P_aP_b)$$

$$\text{Expected } A_t - D_t = N_t(P_a - P_b)$$

Substituting,

$$\frac{A_t + D_t}{N_t} - \left(\frac{A_t - D_t}{N_t}\right)^2 = P_a + P_b - 2P_aP_b - (P_a - P_b)^2$$

$$= P_a(1 - P_a) + P_b(1 - P_b)$$

$$= P_aQ_a + P_bQ_b$$

Thus the variance of the difference when r is zero is larger by the factor P_bQ_b In the usual case in which the combined before and after marginals do not differ greatly, the variance of before-after changes will be approximately twice as large as the after-only variance, and the S E of the mean difference is approximately $\sqrt{2}$ times as large This would make the significance of the difference between the before-after changes a less sensitive statistical test than a straight test of the after-only difference—the *mean difference* would average the same over a large number of samples, but the *variability would be greater*, so that a larger difference would be required for a given confidence level.

On the other hand, it can be seen that this disadvantage of the test of differences between before-after changes when the correlation is low can be more than offset by higher correlations between before and after responses This can be done by applying the formula,

$$\sigma_{\text{diff}} = \sqrt{\sigma_1^2 + \sigma_2^2 - 2r_{12}\sigma_1\sigma_2}$$

to the combined experimental and control group data, the null hypothesis being that the before-after changes in the two groups are samples from the same population of changes. In this case the estimated variance of the *difference* between experimental and control before-after changes is:

$$\sigma^2_{\text{diff in } a-b} = \left(P_aQ_a + P_bQ_b - 2r_{ab}\sqrt{P_aQ_aP_bQ_b}\right)\left(\frac{1}{N_e} + \frac{1}{N_c}\right)$$

where subscripts a and b refer to "after" and "before," respectively, and c and e refer to "control" and "experimental," respectively This may be expressed as·

$$\sigma^2_{\text{diff in } a-b} = P_aQ_a\left(\frac{1}{N_c} + \frac{1}{N_e}\right) + \left(P_bQ_b - 2r_{ab}\sqrt{P_aQ_aP_bQ_b}\right)\left(\frac{1}{N_c} + \frac{1}{N_e}\right)$$

Since the first term on the right-hand side is the variance of the after-only difference, we may solve for the value of r at which the after-only and before-after procedures are equally sensitive by setting the second term equal to zero, thus·

If
$$\left(P_bQ_b - 2r_{ab}\sqrt{P_aQ_aP_bQ_b}\right)\left(\frac{1}{N_e} + \frac{1}{N_c}\right) = 0,$$

$$P_bQ_b = 2r_{ab}\sqrt{P_aQ_aP_bQ_b},$$

and
$$r_{ab} = \frac{1}{2}\sqrt{\frac{P_bQ_b}{P_aQ_a}}$$

It can be seen, therefore, that for values of r_{ab} greater than $\frac{1}{2}\sqrt{\frac{P_bQ_b}{P_aQ_a}}$, the before-after procedure is more sensitive than the after-only, because the covariance between before and after scores subtracted is greater than the variance added in by using a distribution of differences rather than single scores In a typical case in which the combined experimental and control proportions do not differ too greatly before and after, r would have to be over approximately 50 before there would be increased sensitivity by using the before-after procedure For highly reliable questions, the sensitivity is greatly increased, but such high reliability is likely to be rare for questions on topics subject to experimental change In the present studies the straight after-only difference was sometimes more sensitive and the advantage of the before-after differences between the changes was generally very slight despite the fact that a sizable gain would have been present if only trend studies were being made

2 INSURING THE EQUIVALENCE OF NONRANDOM SAMPLES

All of the discussion of statistical considerations in the before-after as compared with the after-only procedure has so far made the assumption that the control and experimental groups have been drawn as random samples from the total population being used in the experiment. If random sampling or its equivalent is not possible, other considerations may be of importance in the statistical problem of determining what size dif-

ferences between film and control are to be considered outside the possibility of sampling differences

If some selection variable distinguishes the experimental and control groups such that they represent different populations in terms of some property, two results are possible·

(1) they may show initial differences in responses

(2) they may react differently to experimental and other causal variables—that is, they may *change* differently when exposed to the same causal factor.

The first possibility is important mainly for the after-only procedure, in which the effect of the experimental variable is gauged from a comparison of the two samples after one sample has been exposed to the experimental variable. In this case obtained differences may be due to the initial population differences rather than to the effects of the experimental variable. This possibility is not important with the before-after procedure because the *before measurement* determines any initial population differences, which differences are subtracted out when the effects of the experimental variable are gauged from the differences between the before-to-after changes in the two samples.

The second possibility noted above—selective change in two populations exposed to the same causal factors—is relevant to the before-after design. It is of little importance if no important causal factors other than the experimental variable operate during the interim between the before and after measurements, but since this cannot be entirely ruled out there is the possibility that a *differential change due to outside causes* will be falsely judged an effect of the experimental variable This possibility is not relevant to the after-only design because changes are not measured—with the after-only design such differences come under the heading of population differences in response at the time of measurement, the first possibility above.

The possibility of selective change is of more importance in a before-after experiment comparing two or more experimental variables with a different sample for each variable Here different causal factors are applied to different samples, and obtained differences in effect may be selective changes due to population differences if the samples differ in some population property When the comparison is only between experimental and control samples, selective changes are important only because of causal factors other than the experimental variable. In attitude experiments, however, these are a real possibility.

Relevant and irrelevant selection properties. If the experimental and control groups are not strictly comparable because of some difference in the properties of the populations from which they are drawn, it becomes important to distinguish between properties which are relevant and those

which are irrelevant to the experiment As an extreme example in Army experiments, the control may be selected from the population of men with even-numbered and the experimental group from the population of men with odd-numbered digits in the last position of their serial number This is a population property that is completely irrelevant to the experiment because it is uncorrelated both with initial response and susceptibility to changes in response when exposed to causal factors If, however, the control group consists of Air Force personnel and the experimental group is from the Infantry, the population difference may be relevant—that is, it may be accompanied by correlated differences in either initial response or changes in response This is always a question that cannot be settled on a priori grounds but rather must be settled empirically In many experiments what are conceded *generally* to be important population variables are nevertheless irrelevant for the experiment—the control and film might differ completely with respect to sex, or age, or religion, etc , with no accompanying effect on the results obtained

In Chapter 6 some experience is cited concerning the relevance of a number of population variables in the present film studies done in the Army. Except for the variables of education and intellectual ability, few sizable correlations of initial response and population variables were obtained, and again except for these variables, almost no reliable differential changes were obtained for the attitudes and films studied

Relevance of a selection property is not an absolute matter but is a matter of degree The extent to which it is important in an experiment is a function of:

1. the extent to which the initial response or the change in response depends on the selection property,
2. the extent to which the two samples differ with respect to the selection property

By way of illustration, suppose that a particular response is given by 33 per cent of the men with I Q.'s below 100 but by 66 per cent of those with I Q 's above 100. Under these conditions the largest degree of initial inequality in response would occur if one sample contained only high I Q. men and the other only those with low I Q Then there would be a difference of 33 per cent If, however, in one sample there were 50 per cent high I Q men and in another 60 per cent the difference in percentage giving the response should amount to only 3 3 per cent (10 per cent of the initial thirty-three per cent difference) Similarly, if one sample has 40 per cent and the other 60 per cent high I Q men, the difference in per cent giving the response would be expected to be 6 6 per cent, and so forth

In general, it can be seen that under the condition of a dichotomous selection property (e g , "high I Q men" versus "low I Q. men"), the ex-

pected difference between the proportion giving the response in the two samples is the *product* of the difference in proportion on the selection property and the difference in proportion on the response for the two selection properties It will also be observed that the product of these two fractions is quite small except for very large values for the two fractions When the correlation between the initial response and the selection property is relatively small and the inequality of the selection property in the populations from which the samples are drawn is small, only a tiny difference between the sample means is expected. The same analysis also applies in the case of selective *changes* as contrasted with the above case of selective initial differences But in the case of selective changes even less correlation between change in response and population properties was found (see Chapter 6)

Use of equating when selection is not random. For some kinds of selection properties, the inability to use a random procedure in selecting samples can be compensated by selecting *equated* samples In the field of public opinion *surveys* representative samples are generally achieved by *stratifying* the sample to predetermined population composition constants In experimental studies the experimental and control groups can be *equated* —that is, stratified to the same population-composition values, as a means of achieving equality of the samples on population properties

The situation in which this equating procedure is most appropriate is when the control and experimental groups necessarily differ in some *irrelevant* population property which is nevertheless correlated with relevant properties In the film research studies carried out in the Army this situation often appeared to be the case. Since training is carried out *by units* in the Army (e g., company units or platoon units) the test of a film—to achieve proper realism—was necessarily by units. But if an experiment is limited to a sample, say, of 200 film and 200 control and has to be carried out at the company level, one company would have to serve as control sample and the other as film sample Further, if the subjects are new recruits, membership in a particular company will have had little time to operate as a causal factor, but local assignment practices may be such that there is a nonrandom difference in, say, the educational background of the two companies. Thus the irrelevant variable of company membership is nevertheless correlated with education—one company having been given a greater share of the better educated. In this case we can administer the experiment to the entire group and afterward select two equated samples for analysis—one from each company—and overcome the difference in composition on the important population property of education.

This procedure was generally followed in the Army film studies reported in the present volume, partly because it was felt that for new recruits company membership was for the most part an unimportant population prop-

erty, relevant only because of correlated differences on relevant properties. However, it was never established that company membership was not an important variable in its own right, even for men with only two or three weeks' membership

Use of Unit Variance with Random Units Rather than Random Individuals

As indicated earlier, a frequent reason for nonrandom sampling is that the experiment must be administered to units rather than individuals. This may be required for purposes of realism—where the variable is used outside of the experiment with units rather than individuals Or, it may be required for practical reasons, as when a limited number of camps or cities can be visited—a random sample of 100 members of the U S population would require traveling to just about 100 different locations In such a case the population units may often be randomized and the statistical tests made in terms of the obtained variance among means of units rather than responses of individuals This is a very efficient procedure if a sizable number of units is possible If unit differences are really irrelevant selection properties, this fact will show up in the smallness of the variance of their means If selection properties are relevant and units in the control sample can be paired with similar units in the experimental sample on the basis of important population properties, the distribution of pairs of mean differences will accordingly provide an even more sensitive significance test.

It should once more be pointed out that equating of samples is more likely to be of value—even if its exact value cannot be determined—when the experimental design is after-only Correlations of population variables with initial responses may be found fairly often, but correlations with changes would be expected to be less frequent More often the correlation with initial response would be expected to remain much the same in the final response—but with a shift in the overall level But in either case the population differences must be large and the correlations large before much advantage from equating is expected

Summary of Comparison of Two Procedures

A general conclusion from the various considerations discussed is that neither the before-after nor the after-only procedure has all the advantages or disadvantages, and the one that is most useful for a given study depends on the purpose and the methodology that can be worked out The most important advantage of the before-after procedure is the more complex analyses and more complete description of effects that it provides Probably its main disadvantage is the greater opportunity for the measuring process to bias the results obtained, but this may well be completely avoidable with the proper methodology While the before-after procedure is

generally more sensitive in measuring trends or changes occurring during a time interval, greater sensitivity is not guaranteed in a controlled experiment, in which the outcome depends on a comparison of second-order differences between control and experimental groups In the latter case the relative sensitivity depends on the reliability of the questions—with low reliability the after-only procedure is the more sensitive. The before-after procedure, however, has a definite advantage when the control and experimental samples cannot be drawn at random from the same population and therefore differ on some population variable that may be correlated with the measurements. In such a case spurious "effects" may be obtained with the after-only procedure which may merely reflect population differences, whereas the before-after procedure takes initial differences into account.

APPENDIX D

"REGRESSION" IN THE ANALYSIS OF EFFECTS OF FILMS

In several places in the present volume reference has been made to the phenomenon of "regression" Allowance for this phenomenon was of particular relevance in the analyses reported in Chapter 8, where opinion changes were examined in relation to men's initial opinion The purpose of the present appendix is to give a somewhat fuller treatment of various aspects of regression, particularly as they apply in experimental studies of changes in qualitative variables

The general concept of regression has been more or less familiar since Galton's application of the term to the tendency for the children of very tall or very short persons to *regress* toward "mediocrity"—that is, to be closer to average height than were their parents A similar phenomenon is found in the case of the extreme values encountered when one is dealing with test scores or scales of opinion, that is, individuals who obtain the extreme scores—either the very high or the very low—will, when retested, always tend to regress to less extreme positions The reason for this lies in the fact that all tests, attitude or opinion scales, etc , are subject to a certain amount of unreliability With any imperfectly reliable measure, the group getting the highest scores contains not only those who really belong in the highest category, but also some who were erroneously classified as belonging in this category because of chance errors of measurement. Since the chance errors will not necessarily occur in the same direction in a retest, the scores of this high group will tend to average lower in the retest This does not imply a "law of averages" that invariably follows good luck with bad—it is merely an implication of the fact that the individual's average performance is always the most likely result

The tendency of extreme scores to regress toward the average is of great importance when one is analyzing the effects of an experimental variable on those with varying initial positions, because of the artifact that is introduced if the phenomenon is not controlled.[1] A good example of this artifact has been pointed out by McNemar in his criticism of studies of the effect of environment on IQ.[2] In these studies children with low initial

[1] Thorndike, R L "Regression Fallacies in the Matched Groups Experiment," *Psychometrika*, 1942, 7, 85-102

[2] McNemar, Q. "A Critical Examination of the University of Iowa Studies of Environmental Influences upon the IQ" *Psychol. Bull*, 1940, 2, 63-92.

IQ scores were given special training and then retested. An average improvement in retest score was found, but it was subsequently pointed out by McNemar that improvement would be expected in this initially low-scoring group simply because of regression due to the presence of a certain amount of unreliability in IQ measurement.

As with test scores, it is the element of chance in opinion measurement that accounts for the regression of opinions toward the "average" opinion in a retest. Opinion questions are never completely reliable—chance factors of the moment account for errors of measurement when a question is asked the first time, and similar chance factors account for shifts of response when the same question (or a related question) is asked at a later time. If one focuses attention on the group which gave the most extreme answer in the first questioning, one can expect that a certain proportion will "regress," in a second questioning, to a response that is less extreme in the population as a whole. This phenomenon of regression toward the mean in comparing "test" and "retest" results for opinion is well illustrated in the cross-tabulation of estimates of length of the war, used as an illustration for other purposes in Appendix B The results for the control group, which was subjected to no experimental variable during the interim between the first measurement and the retest, are reproduced below. As in the previous illustration, the numerical code stands for the estimated length of war in half-year units For convenience of presentation, all estimates of over three and one-half years have been combined into one class interval which is coded below as "7+."

Despite the fact the N's involved are very small, an almost perfectly consistent progression of regression is found from the lowest initial score to the highest initial score At the extremes, men with the lowest initial score (1.0) regressed to 1 5 in the retest, and men with the highest initial scores (7+) regressed to 5 5 in the retest But, furthermore, without exception all groups regressed in the retest to a value closer to the mean of 3 2; and in general the relative amount of regression is proportional to the degree of initial deviation from the mean of the group

This result—that those with moderately high and moderately low scores regressed as well as those with extreme scores—illustrates the fact that although regression is most conspicuous at the extremes it is also present in some degree for all scores that deviate initially from the mean. Except for the extent to which test and retest measures correlate, the most probable value in the retest for any individual is the mean value of the group as a whole. Since the correlation is not perfect, all individuals initially deviating from average tend, as a group, to come a little closer to average in the retest.

It is obvious that an artifact would be involved if we concluded from the results presented that those initially low in their estimate of the length of war increased their true estimate and those initially high decreased their

true estimate Rather, the results are interpretable in terms of the unreliability of anyone's estimate at a given point in time. Without any real change of opinion a person makes a different guess depending on chance factors of the moment, and the greater the degree of chance involved, the greater the regression

Estimated Length of the Remaining War with Japan in Half-Year Intervals

		Initial Estimate (before)							
		1	2	3	4	5	6	7+	
	1	6	5						
	2	4	37	5	1	2			
Retest (after)	3	1	12	37	7	2			
	4		1	7	11	3			
	5			1	4	17	6	3	
	6				1		5		
	7+						2	1	
Mean est		1 5	2 2	3 1	3 9	4 5	5 7	5 5	*N = 181*
Regression		+0 5	+0 2	+0 1	−0 1	−0 5	−0 3	−1 5	

In the illustration that has been given, the responses are scaled with numerical scores and the usual conception of regression toward the *mean* of the scores applies directly. That is, the responses have an average in the usual sense, and averages on the retest can be computed for each of the subgroups of original response This conception is not quite as apparent when responses are completely qualitative rather than being measured in

scalar units. But even in the case of qualitative designations the same expectation of regression is equally applicable Suppose, for example, that the above results are dichotomized, using as "cutting-point" the smallest estimate recorded, namely, less than one-half year, which was scored as "1" in the preceding breakdown. The cross-sort of responses then becomes:

		Initial Estimate (before)		
		Less than one-half year	One-half year or more	
Retest (after)	One-half year or more	5	165	
	Less than one-half year	6	5	
	Total	11	170	181
	% Regression	45%	−3%	

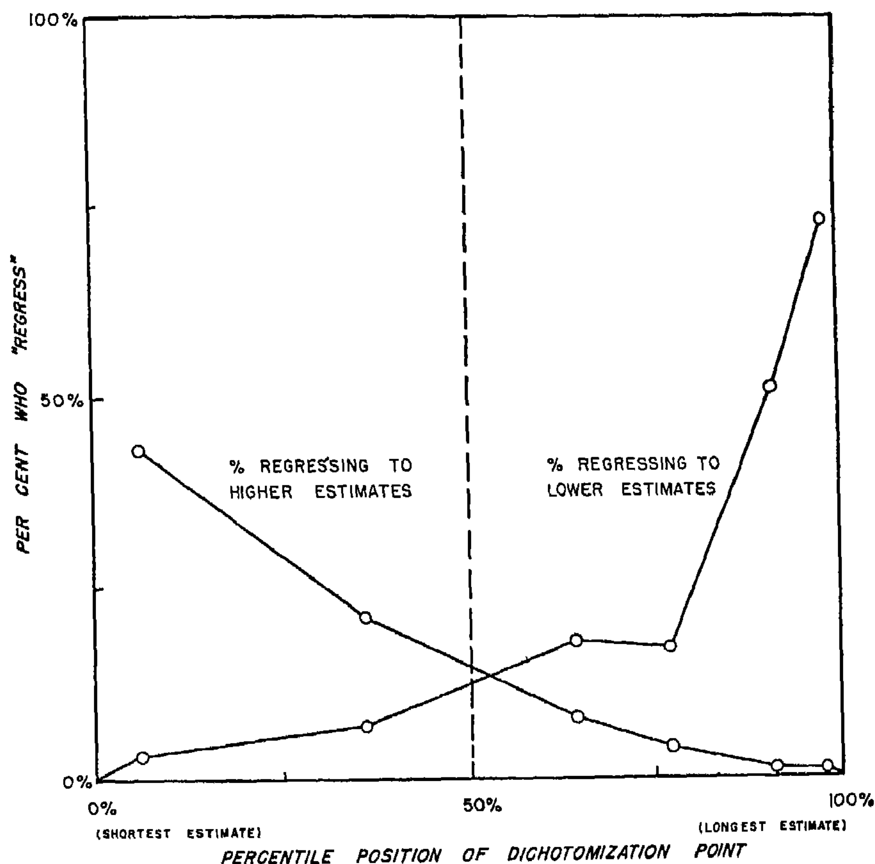
With this breakdown the regression may be measured as *per cent who regress*, and it can be seen that of the 11 men with estimates of less than one-half year, five, or 45 per cent, regressed to larger estimates in the retest, whereas only 3 per cent of the 170 with initially longer estimates shifted to less than one-half year

If "cutting-points" for dichotomization are made successively at higher estimates along the length-of-war continuum, it would be expected that successively fewer of the men with smaller estimates would regress to higher estimates and successively more of the men with higher estimates would regress to smaller estimates This merely describes, in terms of percentages above or below a certain value along the continuum, the same relation previously shown for mean values of the different subgroups of initial response. The percentages actually obtained at the different "cutting-points" are shown below.

PER CENT WHO REGRESS

"Cutting-point" between	*To higher estimates*	*To lower estimates*
1 and 2	45%	3%
2 " 3	21	7
3 " 4	8	18
4 " 5	4	17
5 " 6	1	53
6 " 7+	1	75

It can be seen that the proportion who switch to the category of longer estimates progressively decreases as the dichotomy is made at longer and longer estimates, whereas the proportion who switch to the category of smaller estimates increases In general, the proportions switching to the opposite category would tend to be equal at the "cutting-point" which dichotomizes the total sample into two equal-sized groups, i e., with a 50-50 split Such a dichotomy is not actually possible with the categories used in the above illustration, but the theoretical point can be obtained by plotting the above percentages who regressed as a function of the proportion of the total group included on a given side of the cut-point, i.e , as a function of the percentile point corresponding to each of the different answers The first category above—less than one-half year—includes 11/181 of the sample, or 6 per cent, the second category includes 66/181, or 36 per cent, and so forth The results plotted in this way are shown in the figure below It will be noted that the two curves cross the 50-percentile line at about the same level, indicating that with a 50-50 split the propor-



tions regressing in the negative and positive direction are approximately equal.

The figure shows the per cent who regress to the opposite response of a dichotomy, as a function of the "cutting-point" chosen for the dichotomy. The responses shown in the figure were initially obtained in scale units of length of time and for purposes of illustration have been dichotomized at the various possible "cutting-points." But the same sort of relation between per cent regressing and the "cutting-point" of the dichotomy is expected in the more usual case with qualitative responses, in which the "cutting-point" is determined by the wording of the question.

Suppose, for example, the question had been, "Do you think the war will be over in less than one-half year?" One would then expect a fairly high proportion of those saying "yes" to this question to regress to "no" in a repeat survey, but very few of the "no" responses to regress to "yes" because most of the initial estimates fell above this point. But if the question had been, "Do you expect the war will be over in less than two years?" one would expect a smaller proportion to regress from "yes" to "no" then regressed from "no" to "yes."

The situation for qualitative responses can perhaps be clarified by a closer analysis of the factors of which regression is expected to be a function. Below is a schematic representation of the correlation between test and retest with a dichotomous qualitative question.

First Survey

		Negative Response	Positive Response	
Repeat Survey	Positive Response	A	B	$p_2 = \frac{A + B}{N}$
	Negative Response	C	D	
			$p_1 = \frac{B + D}{N}$	$N = A + B + C + D$

In the diagram, the letters A, B, C, and D indicate the number of cases in each indicated combination of responses to the question in the two surveys, A being the number who change their response from negative to positive, D being the number who change from positive to negative. If we are considering only the error of measurement in the question and assume that true responses remain unchanged, it is obvious that the expected values for p_1 and p_2, the proportions giving the positive response in the first and second surveys, respectively, will be the same, i.e.,

$$p_1 = p_2 = \frac{B + D}{N} = \frac{A + B}{N}, \text{ and therefore } A = D$$

Therefore, it can be seen that if only errors of measurement are being considered the number who regress to each of the two opposite responses in a retest will be the same (i e , A will equal D), and therefore the *proportion* of those giving a particular initial response who shift to the opposite response is a function of the initial division of opinion and the relative size of A or D. The proportion of those initially negative who shift to positive is

$$\frac{A}{A + C}$$

and the proportion of those initially positive who shift to negative is

$$\frac{D}{D + B}$$

Since $A = D$, the relative size of the *proportions* "regressing" for each initial category depends on the relative sizes of $(A + C)$ and $(D + B)$ Now if the coefficient of reliability, r, is measured in terms of point-correlation,[3] then:

$$\frac{A}{A + C} = p\,(1 - r)$$

and

$$\frac{B}{B + D} = q\,(1 - r)$$

Thus it can be seen that the per cent regressing from negative to positive or from positive to negative can be expressed as a function of p, the proportion choosing the positive response, and r, the reliability of the question as expressed in terms of point correlation

The regression of qualitative responses to the other response in the dichotomy is completely analogous to the regression of quantitative scores toward the mean. By using 0 and 1 scores for absence and presence, re-

---

[3] Point correlation is often called the "phi-coefficient" it is Pearson r using 0 and 1 scores for absence and presence, respectively, of the qualitative trait

$$\text{If} \quad p_1 = p_2 = p, \; r = \frac{B/N - p^2}{pq} = \frac{\dfrac{Np - A}{N} - p^2}{pq} = \frac{p - p^2 - \dfrac{A}{N}}{pq} = \frac{pq - \dfrac{A}{N}}{pq}$$

Solving for A gives $A = Npq\,(1 - r)$ Since $A = D$, D is also equal to $Npq\,(1 - r)$, and since $(A + C) = Nq$ and $(B + D) = Np$,

$$\frac{A}{A + C} = p\,(1 - r)$$

$$\frac{D}{B + D} = q\,(1 - r)$$

spectively, of the qualitative trait it can be shown that the mean of the scores is p, and that considered as groups those initially negative, all with initial scores of 0, and those initially positive, all with initial scores of 1, both regress toward the mean, which is p, the proportion of positive responses in the population.

In view of these considerations, it is not surprising that in the dichotomy of the estimated length of war at the two-year point there was a regression of 34 per cent among the men guessing a war of two years or more. The question was a fairly unreliable one, and only about one man in four selected a response of two or more years initially. The fact that only 11 per cent regress in the experimental group therefore constitutes evidence that the communication was effective in reinforcing the expectation of a long war by preventing 23 per cent of those initially expecting a long war (of 2 years or more) from regressing

The importance of a control for such regression due to unreliability of the measuring instrument is obvious here. If one had merely measured the experimental group before and after the administration of the experimental variable, one might make the mistake of assuming the -11% net change was a negative effect of the communication, rather than the effect of regression due to unreliability, coupled with a sizable positive effect of the communication. For the experimental group *as a whole*, the phenomenon of regression does not affect the conclusion, because regression in a negative direction is offset by regression in a positive direction and any significant overall shift in one direction or the other reflects a true change rather than an artifact of regression. In the present illustrative experiment the overall net change in the control group was only -1%, which is well within chance expectation. Thus the net change of 39 per cent between the before and after measurements in the experimental group is a quite accurate representation of the overall effects of the program because in this case there was no appreciable change due to other causes, so that before and after measurements on just an experimental group would have been adequate for the overall evaluation. However, since this outcome can rarely be accurately predicted in advance, a control is generally needed simply to check on the possible overall shifts due to other causes In any case, the point to be emphasized here is that in order to break down the results into subgroups of differing initial level, the control group is an absolute necessity in order to determine the effects of regression.

A simple example may be used to illustrate the type of false conclusion that can be drawn from data if the errors of measurement and the consequent regression are ignored. Consider the following cross-tabulation of before and after responses which were obtained in a control group in one of the orientation film studies.

Question: "Do you feel that the British are doing all they possibly can to help in the war effort?"

FIRST-SURVEY AND REPEAT-SURVEY RESPONSES (TWO WEEKS LATER) IN A CONTROL GROUP

		First Survey		
		− (no)	+ (yes)	Total
Repeat survey	+ (yes)	40	308	348
	− (no)	57	37	94
	Total	97	345	442

It will be observed that about the same number of men originally saying "no" changed to "yes" (40) as changed from "yes" to "no" (37) But it is also observed that the number originally saying "no" is much smaller to start with (97) than the number saying "yes" (345) If we mistakenly treat all of the changes as real changes of opinion, we get the interesting conclusion that a much larger proportion of the "no" group changed their opinion than of the "yes" group. In fact, 41 per cent of the 97 men originally saying "no" changed to "yes," whereas only 12 per cent of the initial 345 "yeses" changed to "no." This finding might even be generalized in terms of an explanatory concept: it might, for example, be postulated that the majority opinion has much more effect on the minority group than vice versa In line with this, it might be said that the group opinion exerts a force on the dissenters, causing many of them to align themselves with the group opinion whereas only a small fraction shift away from the group opinion.

This reasonable-seeming hypothesis would receive ample "verification" from other sources if the same interpretation were made of similar data. This follows from the fact that a repeat on any question whatsoever, provided there is error of measurement, will give the same picture as in the above illustration Solely on the basis of error of measurement, the number of individuals who shift from negative to positive will be expected to be the same as the number who shift from positive to negative This has already been seen to be a necessary consequence if p_1 and p_2 remain the same It can perhaps be made more meaningful by realizing that whether an individual is a "true positive" or a "true negative," and whatever the frequency of errors for either designation, it will be just as likely that his two responses will be positive first and negative second in the successive surveys as that they will be negative first and positive second And if the *number* of positive-negative pairs is approximately the same as the number of negative-positive pairs, *the proportion changing will necessarily be larger for whichever response was initially in the minority*

Treating the changes in this way as entirely due to the errors of meas-

urement, the marginal per cent of positive responses is seen to "regress" toward the group proportion, in each of the two subgroups of initial response. Thus the group of individuals initially giving the negative response regresses from 0 per cent positive to 42 per cent positive, and the group initially giving positive responses regresses from 100 per cent positive to 88 per cent positive, both groups shifting toward the overall value of 78 per cent positive. If the question had zero reliability, both groups would regress to 78 per cent positive on the retest, which would be a shift involving 78 per cent of those initially negative and a shift of only 22 per cent of those initially positive.

This illustration is chosen as an obvious example of a spurious conclusion that can be drawn because of failure to attend to the errors of measurement in the opinion question used. A similar false conclusion could be drawn if one had used before and after measurements on a single group that was exposed to the film between the two measurements. With the present opinion item no significant effect of the film was obtained in the before-after study, so the film-group results were very similar to the control-group results just shown. But if one ignored regression due to unreliability, one might conclude that the effect of the film was to shift both groups in the opposite direction—making the anti-British more pro-British and make the pro-British more anti-British, the former being the larger "effect"

This obviously spurious example shows clearly the effects of ignoring regression—i.e., the effects of ignoring chance error of measurement—in opinion study. Probably few analysts would draw the spurious conclusions drawn here for illustrative purposes. However, in more complex attempts to analyze opinion changes, the regression factor may enter in a disguised form that leads to spurious conclusions due to failure to consider the involved effects of errors of measurement.

In experiments with the effects of films on opinions, as in most studies of opinion changes, it is often desired to study factors related to a given opinion change by means of analysis of the effects as a function of predisposing background variables, as a function of initial opinions related to the opinion that changed, and as a function of related changes in opinions. The effects are expected to be indirect results of the interaction of the material presented and numerous human variables not subject to the experimenter's control. Special analyses have sometimes been used in an attempt to get at the effects of those elusive variables as causal factors, not by manipulating them and observing the changes produced, but by measuring their extent in each individual and comparing individuals who differ with respect to these variables. In performing such analyses it is particularly important to control for errors of measurement, to prevent phenomena due to regression in selected groups from being attributed to the variables under investigation.

The members of the Experimental Section found a number of examples in which their own earlier attempts to analyze opinion change as a function of other opinions and other opinion changes turned out to be subject to artifacts due to regression. An example of the kind of artifact encountered is illustrated in Appendix C in the discussion of the advantages to analysis of the before-after procedure. In order further to illustrate the effects of neglecting errors of measurement in a complex analysis of opinion change, another illustrative example is provided below. The example and the data are fictitious, but they illustrate the problems involved. Suppose that one of the orientation films had made the point that the League of Nations failed because America refused to become a member. Suppose further that the film produced an increase of 10 per cent, from before to after, in the number holding this belief and that the control group as a whole showed a 0 per cent change in frequency of expressing this belief. The analyst might be interested in whether the film differed in effectiveness among those of differing education, and since the control showed no change might concentrate his attention on the before-after changes in the experimental group. A hypothetical outcome in the analysis might be as follows in response to the question:

"In your opinion, did the League of Nations fail because America refused to become a member?"

LESS WELL EDUCATED

		Before: *No*	Before: *Yes*	*Total*
After	*Yes*	20	20	40
	No	50	10	60
	Total	70	30	*N = 100*

BETTER EDUCATED

		Before: *No*	Before: *Yes*	*Total*
After	*Yes*	25	35	60
	No	25	15	40
	Total	50	50	*N = 100*

The analyst might look at these results and note that among those initially opposed to the idea (i.e., those "no" before), 25/50 or 50 per cent changed to "yes" among the better educated, whereas only 20/70 or 29 per cent changed from "no" to "yes" among the less well educated. Similarly among those initially favoring the point of view only 15/50 or 30 per cent of the better educated went from "yes" to "no" whereas 10/30 or 33 per cent changed from "yes" to "no" among the less well educated. Thus on both counts the better educated were more affected than the less well

educated, many more of the "no" responses changed to "yes," and fewer of the "yes" responses changed to "no"

The hypothetical analyst might be a little puzzled, however, by the fact that the marginal change in each case is 10 per cent; that is, the less well educated shifted from 30 per cent "yes" to 40 per cent "yes" and the better educated shifted from 50 per cent "yes" to 60 per cent "yes." The difficulty is that the initial response is correlated with the variable being examined—that is, the less well educated have fewer facts and tend to give a "patriotic" response exonerating the United States. The less well educated initially say "yes" in only 30 per cent of the cases whereas 50 per cent of the better educated believe initially that America's refusal led to the failure of the League. We therefore expect a smaller proportion of the "yes" responses and a larger proportion of the "no" responses to *regress* among the less well educated. Until we examine the same breakdown in the control group, we do not know how many regress in the various subgroups and cannot conclude anything about differential changes among those initially opposed and those initially favoring, and the results as expressed in the preceding paragraph are meaningless. All we may conclude is that there was a 10 per cent shift in the marginal proportion saying "yes" in each group We may further express this shift in terms of the "effectiveness index" to take account of the initial differences in the marginal proportions. Without examining the control results, even these calculations are risky because there may have been a differential change due to other causes in the two educational groups. Such a possibility is readily taken into account by examining the control results for effects of other causes Further, with the control breakdown available, individual cells in the before-after analysis can be examined, and conclusions may be drawn as a function of the initial position of the members of the samples. What the control adds is the result to be expected, due to all other causes, and it includes as one of the important "other causes" the effects of regression due to errors of measurement.

INDEX

L

M

N

O

P

The Social Science Research Council was organized in 1923 and formally incorporated in 1924, composed of representatives chosen from the seven constituent societies and from time to time from related disciplines such as law, geography, psychiatry, medicine, and others. It is the purpose of the Council to plan, foster, promote, and develop research in the social field

CONSTITUENT ORGANIZATIONS

American Anthropological Association
American Economic Association
American Historical Association
American Political Science Association
American Psychological Association
American Sociological Society
American Statistical Association